

# भक्ति कालीन कृष्ण - काव्य

में

राधा का स्वरूप

द्वारकाप्रसाद मीतल



T212

T212





मुस्लिम विश्व-विद्यालय अलीगढ़ की पी-एच० डी० की उपाधि  
के लिये प्रस्तुत शोध पूर्ण

प्रबन्ध

### प्राक्कथ

डा० हरणस लाल झाँ अध्यक्ष हिन्दी-संस्कृत-विभाग के प्रमुख से जब मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में पी-एचडी० की कक्षा में चुने गये तो मेरी भी कामना हुई कि मैं भी उनके निर्देशन में कोई शोध कार्य करूं। "भक्ति कासीन कृष्ण काव्य में राधा का स्वस्म" विषय भी उन्हीं की देन है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की रूप रेखा से प्रथम परिचय होने में गौस्वामी कुवासी लाल "शशि" अधिकारी श्री राधावल्लभीय बाप कृष्ण सम्प्रदाय का प्राचीन मन्दिर देवन सहारनपुर से प्रथम बार सहायता मिली। तत्काल जब उनके पास गया तो उन्होंने "राधा" विशेषांक देकर कृतार्थ किया। गौस्वामी रूप लाल जी अधिकारी राधावल्लभ जी का मन्दिर वृन्दावन से भी फल द्वारा उन्होंने परित्यक्त कराया, जिन्होंने राधावल्लभ-सम्प्रदाय सम्बन्धी कुछ मुद्रित पुस्तकें देकर कृतार्थ किया। वृन्दावन के दत्त बाग़ में तत्काल की बाबा बंशीदास के संग्रहालय में चतुर्भुजास द्वारा रचित "द्वादश यज्ञ" पुस्तक देने का सीमाग्य प्राप्त हुआ तथा प्रतिभाशाली स्व. मेधावी बाबा हितदास के भी दर्शन हुए। तत्काल बाबा बंशीदास जी की कृपा के लिये उनका हार्दिक कृणी है।

श्री निजुल प्रताप गोजार वृन्दावन मथुरा के अधिकारी तथा श्री सर्वेश्वर के प्रधान सम्पादक श्री कुवल्लभ शरण जी वैदान्ताचार्य पंतीर्थ की विशेष सहायता तत्काल की प्रदान हुई है। तत्काल उनके सद्व्यवहार, दयालुता और निष्कल धार्मिक प्रवृत्ति से विशेष प्रभावित हुआ। उन्होंने एक प्रकार से विषय का मन और उत्तम फल उत्पन्न होने की प्रेरणा ही नहीं दी अपितु, अपने पास निम्नार्थ सम्प्रदाय सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री की

स्वतन्त्रता पूर्णक बध्यम करने की पूर्ण सुविधा भी लेखक को दी। उनके पास मुद्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकों का एक विशाल संग्रह है। लेखक को उन्होंने परशुराम सागर लीलाविंशति वादि हस्तलिखित तथा लोक प्रकाशित ग्रंथों को सहज फल पाठन हेतु दिया। उनकी "निष्कर्ष" माधुरी तो कई मास तक लेखक के पास रही। उनकी सहृदयता एवं सहानुभूति को लेखक अपनी लेखनी द्वारा व्यक्त न करके यही चाहता है कि हृदय से स्वास्वादन करता रहे।

श्री जगन्नाथ शरण जी के द्वारा ही लेखक का परिचय हरिदास-सम्प्रदाय के विरक्त साधु श्री विशेश्वर शरण जी से श्री निरुप वृन्दावन में हुआ। उन्होंने स्वयं सम्पादित "सिद्धान्त-रत्नाकर" ग्रन्थ की एक प्रति लेखक को दी तथा हरिदासी-सम्प्रदाय के गूढ़तम तत्त्वों को हृदयांगम कराया। उन्होंने लेखक को यह प्रान्ति दूर की कि सही नाम का कोई सम्प्रदाय नहीं अस्तित्व में है। उनका मूल, निष्कण्टक बध्यमसायी एवं फल प्रकाश में दक्षिण व्यक्तित्व लेखक को चिर स्मरण रहेगा। उन्होंने हरिदासी सम्प्रदाय की लोक हस्तलिखित पोथियाँ लेखक को बध्यम हेतु दीं जिनके लिए लेखक उनका विशेष आभारी है। इन पोथियों का विवरण प्रबन्ध में हरिदासी सम्प्रदाय के ग्रंथों के अन्तर्गत आया है।

उसीपर

लेखक बाबा कृष्णदास शुभम द्वारा वृन्दावन दरवाजा मधुरा का विशेष कृपा एवं अनुमति है जिन्होंने लेखक के साथ वृन्दावन यात्रा कर लेखक को वृन्दावन से तथा अपनी भाव से चैतन्य सम्प्रदाय की जानकारी कराने के हेतु लोक प्रकाशित पुस्तकें दिलाने और देने की कृपा ही नहीं की कष्ट भी सह्य। ऐसे महान साहित्यकारों से अभी लोक ग्रंथ हिन्दी साहित्य जगत के प्रकाश में आने की आशा है।

साधु प्रवृत्ति श्री कर्तुदास जी का भी लेख कृत है जिन्होंने एक अपरिचित व्यक्ति को 'साह-सागर' ग्रंथ पढ़ने के लिये दिया।

कृष्णदत्त बाजपेयी बख्शदा पुरातत्व संश्लेष मधुरा से लेख को विशेष सहायता मिली है। उन्होंने अपने रजिस्टर जिसमें कि समयानुसार और सम्प्रदायानुसार कृष्ण भक्त कवियों का क्रम था देकर लेखक की सामग्री को, एक क्रम में संजी दिया। क्रम-साहित्य-मण्डल के पुस्तकालय के ग्रंथ मंडार को देखने में भी लेखक को उनकी विशेष सहायता प्रदान हुई जिसके लिये लेखक उनका बाभारी है।

विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों और साधना पद्धतियों के सम्बन्ध में लेखक को डा० दीन दयालु गुप्त के शोध ग्रन्थ 'वष्टाप और बल्लभ-सम्प्रदाय' से विशेष सहायता मिली है। बल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और कवियों की जीवन सामग्री को इस ग्रन्थ से प्रामाणिक सहायता मिलने के कारण लेखक डा० गुप्त का विशेष कर्णी है और उनसे अनुक्रमणिका सम्बन्धी परामर्श मिलने के कारण उनका परम बाभारी है।

राधा-बल्लभ-सम्प्रदाय के सम्बन्ध में लेखक ने डा० विजयेंद्र सातक के शोध-ग्रन्थ 'राधाबल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' को ही प्रामाणिक माना है। इस ग्रन्थ से लेखक को राधाबल्लभ सम्प्रदाय के दर्शन और भक्ति के समझने तथा राधाबल्लभ सम्प्रदाय के कवियों के जीवन और ग्रन्थों के सम्बन्ध में विशेष सहायता मिली है। डा० विजयेंद्र सातक ने लेखक को अपनी ग्रन्थ की एक प्रति भी शीघ्र भिजवाने का कष्ट किया जिसके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट करना लेखक अपना पुणित कर्तव्य ही नहीं समझता विशेष बाभारी थी है।

विद्या विभाग कांकरांली से प्रकाशित लोक ग्रन्थों, श्री डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल के शोध ग्रन्थ 'परमानन्ददास और उनका साहित्य', डा० हरमंशुलाल शर्मा के शोध

ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत और ब्रह्मास' शशिभूषणदास गुप्त के ग्रन्थ 'राधा का कृष्ण विकास' और बलदेव उपाध्याय के ग्रन्थ 'भागवत सम्प्रदाय' से भी लेखक की विशेष सहायता मिली है जिसके लिये लेखक उनका कृतज्ञ है।

लेखक साहित्यकारों और मर्मज्ञों के व्यक्त से मैं ने लाभ उठाया है उन सभी विद्वानों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ।

मुझे न तो संस्कृत का विशेष ज्ञान है और न मैं दर्शन का ही पण्डित हूँ इस हेतु संस्कृत भाषा सम्बन्धी होने वाली लेखक स्वाभाविक त्रुटियों और दर्शन सम्बन्धी लेखक गलत धारणाओं के लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

ग्रन्थ का क्षेत्र आवश्यक ही बढ़ गया है वास्तव में जتنا है नहीं उसके लिये मुझे लेद है।

अन्त में मैं अपने विद्वत् पूज्य गुरुवर डा० हरचंद लाल शर्मा, प्रोफेसर तथा बम्बई संस्कृत-हिन्दी-विभाग मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के निर्देश, परामर्श एवं सौह के लिये किन शब्दों में और क्या लिखूँ जتنا ही यथेष्ट है कि यह जैसा भी जो कुछ है उन्हीं की कृपा का फल है।

आरका प्रकाश पीतल

### धूमिल

भारतवर्ष के इतिहास में मध्ययुग के नाम से जो काल अभिहित किया गया है वह एक प्रकार से धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक विप्लव का काल कहा जा सकता है। गुप्ता वंश के पतन के पश्चात् भारतवर्ष का राजनीतिक चित्रण कुछ धूमिल सा हो गया था। ग्यारहवीं शताब्दी तक यहाँ बहुत परिवर्तन के साथ वातावरण प्रायः तस्पष्ट ही रहा। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् सांस्कृतिक ह्रास का युग प्रारम्भ हुआ और शताब्दियों से चली जाती हुई सांस्कृतिक धार्मिक और सामाजिक परंपराओं का संघर्ष एक बान्दील के रूप में उठ खड़ा हुआ। भारत के दक्षिण में वातावरण उबर की अपेक्षा अधिक शान्त था इसलिए इस बान्दील का शीर्षगोष्ठ दक्षिण से हुआ और धीरे धीरे वह देश व्यापी हो गया। विशिष्ट परिस्थितियों के कारण धर्म के और संस्कृति के मानदण्ड बदले। शंकर का वैश्ववाद निवृत्तपरक होने के कारण सामाजिक प्राणी के लिए अनुपयोगी सा सिद्ध हो रहा था। श्री रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतपूर्ण रूप से मानव की शंकाओं का समाधान न कर सका। इसी प्रकार द्वैतवाद वादि लोकवापों की भी दशा थी। केवल दर्शन परम्पराव तड़फती हुई मानवता की तृप्त करने में असमर्थ थे। बौद्ध धर्म विकृति की चरमावस्था को पहुँच चुका था। नार्थों ने उस विकृति में सुधार का प्रयास किया पर वह भी सामाजिकता के स्तर पर न पहुँच सका। रुढ़ परम्पराओं को लेकर चली जाती लोक पौराणिक पंथ अब निर्धन हो चुके थे। निरीह और निराश्रित जनता को गुमराह करने के अतिरिक्त उनका और कोई उपयोग न रह गया था। मुसलमानों के साथ साथ जाने वाले झुफ्फी सन्तों ने प्रेम को बाधार बनाकर इस अव्यवस्था से लाभ उठाया। सारे

देश में कुछ फटकाड़ और मस्त मौला सन्त उठ सड़े हुए और उन्होंने अपनी सुस्तड़ी भाषा में डाट फटकार के साथ एक संतमार्ग निकालने का प्रयास किया। पर ये सन्त अधिक पढ़े लिखे नहीं थे और नहीं उनके मार्ग के पीछे कोई व्यवस्थित दर्शन था। केवल अनुभूति के बल पर ही ये चल रहे थे। सभी धर्मों और सम्प्रदायों की बुरी बातों की उन्होंने निन्दा की और धर्म के दौत्र में तथा समाज के दौत्र में एक क्रान्ति का बीजारोपण किया पर धार्मिक परम्पराओं और व्यवस्थित दर्शन के अभाव में उनके सिद्धान्त व्यापक न हो सके। भक्ति बान्दोलन को जैसे कुछ बल अवश्य मिला। वास्तव में भक्ति के ऐसे स्वरूप की आवश्यकता बनी रही जो मानव मात्रक के लिए कल्याणकारी हो सकता था। अग्रस्ता उपासना की निर्गुण पद्धति में उस स्वरूप की संभावना नहीं हो सकती थी। भावान् के सुगुण रूप को लेकर चली वाले सम्प्रदायों में भी भावान् के वापसी रूप को ही महत्व मिलता रहा था, यद्यपि इन सम्प्रदायों में अवतारवाद पर विश्वास किया जाता था फिर भी भगवांन की अपेक्षा प्रेम और कर्म फल की अपेक्षा कृपा फल ही पीड़ित और संतप्त जनता के लिए अधिक उपयोगी और वाशप्रद सिद्ध हो सकते थे। इसीलिए भावान् के अवतार कृष्ण में इन दोनों भावों की अवतारणा वाचार्थों ने की। वाचार्थ निम्बार्क ने कृष्ण भक्ति का उद्घोष उत्तर भारत में किया। कृष्ण को सच्चिदानन्द स्वरूप परम चैतन्य माना गया और राधिका को उनकी वाहलादिनी शक्ति। इस प्रकार राधा और कृष्ण की तीता कैलि को भक्ति में स्थान मिला। इस माया की उपासना कई रूपों में धार्मिक सम्प्रदायों में प्रचलित थी ही, बौद्ध धर्म में जो स्थान प्रज्ञा व उपाय का था वध्वा शैव मत में जो शिव और शक्ति का था वही कृष्ण भक्ति शास्त्र में कृष्ण और राधा का हुआ। परम्परार्थ और प्रथार्थ कुछ परिवर्तन के साथ वे ही रही केवल नाम परिवर्तन ही गया। वाचार्थों ने राधा और कृष्ण की भक्ति को शास्त्रीय रूप देना प्रारम्भ किया और प्रस्थान त्रयी की व्याख्या अपनी अपनी ही से करती प्रारम्भ कर दी। श्रीमद्भागवत पुराण नैकल्य वृत्त का कार्य किया

जिससे कृष्ण भक्ति शास्त्रा की बड़ा प्रोत्साहन मिला और वह ऊपर और ऊपर हो गई। शास्त्र और वाचार् दोनों ही पदों को लेकर कई सम्प्रदाय चले तब मूल में राधा और कृष्ण के तत्वों का विवेक ही रहा। चौदहवीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी तक कृष्ण भक्ति का सारे भारत में बड़ा प्रचार हुआ और उसके माध्यम से भारतीय भाषाओं के साहित्यों की पुनर्बुद्धि हुई। हिन्दी में भी बड़े प्राणवान और शक्तिशाली साहित्य की सर्जना हुई। राधा और कृष्ण के स्वल्प विवेक और उपासना निरूपण में कुछ स्थान गत भी रहे पर मूल रूप प्रायः एक सा ही रहा। मध्य युग का सारा साहित्य एक प्रकार से कृष्ण भक्ति साहित्य कहा जा सकता है। राम भक्ति साहित्य की मात्रा अपेक्षा कम ही रही।

राधा और कृष्ण की ऐतिहासिकता को लेकर भारतीय और पश्चात्य विद्वानों द्वारा बहुत कुछ लिखा पड़ा गया है पर भक्ति के क्षेत्र में उपास्य ब्रह्म न होकर वाध्यात्मिक हो जाते हैं, नाश्य जात के न होकर भाव जात के हो जाते हैं। राधा और कृष्ण का उत्कृष्ट भारतीय वागमय में बड़ा पुराना है पर उनका जो रूप इस युग में स्वीकार किया गया संभवतः वह पहले किसी युग में नहीं था। जहाँ कोई सन्देह नहीं कि राधा और कृष्ण के मध्यकालीन स्वरूपों के पीछे शताब्दियों की परम्पराएँ निहित हैं। कृष्ण के स्वल्प विकास को लेकर हिन्दी में कुछ प्रयत्न हुए हैं पर राधा के स्वल्प विकास पर अपेक्षाकृत काम कम है। राधा और कृष्ण दोनों ही के रूप विवेक के दो पदा रहे हैं - शास्त्रीय पदा और वाचरण पदा। भक्ति मार्गों में शास्त्रीय पदा की अपेक्षा वाचरण पदा अधिक महत्व का होता है। शास्त्रीयपदा किसी वस्तु का दर्शन प्रस्तुत करता है जो कि बुद्धि जात का क्षेत्र है। वाचरण पदा व्यवहार को लेता है जो हृदय जात की वस्तु है। सम्प्रदायों के



वाचार्यों ने शास्त्रीय पदा का ही विशेष विवेक किया है पर मन्त्रों और कवियों ने व्यवहार पदा को लिया है। राधा के स्वरूप विवेक में शोध की दृष्टि से दोनों ही पदों का उद्घाटन आवश्यक है।

जहाँ तक शास्त्रीय पदा के विवेक का सम्बन्ध है विभिन्न सम्प्रदायों में राधा के स्वरूप की मान्यताओं का दृष्टिकोण पृथक् पृथक् ही रहा। साम्प्रदायिक वाचार्यों ने अपनी ग्रंथों में राधा का उल्लेख किया परन्तु उनमें साम्प्रदायिक भावों का सामंजस्य होने के कारण राधा का कोई विशुद्ध रूप हमारे सम्मुख नहीं जाता। जो भी थोड़े बहुत साम्प्रदायिक ग्रन्थ इस सम्बन्ध में लिखे गये उन्हीं किसी प्रकार का वासांम्रदायिक निष्पत्ता एवं स्पष्ट राधा का स्वरूप निर्धारण नहीं किया जा सकता। मीरारथ का मेधिल ने अपनी संस्कृत ग्रंथ "युग्मतत्त्व समीक्षा" में राधा के सम्बन्ध में जाये हुए वैदिक पौराणिक एवं तांत्रिक ग्रन्थों के उद्धरणों का चयन किया है। जो कुछ भी थोड़ा बहुत राधा के स्वरूप के सम्बन्ध में कार्य हुआ वह संस्कृत में ही हुआ। हिन्दी में शशिभूषण दास गुप्त ने "राधा का क्रम विकास" ग्रन्थ में राधा का जो क्रमिक विकास दिखाया है वह एक प्रारंभिक कार्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में राधा के स्वरूप के भी दर्शन होते हैं। परन्तु उन्होंने इस ग्रन्थ में राधा के गौड़ीय मत सम्बन्धी दार्शनिक स्वरूप और शक्ति स्वरूप की विवेक प्रचुर मात्रा में की है। चैतन्य सम्प्रदाय की राधा का भी विशुद्ध विवेक हुआ है। परन्तु जहाँ तक विभिन्न सम्प्रदायों के निष्पत्ता राधा के स्वरूप का संबंध है उसका इस ग्रन्थ में विस्तृत विवेक नहीं है। इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि वे वैदिक प्रभाव से विशेष प्रभावित हैं। जहाँ तक हिन्दी साहित्य में राधा के स्वरूप विवेक का सम्बन्ध है वह इसमें नहीं के बराबर है। केवल मीरा बादि कुछ कवियों के उद्धरण

इन्होंने प्रस्तुत किये हैं। इस हेतु हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य जगत में विभिन्न दृष्टिकोणों से निष्पन्न एवं सर्वांगीण राधा के विस्तृत स्वरूप विवेक सम्बन्धी ग्रन्थ का नितान्त निस्सम्भवाव था। मैं ने अपने इस 'भक्तिकालीन कृष्ण काव्य' में राधा का स्वरूप शीघ्र प्रबन्ध में इस अभाव की पूर्ति करने का प्रयास किया है। इसमें मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसका निर्णय विज्ञान ही कर सकेगा।

प्रस्तुत प्रबंध के प्रथम अध्याय में श्रीमद्भागवत गीता, श्रीमद्भागवत पुराण, साहित्य भक्ति सूत्र, नाट्य, भक्ति सूत्र तथा विभिन्न साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर भक्ति की व्याख्या केन्द्र उसके प्रकार बताये गये हैं। फिर वैदिक युग से आज तक के भक्ति के विकास का सांगोपांग वर्णन किया गया है। वैदिक ग्रन्थों से तथा धार्मिक ग्रन्थों में किस प्रकार कृष्ण का विकास हुआ है यह बताया गया है। शिवाजी तथा ताग्रहों तथा विभिन्न घटनाओं से कृष्ण की प्राचीनता सिद्ध करते हुए कृष्ण के विकास का विस्तृत विवेक है। राधा का बीज किस प्रकार से वैदिक ग्रन्थों से और पुराणों, तन्त्रों तथा संस्कृत के प्राचीनतम ग्रन्थों में मिलता है दिखाते हुए राधा का विस्तृत क्रमिक विकास दिखाया है।

द्वितीय अध्याय में राधा शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुये राधा के साध्यात्मिक, दार्शनिक, ज्योतिष, धार्मिक, योगिक तथा वैज्ञानिक स्वरूप की विवेचना की गई है।

तृतीय अध्याय में वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए बताया है कि उसमें राधा शब्द के बीज मिलती हैं और अथर्ववेद में राधिकोपनिषद् की कल्पना की गई है। पुराणों तथा तन्त्रों की संख्या और विवरण बताते हुये उनमें आये राधा के

---

स्वप्न का विस्तृत विवेक किया है। इसमें बताया है कि गौपनीय रूप से किस प्रकार श्रीमद्भागवत पुराण में भी राधा के स्वरूप वस्तुनिर्दिष्ट हैं तथा ब्रजवर्त पुराण में किस प्रकार से राधा का विशद एवं विस्तृत चित्रण हुआ है। तन्त्रों में स्थापित हुई कृष्ण और राधिका की स्मृति पर भी प्रकाश डाला गया है। विषय के प्रतिपादन हेतु उसकी पृष्ठ-भूमि को बताना निरन्तर आवश्यक समय चतुर्थ अध्याय के प्रथम भाग में शंकर, निम्बार्क, वल्लभ, रामानुज, चैतन्य, शिखरिचं, हरिदास आदि विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों के तत्त्वों सिद्धान्तों तथा साधना पद्धतियों का सूक्ष्म विवेक एवं विश्लेषण किया गया है। चौथे अध्याय के द्वितीय भाग में निम्बार्क, पुष्टि, चैतन्य, वैष्णव सहजिया, राधावल्लभ सम्प्रदाय के अन्तर्गत राधा की उपासना, मानता तथा भक्ति भावना पर प्रकाश डालते हुए राधा के स्वप्न का वर्णन है। इसमें बताया है कि वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण महान्, निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा महान् तथा राधावल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण राधा के अनुबन्धी हैं।

पंचम अध्याय में जयदेव के गीताविन्द की राधा, चण्डीदास की परकीया राधा विद्यापति की शृंगारिक राधा का विशद विवेक करते हुए अन्त में चण्डीदास और विद्यापति की राधा का तुलनात्मक विवेक किया गया है। इसमें बताया है कि लौकिक दृष्टि से तीनों में शृंगारिका होती हुई भी उनके अन्तर में किस प्रकार भक्ति का सामंजस्य है।

षष्ठ अध्याय में सम्प्रदायानुसार एवं क्रमानुसार हिन्दी साहित्य के कुछ प्रसन्न कवियों के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके राधा सम्बन्धी उद्धरणों का चमक एवं वित्तर धाराओं का विशद एवं विस्तृत विवेक किया गया है। राधा सम्बन्धी उद्धरण मुद्रित तथा अमुद्रित दोनों प्रकार के ग्रन्थों से ही दिये गये हैं।

परिशिष्ट में ऐतिहासिक अवस्था साहित्य कृष्ण एवं राधा पर होने के कारण तथा वास्तविक काल के कवियों के राधा विभिन्न दृष्टिकोण होने से

कारण उनका विवेक किया गया है। ऐतिहासिक कवियों की प्रशंसा प्रायः एक समान होने के कारण उनके कुछ प्रसिद्ध कवि केशव/देव, किलारी, मतिराम और फलामर से उद्धरण दिये गये हैं। वास्तविक काल की कवियों में माहेन्द्र हरिचन्द्र, कवीश्वर सिंह उपाध्याय हरिऔध, मेरिती हरण गुप्त, तारका प्रसाद मिश्र तथा बाजपेयाल की राधा के स्वल्प का बालीनात्मक विस्तृत विवेक है।

### मीतिता-

प्रथम अध्याय में मति की व्याख्या, प्रकार, विकास, कृष्ण का विकास और राधा के विकास का गंभीर, विस्तृत विश्लेषण और मीति वर्णन है।

द्वितीय अध्याय में राधा का वास्तविक, ज्योतिष, धार्मिक, मीतिक और वैज्ञानिक स्वार्थीय मीतिक वर्णन किया गया है ऐसा अन्य एक स्थान पर उल्लेख नहीं था। इस शोध ग्रन्थ में पुराणों एवं तंत्रों में राधा का विस्तृत एवं विस्तृत विवेक किया गया है। राधा-वर्णन-प्रधान ऋषिपुत्रपुराण के अतिरिक्त अन्य लोक पुराणों एवं तंत्रों से राधा सम्बन्धी उद्धरण संश्लेषण शोध कर दिये गये हैं। प्राचीन एवं लोक संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में राधा सम्बन्धी वर्णन को शोध कर उनका मीतिक विवेक किया गया है।

विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का गंभीर गूढ़ एवं मीतिक चिन्तन किया गया है। निम्नार्क और गुरुतम सम्प्रदाय के राधा के स्वल्प का मीतिक चिन्तन है। वैष्णव सम्प्रदाय एवं हरिदासी सम्प्रदाय की राधा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उतना गंभीर विवेक का विश्व में कभी तक नहीं हुआ था। हरिदासी सम्प्रदाय के गुरुतम स्वामी का उद्घाटन करते हुये इस सम्प्रदाय के राधा स्वल्प का मीतिक एवं विस्तृत विवेक का शोध ग्रन्थ में किया गया है।

जयदेव की विश्व मौक्तिक अध्यात्म के उपरान्त विद्यापति के राधा सम्बन्धी उद्धरणों में अनुपम नवीनता और मौक्तिकता है तथा अपना पूर्ण दृष्टिकोण है।

इस शोध-ग्रन्थ में जहाँ तक हिन्दी साहित्य के कवियों का सम्बन्ध है लेखक ने उनके लेखकों की मुद्रित एवं हस्तलिखित कृतियों को पढ़ा और देखा है। उनमें निम्नार्क सम्प्रदाय के परशुराम सागर आदि ग्रन्थ तथा हरिदासी सम्प्रदाय की उनके हस्तलिखित भाषणियाँ तो ऐसी हैं जो हिन्दी साहित्य जगत के प्रकाश में ही नहीं आई। लेखक ने उनके सम्प्रदायों के वृहत् ग्रन्थ भण्डार का अध्ययन कर उत्तम से जो राधा सम्बन्धी उद्धरण प्रस्तुत किये हैं वे नितान्त मौक्तिक, नूतन एवं लेखक के व्यक्तिगत दृष्टिकोण को लिए हैं। कवियों के राधा सम्बन्धी उद्धरणों से पहले सम्बन्ध निवारण के दृष्टिकोण से उनका संक्षिप्त जीवन विवरण भी दिया गया है।

परिशिष्ट में दिये गये ऐतिहासिक राधा सम्बन्धी उद्धरणों का चयन सर्वथा मौक्तिक है। आधुनिक काल के कवियों का आलोचनात्मक राधा का स्वप्न वाक्यों में भी लेखक की दृष्टि सर्वथा मौक्तिक ही रही है।

हार्का प्रसाद मीतल

## विषयानुक्रमिका

### प्रथम अध्याय

.....

#### मक्ति और उसका विकास

पृष्ठ

१. मक्ति की व्याख्या	१..६
२. मक्ति के प्रकार	७..१४
३. मक्ति का विकास	१५..२४
४. कृष्ण का विकास	२५..७७
५. राधा का विकास	७८..१०६

### द्वितीय अध्याय

.....

#### राधा की व्युत्पत्ति और उसके विभिन्न स्वरूप

१. राधा शब्द की व्युत्पत्ति	११०..११५
२. राधा का आध्यात्मिक स्वरूप	११५..१२१
३. राधा का दार्शनिक स्वरूप	१२१..१२६
४. राधा का वैज्ञानिक स्वरूप	१३०..१३४
५. राधा का ज्योतिष स्वरूप	१३५..१३६
६. राधा का सौन्दर्य धार्मिक स्वरूप	१३६..१४६
७. राधा का यौगिक स्वरूप	१४६..१५१

### तृतीय अध्याय

.....

#### संस्कृत साहित्य में राधा का स्वरूप

१. वेद और वैदिक साहित्य में राधा का स्वरूप	१५२..१७०
वेद और वैदिक साहित्य, कुतल्लान्त्र १५२..	
१५३, ब्राह्मण ग्रन्थ. १५४..१५६, बाराण्यक	
१५६..१५८, उपनिषद् १५८..१६०, वेद और	
वैदिक साहित्य में राधा का स्वरूप १६०..	
१६८, बृहद् ब्रह्म संहिता १६६..१७०	

सनतकुमार संहिता १७०:

२. पुराण और पुराण साहित्य में राधा का स्वरूप

१७१.. २२०

पुराण साहित्य १७१.. १८०, पुराणों में राधा का स्वरूप:..  
ब्रह्म पुराण १८२, पद्मपुराण १८२.. १८८, विष्णु पुराण १८८..  
१८६, ज्ञान पुराण १८६. १९०, श्री मद्भागवत १९०. १९४, नारद  
पुराण १९४. १९५, ब्रह्म वैवर्तपुराण १९६. २१०, वारह्मपुराण २११,  
स्कन्दपुराण २११. २१२, मत्स्य पुराण २१२, ब्रह्मांडपुराण २१२.  
२१४, देवीभागवतपुराण २१५. २१६, मविष्णुपुराण २१६. २१७,  
आदिपुराण २१८, गर्गसंहिता २१६. २२०।

३. तंत्र शास्त्र और उसमें राधा का स्वरूप

२२१.. २३८

तंत्र शास्त्र २२१. २२६, तंत्रशास्त्र में राधा २२७, समौहनतंत्र  
२२७. २२८, गौतमीयतंत्र २२८. २३०, रुद्रयामलतंत्र २३०. २३२,  
माहेश्वरतंत्र २३२, कृष्णयामलतंत्र २३३. २३४, मुद्रांमनायतंत्र २३४,  
हरितंत्र २३४, हरिलीलामृततंत्र २३५. २३७, मंत्रमहोदधितंत्र २३७,  
सारस्वततंत्र २३७. २३८।

४. संस्कृत साहित्य में राधा का स्वरूप

२३९.. २५३

संस्कृतसाहित्य में राधा २३९. २४०, गाय्यासप्तसती २४१.  
२४२, पंचतंत्र २४२. २४३, धनंजय. दशरूपक २४४, आनन्दवर्धन  
ध्वन्यालोक २४४. २४६, मट्टनारायण. कौण्टीसंहार २४६,  
मोज सरस्वती कंठारण २४६. २४८, वैमन्ड दशावतार  
२४८. २४९, अन्य ग्रन्थ २४९. २५३।

चतुर्थ अध्याय

.....

भक्ति के विभिन्न सम्प्रदाय और उनमें राधा का स्वरूप

अ. भक्ति के विभिन्न सम्प्रदाय

१. संतराचार्य

२५४.. २५६

२. रामानुज सम्प्रदाय

२५६.. २६८

३. वल्लभ संप्रदाय	२६६.. २८०
४. माध्व संप्रदाय	२८०.. २८९
५. निम्बार्क संप्रदाय	२८९.. ३०४
६. चैतन्य संप्रदाय	३०५.. ३१८
७. हरिदासी संप्रदाय	३१८.. ३२६
८. राधावल्लभ संप्रदाय	३३०.. ३४९

### विविध संप्रदायों में राधा का स्वरूप

१. वल्लभ संप्रदाय में राधा का स्वरूप	३४२.. ३४६
२. निम्बार्क संप्रदाय में राधा का स्वरूप	३४७.. ३५३
३. चैतन्य संप्रदाय में राधा का स्वरूप	३५४.. ३६४
४. हरिदासी संप्रदाय में राधा का स्वरूप	३६५.. ३७०
५. राधावल्लभ संप्रदाय में राधा का स्वरूप	३७१.. ३७६
६. वैष्णव सहजिया संप्रदाय में राधा का स्वरूप	३८०.. ३८९

### पंचम अध्याय

.....

### जयदेव, विद्यापति और केंडीदास की राधा का स्वरूप

१. जयदेव की राधा	४१२.. ४१९
२. विद्यापति की राधा	४१२.. ४३८
३. केंडीदास की राधा	४३६.. ४५७
४. केंडीदास व और विद्यापति की राधा : तुलनात्मकः	४५८.. ४६३

### षष्ठ अध्याय

.....

### विविध संप्रदायों के कवियों का राधा का स्वरूप

१. वल्लभ संप्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप	४६४.. ६१३
---	-----------

सुरदास ४६४.. ५१२, परमानंददास ५१३. ५२६,  
कुंभनदास ५३०. ५४०, कृष्णदास ५४१. ५५४, नंददास  
५५५. ५७०, चतुर्भुजदास ५७१. ५८४, गोविन्दस्वामी



५८५, ५८६ हीतस्वामी ५८७, ६०२, मीराबाई ६०३,  
६०७, रत्नान ६०८, ६१३ ।

२. निम्नार्क सम्प्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप.

६१४, ६६६

श्रीमूट ६१४, ६२२, हरिव्यास जी ६२३, ६४६,

परशुराम देवाचार्य ६४७, ६५२, रूप रसिक देव ६५३, ६६६ ।

३. चैतन्य सम्प्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप.

६६७, ७३५

माधवेन्द्रपुरी ६६७, ईश्वर पुरी ६६७, केशव भारती ६६८,

महाप्रभु चैतन्य ६६८, ६७२, श्री रूप गोस्वामी ६७२, ६८७,

सनातन गोस्वामी ६८७, ६८८ श्रीकृष्णाय गोस्वामी ६८८,

६८९, रघुनाथ मूट गोस्वामी ६८९, ६९७, जीवगोस्वामी

६९०, ६९१ श्रीगोपाल मूट गोस्वामी ६९१, ६९२, कृष्णादास

कविराज, चैतन्य चरिता मृत ६९५, ७०० प्रोवाधानन्द सरस्वती

७०२, कविकुमारसूर ७०३ ७०२, श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ७०२,

७०६, श्रीकृतदेव विष्णुभारता ७०६, ७०७, मदाधर मूट ७०८,

७१७, सुरदास फन मोहन ७१७, ७२३, बल्लभ रसिक ७२३,

७२५, श्री माधुरी जी ७२५, ७३५ ।

४. हरिदासी सम्प्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप

७३६, ७६६

टूटीस्थान की बाचार्य परम्परा ७३६, ७३७

स्वामी हरिदास ७३८, ७४५, श्री कृष्ण विपुल देव ७४६, ७५२

स्वामी विहीरिन देव ७५२, ७५७, नागरीदास ७५८, ७६५,

सरसदास ७६६, ७७०, नरहरिदेव ७७१, ७७३ पीताम्बरदेव ७७४

७७६, रसिक देव ७८०, ७८४, ललितकिशोरीदेव ७८५, ७८८, ललित

भास्विनी देव ७८६ भावत रसिक ७८७, ७८६ ।

५. राधा बल्लभ सम्प्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप

७६७, ८१३

श्री क्षि हरिवंश ७६७, ८०२, राधासुधानिधि ८०३,

८१३, क्षिहरिवंश का हिन्दी काव्य ८१४, ८२६,

दामोदर दास सैवक जी ८३०, ८३४, चतुर्भुजदास

८३५, ८४१, श्री हरिराम व्यास ८४२, ८६२,

श्री गुरुदास ८६३, ८८८, श्री गुरुदास दास बाबाजी

८८६, ८९३

३५।

सप्तमं अध्याय

.....

।परिशिष्ट।१.

रीतिकाल और जायनिक काल में राधा का स्वरूप

६९४.

१. रीतिकाल में राधा का स्वरूप

६९४, ६३७

रीतिकाल ६९४, ६९७, केशव ६९८, ६२१

बिहारीलाल ६२२, ६२५ मतिराम ६२६

६२८ देव, ६२९, ६३३, पद्माकर मूट ६३४, ६३७

२. जायनिक काल में राधा का स्वरूप

६३८, १०१२

राधास्वामी मत ६३८, ६४२ राधास्वामीमत में

राधा का स्वरूप ६४३, ६४६ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

६४६, ६५७, जन्माथ दास रत्नाकर ६५७, ६६०

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ६६०, ६७७

मैथिली शरणा गुप्त ६७६, ६८५ द्वारका प्रसाद

मिश्र ६८५, ६८८, दाऊदयाल गुप्त ६८६, १०१२

परिशिष्ट २.

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत ग्रन्थ

१०१३, १०१५

हिन्दी ग्रन्थ

१०१६, १०२१

हस्त लिखित ग्रन्थ

१०२१,

पत्र पत्रिकाएँ

१०२२

अंग्रेजीग्रन्थ

१०२३ ।

## प्रथम अध्याय

भक्ति और उसका विकास

## भक्ति की व्याख्या

यद्यपि हमारा विषय भक्ति-विवेक नहीं है फिर भी साधारण रूप से भक्ति के सम्बन्ध में विचार आवश्यक है। "भक्तुः सेवायामाप्नुवातु" में "किन्" प्रत्यय लाने से भक्ति शब्द बनता है जिसका सामान्य रूढ़ अर्थ भावान् का सेवा-प्रकार है। परम वैराग्यशील बनकर इष्टदेव की उपासना में रत रहना ही सच्ची भक्ति है। वास्तविक भक्ति वैराग्य की नींव पर स्थित है। भक्ति ईश्वर की शीघ्र द्रवित कर भक्त की वारम्भ से ही सत्त पहुँचाने लाती है। वह स्वयं साध्य एवं साधन रूप है। निष्कण्ट रूप से ईश्वराकुसंधान ही भक्ति योग है तथा प्रेम उसका वाहि मध्य और क्लृप्तान है। भक्ति के सम्बन्ध में प्राचीन तथा क्लासिक वाचार्यों ने विभिन्न भाव से अपने अपने विचारों का प्रतिपादन किया है परन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करने पर हम उस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन विभिन्न सिद्धान्तों के मूल में एक ही भावना निहित है कि भावान् के प्रति स्नेह तथा परम प्रेम ही भक्ति है।

भक्ति का विवेक करने वाले निम्नलिखित संस्कृत ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :-

- १- श्रीमद्भागवत गीता और श्रीमद्भागवत पुराण
- २- शांडिल्य भक्ति सूत्र और नास्र भक्ति सूत्र ।
- ३- विभिन्न सांप्रदायिक वाचार्य ग्रंथ ।

-----  
**श्रीमद्भागवती-**  
 -----

श्रीमद्भागवती में भक्ति की और संकेत करते हुए कृष्ण

भावान् कही है कि " है श्रेष्ठ तप वासे ऊँ । कान्य भक्ति करके तो वह प्रकार  
 कर्तुं ह्य वाता में प्रत्यक्षा देखने के लिये और तत्त्व से जानने के लिये तथा प्रवेश  
 करने के लिये कर्त्ता स्त्री भाव से प्राप्त होने के लिये भी शक्त हूँ। " उन्होंने एक स्थान  
 पर और कहा है " यदि कोई बलिष्ठ दुराचारी भी कान्य भाव से मेरा भक्त हुआ  
 मेरे को । निरन्तर । भक्ता है वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ  
 निश्चय वाता है। शीघ्र ही कर्त्ता ही जाता है । और । सदा रहने वाली परम  
 शान्ति को प्राप्त होता है। है ऊँ । तु निश्चय पूर्ण सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट  
 नहीं होता। " <sup>२</sup>

गीता के चारहवें और कठारहवें अध्याय में भक्त के लक्षण  
 बताते हुये वह स्थिति बताई है जब भक्त को परा भक्ति की प्राप्ति होती है। जब  
 मनुष्य विशुद्ध बुद्धि से युक्त स्वान्त और शुद्ध देश का ऐक्य करने वाला तथा मित्राहारी  
 जीते हुए मन वाणी शरीरवाला और दूढ़ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ निरन्तर  
 ध्यान योग के परायण हुआ सात्त्विक धारणा से वृत्तःकरण को वश में करके तथा  
 शब्दादिक विषयों को त्यागकर और रागद्वेषों को नष्ट करके, अहंकार, मत्, यमण्ड  
 काम, क्रोध और संग्रह को त्याग कर समता रहित शान्त वृत्तःकरण हुआ सच्चिदानन्दधन  
 ब्रह्म में स्वीभाव होने के लिये योग्य होता है। सच्चिदानन्दधन ब्रह्म में स्वीभाव से स्थित  
 हुआ प्रसन्न चित्त वाला पुरुष न तो किसी वस्तु के लिये शोक करता है और न किसी  
 की वांछांता ही करता है स्व मुक्तों में समभाव हुआ मेरी परा भक्ति को प्राप्त होता  
 है। परा भक्ति के द्वारा मेरे तत्त्व से भली प्रकार जानता है कि मैं जी और जिस प्रभाव  
 वाला हूँ तथा उस भक्ति से मेरे को तत्त्व से जानकर तत्काल ही मेरे में प्रवेश ही जाता है। " <sup>३</sup>

१- मतस्या त्वनन्यथन शक्य वर्तमानविणी कुं । ज्ञाते कष्टे न तत्त्वेन प्रोष्टे न परंतप ॥

श्रीमद्भागवतगीता वज्रपाद ११ श्लोक ५३

२- श्रीमद्भागवतगीता - गीता प्रेस गीतापुर ६-१०-३१

३- श्रीमद्भागवतगीता - " " ३-२५-२२-१८-५१-५२

श्रीमद्भागवत के अनुसार जिन मनुष्यों का चित्त भावान् में  
 ला गया है <sup>१</sup> ऐसी मनुष्यों की वेद विहित कर्मों में लगी हुई तथा विषयों का ज्ञान  
 कराने वाली कर्मान्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय दोनों प्रकार की प्रवृत्ति की वस्तुओं में भावान् की वस्तुओं  
 भक्ति कहा है। श्रीमद्भागवत में भक्ति योग के लक्षण के सम्बन्ध में भावान् का कहना है  
 “ कि जिस प्रकार गंगा का प्रवाह क्षण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है उसी प्रकार  
 भरे गुण के अवणमात्र से मन की गति का तैलवारावत् अविविहित रूप से मुक्त स्वान्तिकर्मों  
 के प्रति ही जाना तथा मुक्त पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना यह निर्गुण  
 भक्ति योग का लक्षण कहा गया है। ” भक्ति का लक्षण श्रीमद्भागवत में इस प्रकार  
 दिया गया है “ मनुष्यों के लिये सर्वश्रेष्ठ कर्म कही है, जिससे भावान् श्रीगुरुज्य में भक्ति  
 ही भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर  
 बनी रहे, ऐसी भक्ति से हृदय आनन्दस्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता  
 है। ” भावान् की सेवा को बढ़ाकर ऐसी भक्त दिव्य जाने पर भी सालोक्य, साष्टि,  
 सामीप्य, सारूप और सामुख्य मोक्ष तक को नहीं लेता। उसमें भक्ति की मुक्ति से बढ़कर

१- देवानां गुणल्लानानुविकल्मषणाम् ।

सत्त्वं स्वैक्यमसौ वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥ श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्र ३ श्लोक २५, २२

२- मन्त्रेण ब्रूति मात्रे मयि सर्वगुहाश्रये ।

मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गा स्पर्शोद्भवा ॥ श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्र ३ श्लोक २६, १९

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्येवाद्भुतम् ।

वस्तुव्यवस्थिता भामक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्र ३ श्लोक २६, १२

३- सं वै प्रेक्षां परी कर्मा यती भक्तिरधोदमै ।

वस्तुव्यवस्थिता यथाऽऽत्मा सम्प्रीदति ॥ श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्र १ श्लोक २, ६

४- श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्र ३ श्लोक २६, १३

कहाया है क्योंकि जिस प्रकार वे करानल साथे हुये कर्म को फाता है उसी प्रकार यह कर्म संस्कारों के मंदारूप सिं शरीर को तत्काल भस्म कर देती है। श्रीमद्भागवत के स्कान्द स्कंध के चौदहवें अध्याय में भक्ति की योग साधन, ज्ञान, विज्ञान, कर्तुिष्ठान, जप-भाठ और तप त्याग से भी बढ़कर माना गया है। भावान् ने स्वयं कहा है कि " मैं अनन्य भद्रा और अनन्य भक्ति से ही फल में जाता हूँ। मुक्ति प्राप्त करने का यह एक ही उपाय है। " उनका कहना है कि भक्ति " जाति बांध से मुक्त करने वाली है। " भक्ति योग के द्वारा वात्मा कर्म बाधनाओं से मुक्त होकर मुक्तों ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि मैं ही उनका वास्तविक स्वरूप हूँ। नवम स्कंध में भावान् घोषणा करते हैं कि वह भक्ति के द्वारा ही जाने बातें, भक्तों के वश में होते और उन्हें वाक्य देते हैं। ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य भी भागवतकार ने स्थान स्थान पर किया है।

शांडिल्य के शब्दों में " सा परानुरक्तिरिह्वरे " यर्थात् ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है। ई श्वर सम्बन्धी ज्ञान विशेष का नाम भक्ति नहीं है, क्योंकि वैष्णवी पुरुष को भी ज्ञान होता है परन्तु उसमें प्रीति नहीं होती। वैष्ण का प्रतिकूल और उस शब्द का प्रतिपादक होने के कारण भक्ति का नाम ही अनुराग है। वह ज्ञान की भांति अनुष्ठान कर्ता के अधीन नहीं है। शांडिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति शब्द गौणी भक्ति का प्रतिपादक है जो परा भक्ति की भीतिरूप है। नवन

१- श्रीमद्भागवत १-२-६

२- भागवत स्कंध ११ अध्याय १४ श्लोक २० से २५ तक ।

३- भागवत ६-४-६३ से ६८ तक

४- भागवत १-२-११

५- शांडिल्य भक्ति सूत्र ४२

६- " " " ४

७- शांडिल्य सूत्र ६

८- शांडिल्य सूत्र ७



बीर सेवा ही गौणी भक्ति है।<sup>१</sup>

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के सम्बन्ध में विभिन्न वाचार्थों की भक्ति सम्बन्धी व्याख्या का विवेचन करते हुये बताया है कि पराशर नन्दन जी व्यास जी के मतानुसार भगवान् की पूजा वादि में अनुराग होना ही भक्ति है।<sup>२</sup> श्री गार्ग्य जी के मतानुसार भगवान् की कृपा वादि में अनुराग होना ही भक्ति है।<sup>३</sup> देवर्षि नारद के मत में अपने सब कर्मों को भगवान् के अर्पण करना बीर भगवान् का थोड़ा सा भी विस्मरण होने में परम आकुल होना ही भक्ति है।<sup>४</sup> नारद भक्ति सूत्र में भक्ति की व्याख्या करते हुये लिखा है कि वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है।<sup>५</sup> बीर ज्ञात रूपा भी है। उसको पाकर मनुष्य सिद्ध हो अमर बीर तृप्त हो जाता है।<sup>६</sup> उसके प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है बीर न उसे विषय भागों की प्राप्ति में उत्साह रहता है।<sup>७</sup> उसे जानकर ही मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जानता है बीर आत्माराम बन जाता है।<sup>८</sup> वह कामनायुक्त न होकर निरोध स्वरूपा है।<sup>९</sup> नारद भक्ति-सूत्र में ब्रज गौपियों की भक्ति का उदाहरण देते हुये कहा गया है कि भगवान्

१. शांडिल्य भक्ति सूत्र ५६

२. नारद भक्ति सूत्र १६

३. नारद भक्ति सूत्र १७

४. नारद भक्ति सूत्र १६

५. नारद भक्ति सूत्र २

६. नारद भक्ति सूत्र ३

७. नारद भक्ति सूत्र ४

८. नारद भक्ति सूत्र ५

९. नारद भक्ति सूत्र ६

१०. नारद भक्ति सूत्र ७



के भ्रम की व्यापृत अवस्था में भी वाचात्म्य ज्ञान की विस्मृति नहीं होनी चाहिए क्योंकि उसके बिना भक्ति जोकि चार-भ्रम के उपाय होती है। प्रभुमारों के। चतु-  
स्तेमारादि और नास्तिक के। यत है भक्ति स्वयं फल स्था है। वह भ्रम स्था भक्ति  
जन्म, ज्ञान और योग से भी वैष्ट है क्योंकि वह फलस्वा है भक्ति शान्तिस्वा और  
परमानन्द स्था है तथा तीनों सत्तों। जायिका, वायिका, मानयिका। वक्ता जाती  
में वैष्ट है।

श्री महाप्रभुस्वामिचार्य ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार  
की है, "भावान् में महात्म्यपूर्ण क सुखद और उत्तम लोच ही भक्ति है। मुक्ति का सही  
सर्व उपाय नहीं है।"

भक्ति-स्वानुत-चिन्ते के पूर्ण विभाग की प्रप्त करी में भक्ति  
के सामान्य रूप की, प्रितीय करी में वाचना का, तृतीय करी में भाव भक्ति का और  
चतुर्थ करी में भ्रम भक्ति का विवेक हुआ है। भक्त शिरोमणि स्वामीस्वामी ने भक्ति का  
सुन्दर तथा वास्तविक वर्णन इस प्रकार दिया है, "भावान् श्रीकृष्ण परम लोचस्व है।  
जो: उनके कुशोक्त की भक्ति करते हैं, किमें अन्य किसी प्रकार की सम्मिलना न हो,  
ज्ञान। निर्गुण ज्ञानोन्धान, तत्त्व वैमिश्रिक वादि। का वावरण न हो, परन्तु कृष्ण के  
कुशोक्त होने वाली प्रभुति की सेवा हो। इस भक्ति का उदय ज्ञान के अन्तर ही होता है।

१- नास्तिक भक्ति सूत्र २३

२- नास्तिक भक्ति सूत्र ३०

३- नास्तिक भक्ति सूत्र २५

४- नास्तिक भक्ति सूत्र २६

५- नास्तिक भक्ति सूत्र २९

६- वाचात्म्य ज्ञान प्राप्त सुखद करती कि: , लोच भक्तिरिति प्रीतिस्वभाव मुक्तिर्वाच्यम्।

तत्त्वदीप निबन्ध ज्ञान चानर मन्त्र, श्लोक ४६, पृ० १२७

७- वन्यामितामिताशून्य ज्ञानरूपमिनामृतम् । जानकूलन कृष्णानुशाल भक्तिरुत्तमा ॥

श्री हरिभक्ति स्वानुतचिन्ते, स्वामीस्वामी, १६५५ वैष्णवादि प्रप्त संस्करण पूर्ण

विभाग १ करी ११ पृ० ११-१२

### भक्ति के प्रकार-

भक्ति का विवेक करने वाले ग्रन्थों का उद्देश्य "भक्ति की व्याख्या करते समय हम कर चुके हैं। हम ग्रन्थों में भक्ति की परिभाषा के अतिरिक्त भक्ति के प्रकार भी विनियमित हैं। वास्तव में किसी भी सम्बन्ध के रूप होते हैं उन्हीं ही भक्ति के प्रकार भी हो सकते हैं। उस प्रकार भक्ति के प्रकारों का वाधार करने की आवश्यकता है। एक प्रकार <sup>के</sup> मनीषिज्ञानिक इस बात पर है।

विभिन्न वाचार्थों ने लोक ज्ञान और ज्ञान के वाधार पर इन विभिन्न मनीषिज्ञानिक प्रणियों के अनुसार भक्ति के प्रकार विनियमित हैं। वस्तुस्थिति तो यह है कि भक्ति एकलया है। उसके प्रकार के इन सुविधा के अनुसार ही विचार जा सकते हैं। भक्ति के प्रकार भक्ति की साधन प्रणियाँ हैं जिनमें प्रकार है साधक वर्ष न लेकर उसके तात्त्विक वर्ष भर ही ध्यान देना चाहिए।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध में वाया है कि "साधकों के अनुसार भक्ति योग का लोक प्रकार है प्रकाश होता है, क्योंकि स्वभाव और गुणों के भेद है। गुणों के भाव में भी विभिन्नता वा जाती है। जो भेद नहीं ग्रीष्म पुरुष स्वयं में होता, दम्भ वक्ता मात्सर्य का भाव रह कर मुक्त है। इस प्रकार वाया है।

१- भक्तियोगी बहुविधा मार्गमाप्तिनि माव्यते ।

स्वभावेणपार्थेय प्रेक्षां भावी विमिश्रते ॥ ७ ॥

२- वभिसन्धाय यो हितं दम्भं मात्सर्यमेव वा ।

चरन्भी भिन्नहृत्मायं मयि कुर्वीत वाप्यतः ॥ ८ ॥

मन्त है। जो पुरुष विष्णु, यह और ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में भैरा भैरभाव से पूजन करता है, वह राजस मन्त है। जो व्यक्ति पापों का दाय करने के लिए, परमात्मा को अर्पण करने के लिए और पूजन करना कर्तव्य है - इस बुद्धि से भैरा भैर भाव पूजन करता है, वह सात्त्विक मन्त है। जिस प्रकार गंगा का प्रवाह क्षण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार भैर गुणों के अवण मात्र से मन की गतिका तैल धारावत् अविच्छिन्न रूप से मुक्त सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुक्त पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना - यह निर्गुण भक्ति योग का लक्षण कहा गया है।<sup>३</sup> हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि श्रीमद्भागवत में साधक के स्वभावानुसार भक्ति तामसी, राजसी, सात्त्विकी तथा निर्गुण चार प्रकार की मानी है। प्रथम तीन प्रकार की गुणा भक्तियों का मन्त और चौथी निर्गुणा भक्ति निष्काम है। श्रीमद्भागवत में विशुद्ध भक्ति का कई स्थानों पर विवेचन हुआ है। उसमें भक्ति के हमें तीन स्वरूप मिलते हैं :-

१. विशुद्ध भक्ति

२. नवधा भक्ति

३. प्रेमा भक्ति

श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंध के पाँचवें अध्याय में प्रह्लाद ने भक्ति को नौ प्रकार का बतलाया है :- अवण, कीर्तन, स्मरण, फलसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य तथा आत्म निवेदन। उसमें आया है कि "विष्णु भावान् की भक्ति के नौ भेद हैं :- भावान्

१. विष्णुयानमिसन्धाय यः ऐश्वर्यैव वा ।

जवादावकी<sup>यो</sup> मां पृथग्भावः स राजसः ॥६॥

२. कर्मनिर्हमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदप्रणाम् । यज्जिह्वष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥१०॥

श्रीमद्भागवत ३-२६।

३. श्रीमद् भागवत ३-२६ / ११, १२

के गुण-लोला नाम वादि का श्रवण, उन्हीं का कीर्तन, उनके रूप-नाम वादि का स्मरण, उनके चरणों की सेवा, पूजा-अर्चन, वंदन, दास्य, सत्य और आत्मनिवेदन। यदि भगवान् के प्रति समर्पण के भाव से यह नौ प्रकार की भक्ति की जाय तो<sup>३</sup> उसी को उत्तम अध्यात्म समझता हूँ।<sup>१</sup> इन नौ प्रकार की भक्ति के तीन भाग किये जा सकते हैं। श्रवण, कीर्तन और स्मरण त्रिगुणें भगवान् के नाम और लोला से सम्बन्ध रखती हैं। पादसेवन, अर्चन और वंदन का उनके स्वस्म से लाव है। दास्य, सत्य और आत्मनिवेदन का वर्णन भगवान् को होता है। इन सब में आत्मनिवेदन का विशेष महत्व है क्योंकि जिनमें साधन और साध्य एक हो जाते हैं। वैधी भक्ति से रागात्मिका भक्ति श्रेष्ठ है और रागात्मिका भक्ति की पूर्णता आत्म समर्पण में है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समस्त समस्त पर सब आत्मनिवेदन का ही उपदेश दिया है। गीता के नवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है "हे अर्जुन! तू जो कुछ कर्म करता है जो कुछ सात्ता है, जो कुछ दान करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधमाचरण रूप तप करता है वह सब मेरे अर्पण करा।"<sup>२</sup> इस आत्मनिवेदन को कुछ आचार्यों ने शरणागति अथवा प्रपत्ति कहा है। पांचरात्र विष्णु-

१. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सत्यमात्मनिवेदनम् ॥

अति पुंसापिता विष्णो भक्तिश्चैव नवलक्षणा ।

क्रियते भावत्युदा तन्मये धीतमुत्तमम् ॥

सप्तम स्कंध अध्याय पांच २३, २४ श्लोक श्रीमद्भागवत सं० २००८ गीता प्र० गीतापुर  
२. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि यदासि यत् ।  
यत्पत्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ ६-२७ गीता  
मन्मना भव मद्रूपतां मेधावी मां नमस्कुरु ।  
मामेवेक्ष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियं मे ॥ १८ - ६५ गीता  
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।  
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ १८ - ६६ गीता

कौन संहिता में कहा गया है, "भावत् रूप प्राप्य वस्तु की इच्छा करने वाले उपायहीन व्यक्ति की प्रार्थना में परमेश्वरिणी निश्चयात्मिका बुद्धि ही प्रपत्ति का स्वरूप है तथा अनन्य साध्य भावत् प्राप्ति में महाविश्वास पूर्वक भावान् को ही एक मात्र उपाय समझ कर उपाय करते रहना ही प्रपत्ति है और इसे ही शरणागति कहते हैं।" भावत् गीता में भक्त चार प्रकार के कहे गये हैं। गीता के सातवें अध्याय के सोलहवें श्लोक में श्रीकृष्ण भावान् वर्णन से कहते हैं :- "है भरतवरुणिणी<sup>१</sup> में श्रेष्ठ वर्णन। उत्तम कर्म वाले वधार्थी, वार्त, जिज्ञासु और ज्ञानी वधार्त् निष्कामी ऐसे चार प्रकार के भक्त जन मेरे को भजते हैं।"<sup>२</sup>

स्वतंत्र भक्ति-मार्ग<sup>३</sup> वैधी, रागानुगा तथा परा-भक्तियों का विवेचन "शांडिल्य-भक्ति-सूत्र", "नारद-भक्ति-सूत्र", "हरि-भक्ति-रसामृतसिन्धु" आदि ग्रंथों में हुआ है। नारद-भक्ति-सूत्र में प्रेम भक्ति का विशद विवेचन हुआ है। यह प्रेम भक्ति ही परा भक्ति कहलाती है और इसे ही भूमानन्द कहते हैं। जसमें भक्त अपने प्रियतम भावान् के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इसे ही भागवत् में वैदुकी निर्गुण भक्ति और गीता में ज्ञानी की भक्ति कहा है। नारद-भक्ति-सूत्र में प्रेमरूपा भक्ति के सम्बन्ध में ग्यारह आसक्तियों का उल्लेख आया है, जिसके कारण यह एक होकर भी ग्यारह प्रकार की होती है। ये ग्यारह आसक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

- १ गुणमाहात्म्यासक्ति २ रूपासक्ति ३ पूजासक्ति ४ स्मरणासक्ति ५ दास्यासक्ति
- ६ सख्यासक्ति ७ कान्तासक्ति ८ वात्सल्यासक्ति ९ आत्मनिवेदनासक्ति
- १० तन्मयतासक्ति और ११ परमविरहासक्ति। कृष्ण के प्रति गोपी भाव में ये समस्त

१. पांच रात्र विष्वक्सेन संहिता से कल्याण के साधनांक में उद्धृत आस्त सन् १९४०

२. चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो<sup>३</sup>र्जुन ।

वार्ता जिज्ञासुरधार्थी ज्ञानी च भरतवर्णम ॥ ७ -१६ गीता

३. नारद-भक्ति-सूत्र सूत्र नं० ८२

वासवित्त्यां मिलती हैं क्योंकि ब्रज गोपिणीं ने परमभक्ति को प्राप्त कर लिया था।

डा० दीन दयालु गुप्त ने अपने ग्रन्थ "बृष्टशाप और वल्गु सम्प्रदाय" में भक्ति को मंत्रयोग का एक अंग भी बताया है और मन्त्रयोगी के सौलह अंग बताते हैं वे लिखते हैं "भक्ति मंत्रयोगी के लोतक-अंग-वस्तु-हैं- का एक अंग भी है जिसका चितवृत्ति का निरोध करने के लिए साधन रूप में सहारा लिया जाता है। इस साधन से मंत्रयोगी भाव-समाधि में साकार ईश्वर का साक्षात् दर्शन करता है। मनुष्य की चितवृत्ति इस नाम-रूपात्मक संसार में संलग्न रहती है। इसलिये नाम और रूप दोनों बालम्बनों का सहारा लेकर जो चितवृत्ति के निरोध की साधन विधि है, वही मंत्र योग कहलाती है। चित से लौकिक भावों को दूर करने के लिये सांसारिक नाम और सांसारिक रूपों की जगह ईश्वर के किसी नाम तथा ईश्वर के किसी रूप में ध्यान लाने की विधि मंत्र-योग में है। इसमें भगवान् की किसी स्थूल मूर्ति की पूजा और उसके साथ लौकिक भावों का आरोप किया जाता है। मूर्ति में मन की सम्पूर्ण वृत्तियों को वर्पण करके मंत्र योगी संसार के मोहादि भावों से छूट जाता है और वे भाव और मन परमात्मा में ला जाते हैं। मंत्र योग में प्राचीन काल से पंच पूजा का विधान प्रचलित रहा है। ईश्वर के पांच साकार रूप यह हैं :- विष्णु, सूर्य, देवी, गणपति तथा शिव। ऐसा कि पीछे कहा गया है यह पंचोपासना कहलाती है। अन्त में जब इस योग की अवस्था सिद्ध होती है तभी योग की भाव समाधि होती है। मन्त्र योगी के निम्नलिखित सौलह अंग हैं :- भक्ति, शुद्धि, वासन, पंचांग-सेवन, वाचार, धारणा, दिव्यदेश-सेवन, प्राणः क्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन, बलि, याग, तप, ध्यान और भाव-समाधि।"

रूप गौस्वामी ने भक्ति का विवेचन "हरि-रसामृत-सिन्धु" में किया है। "भक्ति-रसामृत-सिन्धु" के चार विभाग हैं पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण। पूर्व विभाग में चार तहरी हैं और जिनमें भक्ति की व्याख्या की गई है। प्रथम तहरी में भक्ति के सामान्य रूप का, दूसरी तहरी में साधना भक्ति का तीसरी में भाव भक्ति का और चौथी में प्रेम-भक्ति का विवेचन हुआ है जिसके सम्बन्ध में संक्षेप में हम पहले लिख चुके हैं। उन्होंने भक्ति को दो प्रकार की माना है गौणी तथा परा। साधन दशा की भक्ति गौणी और सिद्धदशा की भक्ति परा कहलाती है। गौणी भक्ति को फिर दो प्रकार की माना है :-  
 १ वैधी और २ रागानुगा । जिस भक्ति का साधन शास्त्रोक्त विधि पूर्वक होता है और जिसके विविध वर्गों का नियम पूर्वक साधन होता है उसे वैधी भक्ति कहते हैं। जिस भाव से भावान् के प्रेम में अपूर्व रस का अनुभव होता है और जिस प्रेम भाव की अनुभूति से भक्त के हृदय में परम शान्ति और आनन्द का उदय होता है उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। वैधी भक्ति को कुछ लोग मर्यादा भक्ति भी कहते हैं। कृष्ण के प्रति राधा तथा

१. ये भेद गौड़ीय सम्प्रदाय सम्मत हैं ।

२. शास्त्रेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते ।

वृत्त्यतीत्यादिधिर्निर्णयः सर्ववर्णाश्रमादिषु ॥

भक्ति-रसामृत-सिन्धु पूर्व विभाग तहरी २ श्लोक ४

३. ऋष्टेस्वारसि की रागःपरमाविष्टता भवेत् ।

तन्मयी या भवेद्भक्तिः साऽत्र रागात्मिकोदिता ॥

भक्ति-रसामृत-सिन्धु पूर्व विभाग तहरी २ श्लोक ६२

४. वैधी भक्तिरियं कैश्चिन्मयादिमार्ग उच्यते ।

भक्ति-रसामृत-सिन्धु पूर्व विभाग तहरी २ श्लोक ६०

बन्ध गौपिकाओं का प्रेम रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत जाता है। मन को स्थाग्र कर भावान् का नित्य निरंतर श्रवण, कीर्तन और आराधन<sup>भक्ति</sup> का साधन पदा है और भावान् में परानुरक्ति साध्यपदा। स्व गौस्वामी ने वैष्णो और रागानुगा दोनों ही भक्तियों को साधन भक्ति और परा भक्ति को साध्य भक्ति कहा है। उन्होंने रागानुगा भक्ति को दो प्रकार का माना है :- १- कामरूपा और २- सम्बन्धरूपा।

काम रूपा में लज्जा बनी रहती है और सम्बन्ध रूपा में भक्त कृष्ण से सम्बन्ध स्थापित करता है। भाव भक्ति इस रूप तक नहीं पहुँचती यह या तो कृष्ण प्रसाद से अथवा कृष्ण भक्त के प्रसाद से उत्पन्न होती है। इस की स्थिति तक पहुँचने पर वह प्रेम भक्ति हो जाती है। यह भक्ति साधन भक्ति है और जब सब कामनाओं से रहित होकर भक्त की भावान् में परानुरक्ति हो जाती है तब वह परा भक्ति कहलाती है। साधन रूपा भक्ति के पांच अंग माने गये हैं :- १- उपासक २- उपास्य ३- पूजा <sup>द्रव्य</sup> ४- पूजा विधि और ५- मंत्रजप। तंत्र ग्रन्थों में मंत्रजप को विशेष महत्त्व दिया गया है और इनको पांच तत्त्व माने गये हैं :- गुरुतत्त्व २- मंत्रतत्त्व ३- मनस्तत्त्व ४- देवतत्त्व तथा ५- ज्ञान तत्त्व। निवाण तंत्र और निवाणसार में इनका विशद् विवेचन हुआ है इन तंत्र ग्रन्थों ने भक्ति को मंत्र योग का एक अंग माना है।

वत्समाचार्य जी ने गृहस्थ के धर्मों को कृष्ण की लज्जा मान कर करने का उपदेश देते समय कर्म और भक्ति का मेल कर दिया है। और कहीं उन्होंने ज्ञान को भक्ति के साथ मिला दिया है। वात्सल्यादि अन्य भाव भी भक्तों ने भावान् के प्रति

१. साकामरूपा सम्बन्धरूपा चेति भवेद्भिया ।

साकामरूपा सम्प्राप्त कृष्णां या नयति स्वताम् ॥

भक्ति-रत्नामृत-सिन्धु तहरी २ श्लोक ६८

२. भक्तिवर्द्धिनी श्लोक ५



किए हैं। वल्लभाचार्य जी के मत में नवधा भक्ति भावान् की अन्य प्रभावस्था की प्राप्ति का साधन है। प्रेम भक्ति का भक्ति में सर्वोच्च स्थान है। उन्होंने प्रेम कताणा भक्ति की तीन अवस्थाएँ - स्नेह, वासक्ति और व्यसन मानी हैं। प्रभु में प्रीति होने से जगत् के अन्य पदार्थों में उत्पन्न हुआ स्नेह नष्ट हो जाता है, वासक्ति होने से गृहादि पदार्थों में बहुरि हो जाती है, वासक्ति होते होते जब व्यसन हो जाता है तब भक्त कृतार्थ स्नेह और कृतकृत्य हो जाता है। प्रेम में भक्ति भावान् के मिलन का भावात्मक आनन्द होता है। उन्होंने भक्ति में मुख्य स्थान प्रेम को ही दिया है। वल्लभा-चार्य ने ज्ञान के साधन रूप में भक्ति का प्रचार न करके साधन भक्ति और साध्य भक्ति दोनों प्रकार की भक्तियों को अंगीकार किया है। साधन-भक्ति का उच्च ज्ञान अथवा मोक्ष न होकर पूर्ण प्रेम अवस्था का प्रेम करना है। वल्लभाचार्य अथवा गौस्वामी विद्वत्त नाथ जी ने पूजा, अर्वा, सैव्य-स्वरूप भूति का ध्यान, नाम स्मरण आदि तथा बाठ प्रहर की स्वरूप सेवा विधि को स्थान दिया है।

श्री हरि राय जी ने भक्ति को द्वा प्रकार का बताया है :-

१- पदाम्बुज और २- वदनाम्बुज। पहली अवस्था सम्बन्धिनी होने के कारण शान्ति प्रदायिनी है और वह नारदादि मुनियों को सुलभ हुई। दूसरी भक्ति मुक्तामृत के सेवन से सम्बन्धि रहने के कारण भावना प्रधान एवं विरह अनुभव गम्भ है अतस्व दुर्लभ है। यह भक्ति स्वयं कृष्ण भावान् ने गौपियों को प्राप्त कराई।

१. आवृत्तौऽपिहारी चित्तं अवणादी यत्तत्सदा ।

ततः प्रेम तथाऽऽ सक्ति व्यसनं च यदा भवेत् ॥

भक्तिवर्दिनी ञौदश ग्रन्थ श्लोक ३ महारमानाथ शर्मा ।

२. भक्तिवर्दिनी ञौदश ग्रन्थ श्लोक ४-५, महारमानाथ शर्मा ।

३. भक्तिवर्दिनी पदाम्बुजवदनाम्बुज भेदतः, प्रथमा शीतला भक्तिर्गैः अवणा कीर्तनात् ॥१॥

तत्रैव मुख्य सम्बन्धिः सुलभी नारदादिषु, दिव्यतीक्ष्ण दुर्लभा यत्मावधराभूत सेवनात् ॥२॥

तद्भावनारम्भा विरहानुभवात्मिका, गौप्योपमंतिनीनां च सा यदा हरिणां स्वतः ॥३॥

## भक्ति का विकास

---

पीछे हम भक्ति की परिभाषा और उसके प्रकारों पर प्रकाश डाल चुके हैं। वास्तव में भक्ति व्यक्तिगत भी है और सामूहिक भी। भक्ति की परिभाषा और भक्ति के प्रकार इस तथ्य की और संकेत करते हैं। भक्ति के विकास के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। भक्ति के विकास को लेकर प्रायः आचार्यों ने अपनी अपनी मतों का प्रतिपादन किया है। भक्ति के विकास का सम्बन्ध समाज की विभिन्न स्थितियों से है। भक्ति का विकास प्रायः वैदिक युग से पौराणिक युग और मध्यकाल से आज तक अनेक रूपों में दिखाया गया है। भक्ति एक सामान्य शब्द है और उनका प्रभाव किसी ज्ञात सत्ता के प्रति मनुष्य का अद्भुत भाव है। इस अद्भुत भाव के अनेक रूप हमें वैदिक और संस्कृत वाङ्मय में मिलते हैं। भक्ति का विकास मानव का ही विकास कहा जा सकता है। भक्ति के तत्त्व प्रायः सभी वास्तविक ग्रन्थों में मिलते। पर उसका स्वरूप निर्धारण कठिन समस्या है। संक्षेप में हम भक्ति के स्वरूप को वैदिक साहित्य से लेकर पौराणिक साहित्य तक में देखने का प्रयत्न करेंगे।

मनुष्य जब से अपनी मानवी विवशता और प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में किसी जलजित शक्ति के प्रभाव की कल्पना करने लगा तभी से उसमें वास्तविक भाव और भक्ति का बीजारोपण होने लगा। जब वह यह समझने लगा कि उसकी परिमित शक्तियाँ और विश्व की अपरिमित प्राकृतिक शक्तियों का संचालक एक ही सर्वशक्तिमान् है तब उसका वास्तविक भाव मली भाँति पल्लवित हो गया। और जब उसने उस सर्वशक्तिमान् से डरने के बड़बड़े प्रेम करना प्रारम्भ कर दिया उसी दिन से भक्ति का वास्तविक विकास प्रारम्भ होता है।

---

प्राचीन कार्य जाति ने प्रारम्भ में ही प्रकृति के विभिन्न तत्वों को देव रूप में ग्रहण किया। इन्द्र, वरुण, रुद्र, मरुत आदि देव सर्वशक्तिमान् सृष्टि के आदि कारण समझे जाते थे। आगे चलकर सब देवताओं का रूप में समाहार 'ऋषाव'।

। के रूप में हुआ और ये परब्रह्म परमात्मा के ही स्वरूप समझे जाने लगे :-

इन्द्रं मित्रम् वरुणमग्नि मातु,

रथी दिव्यः स सुपर्णा गिरुत्मान् ।

सं सवित्रा बहुवावदन्ध्याग्नि,

अग्निं यमं मातरिश्वान मातुः ॥ १

अर्थात् 'वह उपासनीय, भजनीय, वरणीय प्रभु रूप है पर विद्वान् उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। अतः इन्द्र, यम, वरुण आदि अनेक देवताओं के नाम नहीं हैं, प्रत्युत रूप ही ईश्वर के अनेक गुण और शक्तियों को प्रकट करने वाले अनेक नाम हैं। वैदिक ऋषियों का ऋष निरूपण सर्वश्रेष्ठ है। ऋग्वेद के नास्तवीय सूक्त के बराबर स्वाधीन उत्तम चिन्तन आज तक मनुष्य जाति नहीं कर सकी। ऋषि ज्ञाती ऋष की उपासना प्रतीक देवों के रूप में करते थे। डा० वैष्णो प्रसाद लिखते हैं :- ऋग्वेद में मनुष्य और देवताओं का ऐसा सम्बन्ध है वैसा आगे के हिन्दू साहित्य में नहीं है। यहां देवता मनुष्य जीवन से दूर नहीं है। आर्यों का विश्वास है कि देवता उनकी सहायता करते हैं, उनके शत्रुओं का नाश करते हैं। वे मनुष्य से प्रेम करते हैं और प्रेम चाहते हैं। भारतीय भक्ति सम्प्रदाय का आदि स्रोत ऋग्वेद है। यहां कुछ मन्त्रों में आदमी और देवता के बीच गाढ़े प्रेम और मित्रता की कल्पना की गई है।

१- ऋग्वेद १- १६४- ४६

२- हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता - डा० वैष्णो प्रसाद पृ० ४२

ब्रह्म विद्वान् लोक बातों पर विचार करते हुये विष्णु की  
नेष्ट और महत्त्वताही मानते हैं।

मनुष्य जाति में देव भावना के दो रूप थे। काव्य दशा से  
निकली हुई जातियाँ देवताओं की वृत्ति बन्नी वृत्ति से जूझी न समझ या मानती थी  
कि वे पूजा से प्रसन्न हो मर्यादा करते और पूजा न पाने पर अनिष्ट करते हैं। काव्य जातियाँ  
सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, पृथ्वी आदि प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करती थीं क्योंकि  
जन्म काल में प्रभाव फैला है, पृथ्वी शक्ति और धन धान्यपूर्ण होती है, अतः और  
पशुमन दूर होती है वसिष्ठ<sup>अनावृष्टि</sup> आदि का कारण भी उन्हें ही समझ जाता था। पुरुष  
मानव का अन्तर्मुख ग्रहण करता था। अथर्व वेद १२५-२० में यन्त्र में लिखा है :-

“वात्सां रम्भं न शिञ्जती ररम्भा शस्यत्यती ।

उत्पतित्वा बाधस्य वा ।

वर्षात् - हे पत्नी के स्वामी, शक्ति के मण्डार, वेत वृक्ष पुरुष  
छप्पे के उतारे चला है वेत ही में ने बाधना अवलम्बन ग्रहण कर लिया है और मैं चाहता  
हूँ कि वह तुम जैसे ही शान्ति<sup>ह</sup> हो रही।

जब प्रसार हम देखते हैं कि प्राचीन देवपूजा में देवताओं के  
ये ही दो कार्य सहायक की जा करते हैं :- १- देवता केवल पूजा पाने पर ही उपकार  
करते हैं, न पाने पर अनिष्ट करते हैं। २- देवता यों ही बराबर उपकार किया ही करते  
हैं पर पूजा पाने पर विशेष उपकार करते हैं। अब दशा में अत्यन्त प्राचीन काल के मनुष्यों  
में देवता के प्रति तीन भाव हो सकते हैं - एक तीस और वृत्तकाल।”

१- देव्याविजय शिविलय पृ० ४७

२- पुराण - रामचन्द्र कृत पृ० ८

यजुर्वेद में उद्घोषित दिया गया है, "हे मनुष्यों ! क्या तुम उसे नहीं जानते, जिसने हम सबको उत्पन्न किया है। वीर तुम सब वीर ही हो गये हो। तुम में वीर प्रभु में बहुत अन्तर पड़ गया है। अज्ञान के झुंडों से इसे पुरुष केवल अपनी प्राण शुक्ति में मग्न वीर प्रतापी नक्कर तुम क्यों व्यर्थ मार्गों में भटक रहे हो।"

ऋग्वेद में इस प्रकार विनय की है :- "हे सर्वश्रेष्ठ वरणीय देव। मेरी इस विनय की सुनी वीर मुझे सुखी कर दो। रक्षा की कामना लिए हुए बाण में तुम से यही प्रार्थना कर रहा हूँ।" ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में ईश्वर की भावना पुरुष के रूप में है। वैदिक ग्रन्थों में जाने चलकर भक्ति ग्रन्थों में पाई जाने वाली "श्रवण", कीर्तन विष्णोः स्मरण" आदि नवधा भक्ति का निधान भी वांछित रूप में है। अतएव वेद के विषय में स्पष्ट रूप से वेदों में कुछ भी उल्लेख नहीं है परन्तु उसका प्रारम्भिक रूप वैदिक ऋषियों की अवगत था। रुद्र की महिमा ऋग्वेद के समय में खूब बढ़ चुकी थी वीर यजुर्वेद की रुद्राष्टाध्यायी भी बाण तक शिव पूजा में व्यवहृत हो रही है। विष्णु की ऐच्छिक रूप धारण करने वाला -----

१- न तं विदाध य ज्ञा ज्ञानान्यधुष्मात्मन्तरवम् ।

नीशारेण प्रावृता जलप्यावापुतुफज्ज्वासाश्वरन्ति ॥ यजु० १७-३१

२- हमे वरुण स्वमथात्मन्त। त्पामवस्युराकि ॥ ऋग्वेद १-२५-२६

३- श्रवण-शुधी श्रवोमिर्युज्यं हिम्यत्त । ऋग्वेद १-४ १५६-२

४- विष्णुवर्ण का विचार और विस्तार विष्णुवर्ण भागवत सं० १० वाचस्पति शास्त्री

वृत्तान्त वर्ण १६ अं० ४ ।

4 - "It must be said that there is no clear reference to the avtar theory as such in the Vedas but the germs of some of the features of that conception are certainly to be found in Vedic passages."

Vishnu in the Vedas by R.N. Dandekar  
from a volume of studies in Indology presented to  
Mr. Kane p.95.

कताया गया है। विष्णु ने तीन फा जगह मानव धर्म की रक्षा हेतु नापी। वैदिक कुछ कालों में विष्णु के प्रति लात्सा की भावना है जो वैष्णव भक्ति के बीज रूप में है। विष्णु लोक के प्रति कामना देखिये :-

“ तदस्य प्रियमभिपाथी वक्ष्याम ” - अर्थात् मैं विष्णु के प्रियधाम को प्राप्त करूँ।

विष्णु की कृपा के लिये प्रार्थना देखिये :-

“ महस्ते विष्णोः सुमतिं भजामहे ” है विष्णु आप महान् हैं, आपकी सुमति

का हम भजन करते हैं अर्थात् कृपा के लिए प्रार्थना करते हैं।

इन विशेषताओं के कारण विष्णु के सम्बन्ध में अवतार का विचार किया जाता है। विष्णु देवों के अनुसार रक्षा कर्त्तव्य हैं। पीछे के वैदिक कालों में वाराह अवतार का भी आभास है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देवों में भक्ति की आरम्भिक रूप रेखा व भक्ति के मूल तत्त्व उपस्थित हैं यद्यपि वैदिक युग में शास्त्रीय निरूपण नहीं हुआ है। ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण, विष्णु का लोक रक्षा तथा जन-जन-रक्षणकारी रूप उनकी लीलायें और नवधा भक्ति के अंकुर देवों में मिलते हैं। डा० वेणी प्रसाद का भी कथन है कि “ हिन्दु-भक्ति सम्प्रदाय का आदि स्रोत ऋग्वेद है। ”

उपनिषत्काल के ज्ञान काण्ड में बुद्धि या विशुद्ध ज्ञान को लेकर चलने वाले और हृदय<sup>पक्ष</sup> समन्वित ज्ञान को लेकर चलने वाले दो मार्ग दिखाई देते हैं। वृहदारण्यक, कठोपनिषद् आदि निवृत्ति परक ज्ञान मार्ग का और ईशावास्य आदि उपनिषद् कर्म-परक ज्ञान मार्ग का उपदेश देते हैं। कर्म के साथ बुद्धि और हृदय दोनों का योग देने वाले ज्ञानी कर्मपरक

१- वैष्णव धर्म का विकास और विस्तार - कृष्णदत्त भारद्वाज- कल्याण, वर्ष १६ अंक ४

२- Vishnu in Vedas by R.N. Dandekar.

३- हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, डा० वेणी प्रसाद पृ० ४२

ज्ञान मार्ग से जागे भक्ति का विकास हुआ। उपनिषदों में कहीं ब्रह्म सगुण और कहीं निर्गुण कहा गया है परन्तु भारतीय भक्ति मार्ग ने ब्रह्म के उपात्मक स्वरूप को अपनाया। दोनों रूप नित्य और स्त हैं। उपनिषत्काल में उपास्य की भावना व्यापक की गई और उपासना की पद्धति में भी परिवर्तन किया गया। ब्रह्म के स्वरूपों का बोध उपनिषदों के ज्ञान काण्ड के द्वारा हुआ।

शतपथदि ब्राह्मण ग्रन्थों के काल में ज्ञान और भक्ति पीछे पड़े गये, याज्ञिक अनुष्ठानों की प्रधानता हुई और कर्मकाण्ड का विश्लेषण हुआ। वारण्यक तथा उपनिषद् काल में कर्मकाण्ड से अधिक ज्ञानकाण्ड की प्रतिष्ठा हुई। भक्ति उपेक्षित सी होगई परन्तु श्रद्धालु हृदयों में भक्ति के अंकुर विद्यमान रहे। ज्ञान प्रधान उपनिषद् काल के ऋषियों के कंठ से भक्ति के भाव कभी कभी फूट पड़ते थे। श्वेताश्वर उपनिषद् के अन्त के श्लोक से विदित होता है कि प्रभु भक्ति के साथ गुरु-सेवा का महत्व भी प्रतिपादित हुआ।<sup>१</sup> ब्रह्म के विविध स्वरूपों का उपनिषदों में विस्तृत विवेचन मिलता है। लौकमान्य तिलक ने भी लिखा है कि वेद तथा उपनिषत्कालीन ज्ञान-मार्ग से योग व भक्ति ये दो शास्त्रार्थ जागे चलकर निर्मित हुए।<sup>२</sup> उपनिषत्कालीन ऋषियों की जाभास होगया था कि केवल ज्ञान और कर्म मार्ग पर लोक को चलाकर हृदय की ज्वलना करना ठीक नहीं है, "मनुष्यक जीवन का उद्देश्य केवल ज्ञान-प्राप्ति नहीं जो स्वतः शुष्क व ज्ञानन्द-हीन। हृदय-उत्प्लुतज्ञानन्द। है। ..... उत्कृष्ट प्रेम व ज्ञान के द्वारा दिव्य ज्ञानन्द की प्राप्ति यही "बृहदारण्यक" में बताया "मधु विज्ञान" का सार है। "तैत्तिरीय

१- देखिये सूरदास - रामचन्द्र शुक्ल पृ० १३

२- यस्य देव परा भक्तिः यथा देव तथा गुरो ।

तस्यैत कथिता ह्यर्थाः प्रकाशयन्ते महात्मनः ॥ २३॥ श्वेताश्वर उपनिषद्

३- गीता रहस्य - लौक मान्य तिलक पृ० ५३७

उपनिषद्<sup>१</sup> विज्ञानमयी आत्मा से आनन्दमयी आत्मा को अधिक महत्व देता है।  
 उपनिषदों में भक्ति के विभिन्न अंगों का प्रतिपादन है। "शान्दीय्योपनिषद्" में ब्रह्म का स्वरूप "मनोमय प्राणशरीर, फकाश-स्वरूप, सत्यसंकल्प, आकाशात्मा, सर्वकर्मा, सर्वगंध, सर्व रससम्पूर्ण ज्ञात को सब और से व्याप्त करने वाला वाक् रहित एवं सम्पूर्ण शुन्य है।<sup>२</sup> "कठोपनिषद्" में ब्रह्म प्राकृत शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध से रहित नतला कर उसे चन्द्रियों के समस्त अनुभवों की पहुंच से दूर नतलाया है।<sup>३</sup> अन्न, प्राण, मन, ज्ञान और आनन्दस्वरूप ब्रह्म का सुन्दर विवेचन "तैत्तिरीयोपनिषद्" के मृगवल्ली के समस्त अनुवाकों में हुआ है। "श्वेताश्वतरोपनिषद्" में उभय स्वरूप धारी नतलाया है।<sup>४</sup>

"उपनिषदों में पूजा से आगे बढ़कर उपासना का प्रवर्तन किया जिसमें अखिल, व्यापक पराकाष्ठा शक्ति के स्वरूप का अधिक परिचय कराकर मनुष्य का हृदय उसके कुछ और पास पहुंचाया गया। इसी अधिक परिचय के अनुरूप उपासना में व्यक्तित्व का और हृदय का योग भी कुछ अधिक हुआ। पूज्य के लिये जहां पहले केवल अर्जित द्रव्यों का, जो व्यक्तिक की सत्ता से बाहरी वस्तुएं थी, वर्णन ही अपेक्षित होता था वहां इस उपासना में व्यक्ति की भीतरी वृत्ति को, उसके जीवन के कुछ अंश को लाना आवश्यक

१- "The Bhakti Doctrine in the Shandilya Sutra" by B.M. Barna

M.A. D.Litt. (2nd Oriental Conference, Calcutta) p. 413.

२- मनोमयः प्राणशरीरो माहुरः सत्य संकल्प आकाशात्मा ।

सर्वकर्मा सर्वगंधः सर्वरसः सर्वमिदमध्यासी अवाक्यनादरः ॥ शान्दीय्योपनिषद् १-१४-२

३- कठोपनिषदे के प्रथम अध्याय में तृतीयवल्ली के १५ वें श्लोक में यही भाव है।

४- ज्ञातमे वाक्वा वीक्षणीशावजा इमेको मोक्षतु मोक्षार्थयुक्ता । १- ६



आवश्यक हुआ।<sup>१</sup> कई उपनिषदों ने सब देवताओं को ब्रह्म ही मान कर रुद्र, इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करने वाला भी बतलाया है।<sup>२</sup> परब्रह्म का ज्ञान होने के लिये ब्रह्म चिन्तन करना आवश्यक है। इस हेतु परब्रह्म का सगुण प्रतीक प्रथम बातों के सामने रखना चाहिये, ऐसा शांख्य आदि पुराने उपनिषदों ने कहा है। उपासना-मार्ग से सगुण प्रतीक के स्थान पर क्रमशः परमेश्वर का व्यक्त मानवस्वधारी प्रतीक ग्रहण ही भक्ति मार्ग का आरम्भ है।..... ब्रह्म-चिंतनार्थ प्रथम यज्ञ के बीजों की या बीजों की तथा बाकी चत्वार रुद्र, विष्णु इत्यादि वैदिक देवताओं तथा वाकाशादि सगुण व्यक्त ब्रह्म प्रतीक की उपासना प्रारम्भ होकर अन्त में इसी हेतु ब्रह्म-प्राप्त्यर्थ राम-कृष्ण, नृसिंह आदि की भक्ति प्रारम्भ हुई।<sup>३</sup> देवताओं का स्थान निर्गुण ब्रह्म ने, निर्गुण ब्रह्म का स्थान साकार ब्रह्म ने लिया तथा विष्णु की महत्ता सगुण स्वरूपों में बढ़ती गयी।<sup>४</sup> ब्राह्मण काल में विष्णु की श्रेष्ठता स्थापित की गई और अग्नि को विष्णु से गौण स्थान मिला।<sup>५</sup> मैत्रेयी उपनिषद् में विष्णु को जगत्पातक अन्न का स्वरूप बतलाया तथा कठोपनिषद् में आत्मा की ऊर्ध्वगामी गति को विष्णु के परमधाम की ओर जानेवाला पथिक कहा गया।<sup>६</sup>

१- भक्ति का विकास - सूरदास - रामचन्द्र शुक्ल पृ० १६

२- त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णु त्वं रुद्र त्वं प्रापतिः ॥ मैत्रायण्युपनिषद् ४-१२-१३

३- तदेवाग्निस्तदादित्यतायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदायस्तत्प्रापतिः ॥ श्वेताश्वतरीपनिषद् ४-२

४- श्वेताश्वतरीपनिषद् ४

५- गीता रहस्य - लोकमान्य तिलक पृ० ५३७

६- अग्निर्वै देवानां अवसन्नं विष्णुः परमः तदन्तरेण सर्वाः देवताः । १० ब्रा०

६- स्तैर्य ब्राह्मण १-१

७- मैत्रेयी उपनिषद् ६- १३

१ है। जगत्पालक सूर्य को विष्णु का रूप बतलाया गया और वह ब्रह्म होगया। श्रद्धांग्य उपनिषद् में भी प्राणीपासना के रूप में भक्ति के बीज अन्तर्निहित हैं। श्रद्धांग्य उपनिषद् के अध्याय २ खण्ड ११ में उपासना का शिंकारनाद की ओर, प्रस्ताव स्तुति की ओर, उद्गीथ कीर्तन की ओर प्रतिहार धारणा की ओर और निधन विलय । प्रभु में तन्मय हो जाने की ओर संकेत करते हैं। सामवेद उपासना काण्ड का मुख्य वेद कहलाता है उसमें भी लगभग ये ही नाम प्रयोग हुए हैं। मुण्डक उपनिषद् में भक्ति-भावना की प्रकट करते हुए लिखा है कि " प्रभु की प्राप्ति, परीक्षा वात्मतात्व की उपलब्धि। प्रवचन, मैथा तथा बहुत बहुत सुनने से नहीं होती। प्रभु जिस पर कृपा करते हैं, उसी को उनकी प्राप्ति होती है। वात्मदेव अपना स्वरूप उसी के समक्ष लौल कर रख देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां से कर्म में हृदय तत्व को प्रधानता दी जाने लगी वहीं से भक्ति मार्ग का आरम्भ है। वेद के नाम पर प्रचलित कर्मकाण्ड की निन्दा गीता में कई स्थानों पर की गई है। गीता में कृष्ण भवान् कहते हैं कि " हे अर्जुन! भुक्तिमधुर, जन्म कर्म का फल देने वाली यह वाणी विचार हीन पुरुषों द्वारा बोली जाती है। वेदोक्त काम्य कर्म को ही जो एक मात्र धर्म समझते हैं और कहते हैं, " उनके सिवा और कुछ है ही नहीं " उनकी कामना नष्ट नहीं हुई है। वे स्वर्ग चाहते हैं, भोग तथा ऐश्वर्य चाहते हैं और इन्हीं

१- कठोपनिषद् ३-६ ।

२- मनी शिंकारो वाक्प्रस्तावश्चपुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणी ।

निधनमेतद्गायत्रं प्राणीषु प्रीतम् ॥ १ ॥ श्रद्धांग्योपनिषद् अध्याय २ खण्ड ११

३- नायमात्मा प्रवचनेन तस्यो न मैथया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवेण वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा वृणुते तन् स्वाम् ॥

तृतीय मंडल, द्वितीय खण्ड श्लोक ३

में इनका मन लगता है। ये पुरुषों की बुद्धि इतनी निश्चयात्मक नहीं होती कि वे ईश्वर में निवृत्ति की स्थापना कर सकें।

विष्णु के इस रूप साक्षात्कार के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ कर्मों की आवश्यकता बताई। एक स्थान पर ब्राह्मण ग्रन्थों में बताया है कि ऐश्वर्य और सर्वस्व की प्राप्ति के लिये "पुरुष नारायण" ने पंचरात्र यज्ञ की विधि बताई।<sup>१</sup>

इसमें पुरुष सूक्त द्वारा नमेष यज्ञ होता था और अग्नि के स्थान पर धृतादुति दी जाती थी।<sup>२</sup> जब से वैष्णव यज्ञों में हिंसा वर्ज्य समझी जाने लगी तभी से वैष्णव धर्म में अहिंसा तत्त्व का प्रारम्भ होता है। यज्ञों में सत्त्व गुण का आधिक्य होता था।<sup>३</sup> यज्ञ करने वाले सत्त्वगुण भूयिष्ठ होने के कारण सात्वत नाम से प्रसिद्ध होगये।... .. इसलिये वैष्णव धर्म का नाम "सात्वतधर्म" पड़ गया।<sup>४</sup> आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं "यद्यपि स्मृतियों ने इन यज्ञों को पंचभूतों के प्रायश्चित्तस्वरूप अर्थात् नैमित्तिक अर्थात् शासन और शास्त्र के भीतर कर लिया है, पर फलके भीतर हृदय साफ झंक रहा है।"<sup>५</sup> इन कर्म विधानों से विदित होता है कि उपासना केव में

१- यामिमां पुष्ट्यातां वार्ष प्रदन्त्यविपश्चितः। वैववाद रताः पार्थिवान्दस्तीति वादिनः।  
कामात्मानः स्वर्गपराः जन्मकर्मफलप्रदाम्। क्रियाविशेषबहुलां भौगैश्वर्यं गतिं प्रति ।  
भौगैश्वर्यप्रसक्तानां तथापहृतचेतसाम्। व्यवसायात्पिका बुद्धिःसमाधी न विधीयते ॥

गीता २- ४२- ४३-४४

२- शतपथ ब्राह्मण १३- ६- १

३- वैष्णव धर्म का विकास और विस्तार "कृष्णदत्त भारद्वाज कल्याण वर्मा" १६ अंक ४ से

४- वही

५- पण्डित का विकास, आचार्य रामचन्द्रशुक्ल सूरदास पृ० १२

बौद्धिक क्षेत्र में की ही प्रधानता नहीं थी बल्कि परीष्कार, दया, प्रेम, अहिंसा आदि हृदय की वृत्तियों का भी प्रसार था।

वैष्णव भक्ति सिद्धान्तों का उत्कर्ष रामायण काल में हुआ। नास्तीकि के राम सम्पूर्ण लोकों के आश्रय, सनातन, निर्गुण और आकाशस्वरूप हैं। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अवतार धारण करने वाले विष्णु के ही वंश और सीता लक्ष्मी स्वभावाँ हैं। हम देखते हैं कि अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा रामायण काल में होगई। निर्गुण ब्रह्म मानव धर्म की रक्षा करने के लिये, दुष्टों को दलने के लिये भक्तों को प्रसन्न करने के लिये मनुष्य रूप धारण करता था। समस्त सृष्टि की विधात्री पालिका और संहारिणी माया उसी राम के आश्रित है। माया के बन्धन से छूटने पर मोक्षा की प्राप्ति होती है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिये माया से छूटने पर भक्ति करनी चाहिये जिससे मोक्षा भी प्राप्त होता है। नास्तीकि भक्ति साधन के लिये राम नाम स्मरण एवं कीर्तन को श्रेष्ठ मानते हैं। भक्ति की इस महत्व स्थापना की तुलना उपनिषद् काल से करने पर विदित होगा कि जब भक्ति ने अन्यान्य मार्गों से अपना पृथक् मार्ग स्थापित कर लिया था।

महाभारत के विभिन्न वाक्यानों और पात्रों से प्रतीत होता है कि उसमें श्रीकृष्ण की आदि कारण, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, ज्ञानी विज्ञानियों का चरम लक्ष्य सगुण अवतार मान कर उपासना की गई। यादव कुल ने सात्वत धर्म को सर्व प्रथम माना।

१- "The poet uses 'Nirguna' for the preincarnate deity, and 'Sagun' for the incarnation of Rama. Ram is the prime ruler of Maya." (From Aspects of Aryan Civilization as Depicted in the Ramayan by C.N. Zutishi, M.R.A.S. Fourth Oriental Conference, Allahabad).

२- " Bhakti has given a distinctive character to the essential feature of medieval vaishnavism in its conception of a loving and personal God." The same.

महाभारत में नारायणीय, सात्वत, आदि सम्प्रदायों का प्रतिपादन है और सिद्धि प्राप्त भक्तों के भी आख्यान मिलते हैं। महाभारत के अतिरिक्त जनता में सात्वत धर्म के प्रचार की प्राचीनता सम्बन्धी निम्निलिखित प्रमाण उपलब्ध हैं :-

१- पाणिनि के सूत्रों का भाष्य करते हुए फांजलि स्पष्ट लिखते हैं कि सूत्रों में आया हुआ वासुदेव एक सर्वाधिक पूज्य ईश्वर का नाम है।

२- राजपूताने के बीसण्डो में मिले शिलालेख में संकर्णण व वसुदेव के पूजागृह के चारों ओर दीवार निर्माण का उल्लेख है। इस शिलालेख से प्रतीत होता है कि यह ई० पू० २०० वर्ष का है।

एक और हाल के कैसनगर में मिले हुए शिलालेख में हैलियादीर अपने को सर्वेश्वर वासुदेव के लिये गुरुद्वय सत्स्य निर्माणकर्ता बताता है। वह भागवत धर्म को मानने वाला था। इस ई० पू० २०० वर्ष के अनुमानित लेख से प्रतीत होता है कि उस समय वसुदेव की पूजा ईश्वरेश्वर के रूप में होती थी और उपासक भागवत कहलाते थे।

४- नानघाट की गुफा के नं० १ शिलालेख में संकर्णण और वसुदेव के नाम द्वन्द्व समास के रूप में आये हैं। यह शिलालेख ई० पू० १०० वर्ष का प्रतीत होता है।

“ अंग्रेज विद्वान् पाणिनि का काल ई० पू० चौथी सदी और जर्मन तथा भारतीय विद्वान् ई० पू० ५०० से पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी में मानते हैं। ”  
 इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ई० पू० ७०० वर्ष के लगभग तथा उसके पूर्व भारतवर्ष

१- वैष्णविज्म शैविज्म पृ० ५- ५

२- सामान्य भाषा विज्ञान - डा० बाबूराम सक्सीना पृ० १४६

में भागवत-धर्म विष्णव धर्म था। उसका प्रसार पश्चिमीतर सीमा प्रान्त तक हो गया था और संकर्षण-वासुदेव, नन्दराम, वासुदेव आदि की पूजा संयुक्त रूप में होती थी।

महाभारत के शान्तिपर्व में मेरु पर्वत पर सप्तर्षियों एवं स्वायम्भुव मनु के सामने नारायणी सम्प्रदाय के तत्त्व सुनाए गये हैं। नारद के श्वेत वीम वासे प्रसंग में उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर वासुदेव धर्म को भगवान् सुनाते हुए कहते हैं कि संकर्षण जीवमात्र के प्रतीक और वासुदेव के ही रूप हैं। वह वासुदेव सृष्टिकर्ता आत्माओं के आत्मा और परब्रह्म परमात्मा हैं। देवता, मनुष्य तथा अन्य पदार्थ उनसे ही उत्पन्न होकर उनमें ही लीन हो जाते हैं। ३४८ वें अध्याय में कहा है कि यह सान्त्विक धर्म वही गीता धर्म है जिसे कृष्ण ने अर्जुन से कहा था। भगवान् विभिन्न रूपों में पृथ्वी पर अवतार लेते हैं यह भी माना गया है। भगवान् वासुदेव धर्म संहारकों से साधुसंतों और महापुरुषों का रक्षा कर सुख शान्ति का साम्राज्य फैलाते हैं। श्वेतः नारायण ही यह धर्म के प्रवर्तक हैं।

महाभारत और गीता से पूर्व जो कर्म-प्रधान और ज्ञान-प्रधान मार्ग चले आ रहे थे उनमें हृदय के योग का अधिक महत्त्व नहीं था परन्तु दार्शनिकों की धीरे धीरे हृदय के योग की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और उन्होंने ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण तथा साधना-मार्ग की प्रक्रियाओं का विधान हमारे सांसारिक व्यवहारों में कर दिया। उपनिषद् के अनुसार ज्ञान के द्वारा मोक्षा-प्राप्ति हो सकती है। परन्तु गीता में कृष्ण कहते हैं कि मुझे आत्म-समर्पण करने वाला भी सब बन्धनों से छुटकारा पा सकता है। गीता के पूर्ववर्ती दर्शन भी यही कहते हैं कि पापियों का कर्मों से छुटकारा होना अशुभव है,

---

परन्तु गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि महान् पापी भी मेरे सम्मुख होते ही बाधु हो जाता है।<sup>१</sup>

गीता ने अनासक्ति पूर्ण कर्तव्य कर्म की स्थापना की। उसमें बताया कि कर्म नहीं, कर्मफल पाने की इच्छा छोड़ देनी चाहिये। भक्ति द्वारा वह फलाकांक्षा सुगमता से छूट जाती है। गीता का भक्ति मार्ग प्रभु भक्ति में निरत साधक को फलाकांक्षा से दूर रख संसार में ब्रह्म कार्य करना सिखाता है। वह निवृत्ति परायण ज्ञानकाण्ड के स्थान पर प्रवृत्तिपरायण भावदमभक्ति को देती है। गीता में जीवात्मा में ब्रह्मा, समर्पण, भक्ति की भावना को महत्ता दी गयी। उसके अनुसार कर्मों का समर्पण ही भक्ति तत्त्व है।<sup>४</sup> कर्मों का पर्यवसान ज्ञान में है और ज्ञान की अन्तिम पराकाष्ठा आत्मसमर्पण में है। ज्ञान से अन्तरात्मा जागृत हो उठती है। आन्तरिक और बाह्य हमारी समस्त चेष्टायें, कर्म और संकल्प, आराध्य के चरणों में समर्पण होने चाहिये।<sup>६</sup> गीता कर्म-योग का ग्रन्थ है, परन्तु वह ऐसे कर्म का संदेश देता है जिसका पर्यवसान ज्ञान में होता है। गीता ऐसी ही कर्म-योग की शिक्षा देती है, जिसके फलस्वरूप आध्यात्मिक ज्ञान व शान्ति प्राप्त हो।

१- "Evolution of Vaisnavism" by R.B.K.N. Mitra (B.C.Law Volume p.678)

२- न हि देहभूता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः । यस्तु कर्मफलत्यागीत्यभिधीयते ॥  
सत्यागी

३- सन्यासः कर्मयोगश्च निः श्रेयसकरावुभौ । तयोस्तु कर्म सन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥  
गीता १८- ११  
गीता ५- २

४- गीता १२- ६

५- गीता ४- ३३

६- सैमं आन गीता - श्री अरविन्द घोष वाल० २

वह कर्म को उपासना रूप में ग्रहण करने के लिये कहती है, जिससे हम अन्त में आत्मनिवेदन तक पहुँच जाय ।<sup>१</sup>

गीता में भक्ति का कर्म - ज्ञान - समन्वित व्यापक रूप है। गीता के अनुसार मोक्ष ज्ञान से ही होता है, भक्ति द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है अतः भक्ति ज्ञान का साधन है। गीता के अनुसार ज्ञान प्रसार के भीतर ही भक्ति होती है। हम ईश्वर की भक्ति वहाँ तक कर सकते हैं जहाँ तक कि हम उसकी जान जाते हैं। गीता में ज्ञानी भक्त को श्रेष्ठ बताया गया है। गीता में भक्ति ज्ञान का पर्याय नहीं है। श्री कृष्ण ने उसमें यह कहा है कि भक्ति द्वारा मैं तत्त्वतः जाना जा सकता हूँ। भक्ति के प्रभाव से ही भक्त उस ज्ञान मार्ग में तत्पर होता है जिससे भावान् का स्वल्प प्रत्यक्ष होता है। ज्ञानी भावान् के स्वल्प का जा ज्ञान प्राप्त करता है उससे तटस्थ रहता है पर भक्त ज्ञानी उस स्वल्प में हृदय से लगे हो जाता है। ज्ञान द्वारा भक्ति होती है और भक्ति द्वारा ज्ञान होता है। गीता आत्म-समर्पण के भाव से ओत प्रोत है यह भक्ति को अन्तिम सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया है। हमारे समस्त कर्मों, संकल्पों, आन्तरिक और बाह्य चैष्टाओं का आराध्य के चरणों में समर्पण होना चाहिये।<sup>२</sup> इस मार्ग के अनुयायी में श्रद्धा का होना परमावश्यक है। भावान् ने कहा है कि श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान की प्राप्ति होता है तथा ज्ञान के कारण

१- सैजु ज्ञान गीता रचयिता श्री बरविन्द घोष बाल० २

२- श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयत्किन्द्रियः । ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिं अचिरेणाधिगच्छति।

भक्त्या<sup>मम</sup> भिजानाति यावान् यद्वास्मि तत्त्वतः ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशतेतदनन्तरम् ॥ गीता: १२-४४

३- सैजु ज्ञान गीता रचयिता श्री बरविन्द घोष बाल० २



उसे भावद्-प्राप्ति से परम शान्ति मिलती है। भगवान् कर्जुन से कहते हैं कि मेरी प्राप्ति के लिये ग्रहण की हुई <sup>१</sup> अर्द्धा से जो मुझे भजता है, उपासना करता है, उसे मैं श्रेष्ठ योगी मानता हूँ। भक्ति भाव से की हुई पूजा से भगवान् की प्राप्ति होती है इस को भगवान् प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं। गीता वेधी अर्थात् मयादा भक्ति की समर्थक है। <sup>२</sup> अर्द्धा विश्वास की उपासना में अधिक महत्त्व देने के कारण गीता की भक्ति का ग्रन्थ समझना चाहिये। नारायणीय और गीता का भागवत- धर्म एक ही है। इस का तात्पर्य यह नहीं की कि 'अवर्णं कीर्तनं विष्णोस्मरणं' वादि नव विधा भक्ति गीता की मान्य नहीं है। वह कर्मों की गीण कह कर छोड़ देने और नव विधा में ही लीन रहने की स्थिति उक्ति नहीं बताती। उन् शस्त्रीय कर्मों का सम्पादन, परमेश्वर का स्मरण करते हुये, उसी की निर्मित सृष्टि के संग्रहार्थ निष्काम बुद्धि से करना चाहिये। इस मार्ग में लोक कल्याण को लेकर रक्षा, पालन और रंजन करने वाले ब्रह्म के सगुण रूप को लिया गया है। इसका अहिंसा प्रधान लक्षण है। भगवान् भक्ति का सच्चा स्वरूप बताते हुये कहते हैं कि जो भक्ति से मेरा भजन करते हैं वे मुझ में हैं और मैं उनमें हूँ।

बीद और जैन धर्मावलम्बियों ने वेद, उपनिषद् वादि की उपासना पद्धतियों का खण्डन करते हुए नये मार्ग की अवतारणा की। ग्रीक प्रभाव से प्रभावित होकर जैन धर्मावलम्बियों ने मन्दिरों में अपने तीर्थंकरों की नग्न मूर्तियाँ स्थापित की।

१- गीता ४- ३६

२- गीता ६- २४

३- गीता १८- ६५

४- "The Geeta must be judged mainly as a treatise on Bhakti by virtue of the prominence accorded to the element of faith".  
(From "The Bhakti Doctrine in Sandilya Sutra" by B.N. Barua, M.A. D. Litt. 2nd Oriental Conference, Calcutta p.437).

५- गीता रहस्य, लोकमान्य तिलक पृ० ४२५

कनीश्वरवादी बौद्धों ने महायान की स्थापना की। महायान के संस्थापक अश्वघोष के शिष्य नागार्जुन थे। महायान, वीगान्धार मन्त्रयान आदि सम्प्रदायों ने मिलकर मञ्जुश्री, अवलोकितेश्वर, मीय आदि बोधिसत्त्वों की मूर्तियाँ स्थापित कीं।

जैन बौद्ध अनुकरण पर चौबीस अवतारों की प्रतिष्ठा की गई। बौद्धों में मूर्ति पूजा का प्रारम्भ हुआ।

भागवत धर्म की व्याख्या करने वाले गीता के पश्चात्, श्रीमद्भागवत नारदभक्ति सूत्र और शांडिल्य भक्ति - सूत्र तीन मुख्य ग्रन्थ विललाई देते हैं जिनमें से पिछले दो ग्रन्थ तो भागवत के भाव के हैं। शांडिल्य सूत्र उसके पहले का ही सकता है। नारद पांचरात्र में यज्ञतन्त्र का भी कुछ समावेश कर दिया गया है संभवतः भागवत तीसरी शताब्दि में बन चुकी थी। इसके कुछ वंश गीतावत भागवत धर्म से भिन्न हैं। गीता ज्ञान, कर्म एवं उपासना तीनों का समन्वय करती है और भावद्भक्ति का उत्कर्ष स्थापित करती है लेकिन श्री मद्भागवत शुद्ध रूप से भक्ति मार्ग का ही उपदेश देती है। श्रीमद्भागवत में ज्ञान और वैराग्य की भक्ति की सन्तान कहा है।<sup>१</sup>

अपने जीवन के प्रत्येक व्यापार में तथा अखिल विश्व के प्रत्येक व्यापार में भगवान् के आत्म प्रकाश तथा आत्म संयोग की लीला के वास्वादन करने की साधना का नाम भागवत्-धर्म है। श्री लोकमान्य तिलक कहते हैं "महाभारत" और

१- श्रीमद्भागवत - महात्म्य प्रकरण अध्याय १ श्लोक ४५

२- महर्षि श्री कृष्णार्जुन और भागवत धर्म, लेख श्री अनायकुमार बन्धीपाध्याय

। कल्याण, भाग १६ सं० ३ पृ० ११७६ - ११८२।

गीता में नैष्कर्मपरक भागवत् धर्म का जो निरूपण है उसमें यथायोग भक्ति का निरूपण नहीं है.... इसलिये भक्ति प्रतिपादन करनेवाले भागवत-पुराण की रचना की गई है<sup>१</sup> भक्ति का प्रचार और प्रसार भागवत ग्रन्थ से ही हुआ। वास्तव में भगवान् के वाचिभाव<sup>२</sup> से भक्ति की नया रूप मिला। "भागवत ने श्रीकृष्ण चरित्र<sup>३</sup> के माधुर्य का लोगों की रसास्वादन कराकर कृष्णोपासना के वैष्णव पन्थ द्राविड़, महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना<sup>४</sup> उच्चर हिन्दुस्तान और बंगाल में स्थापित किया।" श्रीमद्भागवत में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् लक्षणाओं के सहारे अनुमान द्वारा ही लक्षित होते हैं।<sup>५</sup> इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भगवान् ने कला की अपना तात्त्विक स्वरूप बताते हुए कहा है :-

‘स्तावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ।

तन्वय व्यतिरेकाम्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥’

जाराध्य से सान्निध्य दास्य से अधिक सख्य, सख्य से अधिक वात्सल्य और वात्सल्य से अधिक रति-भाव में रहता है। भागवत का आवर्श भाव रति भाव है। रतिभाव ही भक्ति मार्ग में सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। रति रूपी महारास प्रधान करने की झीड़ा में मासन लोला, चीर हरण, महारास इत्यादि हैं। श्रीमद्भागवत में रति-भाव के परिपोषक महारास की झीड़ा का बड़ा धर्म-स्पर्शी वर्णन किया है। श्रीमद्भागवत में योग की प्रक्रिया

१- गीतारहस्य - श्री लोकमान्य तिलक पृ० ५००

२- Early History of Kṛṣṇa Vaishnav Faith and Movement in Bengal by S.K. De, M.A. D. Litt. page 5.

३- "मराठी वाङ्मय का इतिहास" लेखक ल० रा० पांगारकर प्रथम खण्ड पृ० ११०

४- भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ।

दृश्यं बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणांनुमाप्यैः ॥

से भक्ति और सेवा की पद्धति को जल और शान्तिप्रद बताया है। रतिभाव द्वारा भावान् की इस क्रीड़ा में परमानन्द प्राप्त होता है। शत सहस्र गौपियों का उद्धार भावान् ने प्रेम के जल पर किया। श्रीमद्भागवत ने भक्ति की सर्वोपरि स्थान दिया। उसके स्कान्दस्कन्ध के चतुर्दश अध्याय में भावान् स्पष्ट रूप से पौष्पण करते हैं कि मैं न योग के द्वारा, न सांख्य ज्ञान के द्वारा न स्वाध्याय एवं तप वाणप्रस्था के द्वारा और न त्याग संन्यास के द्वारा ही प्राप्त होता हूँ। मेरी प्राप्ति का सुलभ साधन तो भक्ति है। एक निष्ठा से की हुई मेरी भक्ति चाण्डाल तक को पवित्र कर देती है जो गधुव वाणी से डरित बित हो, कभी रोता हुआ, कभी हँसता हुआ, कभी लज्जा को झोड़ माता हुआ और नाचता हुआ मेरी भक्ति में निरत होता है वह उस निश्चित विश्व को पवित्र कर देता है। जैसे अग्नि द्वारा स्वर्ण का मल दूर होकर कुंजी पर लपेट रूप में मिल जाता है, उसी प्रकार मेरी भक्ति-योग से कर्म विपाक को दूर करता हुआ आत्मा जैसे जैसे शुद्ध हो जाता है, वैसे ही वैसे अनाजित बांती की तरह वह सूक्ष्म वस्तु के दर्शन करने लगता है।

१- यमादिभिर्योगिपथः कामलोभहती मुहुः।

मुकुन्दसेवया यद्वत्थाऽऽत्माद्धा न शाम्यति ॥ श्रीमद्भागवत १- ६- ३६

२- न साध्यति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्व ।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागी यथा भक्तिभोजिता ॥ २० ॥

भक्त्याऽहमेक्या ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ।

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्रवयाकानपि सम्भवात् ॥ २१ ॥

कृपया देखिये श्रीमद्भागवत् स्कान्दस्कन्ध १४ अध्याय श्लोक २४, २५ और २६

श्रीमद्भागवत का बाद के साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा।

निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति परायणता का फिर से प्रादुर्भाव हुआ। रामानुज, मध्व निम्बार्क, चैतन्य, वल्लभ आदि सभी आचार्य श्रीमद्भागवत से प्रभावित हुये। झर, तुलसी आदि सभी भक्ति कवियों में इन्हीं के सिद्धान्तों का प्रस्फुटन हुआ।

-----:0:-----

### कृष्ण का विकास

कृष्ण का चरित वैदिक काल से लेकर आज तक काव्य में किसी न किसी रूप में विकसित होता रहा है। कृष्ण चरित के सर्वव्यापी विकास को देखकर आधुनिक आलोचकों को उसकी ऐतिहासिकता में संदेह होने लगा है। कृष्ण में अनेक भारतीय तथा अमरातीय भावनाओं का समावेश हो गया है और बहुत से पाश्चात्य विद्वानों ने तो कृष्ण को केवल भावपात्र माना है। परन्तु वैदिक वाङ्मय से ही कृष्ण किसी न किसी रूप में हमारे सम्मुख आते हैं।

कृष्ण का बीज वेदों में मिलता है ऋग्वेद संहिता में कृष्ण का नाम आया है। एक स्थान पर वह कई सूत्रों के रचयिता के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। सूक्तों के रचयिता कृष्ण आंगिरस गोत्र के ऋषि हैं। ऋग्वेद अष्टम मण्डल में ७७ ७४ वें मन्त्र के दृष्टा ऋषि कृष्ण बताये गये हैं। अष्टम मण्डल के ८५, ८६, ८७ तथा दशम मण्डल के ४२, ४३, ४४ वें सूत्रों के ऋषि का नाम भी श्रीकृष्ण है। यह कृष्ण ऋषि देवकी पुत्र नहीं कृष्ण नहीं जान पड़ते। ऋषि कृष्ण के नाम पर काष्णायिन गोत्र चला। वसुदेव ने संभवतः इसी गोत्र -प्रवर्तक ऋषि के नाम पर अपने पुत्र का नाम कृष्ण रखा होगा। वैदिक साहित्य के कृष्ण के रूप को अवतार और देवता किसी भी रूप की संज्ञा नहीं दे सकते।

1 - "It is possible that they brought with them the name Christ also, and this name probably led to the identification of the boy-god with Vasudeva Kṛṣṇa. The goanese and the Bengalis often pronounce the name Kṛṣṇa as Kusto or Kristo and so the Christ of the Abhiras was recognised as the Sanskrit Kṛṣṇa."

Collected works of R.G. Bhandarkar Vol.IV page 53.

2 - "It was the name of one of the Vedic Rsis, the composer of hymn 74 of the eighth Mandala. He speaks of himself as Kṛṣṇa in verses 3 and 4 of the hymn. The author of Anukramani calls him an Angirasa or descendent of Angirasa."

Collected works of R.G. Bhandarkar Vol.IV page 15.

ब्राह्मण्य उपनिषद् में कृष्ण देवकी पुत्र कहे गये हैं और जहाँ-  
उनको हम और जांगिरस कृष्ण के यहाँ अध्ययन करता हुआ पाते हैं। उसमें लिखा है :-

“ तदैतद्द्वार जांगिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वावाचापिपास  
स्व स बभूव सौऽन्तवेलापमेतत्त्रयं प्रतिपद्यतादितामस्यच्युतमसि प्राणसंश्लिप्तमसीति तत्रैते  
कवी भवतः ॥

अर्थात् और जांगिरस कृष्ण ने देवकी पुत्र कृष्ण को यह बात दर्शन  
सुनाकर जिससे कि वह अन्य विद्यार्थी के विषय में तृष्णा हीन हो गया था, कहा -  
“ उसे अन्तकाल में इन तीन मन्त्रों का जप करना चाहिये :-

१- तू अद्वित । अक्षय । है ।

२- अच्युत । अविनाशी । है । और

३- अक्षि सूक्ष्म प्राण है।

तथा उसके विषय में दो श्लोक हैं। ”

कौशीतकी ब्राह्मण में भी जांगिरस कृष्ण के शिष्य कृष्ण का  
उल्लेख इस प्रकार है :-

“ कृष्णो ह्यजांगिरसो ब्राह्मणान् द्वितीयं तृतीयं सवनं ददर्श । ” २

क्षेत्रिय आरण्यक में कृष्ण इक्ष्वाकु का नाम आया है। ” ३

विष्णु के नारायणरूप को ब्राह्मण काल के अन्त तक परमदेवता माना जाने लगा और

१- ब्राह्मण्य उपनिषद् तृतीय अध्याय सप्तदश खण्ड श्लोक ६ गीता प्रेस गीतापुर

२- सांख्यिक ब्राह्मण अध्याय ३० आनन्दश्रम पूजा ।

३- क्षेत्रिय आरण्यक ३- २- ६

उसका सम्बन्ध वासुदेव से जोड़ दिया गया। नारायण और विष्णु की सत्ता के संबंध में डा० हरवंशलाल शर्मा लिखते हैं " आगे चलकर भगवान् का जो स्वरूप नर नारायण के रूप में प्रकटित हुआ वह दूसरे कल्प में वासुदेव कृष्ण के रूप में प्रकट हुआ। इस प्रकार विष्णु नारायण और वासुदेव कृष्ण एक ही शक्ति के कुछ विशेषणों में अलग-अलग नाम हुए। निश्चित प्रमाणों के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि यह विकास किस काल में हुआ, किन्तु नौदशकालीन ग्रन्थों में इस विषय से जो संकेत मिलते हैं उनके आधार पर कम से कम इतना मानना तो ज़रूर संगत ही है कि जैसा से ६०० वर्ष पहले वासुदेव कृष्ण की उपासना परब्रह्म के रूप में होने लगी थी। नौदश धर्म के पाली ग्रन्थ "निदेश" के उल्लेखों से पता चलता है कि जैसा पूर्व चौथी शताब्दी में वासुदेव नक्षत्र, मणिभद्र, अग्नी, सूर्य, इन्द्र, ब्रह्म, देव दिशा आदि के उपासक थे।

पाणिनि कृष्ण शब्द को तो नहीं परन्तु वासुदेव शब्द को अर्जुन शब्द के साथ प्रयोग करते हैं। कृष्ण वासुदेव के पुत्र होने के कारण वासुदेव कहलाये। महा-भाष्यकार पातंजलि ने एक स्थल पर लिखा है कि "कृष्ण ने कंस को मारा और दूसरे स्थान पर लिखा है कि वासुदेव ने कंस को मारा। यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि वासुदेव और कृष्ण एक ही हैं। पाणिनि मुनि के समय के सम्बन्ध में डा० बाबूराम सक्सेना लिखते हैं " अंग्रेज विद्वान् उनका काल ऐसवी पूर्व चौथी शताब्दी में और जर्मन तथा भारतीय मनीषी ई० पू० ५०० वर्ष से पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी में मानते हैं। " ३

१- सूर और उनका साहित्य - डा० हरवंश लाल शर्मा पृ० १७७

२- वासुदेवार्जुनाभ्यां वुज । ४- ३- ६८

३- सामान्य भाषा विज्ञान - बाबूराम सक्सेना पृ० १४६



बार० जी० भण्डारकर ने अपने वैष्णविज्म वी शैविज्म में कुछ वासुदेव सम्बन्धी शिलालेखों का वर्णन किया है जिनका विवरण इस प्रकार है :-

“ राजपुताने के घोंसुण्डी नामक स्थान में जीर्ण, शीर्ण दशा में एक शिलालेख मिला है। इसमें संकर्षण वीर वासुदेव के पूजागृह के चारों वीर एक दीवार बनाने का उल्लेख है। इस शिलालेख की ब्राह्मीलिपि से पता चलता है कि यह कम से कम ईसा से २०० वर्ष पूर्व लिखा गया होगा।

हाल ही में वैरु नगर में पाये गये एक दूसरे शिलालेख में “ हेलिमीदोरा ने देवेश्वर वसुदेव की आराधना के लिये शीर्ण पर गरुण के आकार का एक गरुडध्वज स्वयं निर्माण कराया। हेलिमीदोरा ने स्वयं को तदाशिला का निवासी, दिया का पुत्र, “ वान्तलिकिता ” से राजनैतिक कार्यवश भागभङ्ग जिसका कि पूर्वी मालवा पर राज्य रहा, के पास जाया हुआ यवन राजदूत बतलाया है। इस शिलालेख पर “ वान्त-लिकिता ” का नाम है जो कि वैक्त्री-ग्रीक ” सिक्के “ वान्त्याल्लोदास ” के समान है। इस नाम वीर लेख के रूप से प्रतीत होता है कि यह ईसा के सन् के दो शताब्दों पूर्व का है। उस समय वासुदेव की पूजा देवेश्वर के रूप में होती थी वीर उसके उपासक भागवत कहे जाते थे। भागवत धर्म भारत के उत्तरी पश्चिमी भाग में फैला हुआ था वीर ग्रीकों ने भी उसे अपनाया था।

नानाघाट की बड़ी गुफा के प्रथम शिलालेख में दूसरे देवों के साथ प्रारम्भिक स्तुति में “ संकर्षण ” वीर “ वासुदेव ” का नाम हस्त समास में प्रयुक्त हुआ है। यह शिलालेख ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का प्रतीत होता है।

महाभाष्य में वासुदेव की फलजलि ने वृष्णि वंश का माना है।

उसमें वासुदेव शब्द का बार बार और कृष्ण शब्द का प्रयोग एक बार आया है। सर मंडारकर ने लिखा है कि कृष्ण पाणिनि के अनुसार कृष्णायक ब्राह्मण गोत्र के हैं जो कि वाशिष्ठ समुदाय के बन्दर आता है। पाणिनि, वात्स्यायन और फलजलि जैसे व्याकरणों के ग्रन्थों में "वासुदेव" सरिसे शब्द और कंस वंश सरिसे लीलाओं के उल्लेख तथा "विरहते वैश्व" जवान वैश्व किल वासुदेवः" सरिसे वाक्यों के प्रयोग बताते हैं कि श्रीकृष्ण का वाक्यावधि काल इन व्याकरणों में महीदयी से बहुत पहले का है। फलजलि का समय ईसा से २०० वर्ष पूर्व है।

चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में मकदूनिया के राजदूत मेगस्थनीज ने सात्वतों और वासुदेव कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रसिद्ध यात्री मेगस्थनीज ने लिखा है कि कृष्ण की पूजा मथुरा और कृष्णपुर में होती थी जो कि ईसा के २०० वर्ष पूर्व का काल है। डा० रामकुमार कर्मा लिखते हैं "यदि वासुदेव कृष्ण की पूजा प्रथम मौर्य के समय में प्रचलित थी तब तो इस पूजा का प्रारम्भ 'उपनिषद्' के साथ ही हुआ, क्योंकि 'महानारायण उपनिषद्' में विष्णु का पर्यायवाची शब्द वासुदेव है। कृष्ण वासुदेव का ही पर्यायवाची है अतः कृष्ण ही विष्णु का यौतक है।" वासुदेव और कृष्ण में अन्तर मानते हुए सर मंडारकर का विचार है कि सात्वत एक जात्रिय वंश का नाम था जिसे "वृष्णि" भी कहते थे। वासुदेव इसी सात्वत वंश के एक महापुरुष थे जिनका समय ईसा के ६०० वर्ष पूर्व है। उन्होंने ईश्वर के स्वत्व भाव का प्रचार किया और उनकी मृत्यु के उपरान्त वासुदेव की ही साकार रूप से पूजा मान लिया गया। वासुदेव

१- Krishna occurs in a Gana attached to Panini, IV.1.96. In the Gana connected with Panini IV.1.99 Krishna and Rama are represented to form the Gotra names Karsnayana and Ramayana, these were Brahmana Gotras falling under the group of Vasisthas. Ehandarkar Volume IV P.15.

का प्रथम रूप नारायण, बाद में विष्णु और अन्त में गोपाल कृष्ण हो गया।

हारका में भगवान् श्रीकृष्ण ने एक भूकम्प का हाल बताते हुए कहा है, "समुद्रः सप्तमैः<sup>१</sup> हन्येतां पुरीं<sup>१</sup> स्थावयिष्यति" । " । हे उदव! आज से सातवें दिन समुद्र इस हारका को डूबा देगा ।।

आज से पांच हजार वर्ष पूर्व हारका में भी भूकम्प तथा प्रलय का होना सिद्ध होता है। हस्तिनापुर और बगदाद दोनों एक जदांश पर स्थित हैं और समान जदांशों के स्थान में भूकम्प का एक साथ आना प्रकृति-सिद्ध है। अमेरिका में एक भय जाति का उपनिवेश मैक्सिको है। उस उपनिवेश के लोग के सम्बन्ध में अमेरिका के पत्र "नेशनल ज्योग्राफिकल मैगज़ीन" के जून १९३६ के अंक में लिखा था कि भय जाति का संवत् ५००० वर्षों से कुछ पहले का है। भूमि से बाहर आये हुये पाषाण उस लावा के नीचे दबा हुआ एक स्मृति भवन भी प्राप्त हुआ है। भूशास्त्र वेत्ताजी ने उसे ५००० वर्ष पूर्व का बताया है। भय प्रवेश हारका के जदांश पर स्थित है। सम्भवतया हारका के भूकम्प के समय मैक्सिको में भी भूकम्प के कारण लावा निकला हो और उसमें यह स्मृति भवन दब गया हो। महायुद्ध के बाद हस्तिनापुर, हारका, उरनगर और मैक्सिको भिन्न भिन्न चारों स्थानों में एक साथ भूकम्प का होना निश्चित करता है कि महाभारत तथा मागवत का वर्णन ५००० वर्ष पूर्व का है। उस समय श्रीकृष्ण वर्तमान थे और उनके जन्म का समय भूकम्प आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व कहा जा सकता है।

श्रीकृष्ण देवीदयाल जी का कहना है कि "श्रीकृष्ण का समय हिन्दू शास्त्रों के अनुसार लगभग पांच सहस्र वर्ष पहले का है। जाँचीन पुरातत्त्व अन्वेषण विभाग इस निश्चय पर पहुँचा है कि श्रीकृष्ण आज से लगभग तीन हजार वर्षों से पहले

हुर हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री पार्शीटर साहिब ने अपना लोजी से निश्चय किया है कि महाभारत का युद्ध ईसा से १००० वर्ष पहले हुआ था।<sup>१</sup>

मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय में कुणाल काल की एक मूर्ति है जो मथुरा नगर के पास ही गायत्री टीले से उपलब्ध हुई थी। उसमें श्रीकृष्ण की जन्मलोल्ला चित्रित है। स्वर्गीय रायबहादुर दयाराम साहनी ने पुरातत्त्व विभाग १९२५-२६ की रिपोर्ट में लिखा है कि हादोग्य उपनिषद् में वर्णित देवकी पुत्र श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। पहाड़पुर की बुढ़ाई में श्री राधाकृष्ण की फंको मिलती है।

मण्डाकर ने "वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म" में वासुदेव कृष्ण और वृष्णवंश पर विचार करते हुए महाभाष्य और बौद्ध ग्रन्थों से उदाहरण भी दिए हैं। वैदिक काल के विष्णु देवता ही पौराणिक काल में कृष्ण रूप में स्वीकार किए गए। वासुदेव शब्द का कृष्ण के साथ सम्बन्ध भी जोड़ दिया गया। जातक अर्थात् बुद्ध जी के पूर्व जीवन की कथाओं में भी कृष्ण का अनेकों स्थलों पर वर्णन आया है। इन कथाओं में उनको बुद्ध बुद्ध, बोधिसत्व, कणि, नराहायनबोध, कृष्णायन गौत्र, के आदि प्रवर्तक देव शक्तियों से सम्बन्धित आदि बताया गया है। बौद्धों के घटजातक में उपजागर और देव गम्भा के पुत्रों का एक नाम वासुदेव और बलदेव आया है। गद्य भाग के बीच बीच में काराहा और केशव नाम भी आये हैं और इन शब्दों की टीका में काराहा की काराहायन गौत्र का बताया है। "महाभाग" जातक की व्याख्या में आये हुए काराहा और वासुदेव शब्दों से इसकी पुष्टि भी होती है। दीर्घनिकाय नामक बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार वासुदेव का ही दूसरा नाम कृष्ण था। जैन सूत्रों में श्रीकृष्ण की वृष्णवंश का एक महान् पुरुष माना है। वासुदेव की उपास्य रूप में ग्रहण करने पर वैदिक पात्र कृष्ण के सगुणों का आरोप वासुदेव में हो गया है।

१- श्रीकृष्ण चरित की ऐतिहासिकता - देवीदास जी फिकार पुरातत्त्व अन्वेषण विभाग दिल्ली, योगेश्वर - श्रीकृष्णांक मानवर्मा पृ० १३० कात्त १९३५

हम वैदिक काल में ही विष्णु की प्रधानता मिलती ली थी। श्तरैय ब्राह्मण में विष्णु की सर्वोपरि देव माना है। विष्णु के वैशिष्ट्य की कथायें शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीयारण्यक में भी जाती हैं। विष्णु की महत्ता मैत्रेय उपनिषद् और कठोपनिषद् में स्पष्ट रूप से बताई गई है और विष्णु के स्थान को 'परमं फलं' कहा गया है।

'जातकी' गाथा के भाष्यकार का मत है कि कृष्ण एक गोत्र नाम है जो चत्रियों द्वारा भी यज्ञ समय में धारण किया जा सकता था। उसका पूर्ण रूप काष्णायिका और वासुदेव उसी काष्णायिका गोत्र के होने के कारण कृष्ण कहलाया। इस प्रकार कृष्ण ऋषि का समस्त वेद ज्ञान और देवकी के पुत्र गोत्रव वासुदेव के साथ कृष्ण का सम्बन्ध स्थापित होगया।

#### महाभारत-

ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व से दो सौ वर्ष बाद तक के काल में कृष्ण हमारे सम्मुख 'महाभारत' के रूप में जाते हैं। महाभारत में कृष्ण का देवी अवतार रूप देखने में जाता है। समाप्ति में भीष्म श्रीकृष्ण को समस्त भूतों से परे, अत्यन्त प्रकृति और अनात्म कर्मा मानते हैं :-

'स्व प्रकृतिल्यक्ता कर्तान्वैव अनात्मः ।

परश्च सर्व भूतेभ्यः तस्मात्पूज्य त्मा च्युतः॥ \* ४

१- श्तरैय ब्राह्मण १।१

२- शतपथ १-२-५ और १४-१-१

३- कठोपनिषद् ३-६

४- महाभारत २८-२५

कृष्ण को इस वर्णन में गोकुल में हुई कृष्ण की लीलाओं का निर्देश नहीं है। महाभारत में भीष्म श्रीकृष्ण को परब्रह्म भी कहते हैं जिससे प्रतीत होता है कि यहाँ कृष्ण की भावना गौपाल कृष्ण की न होकर परब्रह्म की है :-

स्तत्परमं ब्रह्म स्तत्परमं यशः ।

स्तद्वदामव्यक्तं स्तत् वै शाश्वतं महः ॥ १ १

सभापर्व में शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की गोकुल सम्बन्धी लीलाओं का निर्देश किया है। भीष्म के द्वारा वर्णित कृष्ण के देवत्व का ही विकास होने के कारण ये पंक्तियाँ प्रक्षिप्त जान पड़ती हैं। महाभारत में कृष्ण के लिये गौविन्द नाम भी आया है परन्तु इसके अर्थ का गौ । गाय। से सम्बन्ध नहीं है। विष्णु के पानी मथ कर पृथ्वी निकालने के समय बादि पर्व में वाराह अवतार के प्रसंग में गौविन्द शब्द आया है। वामदेव कृष्ण ने शान्ति पर्व में पृथ्वी के उद्धार के समय अपना नाम गौविन्द बतलाया है। महाभारत काल में गौविन्द का सम्बन्ध गाय की प्रवृत्ति कथाओं से नहीं था। महाभारत में ब्रह्मा और शिव का निर्देश होते हुये भी विष्णु की भावना में अवतारवाद होने के कारण विष्णु का महत्व अधिक है। महाभारत में कृष्ण विष्णु के अवतार माने गये हैं।

महाभारत में कृष्ण का वर्णन देवी शक्तियों से समन्वित पुरुषोत्तम के रूप में हुआ है। महाभारत के कृष्ण आचारवान्, सर्वप्रिय, सत्यवादी, बहिर्तीय योद्धा तथा राजनीतिज्ञ हैं। कृष्ण की बाल लीला का विस्तृत वर्णन महाभारत के द्विपर्व, हरिवंश पर्व में है। इससे प्रतीत होता है कि वृन्दावन लीला का प्रचार महाभारत के निम्न-लिखित श्लोक के आधार पर हुआ है :-

श्रीकृष्ण ! हारका वासिन् ! गोपापीजन प्रिय ।

कोरवीः परिभूतां मां किं जानासि केशव ॥

वाचार्य बलदेव उपाध्याय का विचार है कि "महाभारत में द्रौपदी की यह उक्ति है। उसमें "गोपीजीजनप्रिय" शब्द इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि महाभारत कृष्ण की बात लीलाओं से गोपियों के साथ क्रीड़ा करने से पूर्ण परिचित है। अतः इन लीलाओं की कल्पित तथा नवीन मानना नितान्त अनुचित है। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य की इस सम्बन्ध में राय है कि महाभारत की वर्तमान स्वरूप ई० सन् से लगभग २५० वर्ष पूर्व मिला। उससे पूर्व "यह कल्पना थी कि गोपियाँ श्रीकृष्ण से जो प्रेम करती थी वह निर्व्यभि विनयातीत और ईश्वर भावना से युक्त था। यही कल्पना महाभारत में दिखाई देती है। वस्त्र हरण के समय द्रौपदी ने श्रीकृष्ण की जो फुहार की थी उसमें उसने उन्हें "गोपी जनप्रिय" नाम से सम्बोधित किया था। स्पष्ट है कि इस नाम का अभिप्राय यही है कि वे दीन अवलार्यों के दुःखहर्ता हैं। उस नाम में यदि निम्न अर्थ होता तो सती द्रौपदी को पातिव्रत की अग्नि-परीक्षा के समय उसका स्मरण नहीं होता। यदि होता भी तो वह उसे मुख से कदापि न निकालती, और यदि निकालती भी तो वह उसके लिए फलप्रद नहीं होता। अतएव यह निर्विवाद है कि इस नाम में गोपियों का विनयातीत भावत्प्रेम ही गम्य है।"

भागवत धर्म का महाभारत काल में पुनरुद्धार हुआ। उस समय सांख्य, योग, पांचरात्र, वैद और पाशुपत चार सम्प्रदाय प्रचलित थे :-

"सांख्यं योगः पांचरात्रं, वेदाः पाशुपतं तथा ।

ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्वि नानामतानिवि ॥" २

वाजकल के सांख्य और योग प्राचीन सांख्य योग मतों से भिन्न हैं। महाभारत के शान्ति पर्व के कई आख्यानो में सांख्य, योग और वेदान्त तीनों मतों की

१- चि० वि० वैद्य, महाभारत मीमांसा पृष्ठ ५६८

२- महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३४६

बर्बाद जाई है।

पाशुपत शैव-सम्प्रदाय का मत था। विष्णु और रुद्र दोनों का महाभारत में समन्वय स्थापित किया है और विष्णु को प्रधानता दी है। इसकी ध्वनि भागवद्गीता में भी मिलती है- 'रुद्राणां शंकरश्चास्मि'। शान्ति पर्व के ३४६ वें अध्याय में पाशुपत तत्त्व-ज्ञान का वर्णन है और शिव का महत्त्व २८० तथा २८४ अध्यायों में शंकर की स्तुतियों के रूप में बताया गया है। इस मत का विकास अनुशासन पर्व में बाये हुए उपमन्यु के व्याख्यान में मिलता है।

पांचरात्र मत का महाभारत में पूर्ण विवरण है जिसकी परम्परा वैदिक युग से भागवत धर्म के रूप में चली आ रही थी। इस मत में श्रीकृष्ण की भक्ति की विशेषता दी जाती है जिसका पूर्ण विकास श्रीमद्भागवद्गीता में हुआ है। महाभारत के नारायणीय उपाख्यान से प्रतीत होता है कि विष्णु और श्रीकृष्ण को परमेश्वर स्वरूप मान कर भक्ति करने वाले महाभारत काल में भागवत कहलाये। शान्ति पर्व के नारायणीय उपाख्यान में इसकी पूर्ण व्याख्या है। नारद की कथा में नारायण नारद की स्तुति से प्रसन्न होकर उन्हें अपना विश्व रूप दिखा कर पांचरात्र-मत के सिद्धान्तों का उपदेश देते हैं जिनका सारांश इस प्रकार है। "

" जो नित्य अजन्मा और शाश्वत है जैसे त्रिगुणों का स्पर्श नहीं जो आत्मा प्राणिमात्र में सादृश रूप से रहता है जो बीबीस तत्त्वों से परे पञ्चीसवां पुरुष है जो निस्पृह होकर ज्ञान से ही जाना जा सकता है, उस सनातन परमेश्वर को वासुदेव कहते हैं। वह सर्व व्यापक है। प्रलयकाल में पृथ्वी जल में लीन होती है जल अग्नि में, तेज वायु में, वायु आकाश में और आकाश अव्यक्त प्रकृति में और अव्यक्त प्रकृति पुरुष में लीन होती है। फिर उस वासुदेव के सिवा कुछ भी नहीं रहता। पंच महाभूतों में भूतों का शरीर बनता है और उसमें अदृश्य वासुदेव सूक्ष्मरूप से तुरन्त प्रवेश करता है। यह देहवती जीव महा समर्थ है और शेष तथा संकर्षण उसके नाम हैं। इस संकर्षण से मन उत्पन्न होकर सन्तुष्ट्यारत्न अर्थात् जीवन



मुक्तता पा सकता है।

उस मन को प्रबुध्न कहते हैं। इस मन से कर्मा, कारण और कार्य की उत्पत्ति होती है और चराचर जगत् का निर्माण होता है, उसी को अनिरुद्ध कहते हैं और यह ईशान भी कहलाता है। सब कामों में व्यक्त होने वाला अहंकार यही है। निगुणात्मक चैत्रज्ञ भगवान् वासुदेव जीवरूप में जी अवतार लेता है वह संकर्षण है। संकर्षण से जी उत्पन्न होता है वह अनिरुद्ध है और वही अहंकार और ईश्वर है।”

वासुदेव कृष्ण के रूप में वासुदेव के अवतार माने गये और प्रबुध्न, अनिरुद्ध और संकर्षण अर्थात् बलराम कृष्ण से मनु, अहंकार और जीव के अवतार के रूप में समझे गये। “श्रीमद्भगवद्गीता” में “वासुदेव” परमात्मा के लिये आया है। श्रीकृष्ण के साथ संकर्षण अर्थात् “बलदेव” का सम्बन्ध जैन स्थलों पर स्थापित किया है तथा बलदेव को विष्णु का अवतार भी माना है<sup>१</sup>; परन्तु पांचरात्र मत में प्रबुध्न और अनिरुद्ध का कृष्ण से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। यह कल्पा सात्वत-सम्प्रदाय की ही प्रतीति होती है जो सम्भवतः श्रीकृष्ण के समय में ही सात्वत लोगों में फैला। सात्वत लोग श्रीकृष्ण के ही वंश के थे। इस मत का विशेष उल्लेख मीमांसा-स्तव में हुआ है और शान्ति पर्व के ३३६ वें अध्याय में इस चतुर्व्यूहि के अवतारों की चर्चा है। ३४१ और ३४२ वे अध्याय में नारायण के नामों की उत्पत्ति तथा शिव और विष्णु का अर्थ बताते हुये आगे लिखा है :- “रुद्र नारायण स्वरूप ही है, अस्तित्व विश्व का आत्मा मैं हूँ और मेरा आत्मा रुद्र है। मैं पहले रुद्र की पूजा करता हूँ, आप अर्थात् शरीर को ही नारा कहते हैं। सब प्राणियों का शरीर मेरा” अर्थात् निवास स्थान है। इसलिये मुझे नारायण कहते हैं। सारे विश्व को मैं

व्याप लेता हूँ और सारा विश्व मुझ में स्थित है इसी से मुझे "वासुदेव" कहते हैं मैं ने सारा विश्व व्याप लिया है, अतएव मुझे विष्णु कहते हैं। पृथ्वी और स्वर्ग भी मैं हूँ और अन्तरिक्ष भी मैं हूँ, इसी से मुझे दामोदर कहते हैं। चन्द्र, सूर्य, अग्नि की किरणों मेरे बाल हैं, इसलिये मुझे केशव कहते हैं, गो अर्थात् पृथ्वी को मैं ऊपर ले गया इसी से मुझे गोविन्द कहते हैं। मन्त्र का हविर्भाग मैं हरण करता हूँ इसी से मुझे हरि कहते हैं, सत्त्वगुणी लोगों में मेरी गणना होती है इसी से मुझे सात्वत कहते हैं। लोहे का काला काल होकर मैं जमीन जोतता हूँ और मेरा रंग काला है, इसी से मुझे कृष्ण कहते हैं।"

३४२ और ३४३ वें अध्यायों में श्वेतद्वीप से लौट जाने पर नर और नारायण के संवाद का वर्णन है। सात्वतधर्म का वर्णन करते हुये इसे निष्काम भक्ति का पंथ बतलाया है और ऐकान्तिक विधि कहा है। भागवत धर्म की परम्परा के वर्णन का सारांश यह है कि त्रेता युग में विवस्वान् मनु और इक्ष्वाकु की परम्परा से यह धर्म चला। श्रीमद्भागवद्-गीता में इस परम्परा का उल्लेख इस प्रकार है :-

"धर्मं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

विवस्वान् मनवे प्राह मनुर्इक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥" २

उल्लेख हुये सात्वत और ऐकान्तिक धर्म की इन अन्तिम अध्यायों में समानार्थक बताते हुये सात्वत योग और वेदान्त के तत्त्वज्ञान की भी सूत्रा स्थापित की है। ३४६ वें अध्याय के अन्त में पांचरात्र मत के सिद्धान्त का वर्णन है और परमात्मा के समन्वित रूप की इस प्रकार व्याख्या है :-

"जो जीव शान्त वृत्ति से अनिरुद्ध, प्रभुमन, संकर्षण और वासुदेव के अधिदेव क्षुद्राय का अथवा विराट्, सूत्रात्मा, अन्तर्यामी और शुद्ध ब्रह्म के अध्यात्म

१- त्रेता युगादी च ततो विवस्वाम् मनवे ददौ, मनुश्च लोकमृत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ ।

इक्ष्वाकुना च कथितो व्याख्य लोकानवस्थिताः ॥ "महाभारत शान्ति पर्व ३४८, ३५१, ३५५

चतुष्टय का अथवा विश्व, तेजस, प्राज्ञ और तुरीय के अवस्था चतुष्टय का क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म में लय करता है, वह कल्याण पुरुष को पहुँचता है। योगमार्गी उसे परमात्मा कहते हैं, सांख्य वाले उसे सात्मा कहते हैं और ज्ञानमार्गी उसे केवलात्मा कहते हैं।

कसु उपरिचर के कथानक में हरि को और नाख संवाद में कसुबूहि भावान् की विविध महत्त्व दिया गया है। सात्वतों में मक्ति भावना का विशेष प्रचार कृष्ण के साथ उसके भाई संकर्षण, पुत्र प्रद्युम्न और पौत्र अनिरुद्ध का सम्बन्ध स्थापित होने पर हुआ। कृष्ण का सम्बन्ध नारायणीय उपाख्यान के आधार पर सात्वत, वासुदेव, नारायण और विष्णु के साथ स्थापित किया जा सकता है। वासुदेव की महाभारत के आदि पर्व में सात्वत द्वापरा पर्व में सात्यकि और उद्योग पर्व में जनार्दन कहा गया है। भीष्म पर्व में उल्लेख है कि द्राक्षणा, जामिन्य, वैश्य और क्षत्रियों द्वारा यह रहस्यात्मक नित्यस्वरूप भावान् वासुदेव विभिन्न प्रकार पूजे जाते हैं। इसकी पूजा आपर के अन्त में और कलियुग के प्रारम्भ में सात्वत विधि से होती है।

महाभारत के नारायणीय उपाख्यान में नारायण शब्द की व्याख्या की गई है। "नार" जल को भी कहते हैं। ऋग्वेद में मिलता है कि सृष्टि से पूर्व सब जगह जल ही जल था, फिर नारायण की नाभि से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की। शतपथ ब्राह्मण में भी नारायण का उल्लेख आया है। ऋग्वेद में

१- आदि पर्व अध्याय २१८ श्लोक ३२

२- आदि पर्व बृ० ६७- ३६

३- आदि पर्व ७० - ७

४- ऋग्वेद १०। ८। ५ तथा १०। ८२। ६

५- शतपथ ब्राह्मण १३। ३। ४

पांचरात्र सम का प्रयोजक पुरुष तथा पुरुष-सूक्त का कर्ता भी नारायण को ही बताया<sup>१</sup> है। तैत्तिरीयारण्यक में नारायण को सर्व गुण सम्पन्न बताया है। महाभारत के नारायणीय<sup>२</sup> उपाख्यान में नारायण को सर्वेश्वर का रूप दे दिया गया। महाभारत के वन पर्व अध्याय १८८, १८९ के प्रत्य प्रसंग में वर्णन है कि वी प्रत्य होने पर चारों ओर जल ही जल ही गया और स्कन्धीय वृद्ध की शला पर स्क वालक ही बैठा हुआ अवशिष्ट रहा। उसके मुख लीला पर मार्कण्डेय उसके मुख में चले गये जो वहां वर्णों तक भ्रमण करते रहे। वालक के मुख से बाहर निकालने और उनके आश्चर्य चकित हो वालक से पूछने पर नारायण ने अपना स्वस्म उन्हें बताया। महाभारत में मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को यह कथा सुनाई और बताया कि उनके संबंधी जनार्दन ही स्वस्म नारायण हैं। वासुदेव और कर्ण को महाभारत में कई स्थानों पर नर और नारायण बताया है। महाभारत काल में इस प्रकार नारायण का सम्बन्ध वासुदेव से स्थापित हो गया था। अथर्व-मीमंसा-पर्व के ६५-६६ वें अध्याय के अध्ययन से प्रतीत होता है कि विष्णु का सम्बन्ध वासुदेव से महाभारत काल में ही जोड़ा है। आश्वमेधिक पर्व में एक कथा इस प्रकार है :-<sup>३</sup> "जब कृष्ण महाभारत युद्ध के पश्चात् भारका से लौट रहे थे तो मृगवंशीय उहंक नामक ऋषि मार्ग में मिले। उन्होंने कृष्ण से पूछा कि क्या आपने कौरवों और पाण्डवों में शान्ति स्थापित कर मेल करा दिया। कृष्ण ने उत्तर दिया कि कौरवों का नाश और पाण्डवों का स्कन्ध राज्य ही नया है। यह सुनकर ऋषि ने क्रोध होकर कृष्ण से कहा कि यदि तुम व्यात्म दर्शन की ठीक ठीक व्याख्या न कर सकोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूंगा। कृष्ण ने उन्हें व्यात्म दर्शन समझा कर विराट् रूप दिखाया जो वैष्णव रूप कहा गया है।<sup>४</sup> कृष्ण को शान्ति पर्व में भी विष्णु का रूप बताया है।<sup>५</sup>

१- ऋग्वेद १२। ६। १ तथा १२। १०। ६०

२- ऋग्वेद १०। ११ तैत्तिरीयारण्यक

३- वन पर्व १६। ४७ तथा उद्योगपर्व ४६। १

४- आश्वमेधिक पर्व अध्याय ५३- ५४

५- शान्ति पर्व अध्याय ४८

महाभारत के अध्ययन से प्रतीत होता है कि महाभारतकाल में कृष्ण का वासुदेव नारायण और विष्णु के रूप में स्वीकरण सर्वसाधारण न था। कृष्ण में अवतारत्व का आरोप भी महाभारतकाल में ही होने लगा था। महाभारतकालीन श्रीकृष्ण से वैदिककालीन श्रीकृष्ण का सम्बन्ध स्थापित किया जाने लगा था।

नारायणीय उपाख्यान में लिखा है कि वासुदेव ने कंस के वध के लिये अवतार लिया। शिशुपाल ने सभापर्व में कृष्ण को व्यंग्य में फूटना आदि का संहाक बताया है और भीष्म द्वारा की गई कृष्ण की प्रशंसा को झूठी बताया है। परन्तु ३८ वें अध्याय में जहाँ भीष्म कृष्ण की प्रशंसा करते हैं वहाँ यह उल्लेख नहीं है।

कृष्ण के गोविन्द नाम का सम्बन्ध गोपाल कृष्ण से है। गोविन्द नाम का उल्लेख श्री मद्भागवत और 'महाभारत' दोनों में है। महाभारत में 'गोविन्द' शब्द का सम्बन्ध 'गोपाल कृष्ण' से नहीं है। आदि पर्व में बताया है कि भावान् का नाम 'गोविन्द' <sup>१</sup> इसलिए है कि उन्होंने 'वाराहवतार' में गो <sup>२</sup> अर्थात् पृथ्वी की रक्षा की थी। शान्ति पर्व में भी उसी प्रकार वर्णन है। सर बार० जी० मण्डाकर गोविन्द के सम्बन्ध में लिखते हैं :-

"The name Govinda does occur in the Bhagavadgita and other parts of Mahabharata. It is an ancient name, being derived by a Varttika on P.III 1. 138. If this name was given to Krsna because of his having had to do with cows, while a boy in Gokula, and his previous history in the cow - settlement was known when the genuine portions of the Mahabharata were composed, we should have found an etymology of the name expressive of that connection. But, on the contrary, in the Adiparvan it is stated that Govinda is so called, because in the form of a boar he found the earth (Go) in the waters, which he

१- आदि पर्व महाभारत २१- १२

२- शान्ति पर्व ३४२- ७०

agitated (chap.21.12) and in the Santiparvan (chap.342.70) Vasudeva says: " I am called Govinda by the gods, because formerly I found the earth which was lost and lodged in a den." The origin of the name may be traced to this legend, but more probably Govinda is a later form of Govid, which in the Rgveda is used as an epithet of Indra in the sense of ' the finder of the cows'. This epithet, as another, Kesinisiridana which is also applicable to Indra, must have been transferred to Vasudeva Krishna, when he came to be looked upon as the Chief god." 1.

भण्डारकर ने गोविन्द की उत्पत्ति गोविन्द से बतलाई है, जो ऋग्वेद में इन्द्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। " केशिनि सूदन " के विषय में भी उन्होंने यही लिखा है कि यह भी इन्द्र का विशेषण था और बाद में ये दोनों विशेषण कृष्ण के साथ जोड़ दिये गये ।

हापकिंस का कथन है कि " महाभारत " में श्रीकृष्ण केवल मनुष्य के रूप में ही जाते हैं, बाद में वे देवत्व के पद पर अधिष्ठित हुये। पर शोध के विचारानुसार " महाभारत " में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से देवत्व की भावना से युक्त है।

महाभारत के बाद " भावद्गीता " में श्रीकृष्ण<sup>विष्णु</sup> के पूर्ण अवतार के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। वे पूर्ण परब्रह्म हैं :-

१- Vaishnavism & Shaivism Sir R.G. Bhandarkar p. 51.

२- जनार्दन बाबू दी रायल एशियाटिक सोसाइटी १९१५ पृष्ठ ५४८

\* यतः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति वर्जयः ।

मयसर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणि गणा ज्व ॥ ११ १

विष्णु या कृष्ण के ऋषि से स्वत्व स्थापन से प्रतीत होता है कि कृष्ण ऋषि के साकार रूप हैं। गीता में जाये हुये भक्ति के तीन मार्ग- ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग में भक्ति मार्ग ने कृष्ण के रूप को और भी विकसित किया। भावद् गीता में भगवान् को प्रकृति और पुरुष से भी परे एक सर्वव्यापक, अव्यक्त और अमृतत्व मानकर परम पुरुष कहा है। उसके दो स्वरूप हैं- व्यक्त और अव्यक्त। अव्यक्त के भी तीन भेद हैं- सगुण, सगुण निर्गुण और निर्गुण। उस परम पुरुष का मूर्तिमान अवतार होने के कारण कृष्ण ने अपने विषय में पुरुष का निर्देश जेक स्थानों पर किया है।<sup>२</sup> अर्जुन को कृष्ण ने अपना विश्व रूप दिखाया है और उनका उपदेश है कि अव्यक्त से व्यक्त रूप की उपासना अधिक सज्ज है। निष्काम कर्म के उपदेश देने वाले गीता के कृष्ण कीर्तिश्वर हैं।

जामीर जाति के इतिहास से कृष्ण का विकास हुआ है। हरिवंश पुराण के ३५३२ संख्या वाले श्लोक में "घोष" का उल्लेख है और यह बताया है कि गोप ऋषि की लीड कर वृन्दावन चले गए। "घोष" का दूसरा नाम "जामीर सुत्ती" बताते हैं। हरिवंश पुराण में मथुरा के निकट महावन से लेकर हारका के पास अनूप और जानत देश तक जामीरों का विस्तार बताया है।<sup>३</sup> महाभारत में यदुवंश के साथ जामीर वंश का घनिष्ठ संबंध बताते हुए लिखा है कि श्रीकृष्ण का मुख्यतः जामीरों से ही श्रीकृष्ण की एक लाख नारायणी सेना निर्मित हुई थी और युद्ध में दुर्योधन की और लड़ी थी। महाभारत में जामीरों की सुटेरे और स्तेच्छ बताया है जो पंचद- प्रदेश में रहते थे। महाभारत में जाया है कि कृष्ण वंश

१- श्रीमद्भगवद्गीता ७। ७ ।।

२- वैस्ये गीता ६- ८ । १५- ७, १० - २०, १०- ४१, ६ - ३४ ।

३- हरिवंश पुराण ५१६१ - ५१६३ श्लोक ।

के समाप्त हो जाने पर जर्जुन के उसकी स्त्रियों के हाका से कुहलीत्र से जाते समय बाभीरों ने उन पर वाङ्मण कर दिया<sup>१</sup>। बाभीरों को विष्णु पुराण में कोंकण और सीराष्ट्र निवास बताया गया है। पहले बाभीर चरवाहे थे फिर वे पंजाब से मथुरा, सीराष्ट्र और काठियावा तक फैल गये। भागवत में कृष्णदेव बाभीर पति नन्द को अपना भाई<sup>२</sup> कहते हैं। श्रीकृष्ण नन्द जी को मथुरा से विदा करते हुए और संदेश भेजते हुए, उपनन्द, वृणभान आदि को अपना अर्थात् सजातीय<sup>३</sup> कहते हैं।

बाभीर स्वयं अपने आपको यदुवंशी बाहुक की सन्तति मानते हैं<sup>४</sup>।

बाधुनिक बहीर शब्द "बाभीर" का ही विकृत रूप है। इतिहास से पता चलता है कि मराठा देश के उत्तर में बाभीरों ने एक राज्य भी स्थापित किया था। नासिक में लामा तमसरी शताब्दी के लिखे प्राप्त शिलालेख में "बाभीर" शिवदत्त के पुत्र "ईश्वरसेन" के राज्य के नवम्<sup>५</sup> वर्ण का वर्णन है। वायु पुराण में बाभीरों के दस राजाओं के एक राज्यवंश का वर्णन है। उसमें यह भी लिखा है कि ये राजा सिन्ध से उत्तर की ओर जाये और मधुपुर से लेकर जानत तक समस्त प्रान्त उनके आधीन हो गया। उन्होंने एक बार कुरुओं के पूर्व दश पीढ़ियों तक सिन्ध में राज किया था। गुण्डा स्थान में प्राप्त काठियावाड़ के एक अन्य उत्कीर्ण लेख में रुद्रभूति बाभीर के दान का वर्णन है। यह शिलालेख रुद्रसिंह नामक दान्य का लिखाया हुआ सन् १८० ई० के आस पास का है।

बाभीरों के इस इतिहास से बाधुनिक विद्वानों का अनुमान है कि उन बाभीरों ने "वासुदेव" के साथ उन "गोपाल कृष्ण" तथा "वाल्कृष्ण" वाली कथाओं

१- महाभारत - मौशल पर्व अध्याय ७

२- भागवत दशम स्कन्ध पुनर्वाह पंचम अध्याय श्लोक २०, २३

३- भागवत दशम स्कन्ध ४५। २३। कल्याण मन्त्र चरितार्क, संवत् २००८ के पृ० १७६ पर नन्द

की वृष्णिवंशी राजा देव भीठ के वंश से उत्पन्न हुआ लिखा है।

४- बाहुकवंशात् समुद्रमत्ताबाभीरा इति प्रकीर्तिता - यदुकुल प्रकाश ।

५- वायु पुराण खण्ड २ अध्याय ३७



का समावेश कर दिया है। " बाल देवी और बाल देवता की उपासना जाम्बीरों में प्रचलित है। बालदेवता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसका सम्बन्ध नीच घराने में और उसका पालन बौद्धों से संबंधित पिता के यहां हुआ था जिसे मालूम था कि यह बच्चा उसका नहीं है और उसके बहुत से निरीह माधवों की हत्या हो चुकी है। उन्होंने जाम्बीरों के द्वारा कृष्ण कथा में धेनुक- वध जादि की कथाओं स्थान पागरी भाण्डारकर ने लिखा है :-

" But the original signification of the word Abhira is not a cow herd. It is the name of a race, whose original occupation was the tending of cows; and consequently the name became in later times equivalent to a 'cowherd'; for these reasons the cowherd among whom the boy-God Krishna lived, belong to a nomadic tribe of the name of Abhiras. These Abhiras occupied the tract of country from Madhuvana near Mathura to Anupa and Anarta, the regions about Dvarka (H.51.61-5163)." 2.

"The dalliance of Krsna with cowherdesses, which introduced an element inconsistent with the advance of morality into the Vasudeva religion, was also an after growth consequent upon the freer intercourse between the wandering Abhiras and their more civilised Aryan neighbours." 3.

कैहली ने अपने लेख में जार, गुजरात की जाम्बीरों की ही सन्तान बतलाया है। " देवर " और " गिर्यसन " भी जाम्बीरों के देवता बालकृष्ण को ईसा के पश्चात् का सिद्ध कर बालकृष्ण की कथाओं की ईसा की रूपान्तर मानते हैं। गिर्यसन का कहना

१- वायु पुराण खण्ड २ अध्याय ३७

२- Collected works of Sir R.G. Bhandarkar Vol.IV p.51-52.

३- Collected works of Sir R.G. Bhandarkar Vol.IV p.53.

है कि ईसा की दूसरी शताब्दी में ईसाइयों का एक दल सीरिया से बाकर मद्रास के दक्षिण में आगम हो गया जिसकी भक्ति भावना का प्रभाव हिन्दुओं पर फड़ा और ब्राह्मण का क्रिस्टी तथा क्रिस्टी का कृष्ण बन गया। कुछ विद्वान् शेष नाग, शंख, कर्कशादि को भी कार्य जाति का नहीं मानते। ग्रियर्सन का कथन है कि वैष्णवों की दास्य भक्ति, प्रसाद और पूतना - स्तन - पान ईसाइयत की देन है। उनके अनुसार पूतना बाइबिल की वर्जिन, प्रसाद जेसू और दास्य-भक्ति, पाप-पीड़ित, मानवता का रुदन है। डा० ए० बी० कीथ ने और मैकडोनेल ने ही इनमें से कई संकेतों का सङ्ग्रह किया है। मण्डारकर के अनुसार गोपी शब्द का सम्बन्ध उस बामीर जाति से है जो सीरिया से चलकर भारत के पश्चिमी तट प्रदेश में ईसवी सन् के पूर्व आकर बस गई और सिन्ध होती हुई दक्षिण में पहुंची। एक विद्वान् ने बामीर शब्द को द्रविड़ भाषा का शब्द बताया है जिसका अर्थ 'गोपाल' होता है। परन्तु पश्चिमी विद्वानों की यह कल्पना कि बामीर बाहर से आये न तो निराधार ही और न अव्यक्त ही कही जा सकती है।

यदि कृष्ण की कथा और गोपियों की लीला बाहर से आई होती तो ईसवी सन् के पूर्व लिखी हुई भारतीय काव्य ग्रन्थों में उसे स्थान न मिलता। काव्य का विषय बनने के हेतु उसका प्रचार कई शताब्दि पूर्व होना चाहिये था। परन्तु ईसा से पूर्व प्रथम शतक में संगृहीत शालिवाहन दत्त की गाथा सप्तशती में राधाकृष्ण की लीला आई है। महाकवि मास ने गोपियों के शिकायत करने पर यशोदा द्वारा कृष्ण का उलूखल में बांधा जाना लिखा है तथा उन्होंने बालचरित, दूतकाव्य और घटीत्कच नाटकों में कृष्ण चरित्र का वर्णन<sup>किया</sup> है। बाल चरित नाटक में पूतना, शूट, कालिय दमन तथा माखन चोरी आदि

१- मुह माहुरण तं कराह गोरुव राडिबारां कवणीन्तो ।

स्ताणं वल्लवीणं बाराणाणवि गौरव हरसि ॥ १- ८६ गाथासप्तशती

संस्कृत अनुवाद - मुह माहुरतेन त्वं कृष्ण गौरवो राधिकायः कवनम् ।

स्तासवल्लवीनामन्यासापि गौरव हरसि ॥

बाल लीलाओं के स्रोत हैं। जायसवाल के अनुसार भास जैसा से पूर्व क्राव वंशी नारायण राजा के सभा-कवि थे। इसलिए कृष्ण की लीला का स्रोत भारत से ही है। डा० मुंशीराम शर्मा लिखते हैं "सम्भव है, आभीर दक्षिण के ही होंगे और दक्षिण से कान्त तथा उत्तरालण्ड में जाये हों। यह भी सम्भव है कि कृष्ण के बालरूप की पूजा, राधा तथा गोपियों की लीला का प्रचार प्रथम उन्हीं में प्रचलित रहा हो और भागवत धर्म स्वीकार करने पर उनकी ये नती कृष्ण भक्ति के साथ जोड़ दी गई हों, पर बाहर से जाके हुए तो ये लीलायें किसी प्रकार नहीं हैं।"

यदि कृष्ण के बालरूप के उपासक आभीर दक्षिणात्य हैं तो निस्संदेह उत्तरालण्ड की बालकृष्ण की पूजा दक्षिण की देन है। भागवत में बताया है कि भक्ति द्रविड़ देश में उत्पन्न होकर कर्नाटक में बढ़ी हुई। महाराष्ट्र में उसका मान हुआ, गुजरात में उसे कुढ़ापि ने धेर लिया परन्तु वृन्दावन में जाने पर वह अत्यन्त प्रिय रूपाली सुन्दरी नवयुवती होगई। वेष्णाव धर्म के सामा सभके आचार्य दक्षिण के ही थे। वृन्दावन के श्रीरंग जी के मन्दिर और ब्रह्मनाथ जी के मन्दिर में यह व्यवस्था है कि वहाँ का मुख्य पुजारी आज भी दक्षिणात्य होता है। कृष्ण के काले रंग का भी काला दक्षिण की ओर ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि बालकृष्ण स्वं गोपलीला का स्वरूप निर्धारण दक्षिण में ही प्रथम बार हुआ। गोपाल कृष्ण के व्यक्तित्व का निर्माण "हरिवंश पुराण", वायु पुराण और भागवत पुराण में हुआ। कई पुराण तो ऐसे हैं जिनमें कृष्ण चरित्र संक्षेप में दिया गया है परन्तु कुछ पुराणों में कृष्ण की लीलाओं का विस्तार से वर्णन है कृष्ण चरित सम्बन्धी वे पुराण जिनमें विस्तार से वर्णन है वे कुत्तम्ब हैं :- पद्म पुराण, वायु

१- भारतीय साधना और दूर साहित्य - डा० मुंशीराम शर्मा पृ० १६६

२- भागवत महात्म्य अध्यायी श्लोक ४८, ५०

पुराण, वामन पुराण, कर्म पुराण, ऋग्वेद पुराण, हरिवंश पुराण और भीमदभागवत।

### हरिवंश पुराण-

हरिवंश पुराण जो कि महाभारत के पश्चात्- सीत्तिउग्रवा द्वारा शौनके को सुनाया गया था, में गोपाल कृष्ण सम्बन्धी सबसे अधिक कथाये हैं। सर्व प्रथम जन्म ही कृष्ण चरित को गोपियों के चरित्र के साथ सम्बद्ध किया है। यह पुराण गाथात्मक कथा लौकिक शैली के कारण प्राचीन प्रतीत होता है और पार्श्वात्त्व विद्वानों ने इसे लगभग ईसा की पहली शताब्दी का माना है। जन्म फूटना वध, शूट मंग, यमलाजुन फलन, मातन चीरी, कालिन्धमन, धेनुक-वध, गौवर्धन-धारण आदि सीताजी का विशद वर्णन है। विष्णु पर्व के १२८ अध्यायों में कृष्ण जीवन की संपूर्ण कथा दी गई है। कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है :— "कृष्ण मुक्त मण्डल अत्यन्त सुन्दर था। कान्त गोपिकायें अपने नयनाक्षीपाँ द्वारा उस सौंदर्य का पान करने लगी। उस समय वह मुक्त ऐसा प्रतीत होता था जैसे पृथ्वी पर चन्द्रमा ही उतर आया हो। सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित कृष्ण जैसे भी सुन्दर था जब हरितालाद्रुमीत कीर्ण्य वस्त्र पीतान्तर को धारण कर और भी अधिक सुन्दर दिखलायी देने लगे। भुजाओं में अंज नाम का आभूषण धारण करके तथा विभिन्न वनमाला से शोभित होकर कृष्ण कृष्णमि की शोभायमान करने लगे। " यमलाजुन-मंग नाम के सातवें अध्याय के सातवें श्लोक में कृष्ण और बलराम की फन सहित सर्प के शरीर के समान बाहुवाले और हत्थी के बच्चे के समान बलिष्ठ अंग वाले कहा है। समस्त कृष्ण में

१- इसकी पुष्टि "दीनार" शब्द से करते हैं।

२- तास्तस्य वदनं कान्तं कान्ता गोपस्मिन्नि निशि, प्लिन्ति नयनाक्षीपाँ नतं शशिनं यथा। १४

हरितालाद्रुमीतेन स कीर्ण्येन वास्तवा। वसानो भद्र वसनं कृष्णः कान्ततराऽभवत्॥ २०॥

स वद्वान्गद निर्व्यूह शिखया वनमालया। शोभा मानो हि गोविन्दः शोभयामासत्तद् क्रमम्॥ २१॥  
अध्याय २०

३- सर्पयोग मुनी

४- कसमकी

विवरणा करने वाले कृष्ण को मना करने पर नन्द गोप के असमर्थ होने पर यशोदा ने कमल लीचन कृष्ण को उत्कल में रस्सी द्वारा उस स्थान पर यहां बांधा है, मूल में "विप्रकुर्वारिणं" पांडुविन्धांगी" तथा करिणप्रोदिताती" शब्द हैं जिनके साधारण अर्थ उपकार करते हुये, बुद्धिसरित और गोमय मंडित हैं। हरिवंश के श्रीकृष्ण वाक्ता, युवती स्व वृद्धा सभी को प्रिय हैं। गोपिकार्यं कृष्ण में कोई भी उपद्रव होने पर श्रीकृष्ण की सुरक्षित देखने के लिये व्याकुल हो जाती हैं। हरिवंश पुराण में लिखा है "जैसे सूर्य के बिना दिन, चन्द्र के बिना रात्रि तथा वृषभ के बिना गायों की शोभा नहीं होती, वैसे ही कृष्ण के बिना कृष्ण शोभा रहित है। जैसे गायें अपने बछड़ी से विमुक्त होकर गोष्ठों में जाना पसन्द नहीं करती, उसी प्रकार कृष्ण हैं वासियों की कृष्ण के बिना कृष्ण में जाना या रहना रुचि रुकित नहीं था।" इस पुराण में रास लीला का वर्णन इस प्रकार आया है :- "गोपांगनार्य अपने माता, पिता तथा भ्राताओं के निषेध करने पर भी रात्रि के समय प्रेम में विह्वल हो कृष्ण की लीला करने लगीं। कृष्ण के पास पहुंच कर वे मनोरम मंडलाकर नृत्य में आनन्द लेने लगीं और दो-दो की जोड़ी बनाकर कृष्ण चरित के ज्ञान में मग्न हो गयीं। गोपिकाओं के मंडल से फिर हुए कृष्ण शरद की ज्योत्स्ना धवल निशा में आनन्द करने लगे।"

१- दिवसः को बिना सूर्य बिना चान्द्रेण का निशा ।

बिना वृषेण का गायी, बिना कृष्णेन की कृष्णः ।

बिना कृष्णं न पास्यामी विवत्ता इव धेनुः ॥ विष्णु पर्व ॥ १२। २७

२- ता वार्यमाणाः पितृभिः भ्रातृभिः मातृभिस्तथा। कृष्णं गोपांगनां रात्री मृगयन्ति रतिप्रिय  
तास्तु पंक्तीकृताः सर्वाः स्मयन्ति मनोरमं गायन्तः कृष्ण चरितं हन्तुं गोपकन्यकाः । २४  
स्वं स कृष्णा गोपीनां चक्रवालरत्नकृतः। शरदीणु स चन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी ॥ २५ ॥

हरिवंशकार ने कृष्ण की विष्णु के अवतार में चित्रित किया है  
 और उसकी दृष्टि लौकिक पदा की ओर है।

### पद्म पुराण-

श्रीकृष्ण वृन्दावन के स्वामी हैं। उनकी गोविन्दता यही। तादृश  
 वन हैं। प्राप्त हुई हैं। नन्दीश्वर वन में नन्द का घर है। मांडीर तादृश वन के रम्य मनीषर  
 वन में श्रीकृष्ण ने श्रीदामा आदि के साथ क्रीड़ा की है। कृष्ण का नाम दामोदर भी है और  
 वह प्रेमानन्द रस के समुद्र हैं। <sup>५४वें अध्याय के</sup> ५५ वें से १०२ वें श्लोक तक श्रीकृष्ण के सौंदर्य का वर्णन है।  
 उसमें नवीन-नीरव-श्रेणी के समान स्निग्ध मंजु कुण्डल, विकसित हन्दीवर के समान कान्ति,  
 अंजनाभा के समान किन्ना श्याम शरीर, स्निग्ध, नील, कुटिल स्वं सौरभ-सम्पन्न कुन्तल  
 मयूर मुकुट, मणिमाणिक्य के किरीट भूषण, चन्द्र के समान मुल मण्डल, मस्तक पर गीरीजन  
 से युक्त कस्तूरी का तिलक, नील हन्दीवर के समान विशाल नेत्र, सुचारु, उन्नत, स्वं  
 सौंदर्य-सम्पन्न नासिका का अग्रभाग वक्षस्थल पर श्रीवत्स, कोस्तुम मणि और मोतियों का  
 हार, हाथ में कंकण और कैमूर, कटि में किंकिणी, कपूर कारु-कस्तूरी-चन्दन, गीरीजनमय  
 दिव्य कंठराग से चित्रित शरीर, गंभीर नाभि, वृषाकार जानु, कमल-कस्तल और पादपद्म के  
 तलीध्वज, कर्ण और कंठ के चिह्नों से शोभित, चन्द्र किरण-समूह के समान चमकी हुये नख,  
 कोटि कंदर्पों के सौंदर्य की भी जीत ले वाली तिरछी ग्रीवा, कपोल और कंधों पर स्फुरित  
 कांचन कुण्डल, अपांग दृष्टि, अमन्द हास्य और कुञ्चित कपड़ों पर ली हुई मंजु स्वर वाली वंशी  
 का वर्णन है।

७४ वें अध्याय के अन्त में कृष्ण का रसाल विलासी रूप मिलता है।

है। रास स्वात्म कृष्ण के पास चामर, व्यंजन, माल्य, गंध, चन्दन, ताम्बूल, दर्पण, पान आदि विलास की सामग्री विद्यमान है। कृष्ण के अंगित पर क्रियाशील, उनके मुख पर बाँसे लाये चंचल प्रमदायें भी वहाँ उपस्थित हैं। महायोगेश्वर श्रीकृष्ण ने यहाँ मदनावेश विह्वला वार्जुनीया स्त्री के रूप में कर्जुन का हाथ फाड़ क्रीड़ा वन में प्रवेश कर यथाकाम रमण किया। रमण आन्त वार्जुनीया जल में स्नान कर फिर कर्जुन वन गई और उस रक्षक की गुप्त स्नान की श्रीकृष्ण ने उससे शपथ ली। वाय्यात्मिक पदा से लौकिक बर्ण स्वती हुई भी यह लोला लोक के लिए कल्याणक रहै।

फस पुराण में लिखा है कि गोविन्द ही पुरुष है और वह ब्रह्मादि देवता स्त्रियाँ हैं। ८१ वें अध्याय के अन्त में श्रीकृष्ण की मूर्ति का ध्यान करने की विधि बतलाई है। ८३ वें अध्याय में वृन्दा ने श्रीकृष्ण की देवद्विनी लीला का वर्णन किया है। गोपेश्वर कृष्ण का सखावों के साथ गायों को लेकर वन में प्रवेश कर विविध प्रकार के विहार तथा खेल का वर्णन है। कृष्ण का राधिका के साथ फूला फूलों, जुवा खेलने तथा वनराजियों में राधा के साथ मिलकर क्रीड़ा करने के वर्णन हैं।

अध्याय ४ ८४ के ३८ वें श्लोक में लिखा है :- " कीर्तनीय कृष्ण की कथाएँ निर्मल हैं। यह देव भाव- द्वारा साध्य या प्राप्य है।

### वायु पुराण-

वायु पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय ४२ में श्रीकृष्ण की अक्षर वृत्त से परे और राधा के साथ गोलोक- लीला विलासी कहा है :- " अक्षर वृत्त अन्य लोक

१- गोविन्द स्व पुरुषो ब्रह्माः स्त्रिय स्वतः ॥ ४७ ॥ अध्याय ४१ ॥

२- मयन्ति कीर्तनीयस्य कथाः कृष्णस्य निर्मलाः ॥

८४ अध्याय ३८ श्लोक

दाँड़ते हुओं की अतिक्रान्ति कर जाता है। वक्ताओं की वाणी से भी जो परे हैं, वेद वेदान्तों  
 के सिद्धान्तों द्वारा जिस अक्षर ब्रह्म के सम्बन्ध में ऐसा निर्णय किया गया है, ओक प्रकार से  
 विचार करने पर वेद में भी ऐसा सुना जाता है कि उस अक्षर ब्रह्म से परे कुछ भी नहीं है। वह  
 सबकी पराकाष्ठा और परम गति है। परन्तु इस अक्षर ब्रह्म से भी परे स्वात्मरूप में स्थित  
 आनन्द-विग्रही, परमानन्द के धाम यह श्रीकृष्ण कौन हैं। जो गोपिकाओं के समूह में विचरण  
 करने वाले सीला-विलासी और रसिक हैं, रत्न सज्जित मयूर पंखों का मुकुट जिनके शिर पर  
 शोभायमान है, विभूत के समान चमकते हुये कुरन्डल जिनके कानों की सुशोभित करते हैं, संबरीट  
 के समान मनोहर और कान तक फैले हुए जिनके विशाल नेत्र हैं, जो कुंजों में गोपिकाओं के  
 समूह के साथ विलास करते हैं, दिव्य पीताम्बरधारी हैं और चन्दन के लेप से मण्डित हैं,  
 जो अपने अवरामृत से संसिक्त वंशी की ध्वनि द्वारा गोपिकाओं को मोहित करते हैं, कामदेव  
 के मद को भी दूर करने वाले और चिदानन्द रूप हैं, करोड़ों कामदेवों की सौंदर्यकला से पूर्ण  
 और करोड़ों चन्द्रमाओं की फव्वल किरणों के समान निर्मल हैं, जिनके कंठ में तीन स्वास्त्र  
 हैं जो तमाल-वन - कानन में, कदम्ब, चम्पा, अशोक, पारिजात आदि वृक्षों से शोभायमान  
 मयूर, पारावत, शुक, फि आदि के कीलाहल से पूर्ण यमुना के तुंग तट पर गायों की रौक्ती  
 के लिये श्वर उधर दाँड़ते हैं, जो राधा के साथ विलास करने वाले रसिक परम पुरुष कृष्ण  
 के नाम से प्रसिद्ध हैं, वेदों से भी मैं ने यही सुना है जो चिन्मात्र है, निर्गुण है, भेद वर्जित  
 है, वही कृष्ण रूप में गोलोक में झीड़ा करता है- ऐसा भी मैं ने सुना है। क्यपि अक्षर ब्रह्म  
 से परे कुछ भी नहीं है, फिर भी वेद कहता है कि श्रीकृष्ण इस अक्षर ब्रह्म से परे परात्मा  
 हैं। गोलोकासी भावान कृष्ण अक्षर से भी परे कहे जाते हैं। अक्षर से भी परे ये श्रीकृष्ण  
 कौन हैं, जिनका यश वेद भी सदैव गाते हैं।

---



वेद वाणी में कथित यह विशिष्ट श्रीकृष्ण किस प्रकार जाने जाते हैं। अथवा श्रुति का अर्थ है कुछ अन्य प्रकार से जानने योग्य है, जो अक्षर से भी पर है। इस प्रकार सत्यवती पुत्र व्यास वेदार्थ के सम्बन्ध में संशय में पड़े रहे। वे बहुत देर तक विचार करते रहे, परन्तु वास्तविकता को न जान सके।”

यही उपनिषदों का अरूप, अक्षर, अनिर्देश्य और अनिर्वाच्य रूप है। यही किसी नाम द्वारा अभिहित न किया जाने वाला परम तत्त्व है जिसे सात्वत वैष्णव श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं।

वायु पुराण के द्वितीय स्रष्टव्याय ३४ में स्वर्गक मणि की कथा दी है। यह मास्कर से शक्ति को और शक्ति से उसके माई प्रीतिजित को प्राप्त हुई थी। प्रीतिजितसे मणि प्राप्त करना चाहते हुये भी श्रीकृष्ण न पा सके। प्रीतिजित सिंह को मृगया के समय एक सिंह ने मार डाला। मृत्तारराज जाम्बवान उस सिंह को मार कर दिव्य मणि को लेकर अपने गिर में घुस गया। कृष्ण और अन्क वंशी श्रेष्ठ पुरुषों ने सोचा कि

१- स्व क्राणि चिन्वात्रे निर्गुण भववर्जितः। गौलीक संशितः कृष्णो दीव्यतीति कुतमया ॥५३॥

नातः परतरं किंचिन्निकमागमयोरपि ।

तथापि निगमो वक्ति इत्यक्षरात् परतः परः ॥ ५४॥

गौलीक वासी भगवानक्षरात्पर उच्यते ।

तस्मादपि परःकोऽसी गीको श्रुतिभिः सदा ॥ ५५॥

उद्दिष्टो वेद क्वचन विशिष्टोऽज्ञाको कक् । श्रुतिवर्धोऽन्यथा बोध्यः परतस्त्वक्षरादिति ॥५६॥

श्रुत्यर्थे संख्यायन्तो व्यासः सत्यवती सुतः । विचारयामास चिरं न प्रदे यथातथम् ॥ ५७॥

वायु पुराण द्वितीय खण्ड अध्याय ४२।

कृष्ण प्रेनजित से मणि प्राप्त करना चाहते थे इस हेतु उन्होंने उसे मार दिया। श्रीकृष्ण को यह मिथ्या आरोप ज्ञात हुआ और वन को चले गये। वहाँ उन्होंने निरुद्ध अवस्था में प्रेनजित को देखा। क्रुद्धराज जाम्बवान् के द्वारा मारा गया सिंह का शव भी वहीं पड़ा था। जब उन्होंने स्वर्गतक मणि को वहाँ न देखा तो क्रुद्धराज के पद चिह्नों के सहारे उसकी गुफा के पास पहुँचे। जाम्बवान के पुत्र के प्रतिधात्री के गुफा के अन्दर कहे हुये शब्द उन्होंने सुने, "सिंह ने प्रेन को मारा और जाम्बवान ने सिंह का वध किया। हे सुकुमार! मत रौ, यह स्वर्गतक मणि तेरी है।" यह सुन श्रीकृष्ण ने उस गुफा में प्रवेशकर जाम्बवान को एकदोस दिन के युद्ध के पश्चात् परास्त कर दिया और स्वर्गतक मणि तथा जाम्बवान की पुत्री जाम्बवती को लेकर हारका वापस। वहाँ समस्त सात्वर्तों के सामने सभाजित को वह मणि देकर वे मिथ्या अभिज्ञाति से बने। इसके पश्चात् भोज, वृष्णि तथा जन्मकर्मशीय कुन्तिभोज, जाहुक, देवक, वसुदेव आदि का वंश-विवरण दिखा है। श्रीकृष्ण की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है :-

" देव देवी महातैजोऽङ्गं पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः ।

विहरार्थं मनुष्येणुजले नारायणः प्रभुः ॥ १६२ ॥

देववर्षां वसुदेवेन तपसा पुष्करक्षयः ।

चतुर्नाहुः स विज्ञेयः दिव्यरूपः त्रियान्वितः ॥ १६३ ॥

प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो भानुषभागतः ।

व्यक्ती व्यक्त तिस्रः स स्व भवान् प्रभुः ॥ १६४ ॥

व्यक्तः शाश्वतः कृष्णो हरिनारायणः प्रभुः ।

जायते सैव भगवन्नायैर्माह्वन् प्रजाः ॥ २०२ ॥

१- पद्म पुराण, पाताल तण्ड वध्याय ६६

२- प्रत्यङ्ग स्मृता वैशाः प्रधानाः कृष्ण वल्गमाः ।

तल्लितायाः प्रकृत्यंशाः मूल प्रकृतिः राधिका ॥४॥ वध्याय ७ पाताल तण्ड

अती अध्याय में श्रीकृष्ण के प्राकट्य का कारण इस प्रकार बताया है :-

\* अतएव त्वं यही देवः प्रविष्टो मानुषी तनुम् ।

मीड्यन् सर्व भूतानि योगात्मा योगमायया ॥ २३१ ॥

नष्टे कर्म तदा जज्ञे विष्णुर्बुद्धिं कुतः स्वयम् ।

कर्तुर्मम व्यवस्थानं मत्पुराणां प्रणाशनम् ॥ २३२ ॥ ~~अतएव~~ ।

इसके पश्चात् १६ सहस्र श्रीकृष्ण की पत्नियों का कथन और उनके पुत्रादि का विवरण है। ४२ वें अध्याय के ४५ से ५३ वें श्लोक तक अक्षर से भी परे गौलीकवासी भावान् कृष्ण का विवेक है। उनको लीला-विलास-रक्षिक, वल्कीयूष-मध्यम, शिशि, पिच्छ - किरीट से शोभित, संजरीट के समान कानों तक फैले हुये विशाल मनीहर नेत्र वाले, राधा विलासी और गौलीक में झीड़ा करने वाला बताया है। यह कथन व्यास जी के अक्षर श्रम से भी परे श्रीकृष्ण को मानने में संशय फूट करने के सम्बन्ध में आया है।

#### वामन पुराण-

वामन पुराण में कैली, मुर तथा कालीमि के कथ की कथा है।

#### शूर्प पुराण-

शूर्प पुराण के पूर्वार्द्ध में २४ वें अध्याय में यदुवंश का वर्णन है। २५ वें अध्याय में श्रीकृष्ण पुत्र प्राप्ति के लिए महादेव की आराधना करते हैं और २७ वें अध्याय में श्रीकृष्णात्मज साम्बादि की कथा का वर्णन है।

### विष्णु पुराण-

विष्णु पुराण के पाँचें अंश के ११ वें अध्याय में शिवपार की सुविष्ट का कारण बताया है और श्रीकृष्ण वन्य का वर्णन है। पाँचौं अंश में श्रीकृष्ण का चरित्र विशेष रूप से दिया है तथा कृष्ण की सीताजी के साथ रास का भी वर्णन है। छठी अंश में कृष्ण के चरित्र का विस्तृत विवरण है।

### गरुड पुराण-

गरुड पुराण के आचार काण्ड के १११ वें अध्याय के ११ श्लोकों में कृष्ण सीताजी का उल्लेख है। जहाँ पूजा का, यमलक्ष्मी, उदार, कालीय-वन्य, गौरीशंकरादिक का वध, दान्धीपति गुरु से शिखा साथ बादि कभी कभी का संलीप में वर्णन है। गौरीशंकर का तथा कृष्ण की रुक्मिणी, उत्पलाना बादि बादि बाठ पत्नियों का उल्लेख है परन्तु राधा का नाम नहीं है। २१० वें अध्याय में गीता का उार भी मिलता है। गरुड पुराण के तृतीयांश काण्ड के ११ वें अध्याय में दुष्कामाह की कन्या गीता का श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए तप करने का वर्णन है। २० वें अध्याय में पद्मा के तप और श्रीकृष्ण द्वारा अश्विनिदा के पाणिन्य कृष्ण करने का वर्णन है। इसके २१ वें अध्याय में सूर्य-कन्या कातिन्दी के तप से भावान् सींचित होती हैं और कातिन्दी कभी के सीर पर उठी स्वीकृत करती हैं। २३ वें अध्याय में श्रीकृष्ण नायकाम्बन्ती के पुत्रिन्दा की वात्स्यायिका का कन्य और सीम पुत्री का विष्णु प्राप्ति के लिए विन्ध्यावत पर तप करने का उल्लेख है। इसके २० वें अध्याय में काम्बन्ती के साथ श्रीकृष्ण के विवाह बादि के कई प्रसंग बाये हैं।

१- का वा गीर्वाणता है वा गीर्वाणता गीर्वाणता: ।

२- कर्तुं पुनः भुवि स्थं कवीन नीरुह प्रभु ।  
 कवीन पुनरुहं वनं पश्यन्तं नृपं शिरसा ।  
 शरत्पावणचन्द्राख्यं नीरुहनीरुहं लीलायाम् ॥५८॥  
 हृदयं च हृदयं च वेषु ललितं विभूषम् ।  
 वस्तुनः सुविन्यस्तं प्रसन्नं पश्यन्तम् ॥५९॥

## ६ अथवाय कृत्तवर्ष पुराण

ब्रह्मवैवर्त पुराण के १३ वें अध्याय के ५५ वें श्लोक से ६८ तक कृष्ण

शब्द की व्याख्या की गई है। इस पैर के आधार पर तीन राशि कृष्ण का वर्णन कतिपय में जाता हुआ। पूर्णिपूणतिम ब्रह्म होने के कारण वे कृष्ण कहलाते हैं। कृष्णः शब्द का क जकार ब्रह्म वाचक, ऋ जन्तुवाचक, ञ शिव वाचक, न धर्मावाचक, ज विष्णुवाचक और विष्णु नर-नारायण जय का वाचक है। सर्वाधिपुर्व्व भोज और सर्वमूर्ति स्वस्म होने के कारण वे कृष्ण कहलाते हैं। कृष्णि निश्चैष्ट वचन जप्ता निवाणि वाचक, न कार भक्ति वाचक जप्ता पीता वाचक और जकार प्राप्ति वाचक जप्ता दातृवाचक होने के कारण उनका नाम कृष्ण पड़ा। क कार के उच्चारण से मल जन्म-मृत्यु का नाश करने वाला कैवल्य प्राप्त होता है, ऋकार बहुल दास्य भाव ञ कार कर्माश्रित भक्ति और न कार पावान् का सहाय स्व साकथ्य देता है। क कार के उच्चारण से यम-किंकर बाँप जाते हैं तथा ऋकार के उच्चारण से पाप, नकार के उच्चारण से रोग और जकार के उच्चारण से मृत्यु सभी भक्ति जन कर भाग जाते हैं।

१३ वें अध्याय में यशोदा के स्वाम के लिये यमुना बहने जाने पर गुरु में स्थित पूजा के लिये शत में रहे हुए दधि, दूध, घी, मक्खन और मधु के श्रीकृष्ण के द्वारा खा पी जाने का वर्णन है। १५ वें अध्याय में नन्द के कृष्ण के साथ गी चराने जाने और ज्यों बीच कृष्ण के माया द्वारा बाकाश की पैदाइश दित करने का वर्णन है। १६ वें अध्याय में वकासुर, प्रलम्ब, कैशि आदि के वध की कथा है। १७ वें अध्याय में वृन्दावन का वर्णन है। १८ वें अध्याय में कलियनाग-वधन लीला के वन्तर्गत बुरसा नागिनी श्रीकृष्ण की इस प्रकार स्तुति करती है :-

सकल मुक्ताय प्राणनाथं मदीयं न कुरु वक्ष्यन्त प्रसिंधो मुनयो ।

वसिल मुन वन्धी राधिका\* प्रमथिन्धी पतिमिह कुरुधानं मे विधातु विधातः ॥१८॥

त्रिनयन विधि शिवाः षण्णमुद्राश्चैवः स्तवनविषयकाद्यात्स्तौतुमीशान वाणी ॥

न तसु निखिल वैवाः स्तौतुमन्येऽपि वैवाः स्तवन विषयश्रवताः सन्तितस्तैव ॥१९॥

२० वें अध्याय में कृष्ण द्वारा गौवत्स बालक-हरण का प्रसंग है। २१ वें अध्याय में कन्द-यज्ञ-मंथन और गौवर्द्धन धारण लीला है। २२ वें अध्याय में धेनुका दुरन्ध का वर्णन है। २३ वें अध्याय में गोपी-वस्त्रापहरण तथा २४ वें अध्याय में कृष्ण-श्रीकृष्ण राक्ष-क्रीड़ा की कथा का वर्णन है।

कृष्ण वैवर्त पुराण के उत्तरार्द्ध के ६४ वें तथा ६५ वें अध्याय में कंस के अनुचरों में भाग लेने के लिये राजाओं को निमन्त्रण देने पर कूर गोकुल में कृष्ण को बुलाने जाते हैं। ६६ वें अध्याय में राधाकृष्ण क्रीड़ा का शृंगारिक वर्णन है। ७२ वें अध्याय में कृष्ण की कृपा से कृष्णा दुरूपसती बनती है। ७३ वें अध्याय में जब नन्द कृष्ण को छोड़ कुल में जाते हैं और विरह कातर होते हैं तो श्रीकृष्ण उन्हें उस प्रकार वाक्यात्मिक बोध देते हैं :-

"कृष्णात्मा च साधनी च निर्लिप्तः सर्व जीविषु ॥१६॥

जीवी मत्प्रतिबिम्बश्च इत्येवं सर्व सम्पत्म् ।

प्रकृतिर्मद्विकारा च साध्यं प्रकृतिः स्वयम् ॥ १७ ॥

वहसर्वस्य प्रभवः साच प्रकृतिरीश्वरी ॥ १८ ॥

उसके पश्चात् गीता के २० वें अध्याय की शान्ति कहते हैं :-

"मैं सब भूतों में हूँ और सब मुझमें हैं, जैसे वृक्ष में

फल होते हैं और फलों में वृक्ष का लङ्घन ।" १

१- ऊर्ध्वं च सर्वं भूतेषु मयि सर्वं च सन्ततम् ।

यथा वृक्षी फलान्येव फलेषु बाधुर स्तरीः ॥ १४॥

६१ वें अध्याय में कृष्ण उद्धव को वृष में जाने की आज्ञा देते हैं और उद्धव वहां जाकर राधा तथा गौपियों से वार्तालाप करते हैं। ६८ वें अध्याय में उद्धव मथुरा वापिस आते हैं। आगे राधा-कृष्ण सम्बन्धित जीक बाल्यानां का उल्लेख है। वृष वेवर्त पुराण में जीकों स्तुतियों का समावेश है और जीक उच्च कीटि के शृंगारिक वर्णन आये हैं। कृष्ण की लीलाओं का वर्णन यहां हरिवंश पुराण की अपेक्षा अधिक शृंगारिक और विस्तृत है।

#### श्रीमद्भागवत-

श्रीमद्भागवत में माधवान् के अवतार और सृष्टि रचना की लीला विनोद का नाम दिया है। लीला के लिये कहीं बैष्टा और कहीं झीड़ा शब्द आये हैं। श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण में स्तुतियों तथा अन्य पात्रों की उक्तियां द्वारा परम ऋतुत्व की अभिव्यक्ति की गई है। श्रीकृष्ण जब वैष्णवी के गर्भ से प्रकट हुये, तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पूर्ण दिशा में सीतलों कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा का उदय हो गया हो। उनके चित्र कमल के समान कोमल और विशाल थे, वक्षस्थल पर अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखा। श्रीवत्स का चिन्ह। थी। वष्पाकालीन मेघ के समान परम सुन्दर श्यामल शरीर था। पुंराते बाल थे। उनके कंठ से जीवी छटा छिटक रही थी और क्रांति प्रभा से सुतिकानूह जाम्ना रहा था। वे परम सुन्दर और परम मधुर थे। भागवतकार ने इस स्थान पर उनके चार हाथ जिनमें वे क्रमशः शंख, गदा, चक्र और कमल लिये हुये थे, गले में भिलमिलाती हुई कोस्तुम मणि, शरीर पर फहराते हुये पीताम्बर, वैदूर्यमणि के किरीट, स्वर्णकुण्डल, कमर में चमकता करघनी, बांहों में बाजूबन्द और कलाश्यों में कंकण आदि का भी वर्णन किया है। भागवत में पूतना



वध, शूट भोजन और तुणावर्त वादि की कथाएँ हैं। कृष्ण की बाल लीलाओं के सम्बन्ध में भागवतकार ने लिखा है, " उनके वचन की चंचलताएँ बड़ी ही वस्तु होती थीं, पर गौपियों की वे परम सुन्दर और बड़ी ही मधुर जाती थीं। " श्रीकृष्ण की सभी बाल लीलाओं का विवरण देता हुआ भागवतकार कहता है " भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञानी सन्तों के लिये ब्रह्मानन्द की साक्षात् मूर्ति, वास्तव भाव से उपासना करने वालों के लिये परम- ऐश्वर्य- मंडित, आराध्य परमेश्वर और विषय विमोक्षितों के लिये केवल एक मनुष्य बालक हैं। " ब्रह्मा जी के गौप्यमारी के बड़े तिरौछि करने और श्रीकृष्ण के अपने स्वरूप में से ज्यों के त्यों बना देने पर ब्रह्मा इस प्रकार श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं " भगवान्, आपकी भक्ति समस्त कल्याणों का मूल उत्पन्न है। जो उसे छोड़कर ज्ञान के क्षेत्र में परिणम करते हैं, उन्हें बलि ही बलि प्राप्त होता है। " कुरुका घुर का वध बलराम द्वारा सम्पन्न होने पर श्रीकृष्ण जी ने कालिय नाग का वध किया। क्रम में पहुँचने पर कृष्ण की शोभा वर्णनीय थी। कालिय वधन के पश्चात् नाग कन्याओं की कृष्ण की की हुई स्तुति विष्णु पुराण की भाँति मधुर न होकर दार्शनिक तत्त्वों से जीतप्रोत है। सर्वत्र और उन्नीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने गौपों और गायों की दावानल से बचाया। द्वासीसवें अध्याय में वैष्णवीत है। द्वासीसवें अध्याय की चौर हरण लीला के अन्तर्गत जो शब्द आये हैं उनकी आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। चौर हरण का भी आध्यात्मिक तात्पर्य है कि सांसारिकता से हटकर, निःसंग होकर, आत्मा की ओर उन्मुख हो जावों। इसके पश्चात् हन्ड यज्ञ निवारण और गौवर्धन धारण की कथाएँ हैं। गौवर्धन धारण का उद्देश्य मानव की सत्य पर खाना है। कृष्ण लीला में रास की प्रसन्न स्थान मिला है। भागवतकार ने लिखा है कि " भगवान् जो ब्रह्मा लीला प्रकट करते हैं, उसका प्रयोजन यही है कि जीव उसके सहारे अपने परम कल्याण की सिद्धि करें। "

श्रीकृष्ण ने कुछ काल उपरान्त मथुरा पहुँच कर वैसे बाततायी की मार, अपने माता-पिता का उद्धार कर महाराज उग्रसेन की फिर सिंहासन पर बैठाते हैं। बाल लीलाओं की स्मृति जाने पर अपने सखा उद्धव की समाचार लाने के लिये भेजते हैं। उद्धव के वाशवासन देने पर गोपियों एक झुंड़ की सम्मोहन कर कुछ जली कटी भातें सुनाती हैं।<sup>१</sup>

महाभारत से लेकर पौराणिक युग तक के कृष्ण का समन्वित रूप श्रीमद्भागवत में मिलता है। अवतारों का वर्णन करते हुये भागवतकार ने कहा है, "स्ते चांशकृताः पुंशः कृष्णस्तु भवान् स्वयम्।" श्रीमद्भागवत में नारायण की पुरुषावतार<sup>२</sup> या वादि अवतार बताया है। भवान् ने वादि में लोक-सृष्टि की इच्छा से महत्त्वादि सम्भूत षोडश कलात्मक पुरुषावतार धारण किया।<sup>३</sup> भवान् ने ही पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश इन पाँच द्रव्यों की अपने आपसे अपने आप में सृष्टि की है। इन तत्त्वों के द्वारा जब वे विराट् शरीर ब्रह्माण्ड का निर्माण करके उसमें लीला से अपने अंश वन्तयामों रूप से प्रवेश करते हैं तब उन वादि वेद नारायण की पुरुष नाम से कहते हैं। यही उनका प्रथम अवतार है।<sup>४</sup> भागवत में बाईं हुई ब्रह्म स्तुति में कहा है "हे अवीश, क्या आपका नारायण नहीं है। आप अवश्य ही नारायण हैं क्योंकि आप ही सब जीव-समूहों के आत्मा और अखिल साक्षी हैं।" ऊपर बताया जा चुका है कि वैकुण्ठ वासी चतुर्भुज नारायण, नारायण ऋषि, वासुदेव नन्दन श्रीकृष्ण तथा वृन्दावन विहारी नन्दन एक ही भवान् के विभिन्न रूप हैं। श्रीकृ जीव गोस्वामी का कथन है कि "पुराणों में कोई श्रीकृष्ण की नारायण ऋषि, कोई वामन, कोई क्षीरोपशायी कोई सहस्र शोणा और कोई वैकुण्ठनाथ नारायण है।" श्रीमद्भागवत में कृष्ण के रूप का उदरोच्चर विकास हुआ है। जहाँ

१- श्रीमद्भागवत १।२। १

२- वही ११। ४। ३

३- श्रीमद्भागवत १०। १४। १४

४- लघुभागवतामृत - पूर्व पटल

वैक अवतारों का वर्णन है परन्तु अन्य अवतारों को <sup>१</sup>श्री का वंश मान कर कृष्ण को ही पूर्ण <sup>१</sup>श्री माना है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को अवतार ही माना है। देवकी श्रीकृष्ण की स्तुति करती हुई कहती है “ हे बाप, जिसके वंश ।पुरुषावतार। का वंश प्रकृति है, उसके वंश ।सत्त्वादि गुण। के भाग ।परमाणुजादि । द्वारा इस विश्व को सृष्टि स्थिति और प्रलय हुआ करती है। मैं बापकी शरण <sup>२</sup>हूँ। ” गीता और ~~३~~ भागवत दोनों के कृष्ण की ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन ६ गुणों से विशिष्ट जाना है।

कुन्ती ने श्रीमद्भागवत में जो श्रीकृष्ण की स्तुति की है उसमें भावान् के अवतार के प्रयोजन के साथ उनका स्वल्प बताया है “ हे भावान् ! कोई लोग कहते हैं कि बापने पुण्य श्लोक राजा युधिष्ठिर का यश बढ़ाने के लिए ही यमुवंश में जन्म लिया। ” जो लोग बापकी प्रेम तथा भक्ति भावना से भरी हुई वद्वुत लोलावों की वक्तावों से सुनते हैं, श्रोतावों को सुनाते हैं तथा स्वयं गाकर और स्मरण करके वानंदित होते हैं, वे शीघ्र ही इस जन्म-मरण रूपी सांसारिक प्रवृत्त प्रवाह को शान्त करने वाले बापके श्रीचरण कमलों का दर्शन प्राप्त करते हैं।<sup>३</sup> ”

श्रीकृष्ण के मुख्यतया तीन रूपों में हमारे सम्मुख जाते हैं :-

- १- महाभारत के श्रीकृष्ण
- २- गीता के कृष्ण
- ३- भागवत के कृष्ण

महाभारत के कृष्ण का स्वल्प वीरत्व विधायक है। गीता के कृष्ण परब्रह्म स्वल्प हैं और

१- “ स्तौ बा<sup>२७</sup>पताः पुंशः कृष्णस्तु भावान् स्वयम् । श्रीमद्भागवतः १। ३। २८

२- श्रीमद्भागवत १०। ८५। ३१

३- श्रीमद्भागवत १। ८। ३२। ३५

भागवत के रसिकेश्वर हैं। श्रीमद्भागवत में कृष्ण के रूपों का चित्रण है जैसे : १-वन्द्य कर्माक्षुर संहारक कृष्ण २- बालकृष्ण ३- गोपी मिहारी श्रीकृष्ण ४- राजनीति वेत्ता कूटनीति- विशारद श्रीकृष्ण ५- योगेश्वर श्रीकृष्ण ६- परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण । भागवत के दशम स्कन्ध के उत्तरार्द्ध में कृष्ण के क्षुर संहारक राजनीति वेत्ता और कूटनीतिज्ञ स्वरूप के दर्शन होते हैं। दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध में बाईं हुई क्षुरों के वध की कथायें कृष्ण के बाल रूप से सम्बन्धित होने के कारण बालीकिक चरित्र के अन्तर्गत आती हैं। कंस वध के तक की लीला में बाल लीला हैं जिनमें किशोरावस्था की भी क्रियायें हैं। जरातन्ध के युद्ध के अन्तर हारका दुर्ग के निर्माण के समय से है वे एक राजा के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। इस स्कन्ध में कृष्ण की अनेक रोमांचकारी घटनायें हैं। भागवत में कृष्ण के सभी रूपों का वर्णन होते हुए रसिकेश्वर स्वरूप की ही प्रधानता है।

बाल लीलाओं को छोड़कर भागवत के कृष्ण के शेष जीवन को हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं :-

- १- घटनात्मक
- २- उपदेशात्मक
- ३- स्तुत्यात्मक
- ४- गीतात्मक।

-----  
घटनात्मक-  
-----

ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करने वाले स्थल घटना प्रधान हैं। घटनात्मक स्थलों पर भी भक्ति रूप का उद्देश्य ध्यान में रखते हुए भावान को स्तुति कई बार कराई है। ये स्तुतियाँ भीमाक्षुर वध के समय, बामाक्षुर - संग्राम के समय तथा वेद स्तुति

-----

बादि के रूप में आई हैं। इन घटनाओं के अन्तर्गत स्वर्ग से कल्प वृक्षा लाना, देवकी के मृतक पुत्रों को लाना बादि बलौकिक घटनाओं का भी सम्मिश्रण है।

#### उपदेशात्मक -

श्रीमद्भागवत में साधारण तथा विशेष दो प्रकार के उपदेशों की स्थान मिलता है। इन उपदेशों में परम तत्त्व और ज्ञान-भक्ति कर्म की व्याख्या हुई है इसलिए ये बड़े महत्व के हैं। इस उपदेशात्मक भाग में श्रीकृष्ण श्रीगेश्वर, उपदेष्टा तथा विज्ञानी के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं।

#### स्तुत्यात्मक-

भागवत के स्तुत्यात्मक भाग में दो प्रकार की स्तुतियाँ हैं-

सकाम और निष्काम। सकाम स्तुतियाँ किसी कामना से प्रेरित होकर की गई हैं जैसे :- कारागार से मुक्त होने के लिये बन्धा किसी आपत्ति या दैविक, दैहिक तथा भौतिक तापों की निवृत्ति के लिये। निष्काम स्तुतियाँ भी दो प्रकार की हैं- पहली वे हैं जिनमें तत्त्व ज्ञान की प्रधानता है और दूसरी वे हैं जिनमें साधन की प्रधानता है। वेद स्तुतियाँ जिनमें सब तत्त्वों का पर्यवेक्षण एक ही तत्त्व में हुआ है तत्त्व ज्ञान प्रधान की श्रेणी में आती है। प्रह्लाद, अम्बरीष, ब्रह्मा, ध्रुव आदि की स्तुतियाँ जिनमें मक्त मुक्ति का इच्छुक न होकर केवल भगवान के रूप तथा लीला के स्मरण कीर्तन में आनन्द लेता है साधन प्रधान की श्रेणी में आती हैं। श्रीकृष्ण के वास्तविक रूप की व्याख्या होने के कारण यह स्तुत्यात्मक भाग बड़े महत्व का है।

### गीतात्मक-

श्रीमद्भागवत का चौथा भाग गीतात्मक है। प्रेम और विरह से युक्त ये गीत अधिक नहीं हैं। दशम स्कन्ध में ६ गीत जाये हैं जिनमें पांच गीत गोपियों के और एक हारका की कृष्ण पत्नियों का है। स्कान्ध में भी एक भिला का और दूसरा एक भिक्षुक ब्राह्मण का गीत जाया है। संसार के कटु अनुभवों से उत्पन्न अन्तर्वेदना का रूप भिला के निर्वेद गीत में मिलता है। ब्राह्मण भिक्षु सात्विक और सदाचारो होने पर भी दुनिया से अपमानित होने पर वेदना फूट करता है। ६० वें अध्याय में कृष्ण की पत्नियों के गीत हैं। वे कृष्ण लीला में तन्मय हो अपने को भूल जाती हैं। वे प्रकृति के फायदों को सम्बोधित करके उनका सम्बन्ध कृष्ण से स्थापित करती हैं। गोपी गीतों के वर्णन में अनुपम प्रेम की कल्पना है।

श्रीमद्भागवत में "कृष्णस्तु भावान् स्वयम्" की चरिताधैर्य सिद्ध हुई है। गीता में जिस योगेश्वर शब्द की आवृत्ति जेक बार हुई है उस योगेश्वर रूप का चित्रण श्रीमद्भागवत में हुआ है। महाभारत में द्राणपर्ष में सज्जब के प्रति कृतराष्ट्र का कथन भागवत के कृष्ण से स्वता स्थापित करता है। परन्तु इस स्वत को जेक विद्वान् प्रसिद्ध मानते हैं। भावान् की रास लीला काम लीला न होकर योग लीला है। महारास के प्रारम्भ में जाया है "सम्पूर्ण" योगियों के स्वामी कृष्ण दो दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गये तथा उनके गले में अपनी मुखा डाल दी। यह उनकी योग माया ही थी कि कृष्ण के गोप समझते रहे कि हमारी पत्नियां हमारे पास हैं और श्रीकृष्ण ने अपने योग बल से हमारी स्तुत और सुदम शरीर बना लिया। राजा परीक्षित शुद्धदेव जी से रास लीला-प्रसंग में प्रश्न पूछते हैं, "हे कृष्ण ! श्रीकृष्ण धर्म-मयादा के बनाने वाले और उपदेशक थे फिर

उन्होंने धर्म के विपरीत पर स्त्रियों का स्पर्श कभी किया। शुद्धदेव जी ने परोक्षित को यह उत्तर दिया है कि "भावान् कृष्ण अपने भक्तों की इच्छा से अपना चिन्मय श्री विग्रह प्रकट करते हैं। उनमें कर्म बन्धन की कल्पना नहीं की जा सकती।" भावान् कृष्ण के स्वयं अपने वेश को पाप से वाकूत देख नष्ट करने के समझ उनके योगेश्वर रूप की देखते हैं। योगेश्वर की मोह से वाच्छन् न होकर मानसी दृष्टि होती है। भागवत के श्रीकृष्ण अनन्त कर्म, अनन्त वैष्ठा तथा अनन्त लीलाओं करते हुये भी पूर्ण निश्चिन्त और पूर्ण निर्लिप्त रहे यही उनका योगेश्वर स्वरूप है।

सर्वेश्वर योगेश्वर तथा राजनीति से सम्बन्धित होते हुये भी भागवत के कृष्ण में भक्ति का फुट है।

भागवत के द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में भावान् के लीला अवतारों की कथा और २६ वें श्लोक से कृष्ण और बलराम के अवतारों की और संकेत है।  
 अध्याय में बाल लीलाओं की प्रतीति तथा तृतीय तृतीय स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में बाल लीलाओं का वर्णन है। दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध में श्रीकृष्ण के बाल चरित्र तथा गीपी विहार है। दशम स्कन्ध में लीलाओं का विस्तृत वर्णन है। डा० हरवंश लाल शर्मा लिखते हैं :- "श्रीमद्भागवत का बाल कृष्ण सब कलाओं में पूर्ण है, वेदान्त सुनाता हुआ भी जसुरों का संहारक है, छात्र तैल धारण करता हुआ भी मोहन है, गंभीरता का समुद्र होते हुए भी मुरली बजाता, नाचता गाता - हंसाता है, न जाने कितने भक्त उसकी इस बनीसी बाल हवि पर भुग्ध हैं और उसके एक एक स्वरूप की फाँकी पर अपना सब कुछ समर्पित किये हुए हैं। उनके भक्तों की उनका मधुरा वाला किशोर रूप उतना प्रिय नहीं जितना ब्रज का बाल पौण्ड्र रूप। इसी रूप में उनकी परम वासक्ति है।" भागवत के

१- श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अध्याय ३३

२- मनसा प्रजा जसुजन्त

३- सूर और उनका साहित्य - डा० हरवंश लाल शर्मा पृ० २०६

बालकृष्ण को हम परमानन्द कह सकते हैं। जिस प्रकार जगत् की बीरासी सात योनियों में ब्रह्म व्याप्त है उसी प्रकार बीरासी कीस युग में वेदान्त का परम सिद्धान्त ब्रह्मानन्द नाच रहा है। भागवत की कृष्ण लीला में बाधिवैदिक, बाधिभौतिक और बाध्यात्मिक सभी भाव भरे हैं।

महाभारत, गीता तथा अन्य समस्त ग्रन्थों में दिये हुए कृष्ण संबंधी भावों का समन्वय श्रीमद्भागवत में मिलता है। श्रीमद्भागवत में हमें महाभारत के कुरुक्षेत्र महायुद्ध के नियामक पाण्डवों के सखा और श्रीकृष्ण का रूप तथा गीता के साधुओं की परित्राण, पापियों के विनाश, धर्म की स्थापना, भक्ति ज्ञान और कर्म का सामंजस्य स्थापित कर निष्काम कर्म योग का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण का भी रूप देखने का मिलता है। वे कृष्ण सुधुरा और हास्का के महावीर, महायोद्धा, राजराजेश्वर भी हैं और गोकुल ब्रज और वृन्दावन में बिहार करने वाले, नन्दनन्दन रसिक शिरोमणि गोपाल भी हैं।

कृष्ण विषयक पुराणों के विषय और भाषा पर दृष्टि डालते से यह प्रतीत होता है कि पुराण विभिन्न कालों की रचनाएँ हैं और उनके संस्करण बराबर होते रहे हैं। हो सकता है कि विभिन्न साम्प्रदायिक आचार्य अपनी अपनी परम्पराओं के अनुसार इन पुराणों में घटा बढ़ी करते रहे हों। सभी पुराणों का मध्यकालीन भक्ति साहित्य पर प्रभाव पड़ा और लोक प्रकार की विचार धाराओं को पार करते हुये कृष्ण का वर्तमान स्वरूप निर्धारण हुआ। डा० स्वामी प्रसाद द्विवेदी के मत से हम भी सहमत हैं, "कृष्ण का वर्तमान रूप वैदिक, अवैदिक, आर्य, अनार्य धाराओं के मिश्रण से बना है। परन्तु फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं। अवतारत्व का आरोप हो जाने पर बहुत सी अति मानवीय घटनाओं से अवतार का जीवन घुल मिल जाता है।"





### राधा का विकास-

राधा के विकास के संबंध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि उसके दो पक्ष हैं एक तत्त्व का पक्ष और दूसरा इतिहास का पक्ष। वास्तव में राधा दार्शनिक धर्म ग्रन्थ और कवियों की सूझ है। पाश्चात्य विद्वान् 'राधा' की ईस्वी शताब्दी के बाद की कल्पना मानते हैं। डा० हरबंश लाल शर्मा का मत है कि 'यद्यपि पौराणिकपण्डित राधा का सम्बन्ध वेदों से लाते हैं परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में कृष्ण की प्रेमिका राधा को वेदों तक घसीटना असंगत ही प्रतीत होता है। गोपाल कृष्ण की कथाओं से परिपूर्ण भागवत, हरिवंश और विष्णु पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में राधा का अभाव अनेक प्रकार के सन्देहों को जन्म देता है। गोपाल तापिनी, नारद-पांच-रात्र, तथा कपिल पांचरात्र आदि ग्रंथ इस विषय में प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि वे बहुत बाद की रचनाएँ हैं।"

पुराणों में राधा सम्बन्धी जितने उल्लेख बाजकल दिखाई पड़ रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें से अधिकांश अर्वाचीन काल में जोड़े गये हैं। वास्तव में साहित्य के उज्ज्वल रस के माध्यम से राधा का धर्म मत में प्रवेश हुआ है और साहित्य के ही अलम्बन से राधा का आविर्भाव और अम प्रसार हुआ है। परन्तु ज्योतिष तत्त्व और दार्शनिक आधारों से सम्बन्धित राधा का स्वरूप वेदों में भी देखने को मिलता है और उसकी भावना का बीज वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों तथा उपनिषदों में विद्यमान है। कृष्ण की रास लीला की ज्योतिषिक व्याख्या करते हुए योगेश्वरन्द्र लिखते हैं :- "राधा नाम पुराना था और विशाखा का नामान्तर था। कृष्ण-यजुर्वेद में विशाखा, अनुराधा आदि नक्षत्रों

का नाम है। राधा के बाद कुराधा का नाम है। अतस्व विशाखा नाम राधा है। अथर्ववेद में "राधी विशाखे" यह स्पष्ट कथन है। विशाखा नाम का कारण यही है। इसी नक्षत्र में शरद विष्णुव होता था और वर्ष दो शताब्दों में बंट जाता था। यह ईसा पूर्व २५०० की बात है। शायद इसके पहले नक्षत्र का नाम राधा था। राधा कावर्थ है सिद्धि। यह नाम क्यों फड़ा था, यह नहीं बताया जा सकता। काल क्रम में राधा और विशाखा एक हो गये हैं। महाभारत में कर्ण की धातु माता का नाम राधा है, और कर्ण राधेय के नाम से संबोधित होते थे।<sup>१</sup>

वेदों में "धु" - लोक का अधिष्ठाता देवता आदित्य था। नाम से वृष्टि होती थी। वृष्टि से वनस्पति, वन, फल, फूल उत्पन्न होते थे, जिससे गाय, पशु, मनुष्य आदि सब प्राणी जीवित रहते थे परन्तु वृष्टि का सम्बन्ध विशेष कर मध्य लोक तथा भूलोक से ही समझा जाता था इसलिये वनस्पति, वृक्षभूमि, इन्द्र वृष्टि और ताम्र सामग्री का देवता "राधानांपति" होगया। इस राधानांपति की भावना के विकास के अनुकूल राधा का अर्थ, वन वनस्पति के स्थान पर संपत्ति । श्री, लक्ष्मी । से लिया जाने लगा।<sup>२</sup> अथर्ववेद पुराण में राधा शब्द के उद्भव का विचार करते हुए कहा गया है कि "राधा शब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता।" अर्थात् राधा शब्द की व्युत्पत्ति का निरूपण सामवेद में हुआ है, यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में यज्ञ पुरुष की "श्री" और "लक्ष्मी" दो पंक्तियां कही गई हैं। जाने चत्तार श्री निम्बाकाचार्य ने इसी लक्ष्मी की वृषभानुजा कह

१- श्री राधा का क्रम-विकास - शशिभूषणदास गुप्त पृ० १०१ से उद्धृत

२- "वर्गा प्रास्ताहुति सम्भ्यादित्य भुपतिष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टिवृष्टि रत्नं ततः प्रजा॥" मनुसंहिता

३- "मलाटी कल्ट इन्सैंट इंडिया" - डा० बी० कै० गोस्वामी पृ० ४०५-६

कर कृष्ण की शैशवत पत्नी माना है। वैदिक पुराण और तन्त्र साहित्य में राधिका या राधा का अस्तित्व पुरुषोत्तम कृष्ण की मूल प्रकृति के रूप में माना है। अथर्ववेदिक 'श्री राधिकोपनिषद्' में कहा है :- 'यं राधा कृष्णो रसांश्चैवैकैक्यं ब्रूह्मार्थं विधातुं, एषा हरः सर्वेश्वरी सर्वविधा सनातनी कृष्णाप्राणाधिदेवी विविक्तैः वेदाः स्तुवन्ति यस्या गतिं ब्रह्म भागाः वदन्ति।' तथा वृषभानुसुतागोपी मूल प्रकृतिरैश्वरी।" कर्ग्वेद के राधिकोपनिषद् की चर्चा करते हुये कहा है कि कृष्ण की वास्तवादिनी शक्ति सम्पन्न शक्तियों में प्रधान है। यही शक्ति परम अन्तरात्मा श्री राधा है। ~~के-अस्तित्व-कृष्ण~~ ~~के-कहे-हैं-अने~~ ये कृष्ण की वाराधिका है। कृष्ण उनकी वाराधना करते हैं और ये कृष्ण की वाराधना करती हैं स्वतः ही उन्हें राधा कहा जाता है। परम पुरुष कृष्ण अपनी आनन्द रूप में स्वयं रमण करते हैं। उसमें लीन होते हैं और उसी शक्ति के मेल से सृष्टि का उन्मीलन करते हैं। अपनी वाराधना में स्वयं लीन हो जाने के कारण उनकी शक्ति को राधा कहा गया है। दार्शनिक रूप से दोनों एक हैं, दोनों अभिन्न हैं।" शुद्ध और निराकार प्रेम की धनीभूत मूर्ति श्री वृन्दाकन धाम और राधा कृष्ण हैं। इन्द्रियां सखि स्वरूप हैं, मन श्री कृष्ण है और आत्मा श्री राधिका है।" शरीर और इन्द्रियों की बाधनता मन और आत्मा से होने के कारण राधा तत्त्व कृष्ण तत्त्व से अभिन्न और उसी का आत्म स्वरूप है। वेद में उधर उधर ब्रज लीला संबंधी सभी नाम आये हैं, जैसे राधा, गो, ब्रज, गोप, बहि, कालीनाग, वृषभानु, रोहिणी, कृष्ण और अर्जुन। वास्तव में वेद के मंत्रों में राधा राधा का नाम की गोपी के अर्थ में और वृषभानु राधा के पिता के अर्थ में नहीं आये हैं। गोप का अर्थ ग्वाला नहीं है, रोहिणी का अर्थ बलराम की माता

१- अ- स्तौत्रं राधानां यौ । ऋ० १-३०-५    ब- गवामयब्रजं वृधि। ऋ० १।१७।७

स- दास पत्नीरहि गोपा अतिष्ठन् । ऋ० १।३२। ११    द- त्वं नृपता वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुणो वि माहि। ऋ० ३।१५।३    क- त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीन्तु। ऋ० ८।६३।१३    ल- कृष्णा स्माराय अर्जुना वि वो मदे। ऋ० १०।२१। ३

नहीं है, कृष्ण और कर्जुन महाभारत के वीर नायकों के नाम नहीं हैं। यो किरणें हैं, ब्रज किरणों का स्मान यो है, कृष्ण रात्रि है, कर्जुन दिन का नाम है। कृष्ण का अर्थ कृष्ण वंश न होकर कलवान होना है और राधा धन, वन्न और नक्षत्र का नाम है। इस प्रकार वेद में विष्णु, कृष्ण और राधा आदि शब्द ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम नहीं हैं। वेद के शब्द पहले हैं और ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं फलार्थों के नाम वेद के शब्दों को देकर रखे गये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि राधा का बीज वेदों में प्राप्य है।

अर्ध वेद के गोपाक्तापिनी उपनिषद् में एक प्रधान गोपी का वर्णन है। यह गोपी कृष्ण को बहुत प्यारी है और इसका नाम वहां पर गांधर्वी बताया है। गोपाक्तापिनी उपनिषद् के अतिरिक्त कृष्णोपनिषद् तथा राधिका तापनीय आदि उपनिषदों में राधा संबंधी अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

माहेश्वर तंत्र के स्कान्द पटल । ज्ञानसण्ड। में राधा का उल्लेख मिलता है। रुद्रयामल तंत्र में गीता के समान अंग का विस्तृत विवेचन है। इस ग्रन्थ के उत्तरतन्त्र में षष्ठ्युक्त कमल की काणिका के अंक में राधा-कृष्ण का वर्णन है। रुद्रयामल तन्त्र के ३७ वें पटल, जड़तीसवें पटल तथा अनेक मंत्रों में राधा का वर्णन आया है। हरि लोला मूल तन्त्र में राधा के विवाह का वर्णन आया है। संमोहन तंत्र गीतमो-तन्त्र आदि

१- सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पुष्क पुष्क ।

वेद शब्देभ्य स्वादौ पुष्क संस्थाश्च निर्मिताः । यजु० १। २१

२- स्वामिनी वासिनी राधा स्वयं वृन्दावनेश्वरी । श्लोक ३१

\* कृष्णा राधा स्वस्मेण विरहा क्लान्त केतवः । श्लोक ३३

\* इत्ययं राधया प्रोक्ता सती प्राणयति पर्यां । " श्लोक ४६

\* राधिका राधिकेति महामन्त्रं जपेन्नरः ॥ श्लोक ४६ ३८

३- देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवता ।

सर्वलक्ष्मीयै सर्वकान्तिः सम्पादनी परा ॥ स्था ।

में भी राधा का विवरण आया है। जीव गोस्वामी और कृष्णदास कविराज ने वृद्ध-  
 गीतमीय तंत्र में भी राधा के सम्बन्ध में एक श्लोक ढूँढ निकाला है। जीव गोस्वामी ने  
 "ब्रह्म संहिता" की टीका में "सम्पौदन तंत्र" में भी राधा के संबंध में एक श्लोक ढूँढ निकाला  
 है। तन्त्र की कथा का उल्लेख करके रूपगोस्वामी ने कहा है, "ह्लादिनी जो महाशक्ति है-  
 जो सर्व शक्ति वरीय सी है- वही राधा तत्त्वार भाव रूपा है, तन्त्र में यह बात ही  
 प्रतिष्ठित है।"<sup>२</sup>

महामात, हरिवंश पुराण, ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण किसी  
 प्राचीन संस्कृत पुराण में राधा का नाम नहीं मिलता। भागवत के दशम स्कन्ध के तीसरे  
 अध्याय में एक ऐसी गोपी का अवश्य उल्लेख है जो कृष्ण की सर्वाधिक प्यारी थी। रास  
 लीला के बीच कृष्ण के वन्तधान होने पर गोपियों<sup>को</sup> एक स्थान पर श्री कृष्ण के चरण  
 चिह्न दिखाने देते हैं और जाने बहने पर उनके साथ किसी व्रजयुक्ती के और चरण चिह्न  
 देते वापस में कहने लगीं, "जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ गईं हो, वैसे ही  
 नन्दनन्दन श्याम सुन्दर के साथ उनके कंधे पर हाथ रखकर चली वाली किस बहुभागिनी के  
 ये चरण चिह्न हैं।" फिर भागवत में लिखा है :-

"कथाऽऽराधितां नूनं भावान् हरिरीश्वरः ।

यन्नाविहाय गोविन्दः प्रीतो यामनपद्मः ॥२८॥

अर्थात् अवश्य ही सर्व शक्तिमान भावान् श्रीकृष्ण की खाने वाराधना की है। तभी तो उन्हें  
 छोड़कर वे प्रसन्न हो उसे स्नान्त में ले गये हैं। इसी "वाराधितः" शब्द से राधा शब्द

१- यन्मात्रा तन्मि दुर्गाहं गणगुणवती ह्यहम् ।

यौगवन्महात्मनी राधा नित्या पराध्या ॥

२- उज्ज्वल नीलमणि- राधा प्रकरण

३- कल्याण के भावतांक से उद्धृत ।

की उद्भावना है कृष्ण की जो बाराधिका है, वही राधा या राधिका है। इस प्रकार भी हो सकती है।

कृष्ण की गोपियों के साथ वृन्दावन सीता का वर्णन पहले पहल हरिवंश में मिलता है। इस हरिवंश के विष्णु पर्व के बीसवें अध्याय में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की रास सीता का संक्षेप में वर्णन है। "गोपियों के साथ क्रीड़ा करने के समय जिस समय 'दामोदर हा राधे ! हा चन्द्रमुखी ! इत्यादि शब्दों से विरह प्रकट करते हैं तब वे वीरांगनागण प्रहृष्ट होकर उनकी मुक्त-निःसृत वाणी सुनती थी। विष्णु पुराण में भागवत पुराण के अनुरूप ही रास वर्णन है और उसी प्रियतमा 'कृतपुष्पा मदात्मना' गोपी का उल्लेख मिलता है :-

"कौ पविश्य सा तेन कापि पुष्पैरलंकृता ।

अन्यन्वनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चिता यथा यत्नः॥"

"यहां बैठकर कोई रमणी उस कृष्ण द्वारा पुष्पों से अलंकृता हुई है। जिस रमणी के द्वारा दूसरे जन्म में सर्वात्मा विष्णु अभ्यर्चिता हुए हैं।" "यहां" राधिका "और" बाराधिका शब्द के स्थान पर "अभ्यर्चिता" शब्द मिलता है और दूसरे पुराणों में रास का इस प्रकार का वर्णन और कृष्णप्रिया किसी गोपी विशेष का उल्लेख नहीं मिलता।

कृष्णदास कविराज ने अपनी चैतन्य चरितमृत में पद्म पुराण से राधा का उल्लेख उद्धृत किया है। बाधुनिक प्रचलित पद्म पुराण में विभिन्न स्थलों पर राधा का नाम मिलता है। उसमें राधा की माता का पीरर का वर्णन है। जयन्ती-कृत महात्म्य-ख्यापन के प्रसंग में एक बार राधाष्टमी का उल्लेख है। चात्तीसवें सर्ग में राधाष्टमी कृत का महात्म्य बताया गया है। विष्णु-पंचक कृत में राधा के साथ श्री हरि

१- यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।

सर्वं गोपीणु रीकेका विष्णोरत्यन्तवत्समा ॥

की पूजा का उल्लेख मिलता है। पद्म पुराण के उत्तरखण्ड में कहा गया है कि विष्णु धाम में स्थित गोकुल के भास्वर मवन में नन्द गृहेश्वरी राधा द्वारा समुपिता होती हैं। ब्रह्मसंहिता अध्याय में कृष्ण की लीला भूमि के वर्णन के बाद कृष्ण की प्रिया बाधा प्रकृति राधिका ही कृष्णवत्सला है। इसके बाद के अध्याय में नारद भानु नामक गोप्यर्ण के घर सुलताण गौरी कन्या की देखकर कृष्ण वत्सला लक्ष्मी का अवतार समझते हैं। पद्म पुराण में एक स्थल पर राधा गोपियों के बीच स्वर्ण प्रभा के समान दिशाखों को चकाचाँध कर रहे हैं। राधा के संबंध में इन उल्लेखों की देखने से प्रतीत होता है कि राधा किसी प्राचीन रूप का परित्यक्त नहीं है, सारे वर्णन गढ़े हुए हैं, परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि राधा की उत्पत्ति वृन्दावन की प्रेम लीला में हुई है। भविष्य पुराण में राधा का वर्णन है।

ब्रह्मखण्ड- पुराण में ब्रह्मा नारद संवाद में राधा जी का वर्णन मिलता है।<sup>१</sup> मत्स्य- पुराण के श्लोकार्थ में राधा का उल्लेख है वहाँ कहा है कि रुक्मिणी द्वारावती में है, और राधा है वृन्दावन के वन में।<sup>२</sup> सारे मत्स्य-पुराण में कहीं भी विष्णु के कृष्णावतार में ब्रजलीला का वर्णन नहीं है अतएव श्लोकार्थ में राधा का उल्लेख मिलने पर उसे प्रामाणिक मानने में शंका होती है। पद्म-पुराण के सृष्टि-खण्ड में भी यह श्लोक

१- बाराधि तमना कृष्ण राधाराधितमानसः ।

कृष्णः कृष्णमना राधा राधा कृष्णोति यः पठेत् ॥

ब्रह्म गुह्यं तु मे तात नारायणमुखाच्छ्रुतम्।

सर्वदा पूज्यते देवः राधा वृन्दावने वने । ”

२- रुक्मिणी द्वारावत्यां तु राधा वृन्दावने वने ॥

मिल रहा है। विष्णु के द्वारा सर्व व्याप्ति सावित्री के स्तव में कहा गया है कि शक्ति  
रूपा यह सावित्री हारिका में रुक्मिणी और वृन्दावन में राधा है। वृन्दावन की राधा  
यहां पुराण-तन्त्रादि में वर्णित बहु तैरे देव-देवियों में एक देवी है। वादि पुराण,  
वायु पुराण, वराह पुराण, नाखीय पुराण वादि पुराणों में स्कार्थ श्लोको में राधा  
का उत्तेज मिलता है।

ऋग्वेद पुराण में वृष्ण लीला का विशद चित्रण है और इसके  
कई तण्डों में राधा का विस्तार से वर्णन मिलता है। परन्तु बाजबल प्रसिद्ध ऋग्वेद पुराण

१- सावित्री पुष्कर में सावित्री, वाराणसी में विशालाक्षी, नमिष में लिङ्गारिणी,  
प्रयाग में ललितादेवी, गन्धमादन में कामुका मानस में कुमुदा, वम्बर में विश्वव्याया, गौमन्त  
में गौमती, मन्दर में कामचारिणी, कैरथ में जन में मदीत्वष्टा हस्तिनापुर में जयन्ती,  
कान्य कुब्ज में गौरी, मत्स्याचल में रम्भा, स्कान्ध कानन में कीर्तिमती, विलोस्वर में विल्ला  
कणिक में पुरुहस्ता, कैदार में मार्गदायिका, सिमाल में नन्दा, गोकर्ण में मङ्गलाक्षिका,  
स्थाणीश्वर में म्बानी विल्लक में विल्लपत्रिका, श्री शैल में नाथ्वी देवी, मईश्वर में मङ्गा,  
वाराहगिरि में जया, कमलाक्षर में कमला, रुद्रकौटि में रुद्राणी, कालंबर में काली,  
महालिङ्ग में कपिला, कसौट में मंगलेश्वरी हैं। उसी प्रकार और भी बड़ी बड़ी देवियों का उत्तेज करके सावित्री देवी की शक्ति में रुक्मिणी और वृन्दावन में राधा  
कहा गया है।

२- "गङ्गासी" १७। १५२ - १६६

३- "रम्भास्वामी के" लघु भागवतामृत" से उद्धृत श्लोक :-

"त्रैलोक्ये पृथिवी धन्यास्तत्र वृन्दावनं पुरी । तत्रापि गोपिकाः पार्थिव राधामिधा मय ।

४- राधा विलास रसिकं वृष्णाख्यं पुरुषं परमाशुतवाङ्मयं देव्यः यस्तद्वशीचरी भक्त ।

वानन्दात्म सं० १०४।५२

५- तत्र राधा समाश्लिष्य वृष्णमङ्गलपङ्कजं । सनात्ना विदितं कुण्डं कृतं तीर्तमदूरतः ॥

राधाकुण्डमिति स्यात् सर्वपापहरं शुभम् । "गङ्गासी" १६४ १३२-३४

६- "गङ्गासी" १।४३-४४



की प्रामाणिकता के संबंध में बहुत से पण्डितों ने संदेह प्रकट किया है।<sup>१</sup> श्रीकृष्ण-जन्म सण्ड<sup>२</sup> के प्रथम अध्याय में श्री नारद जी के श्री कृष्ण-जन्म विषयक प्रश्न हैं। द्वितीय अध्याय में भगवान् का गोकुलागम का बीर राधा जी के गोपालिका बनने का कारण बताया है। गौलोक में श्रीदामा से कह, विरजा के नदी रूप, बीर राधा जी के रत्न मंडप में बागमन आदि की बातें हैं। तृतीय अध्याय में हरि का राधा के प्रति माहात्म्य-वर्णन, राधा बीर श्रीदामा का परस्पर शाप बीर भगवान् के द्वारा उसका समाधान है। चतुर्थ अध्याय में अत्याचारों से पीड़ित पृथ्वी का देवी संहित गौलोक गमन आदि का वर्णन है। पांचवें अध्याय में गौलोक वासिनी श्री राधा जी के महल के १६ द्वारों का बीर राधा जी के महल में देवी के बागमन का वर्णन है। वहां भगवान् के तेजः स्वरूप का दर्शन करके ब्रह्मा, शिव बीर कर्मराज आदि द्वारा की हुई स्तुति है। छठे अध्याय में भगवान् द्वारा देवी की अभ्युदय सभी गौलोक धामवासियों को राधा के संहित ब्रज भूमि पर अवतार ग्रहण करने की आज्ञा बीर श्री राधा तथा अपने वंशों के द्वारा जनेक गोप-गोपी रूप धारण करने की आज्ञा है। अमिन्न प्रकृति रूपिणी राधा का विरह के भय से व्याकुली भाव तथा राधा के प्रतिबोध वचन हैं। श्री राधा जी का गौलोक धाम से गोप-गोपी संहित गोकुल में बागमन बीर श्री हरि के मधुरा बागमन का भी वर्णन है। सातवें अध्याय में जन्म कथा बीर तीरह्वे अध्याय में गंगाचार्य द्वारा भगवान् का नामकरण है। राधा कृष्ण के विवाह का वर्णन चौदहवें अध्याय में है। सत्रहवें अध्याय में वृन्दावन-वर्णन तथा राधा जी के षोडश नामों की स्तुति है। सत्तालीसवें अध्याय में राधा कृत पार्वती स्तोत्र बीर तीरह्वे

१- बंकिम चन्द्र ने कहा है :- " इसकी रचना प्रणाली आजकल के मस्टाचार्य जैसी है। जर्मन गण्टी मनसा की कथा भी है। "

" कृष्ण चरित्र "

अध्याय में राधा के पश्न के कारण अष्टावक्र का इतिहास है। द्वाविंश अध्याय में राधा के प्रश्न करने के कारण कृष्ण जी के शाप का कथन है। त्रिंश अध्याय में राधा और कृष्ण के संवाद के रूप में ब्रह्म मास्ती की कथा है। बावनवें अध्याय में राधा और कृष्ण के नामोच्चारण में राधा के प्रथम नामोच्चारण का कारण बताया है। त्रैपदवें अध्याय में उद्व राधा कृष्ण के वन विहार का वर्णन है। पुराण के उत्तरार्ध के बानवें अध्याय में उद्व जी का राधा के मंदिर में आकर राधा स्नान दिया हुआ है। त्रैपद में अध्याय में राधा और उद्व का संवाद है और राधा उद्व के वस्त्रालंकार देती हैं। पिञ्चानवें में अध्याय में राधा के दुःख का निवेदन है। द्वायानवें अध्याय में उद्व के मग्न सागर पार करने की प्रार्थना और श्रीराधा जी द्वारा उपाय वर्णन है। सप्तानवें अध्याय में राधा का दिया हुआ शामीपदेश है।

नारद पंचरात्र के नमस्कार श्लोक में लिखा है :-

“ लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका परा । १-२

“ राधा ” शब्द के तात्पर्य के सम्बन्ध में कहा है :-

“ रा शब्दोच्चारणाद् भक्तौ भक्तिं मुक्तिं च राति सः ।

या शब्दोच्चारणैव धावत्येव हरेः पदम् । ” २-३-३८

कृष्ण की प्रेम कहानी है ही राधा का उद्भव हुआ है। राधा का आविर्भाव और स्वरूप निर्धारण मुक्तः भारतवर्ष के साहित्य पर अवलम्बित है। बाभीर जाति में कृष्ण और गोपियों की प्रेम लीला गीतों के रूप में बिखरी हुई थी। गोप जाति में

१- शशियाटिक बीसाष्टी कलकत्ता से रेवरेंड कृष्ण मोहन बन्धीपाध्याय द्वारा सम्पादित

। परन्तु मुद्रित आकार में जिस रूप में पाते हैं उसे प्राचीन पांचरात्र ग्रन्थ नहीं मान सकते।

२- तुलसीय षड्वहारी महाविद्या कथिता सर्वसिद्धिदा ।

प्रणवाद्या महामाया राधा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ २-३-७२ ॥

चपल बामीर बंधुओं और युवक कृष्ण की प्रेम लीला के उपाख्यानो ने जनक गानों का प्रादुर्भाव किया था। मंडारकर कहते हैं कि "राधा सीरिया से बाये बामीरों की उष्टदेवी है। बामीरों के यहां बस जाने पर उनके बाह्य-गोपाल सात्वत धर्म के उपदेष्टा मावान् कृष्ण के साथ सम्मिलित हो गये और कुछ शताब्दियों के पश्चात् बामीरों की उष्टदेवी राधा भी बाये जाति में स्वीकार कर ली गयी।" भारतवर्ष के प्राचीन प्रेम-साहित्य में कृष्ण की इस गोप-लीला की कहानी के अन्दर कृष्ण की एक सास गोपी राधा है प्रेम लीला की धारा प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती है। कृष्ण की प्रियतमा प्रधान गोपी के सम्बन्ध में दक्षिणात्य आत्मार सम्प्रदाय के गानों का विवरण दे सकते हैं। उनके आविर्भाव के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। पांचवीं सदी से नवीं सदी के अन्दर भिन्न भिन्न समयों में आविर्भूत उनके चार हजार संगीत "दिव्य-प्रबन्धम्" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन गानों में बहुत से स्थलों पर कृष्ण की प्रियतमा एक प्रधान गोपी का उल्लेख है लेकिन राधा का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। इस कृष्ण की प्रियतमा का नाम तामिल गानों में "नाप्पिन्नार" मिलता है। "नाप्पिन्नार" एक फल का नाम है। इस नाप्पिन्नार गोपी की कृष्ण की निवृत्त आत्मीया भी कहा गया है तथा कृष्ण की प्रियतमा वही गोपी लक्ष्मी का अवतार बताया गये हैं :-

Daughter of Nandagopal, who is like  
A lusty elephant, who fleeth not,  
With shoulders strong: Nappinnai, thou with hair  
Diffusing fragrance open thou the door !  
Come see how every where the cocks are crowing,

१- गोविन्दाचार्य कृत The Divine Wisdom of the Dravida Saints, The Holy lives of the Azhvars गोपीनाथ राव कृत Sir Subrahmanya Ayyar, lectures (1923) और स्व० कै० वायंगर कृत Early History of Vaisnavism in South India बाये गंधों की देखिये।

And in the mathavi bower the Kuil sweet  
 Repeats its song - Thou with a bell in hand,  
 Come, gaily open, with the lotus hands  
 And tinkling bangles fair, that we may sing  
 Thy cousins name ! Ah, Elorembavay !  
 Thou who art strange to make them brave in fight,  
 Going before the three and thirty gods  
 Awake from out thy sleep ! Thou who art just,  
 Thou who art mighty, thou, o faultless one,  
 O Lady Nappinnai, with tender breasts  
 Like unto little cups, with lips of red  
 And slender waist, Lakshmi, awake from sleep !  
 Proffer thy bridegroom fans and mirrors now,  
 And let us bathe ! Ah, Elorembavay ! 1.

नाप्पिन्नाई राधा की तरह ही गजामिनी गौरी और सौंदर्य  
 की प्रतिमा हैं। कृष्ण की प्रियता और गोपियों में प्रधान यह नाप्पिन्नाई ही है। प्राचीन  
 काल के तामिल कवियों में एक "वृण वशीकृष्ण" की प्रथा थी उसी के अनुरूप इन गानों  
 में मिलता है कि श्रीकृष्ण ने बलवान मुजावों से वृण को वश में करके गोप्ताला नाप्पिन्नाई  
 को प्रिया के तौर पर प्राप्त किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती साहित्य की राधा  
 ही तमिल साहित्य में नाप्पिन्नाई बन गई।

हाल के प्राकृत गानों के संकलन ग्रंथ "गाथा-सतसई" की कोई पहली सदी की बीर कोई ई० २०० से ४५० की कृष्ण बताता है परन्तु किसी ने भी इसे हठी सदी के बाद का नहीं माना। "गाथा-सतसई" में कृष्ण के जन्म-लीला सम्बन्धी कई पदों में से एक पद में राधा का स्पष्ट रूप से उल्लेख है। पांचवीं शताब्दी तक राधा के स्वल्प की प्रतिष्ठा कार्य जाति में पूर्ण रूप से हो चुकी थी। पुरातत्त्व वैज्ञानों ने पांचवीं या हठी शताब्दी में निर्मित देवगिरि और पहाड़पुर की मूर्तियों की राधा और कृष्ण की प्रेम-लीलाओं की मूर्ति बताया है।<sup>१</sup> वाराणसी के जमीन वर्ण के ई० ६८० ई० के शिलालेख में राधा का वर्णन कृष्ण की प्रिया के रूप में किया है।<sup>२</sup> मात्स्यपुराण में ई० ६७४ और ६७६ ई० के ताम्रपत्रों में राधा सम्बन्धी मंगलाचरण का श्लोक मिलता है:-

यत्सत्समी वदनेन्दुना न सुखितं यन्नास्ति वारिधेः ।

वारायन्म निजेन नामि सखी दुष्मिन् शान्तिं गतम् ॥

यच्छादिफणा सहस्र मधुर स्वासिर्न चाश्वासितम् ।

तद्वाधा विरहातुरं मुररिषीर्वत्सलपुः पातु वः ॥<sup>३</sup>

जैसा की दूसरी शताब्दी से पांचवीं शताब्दी के मध्य के "पंच तंत्र" । मित्रलाभ प्रथम तंत्र । की विष्णु रूपधारी रफ्तार की कथा में राधा की कृष्ण की परकीया प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है। सहजिया सम्प्रदाय के परकीय पूजन की प्रथा से प्रभावित होकर वैष्णवों ने कृष्ण पंथ में प्रवेश किया। डा० दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है "राधा का विवाह वायन घौण के साथ हुआ था परन्तु उसे कृष्ण की प्रेमिका मानकर उसकी उपासना प्रारम्भ की गयी।"<sup>४</sup> जैसा की लम्हा बाठवीं सदी के पहले कवि भट्टनारायण<sup>५</sup>

१- गंगा पुरातत्वांक, पहाड़पुर की खुदाई - के० एन० दीक्षित।

२- प्राचीन लेख माला - प्रथम भाग सं० १, The Indian Antiquary 1877 p.51.

३- डा० दिनेश चन्द्र सेन History of Bengali Language & Literature p.127.

४- कालिन्दाः - पुष्पातु वः ॥

"राधा का रूप-विकास" - शशिभूषणदास गुप्त  
पृ० ११६ से उद्धृत ।

।बंगाली। कृत "वेणी-संहार" नाटक के नान्दी श्लोक में कात्तिन्दी के जल में रास के समय केलि कुपिता कुरुकुला राधिका और उनके प्रति कृष्ण के अनुनय का वर्णन है।

वृन्दावन का महत्त्व केतन्य और उनके शिष्यों के यहाँ जाने के बहुत पहले प्रसिद्ध हो चुका था। संभवतः इस नाम की वस्ती भी मध्यकाल में विद्यमान थी, जिसके उत्कृष्ट याकदा तत्कालीन साहित्य में मिल जाते हैं। कास्मीरी पंक्ति विल्हण के विक्रमांक देवचरित्र में भूला के प्रसंग में राधा का वर्णन इस प्रकार जाता है, "जिस वृन्दावन में चंचल और घन जघन वाली राधा के भूला भूली के कारण कृष्ण कैह विहार कुंज के वृक्ष टूटकर गिर पड़े हैं, जहाँ मधुरा नगरी के लोक विहंगनों की हैं। विल्हण ने शास्त्रार्थ में परास्त किया, यहीं वृन्दावन की भूमि में कई दिन तक मैं ने निवास किया।"

ईसा की नवीं सदी में "जानन्द वर्धन" के उत्कार ग्रंथ "धन्यालोक" में राधा कृष्ण के बारे में एक प्राचीन श्लोक मिलता है।<sup>१</sup> एक और पत्र बताता है कि द्वारा राधा विरह का लिखा हुआ धन्यालोक में उद्धृत किया गया है। कृष्ण

१- दी वालीलक्षण जघनया राधया यत्र मग्नाः,

कृष्ण क्रीडांगणविटपितौ नाधुनाप्युच्छ्वसन्ति ।

जल्य क्रीडा मथित मधुरा बूरि क्रीष्ण केचित्,

तस्मिन्वृन्दावन परितरे वासरा केनीताः ॥

विल्हण कृत विक्रमांक देवचरित्र १८, ८७ । "कुंज का इतिहास-कृष्णवत्स वाजपेयी पृ० ६ से उद्धृत।

२- तेषां गोपकषु विलास सुहृदां राधारहः सज्जिणां,

दीपं मद् कलिनदराज तनयाती रे क्ताविष्मनाम्।

विच्छिन्ने ससतल्लक्षण विविच्योपयोगेऽधुना।

ते जाने जठरी भ्रान्ति विगतनीलतृप्तिवः पल्लवाः ॥

कृष्ण ने हाका चले जाने पर राधा ने उन्हीं कपड़ों को शरीर पर लपेट कर जीर कात्तिन्दी के किनारे की कुंजी की मंजुल कतावों से लिपटकर बड़ी उत्कण्ठित होकर सवे हुये मदन्द कंठ जीर विस्तारित स्वर से गाना गाया था उससे यमुना के जलवर गण ने भी उत्कंठा के साथ कूजना शुरु कर दिया :-

“ वाते हारवती पुरी मधुरिणी तदस्त्रव्यनया,  
कात्तिन्दी तट कुंज वंजुलकताभातव्य सीतुंठया।  
उद्गीतं गुरुवाष्पादशब्द गल्लार स्वरं राधया,  
मेनान्तर्गतवारिभिर्जल चरुत्तुंठमाकूजितम् ॥

दसवीं जीर ग्यारहवीं सदी के प्रसिद्ध वात्संगारिक मुन्तक के “ वक्रोक्ति जीवित ” अलंकार ग्रन्थ में भी यह पद मिलता है। “ नल चम्पू ” के रचयिता त्रिविक्रम भट्ट ने सन् ११५५ में राष्ट्रकूट-नृपति तृतीय इन्द्र की नीतिरि लिपि की रचना की थी। “ नल चम्पू ” में नल दमयन्ती के प्रसंग में जो व्यर्थक श्लोक लिखे गये हैं उनमें कृष्ण जीर उनके जीवन के सम्बन्ध में उल्लेख है। “ नल चम्पू ” के एक श्लोक का अर्थ इस प्रकार लगा ला सकते हैं - “ कला कौशल में चतुर राधा परम पुरुष मायामय कैशिकन्ता के प्रति अनुरक्त है। ”

काश्मीर में दसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में वल्लभदेव ने विभिन्न काव्यों की टीकायें की। उन्होंने माधवकृत “ शिशुपाल-वध ” के ४। ३५ श्लोक की टीका करते हुए एक “ लोचक ” जोड़नी या दुपट्टा । शब्द की व्याख्या के अन्तर्गत एक श्लोक प्राचीन ग्रन्थ से उद्धृत किया है जिसमें “ राधा-कृष्ण ” का नाम आया है। राधा-कृष्ण

---

१- डा० नरैन्द्र नाथ लाहा के “ प्राचीन जो मध्ययुगी भारतीय साहित्य की राधार उल्लेख ”

नामक निबन्ध - सुवर्ण-वर्णिक-समाचार वर्क ३४ अंक ६ देखिये।

२- शिवातवेद-अथर्ववेद पराधात्मिका परपुरुषो ।

मायाविनि कृतकेशिमे रागं वक्ष्ताति ॥ डा० लाहा का निबन्ध देखिये।

को न देखकर दुःख प्रकट करती है-<sup>१</sup> "निश्चय ही आज किसी जमागिनी ने मेरे कृष्ण का हरण किया है।" राधा की बात सुनकर कोई सखि कहती है :-<sup>२</sup> "राधा, तुम क्या मधु-सूदन की बात कह रही हो।" राधा बात उत्तरे हुए कहती है, "नहीं, नहीं अपने प्राण प्रिय बौद्धनी की बात कर रही थी।" सोमदेव सूर के दसवीं शताब्दी के "यशस्तिलक" चम्पू में जम्बूतमति नामक नारी अपने वाचरण का समर्थन इस प्रकार करती है, "राधा क्या नारायण के प्रति कुरागिणी नहीं थी।" "संस्कृत-कविता संग्रह" कवीन्द्रवचन समुच्चय<sup>३</sup> जी कि दसवीं शताब्दी का माना गया है में राधा-कृष्ण संबंधी चार पदों का संग्रह है। एक पद में राधा कृष्ण उक्ति प्रत्युक्ति के कहाने प्रणययुक्त हास्यालाप देखिये :-<sup>४</sup> "हार पर कौन है ! "हरि"। कृष्ण, वन्दर। "उपवन में जावो, शालामृत की यहां कौन सी जरूरत है।" है दयिती में कृष्ण हूं, "तब तो बीर भी डर ला रहा है वन्दर - कैसी। काला हो सकता है। है मुग्धे<sup>५</sup> मधुसूदन। मधुकर। हूं, तो पुष्पित लता के पास जावो।" प्रिया के द्वारा इस प्रकार निर्वचनी कृत लज्जित हरि हमारी रक्षा करें।" एक दूसरे पद में देखिये राधा ने एक दूती को कृष्ण की तलाश में भेजा। वह भली भांति ढूंढने के बाद कृष्ण को न पाकर राधा से लौटकर कह रही है "सखी, मैं ने सारी रात उस घूर्व को ढूंढा। यहां हो सकता है, वहां हो सकता है, इस तरह। लोबा। अवश्य ही उसने दूतरीगोपी के साथ अभिसार किया है। मुररिपु को मैं ने बट वृक्षा के तले नहीं देखा, गोवर्धन गिरि के नीचे भी नहीं देखा, कालिन्दी के कूल पर भी नहीं देखा, वैतस्तुंब<sup>६</sup>, मैं भी नहीं देखा।"

१- वही ।

२- वही ।

३- "कौऽयं हारि हरिः प्रमाद्युपवनं शालामृगान्द्रकिं,  
कृष्णाऽहं दयितैविभेमि सुतरां कृष्णाऽहं कथं वानरः ।

मुग्धेऽहं मधुसूदनी वृज लता तामैव पुष्पासवा-

मित्यं निर्वचनीकृता दयितायाकिं हारिः पातुवः॥

४- मयान्विष्टो धूर्तः स सखि निवृत्तामैवजनीम, वह स्यादल स्यादिति निपुणमन्यामभितुः।  
न दृष्टो भाण्डोरि तटमुवि न गोवर्धन गिरे, न कालिन्धाः। कूलं न च निचुल कुं मुररिपुः।

हरिकृष्ण २४



एक और श्लोक में लिखा है - "गाय के दूध का कलश लेकर गोपियों, घर जावों, जो गारं  
 जमी भी नहीं दुही नहीं गर्ह हैं उनके दुई जाने पर यह राधा भी तुम लोगों के बाद जायगी।  
 दूसरे अभिप्राय की दृष्टि में गुप्त रख कर जो इस प्रकार से ब्रज को निर्जन कर रहे हैं, वही  
 नन्द पुत्र के रूप में अवतीर्ण देव तुम्हारे सारे अंगल को हरण करेंगे।" एक और पद में गोवर्धन  
 गिरि के धारण करते हुए कृष्ण की देखकर राधा के की दृष्टि प्रिय गुण के कारण  
 प्रीतिपूर्ण हो उठी है। एक और पद में राधा का नाम प्रत्यक्ष रूप से न होते हुए भी ऐसा  
 प्रतीत होता है कि वह राधा के लिये प्रयोग हुआ है। एक स्त्री कह रही है - "कुर्वी के  
 विलेपन को कितने पोंछ दिया है। बाँसों के बाँजन को कितने पोंछ दिया है। तुम्हारे क्वरों  
 के राग को कितने प्रमथित किया। केश की मालाओं को कितने नष्ट किया।" सति, यह  
 अक्षिण जन-प्रीति के कलमनाशी नीलम्बमास के द्वारा हुआ है। "।ती। कृष्ण के द्वारा  
 हुआ। " नहीं, जमुना के जल से हुआ। सम्भ नहीं कृष्ण के प्रति ही। कति के प्रति।  
 तुम्हारा अनुराग है। " लामग ग्यारहवीं सदी के प्रारंभ में वाक्यपति की लिपि में कृष्ण  
 संबंधी एक श्लोक मिलता है जिसमें ऐसी व्यंजना है कि कृष्ण के लिये राधा का प्रेम ही  
 श्रेष्ठ है। " तस्मी मे वदनेन्दु द्वारा जिसे सुख नहीं प्राप्त था, जो शैव नाग के द्वारा फणों  
 की मधुर सांस से भी बाश्वासित नहीं हुआ, राधा विरहातुर मुररिपु की ऐसी जो कम्पित

१- धेनु दुग्धकलशनादाय गोप्यो गृहं, दुग्धे वष्कयिणीकृतं पुनरियं राधा संयस्मिति।

२- वही ४२ : सौन्दर्य विरचितः, समुचितकणामित और फलामली में से उद्धृत।

३- व्यस्तं केन विलेपन कुचसु केनाञ्जनं नेत्रयो।

रागः केन तवाधरे प्रमथितः केशेषु केन सजः।

तेना। शैवज। नीलकलममुष्णा नीलाम्बमासा सति।

कि कृष्णो न यामुनेन पथसा कृष्णानुरागस्तव ॥ वही ५१२

देह है वह तुम्हारी रक्षा करे।<sup>१</sup> " मीरराज ने अपनी "सरस्वती कंठाभरण" में कवीन्द्र वचन समुच्चय में जाये हुए राधा संबंधी एक श्लोक का उद्धरण दिया है। जैन ग्रन्थकार हैमचन्द्र ने "काव्यानुशासन ग्रंथ" में भी जो बारहवीं सदी में लिखा गया है यह श्लोक उद्धृत किया है हैमचन्द्र ने राधा कृष्ण प्रेम संबंधी एक और श्लोक काव्यानुशासन में दिया है जो कि श्रीधर दास की "सुबुद्धि कणामृत" में भी दिताई पड़ता है।<sup>३</sup>

हैमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ११००-११७५ ई० ने गुणचन्द्र के साथ मिलकर नाट्य शास्त्र संबंधी "नाट्य दर्पण" ग्रन्थ लिखा जिसमें मेखल द्वारा लिखित "राधा-विप्रलम्भ" नाटक की दसवीं सदी से पहले की रचना मान सक्ती है।<sup>४</sup> शास्त्रा-तनय के "भाव प्रकाश" में जो बारहवीं सदी का रचा है राधा संबंधी "रामाराधा" नामक नाटक का नाम मिलता है। "भाव-प्रकाश" में उससे जाये श्लोक का उद्धरण है।<sup>५</sup>

१- "यत्सत्त्वमीवदनेन्दुना न सुखितं यन्त्रोऽर्चितम्भारिधि-

र्त्ति यत्र निजिन नाभिसरसीयस्तेन शान्तिंगतम् ।

यच्छैषाहिकणा सहस्र मधुर स्वासिन चाऽश्वासितं ।

तन्नाथाविहातुरं मुररियोर्वैल्लापुः पातु वः ॥

२- कनकनिकणस्वच्छै राधा। पर्याधर मण्डलै इत्यादि। कवीन्द्रवचन समुच्चय ४६

यह श्लोक "सुक्तिमुक्तावली" और "सुमाणित रत्न कोश" में भी उद्धृत है।

३- डा० लाहा का उद्धृत निबन्ध देखिये ।

४- डा० लाहा का निबन्ध ।

५- किमैषा कामुदी किंवा लावण्यसरसी स्त्री ।

इत्यादि रामाराधायां संशयः कृष्णमाणिते ॥ वही॥

कवि कर्णभूर द्वारा रचित 'बल्लार-कीस्तुम' में राधा सम्बन्धी 'कैदर्य मंगरी' नाटक से उद्धरण मिलता है। तेरहवीं सदी के अन्तिम भाग में सर्वप्रथम शिलालिपि में कृष्ण का 'राधाध्व' के तौर पर वर्णन है।<sup>१</sup> धृतराष्ट्र कवि रचित एक पद में जो उद्धृष्ट कर्णभूत में आया है कृष्ण को 'राधाध्व' कहा गया है। सागरनन्द<sup>२</sup> के 'नाटक लक्षण रत्न कोश' में जो कि तेरहवीं सदी का है, राधा नामक 'वीथि' प्रकार के नाटक का वर्णन है। प्राकृत हन्द के ग्रन्थ 'प्राकृत फिल' में कृष्ण द्वारा 'राधामुल्लमधुपान' की बात है।<sup>३</sup> एक दूसरे श्लोक में नीला-विलास लीला में यह राधा की ही उक्ति मालूम पड़ती है 'चंचल उगमग की कुलति मुँह मत दी। तुम उस नदी को पार करो, फिर तुम जो चाहते हो ली।'<sup>४</sup> 'प्राकृत कल्मश' के अपभ्रंशस्तवक में राम शर्मा ने अपभ्रंश की राधाकृष्ण संबंधी कवितायें दी हैं। बारहवीं शताब्दी में जयदेव के गीतगोविन्द में राधा का पूर्ण चित्रण मिल पाता है। बारहवीं शताब्दी के लगभग ही लीला-शुक विल्वमंगल ठाकुर ने 'कृष्ण कर्णभूत' ग्रंथ की रचना की। जीधर दास के संकलित 'उद्धृष्ट कर्णभूत' में राधा कृष्ण प्रेम संबंधी जनेक कविताओं का संग्रह है। लीला शुक विल्वमंगल ठाकुर के कृष्ण प्रेम-संबन्धी कर्णभूत में राधा का उल्लेख है। बंगाल के प्रचलित पाठ में राधा संबंधी दो श्लोक मिलते हैं:-

१- The Indian Antiquity, 1893, p.83.

२- वैष्णुनाद, ५ ।

३- चाणूर विहंडिय निजकुल मंडिल, राधा मुह पाण करे बिमि भवतरे ॥  
मात्रा वृत्त २०७

४- जेरे चाहहि कान्ह नाव, होहि उगमग कुलति ण देहि ।  
तह इत्थि पण्हि संतार देह, जो चाहहि सो लेहि ॥

५- Indian Antiquity पत्रिका १६२२ ग्रेक्सन के प्रबंध मात्रावृत्त ६ The

'Apabhramsa Stabakas of Ram - Sarman'

“ तेजोऽस्तु नमो धेनुपालि लोकापालि ।

राधाफलोधरोत्सङ्गशायिने शेषशायिने ॥ ७६ ॥

“ उस तेजोरूप की नमस्कार - जो धेनु पालक और लोक पालक है, जो राधा के फलोधरोत्सङ्ग पर शयित हैं - जो शेष नाग पर शयित हैं। ”

दूसरा श्लोक इस प्रकार है :-

“ यानि त्वच्चरितामृतानि सखाहेयानि धन्यात्मनः ।

येवा शैलवापत्यतिकरा राधावरोधोन्मुखाः ।

येवा भावितवैष्णुगीतगतयो लीला मुक्ताम्भो ह्ये ।

धारावाहिक्या वहन्तु हृदये तान्येष तान्येव मे ॥ ” ७७ ॥

“ तुम्हारा जो चरितामृत धन्यात्माजी । सीभाग्यवान् पुण्यात्मा-  
जी । की रचना द्वारा लेखन योग्य है, राधा के अवरोध । राधा की नाना प्रकार से  
अवरुद्ध करने के लिये उन्मुख तुम्हारी जो शैल- नक्षत्र- वापल- प्रसूत वैष्टारं हैं या तुम्हारी  
मुख कमल पर भावितवैष्णु - गीतगति- समूह की लीलारं हैं- वे धारावाहिक रूप से मेरे  
हृदय में बहती रहें। ”

इन दो पदों में ही राधा का उल्लेख मिलने पर प्रतीत होता है कि समस्त व्रजलीला संबंधी पदों का लक्ष्य राधा की बीर है और कृष्णदास कविराज ने इनकी व्याख्या में राधा का उल्लेख किया है। श्रीधरदास के “सदुक्ति कणामृत” और “कृष्ण कणामृत” की बारहवीं सदी की रचना मान ली से प्रतीत होता है कि दक्षिण के वैष्णव धर्म में राधावाद के तत्त्व संनिहित थे। कृष्णदास कविराज कृत चैतन्य चरितामृत में भी राधावाद के तत्त्व हैं और रामानंद राय ने भी गोदावरी नदी के तीरे पर राधा प्रेम के गूढ़ तत्त्वों को सुनाया। वह राधा जिसके फलोधरोत्सङ्ग और कृष्ण शक्ति हैं लक्ष्मी का

ही रूपान्तर है और जयदेव के गीत गीविन्द में भी इसे वर्णन मिलता है। परन्तु परवती काल का लक्ष्मी तत्व और राधा तत्व का पार्थक्य अभी तक दूर नहीं हो पाया। कृष्ण कर्णामृत और 'गीतगीविन्द' में लक्ष्मी, कमला और राधा समभाव से कृष्ण प्रिया हैं। कविताओं में इस समय के राधाकृष्ण सीताराम के ही परवती अवतार हैं। परन्तु राधा का सौंदर्य-माधुर्य लक्ष्मी के सौन्दर्य माधुर्य से अधिक मानकर राधा को ही कृष्ण की प्रियतमा माना है। न्यारहवीं सदी के प्रथम भाग के बाकपति-लिपि से स्पष्ट है कि लक्ष्मी की अपेक्षा राधा ही श्रेष्ठ है। नारहवीं सदी में संकलित श्रीधरदास के 'सदुक्ति कर्णामृत' की कविताओं में भी लक्ष्मी प्रेम की अपेक्षा राधा प्रेम को श्रेष्ठ बताया है। "कृष्ण-स्वप्नायितम्" में राधा के कारण राधा की प्रशमति करने के हेतु उनके स्वप्न में बोलते हुए शार्ङ्गधर को सुन कमला ने उनके कंठ से अपने बाहुओं को शिथिल कर दिया था। दूसरे पद में श्री के साथ रमण करते हुए हरि राधा का स्मरण करते हैं और लक्ष्मी ही राधा से न मिल पाने का उन्हें शोक है। जयदेव के समसामयिक शरण कवि के एक

१- 'त्वाम प्राप्य मयि स्वयंकरां लीरोदनीरोदरे,

शैले सुन्दरि काकुटमणिषन्मुदो मृदानी पतिः ।

स्वयंपूर्वकथाभिरन्यमनसै निदिष्य वदोऽचंचलं ।

राधायास्तन कोरकोरपरि मिलन्नेवो हरिः पातु वः ॥ १२। २७ ॥

२- लो लक्ष्मणं जानकीविरहिणं मां हृदयस्थम्मुदा, ममाङ्गीव च सण्डयन्त्यलस्यो दूराः  
कदम्बानिताः॥

स्वयं व्याहृत पूर्वजन्म विरही यो राधायावोदितः,

सैष्यं शक्तिया स वः सुतयु स्वप्नायमानो हरिः ॥ 'रूपान्तर-कविकृत'।

३- सदुक्ति कर्णामृत, कृष्ण स्वप्नायितम्, ५। कवि का नाम नहीं दिया हुआ है। 'पद्मावली

में, <sup>उत्पत्ति</sup> सर के नाम से उद्धृत है। वहाँ 'कमला' की जगह रुक्मिणी पाठ मिलता है।

४- राधां संस्मरतः त्रियं रमयतः सैवो हरिः पातु वः ॥ वही उल्हा ४

पद में लिखा है कि द्वारावती पति दामोदर कालिन्दी के तट वास शैलीपान्त भूमि के कदंब कुलुम से जामोदित कन्दरा में प्रथम अभिषार- मधुरा राधा की बातें स्मरण कर सप्त हो रहे हैं। इससे प्रतीत होता है कि राधा का प्रेम सबसे बढ़कर है। धीरे धीरे दार्शनिक शक्ति रूप होड़कर लक्ष्मी मधुर- रसाभिता होती गई और राधा के साथ मिल गई। गौड़ीय वैष्णव साहित्य ने सोलहवीं शताब्दी में तात्त्विक दृष्टि से लक्ष्मी और राधा को बला कर दिया परन्तु पूर्व मिलन के कारण राधा लक्ष्मी के इतिहास से और राधा को बला कर दिया परन्तु पूर्व मिलन के कारण राधा लक्ष्मी के इतिहास से प्रभावित थी। पुराणों के अनुसार राधा के पिता वृषभानु गोप और माता कलावती या कीर्तिदा हैं। लक्ष्मी, सागर से उत्पन्न होने के कारण सागर ही राधा के पिता और फस से लक्ष्मी का जन्म होने के कारण "फसुमा" ही राधा की माता हैं। लक्ष्मी फसु या फसुमिनी हैं और श्रीकृष्ण कीर्तन में राधा भी "फसुमिनी" अर्थात् "फसुमिनी" है।

राधा परवर्ती काल के फदावली साहित्य में चाहे "कमला" न हो परन्तु "कमलित्ति" है। चण्डीदास के श्रीकृष्ण कीर्तन में "फसुमा" । फसुमा। राधा की मां और सागर उनके पिता हैं :-

तै कारणी फसुमा उदरे ।

उपजिला सागरेर फरे ॥

जयदेव के समकालीन युग के साहित्य में राधा की प्रतिष्ठा है। गीतगोविन्द काव्य में कृष्ण नायक हैं और कृष्ण राधा नायिका है और सत्रियां सीला सहचरी हैं। जयदेव ने राधा कृष्ण के सम्बन्ध में "गीत गोविन्द" में ही नहीं लिखा बल्कि उस युग में राधा कृष्ण सम्बन्धी और भी कवितायें लिखी गईं। जयदेव के समकालीन उमापति

१- जयदेव द्वारा रचित संग्रह ग्रन्थों में अन्य कविताओं भी मिलती हैं। यदि उनके रचयिता ही गीत गोविन्दकार जयदेव है तभी यह बात लागू होती है।

घर ने अपने कामार लीला सम्बन्धी पदों में लिखा है कि कृष्ण कामारावस्था में कालिन्दी के जल में कथना शैल में या उपशत्य में । गांव के द्वार पर । कथना वरगद के पेड़ के नीचे धूमते फिर रहे हैं और उसी प्रकार राधा के पिता के मित्र के घर के बागन में भी जा जा रहे हैं। एक दूसरे पद में लिखा है कि गोपी मोहों से कोई नयनों से कोई मुस्कराकर गुप्त रूप से कृष्ण रूप का सादर स्वागत कर रही थी। राधा ने उसे दूर से ही देख गवजनिज अवहेलन से मुक्त पर विजय श्री धारण की। राधा के चेहरे पर कंसारि कृष्ण के दृष्टिपात से जातक और अनुनय भी जा गया है :-

भूवल्ली-लीः कयापि नयनान्मेषाः कयापि स्मित-

ज्योत्सनाविच्छुरितः कयापि निमृत्तं सम्भावितस्याध्वनि ।

गवोर्भक्षकृतावहेल विनय श्रीभाजि राधानने =

सातकानुनयं जयन्ति पतिताः कंसदिग्धा दृष्टयः ॥ २

एक दूसरे पद में कामीर वधू राधा के साथ निराशे में कृष्ण की विहार की इच्छा होने पर भी गोपकुमारों से संग न हड़ाने के कारण वह गोपकुमारों का लक्ष्य कर कह रहे हैं, " तमाम लता में सांपों से मरी हुई है, वृन्दावन भी बन्दरों से भर गया है, यमुना के जल में मार हैं और पहाड़ की सन्धि में विकरात शेर हैं, गोप बालकों के लिये इन बातों का कहकर और बाते सिकोड़कर संकेत से वे मिलित तृणित कामीर वधू राधा को मना कर रहे हैं। अम्बिनन्द के एक पद में बताया है कि कृष्ण को चित राधा के

१- कालिन्दीपुल्लि मया न न मया शैलोपशत्ये नन ।

न्यग्रोधस्य तले मयान न मया राधापितुः प्रागणी ॥ दृष्टः कृष्ण इति ॥ इत्यादि

२- यह पद पयावली में उद्धृत है।

३- व्यालाः सन्ति तमात्तल्लिणु वृत्तं वृन्दावनं वानर -

एवम् रुन्नकं यमुनाम्बु धौखदनव्याघ्रा गिरः सन्ध्याः ।

इत्य गोपकुमारैणु वदतः कृष्णस्य तृष्णाचर -

स्मैराभीतधूनिषेपि नयनस्याकुल पातु वः ॥

साथ नर्मझीड़ा करने को लुभा रहे हैं परन्तु यशोदा के डरके कारण बिल्कुल निर्जन जंगल में यमुना के किनारे प्रवेश करने का संकेत पाते हैं। हरझीड़ा का एक पद लक्ष्मण सेन के नाम से और एक पद उनके पुत्र नवकेशसेन के नाम से १-३३ उक्त प्रकार मिलता है

“ कृष्ण त्वन्न मालया सह कृतं केनापि कुञ्जान्तर ।

गीपी कुन्तल नन्दाम तद्विदं प्राप्तमया गृह्यताम् ।

इत्थं दुग्धमुत्तेन गोपशिशुनाभ्याते व्रजानम्रयी,

राधामाधवयोर्यन्ति वल्लिस्मेरास्ता दृष्टयः ॥

“ कृष्ण! एक दूसरे कुंज में कोई बाकर तुम्हारी जन माता के साथ गीपी कुन्तल के साथ मयूर पुच्छ एक साथ करके रत गया है। मुझे यह मिला है, यह ली। एक दुग्धमुत्तेन गोप शिशु के स्था कहने से राधा माधव की जो वल्लि स्मेरास्ता और लज्जानम्र जो दृष्टि समूह हैं, उनकी जय हो। ” लक्ष्मणसेन के एक और वैष्णुनाद संबंधी पद में “ तीर्थक-स्त्वं कृष्ण गहरी व्याकुलता के साथ अपनी क्षीयित दृष्टि बढ़ाकर वैष्णु नवा रहे हैं। लक्ष्मण सेन के पुत्र केशसेन का एक पद जयदेव के गीत गोविन्द के “ नैवेदीयुर ” वादि श्लोक से मिलता है :-

“ बाहूताय मयीत्सवे निशि गृहं शून्यं विमुच्यागता ।

नविः प्रणयनः कथं कुलधूरे काकिनी मास्यति ।

वत्स त्वं तदिमां नयात्यमिति बुत्वायशोदा गिरी ।

राधामाधवयोर्यन्ति मधुरस्मेरास्ता दृष्टयः ॥ ” ३

१- राधायामनुवदनमनिभृताकारं यशोदा मया।

दम्यणीष्वतिनिर्जिण्डु यमुनारोधीतावेश्मसु ॥ इत्यादि कृष्णायोवनम् २ ॥

२- वैष्णुनाद : २ : यह पद पद्मावली में भी उद्धृत है।

३- यह पद पद्मावली में भी उद्धृत है।



बाज रात को इसकी उत्सव में हुला लाई हुई। यह घर सुना  
 स्तकर चला बाया है, नौकर भी मतवाले हैं, जब यह धीली कुल्लू धीरे जायगी। बैटा, तो  
 तुम्हीं इसकी इसके घर से जावों। यशोदा की यह बातें सुनकर राधा-माधव का जो मधुर  
 स्नेहात्मक दृष्टि समूह है - उनकी जय हो । इन्द्र के एक पद में वृन्दा सती दूसरी गोप  
 स्मरणियों से कहती है " यहाँ इसे स्मरण-की निचुल-निचुल के चित्कुल वन्दर मुलायम धास  
 की यह विजन शैया किस स्मरण की है! इस बात को सुनकर राधा-माधव की जो विचित्र  
 मृदुहास्य युक्त चितवन है वे तुम लोगों की रक्षा करें। " वाचार्य गोप के एक पद में कृष्ण  
 में अभिसार का वर्णन बाया है। कृष्ण गहरी रात में राधा के घर के पास जा कोयल  
 वगैरह की बोली बोले उसे संकेत करते हैं :- संकेत या राधा बाहर जाती है। वृद्धा बाध  
 पाकर कौन है कौन है कहकर बार बार चिल्ला रहे हैं जिससे कृष्ण का हृदय व्यथित हो  
 रहा है। कृष्ण की वह रात ऐसी दशा में राधा के घर के प्रांगण के कोने के केलिविटप  
 की गोद में होती।

" संकेती कृत कोकिलादिनिन्दं कंसहिण्डु कुर्वती ।

द्वारान्मोचनलीलशंखवलम्रेणिस्वनं शृण्वतः ।

कैयं कैयमिति प्रालम्बरती नादेन पुनात्मनी ।

राधाप्रांगण कोणकेलिविटपि क्रीडं गता स्वरी ॥ " २

एक पद में राधा कृष्ण से पूछती है, " इस रात को तुम कौन  
 हो । कृष्ण ने उत्तर दिया, " मैं कैश-व हूँ, । श्लेषार्थ कैश है जिसके । " चिर के कैशों

१- यह पद सदुक्ति कर्णामृत में भी उद्धृत है।

२- हरि क्रीडा । पद्यावली में पद उद्धृत है।

सै क्या गर्व कर रहे हो! " " " भई, मैं शीरि हूँ " " । श्लेषार्थ- शूर का पुत्र। " यहाँ  
पिता के गुणों से पुत्र का क्या होगा! " " " हे चन्द्रमुखी, मैं बड़ी हूँ, " " । श्लेषार्थ- कुम्भार।  
वज्रही बात है तो मुझे मागर, हाड़ी, दूध दुधने को बटकी कुछ भी क्यों नहीं दे रही हो!  
गोप बन्धुओं के लज्जाजनक उत्तर से इस प्रकार दुःख पाये हुए हरि तुम्हारी रक्षा करें। एक  
वीर श्लेषात्मक प्रश्नोत्तर देखिये :-

\* वासः सम्पृति केशव त्वं भवती मुग्धपाणीनन्विदं ।

वासं दृष्टिं शठं प्रणामशुभं त्वद्गान्धर्वसंश्लेषतः ।

यामिन्यामुच्यतेः क्व घृतं वितनुमुज्जाति किं यामिनी ।

श्रीगिरिपर्वणं हस्तः परितस्तन्निवविथः पातु वः ॥

कवि के पद में राधिका कह यह समझ कर कि गौवर्धन को धारण करने में कृष्ण को कष्ट हो रहा है, व्यथित होने लगती है और उनकी सहायता के आग्रह के अतिशय्य में गौवर्धन धारण की नकल करके शून्य गगन में वृथा ही हाथ हिला रही है। अज्ञात नामा कवि के पद में गौवर्धन धारण किये हुए कृष्ण को राधा श्री सभी गोपियों के साथ लाकर रहा है। दूसरी गोपियों के राधा से कहने पर कि तुम कृष्ण के दृष्टि पथ से बहुत दूर चट जाओ, तुम्हारे प्रति वासन्त-दृष्टिहीन कृष्ण के हाथ कहीं शिक्षित न हो जायें। राधा के दृष्टि से दूर दूर की बात सोच कृष्ण गिरि धारण के अम से जोरों से सांस ले ली :-

१- कस्त्वं धीं निशि केशवः शिरसिषैः किं नाम गवायिषे ।

महं शीरिरहं गुणोऽपि पितृगतेः पुत्रस्य किं स्यादिति ।

कड़ी चन्द्रमुखी प्रयच्छसि न मे कुराड़ीं घटीं दोहिनी-

मित्यं गौप वधु निहृतोऽस्तया दुस्थोः हरिः पातु वः ।

प्रश्नोत्तरम् ३, पद पञ्चावली में भी उद्धृत है।

२- शैलोद्धारसहायता जिमिणीर प्राप्तावर्धना ।

राधायाः सुचिरं जयन्ति गगने वन्द्याः कर भ्रान्तयः ॥

गौवर्धनाद्वारः ३

“ दूरं दृष्टिपथान्तिरोम हरीर्विधनं विप्रत,  
 सत्वव्यासक्तदृशः कशीवरि करः प्रस्ताऽस्य मा भूदिति ।  
 गोपीनामिति जल्पितं<sup>कलमते</sup>, राधा-निरोधाक्रमं ।  
 स्वासाः शैलभ्रम भ्रमकराः कृष्णस्य पुष्पांस्तुवः ॥ ” १

वाचार्थ गोपीक के एक विकासामितार के फल में लिखा है :-

“ मध्याह्नकिणुर्गर्किषीधितिदत्त संमोगवीथीपथ ।  
 प्रस्थानव्यक्तिारुणांगल्लितं राधापदं भावः ।  
 मालीप्रवृत्तते मुहुः समुदितस्वेदे मुहुर्विज्ञप्ति,  
 न्यस्य प्राणयति क्रमपविधुरः स्वासोर्मिवातेमुहुः ॥ ” २

पुष्पलों की भांति अरुणांगलि वलों से शोभित जो राधा के कमनीय चरण हैं, वे वाज संमोग-वीथी-पथ पर प्रस्थान से व्यक्त हैं, क्योंकि वह पथ मध्याह्न के दूने सूर्य-ताप से तप्त है, इसलिए कृष्ण राधा के पाँों के ताप को दूर करने के निमित्त बार बार उसे मात्स्ययुक्त मस्तक पर रख रहे हैं, पत्तीने से शीतल वटा पर रख रहे हैं।

पुष्पलों की भांति अरुणांगलि वलों से शोभित जो राधा के कमनीय चरण हैं वे वाज संमोग-वीथी-पथ पर प्रस्थान से व्यक्त हैं, क्योंकि वह पथ मध्याह्न के दूने सूर्य-ताप से तप्त है, इसलिए कृष्ण राधा के पाँों के ताप को दूर करने के निमित्त बार बार उसे मात्स्ययुक्त मस्तक पर रख रहे हैं, पत्तीने से शीतल वटा पर रख रहे हैं।

१- पद्मावली में यह फल शुभांग के नाम से उद्धृत है।

२- समुदित कणामृत ३- ६३-४

स्वातन्त्र्यापी भारत संकति\* फावती\* ग्रन्थ किन्हीं प्राचीनतर  
 कवियों के समकालिक और स्वातन्त्र्यापी के समकालिक कवियों की कवितायें संश्लेषित  
 हैं, वे यह बात बतलाते हैं कि कवियों ने ही एक छायावी पद्यों और उनके पुत्रों में राधा-  
 कृष्ण और युक्त वेष्णव कविता का पिता का प्रकार ही बनाया था। स्वतन्त्र्यापी ने  
 जंगल में लिखी कविताओं का ही संग्रह किया है। उन्हीं निष्कर्ष निष्कर्ष है कि वैष्णवी,  
 चण्डिका, फण्डिका, और श्रीकृष्ण छायावी में जंगल, गिरार और उड़ीसा के एक व्यापक  
 जंगल में राधा-कृष्ण और संबंधी कवितारं रची गयीं। हर-भारी की तरह कवियों के  
 समय में भी बहुत ही सुंदर रूप से युक्त कवितायें लिखी गयीं और धीरे धीरे सुंदर-रसात्मक  
 काव्य में राधा-कृष्ण की और तोला के उपलक्षण की ही प्रधानता के साथ साथ गहराई  
 छायावी में गहरा-रसात्मक काव्य में राधा कृष्ण की प्रधानता ही गयी। उल्लिख्यजपात  
 युक्त का मत है कि\* गहराई छायावी से और कविता के क्षेत्र में राधाकृष्ण की  
 प्रतिष्ठा भी छायावी की कारणों से हुई थी। फलतः बात यह है कि इन राधाओं का  
 पारिवारिक फल वेष्णव फल था, और गहराई तथा वैष्णवी छायावी के जंगल तथा  
 गहरा जंगल की कवि-गोष्ठी में इन राधाओं का प्रभाव बलवत्कार नहीं किया जा  
 सकता। दूसरी बात है राधा कृष्ण का बहाली का जीवन इन की कविता के लिये  
 कवितार उपलब्धी था, साथ ही तोला की विविधता में भी उन्हीं कविता कृष्ट था।  
 यह तोला का व्यक्तम्बन करके रची गयी कविताओं के माध्यम से कविगण एक और वैष्ण-  
 तोला के वर्णन की छांति पाते हैं और साथ ही उन्हीं माध्यम से मानवीय और की  
 गृहपारिवारिक रचयिता तोला को स्थापित करने का उन्हें पूरा मौका भी मिलता  
 है। उन्हीं प्रकार राधा कृष्ण संबंधी इन कविताओं का कम-प्रभाव प्रतीतित  
 होने लाता है। \* प्राचीन कवि प्रायः वेष्णव थे और उन्होंने नर-भारी और संबंधी

विविध कविताओं को रहा। उसी दृष्टि से उन्होंने राधा कृष्ण संबंधी कवितार्थ लिखी। उनके लिए राधाकृष्ण कुछ अधिक न हो कर केवल कविता के जलम्बन विभाव मात्र थे। बाभीर जाति की सीमित परिधि को छोड़कर इठी शताब्दी में ही राधा कृष्ण उपाख्यान प्रेम गीत और तुल वन्दियों के रूप में समस्त भारतवर्ष में फैल गया। परवर्ती काल में जब यह विश्वास हो गया कि राधा कृष्ण के अवलम्बन के बिना कविता ही ही नहीं सकती तो पूर्ववर्ती काल की पूर्णतया मानवीय प्रेम की कविताओं ने भी राधाकृष्ण का आश्रय लिया। निर्जन में सखी के प्रेम की कविताओं ने भी राधाकृष्ण का आश्रय लिया। निर्जन में सखी के प्रति राधा की उक्ति के रूप में "फवावली" में उल्लेख करने के उपरान्त रूप गोस्वामी ने अपना भाव इस प्रकार प्रकट किया है :-

प्रियः सौऽयं कृष्णः सत्त्वरि कुरुजीवमिति-

स्तथाऽहं सा राधा तपिदमुमयोः संगमकुलम् ।

तथाप्यन्तःसैलन्मधुसुरलीपङ्कमजुषे ।

मनो में कालिन्दीपुल्लिविफिनाय स्पृश्यति ॥ ३८७ ॥

"है सखी, वही प्रिय कृष्ण कुरुजीव में मिले थे, मैं भी वही राधा हूँ, हम दोनों का संगम कुल भी वही रहा, किन्तु तो भी जिस वन में मधुर मुखी के पङ्कम स्वर का सैल हुआ करता था, उसी कालिन्दी तटवर्ती वन के लिए मेरा तन ललल रहा है।"

"फवावली" में भवभूति के "मात्तो माधव" और "उत्तररामचरित" की विरह की कविता में "राधा-विलाप" के ही दर्शन होते हैं। आनन्दवर्धन के "अन्यालोक" के अंतिम उपात् में उद्धृत दो श्लोकाँ में राधा का नाम पाया जाता है। आनन्दवर्धन ने

एक प्राचीन कवि अमर के अमरशतक की प्रेम कविता की प्रशंसा की है। अमर की प्रेम कवि के रूप में स्थापति नहीं ज्ञात की के पूर्व ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। अमरशतक के ही प्रेम की कवितार्थ, प्रेम की तीव्रता और सूक्ष्म-सौकुमार्य की दृष्टि से परवर्ती काल की राधा-प्रेम-कविता का वादशील्य है। अमर की निम्न कविता को "दुष्किराधिकीकृत" कहा है :-

"निश्वासो वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथितम् ।

निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुत्तं रात्रिदिनं स्मृते ।

कां शोभमुवेति पादपतितः प्रयास्तथोपेक्षितः ।

सत्यः कं गुणमाकलय्य दयितै मानं क्यं कारिता ॥ २३८॥

"निश्वास मेरे वदन का दहन कर रहे हैं, हृदय बागूल उन्मथित हो रहा है, नींद नहीं आ रही है, प्रिय मुझे नहीं पितार पड़ रहा है, रात दिन केवल रो रही हूँ। मेरी देख चुक रही है, पाद पतित प्रिय की भी उपेक्षा कर दी है। सतियों ने न जाने मुझमें कौन सा गुण देखकर दयित के प्रति उसका मान कराया था।" अमर की एक अन्य कविता राधा के रूप में ग्रहण की जा सकती है :-

"प्रस्थानं वक्ष्ये कृतं प्रियस्तेरतेरज्ज्वरं गतं,

पृथ्वा न जाणमाशितं व्यसितं चित्तं गन्तुं मुक्तं पुरः ।

गन्तुं निश्चितवृत्तसि प्रियतमै सर्वे समं प्रस्थिता ।

गन्तव्ये सति जीवितप्रियमुक्त-सार्थः कथं त्यज्यते ॥ २३९॥

"वक्ष्ये प्रस्थान कर गये हैं, प्रिय मित्र बागूल भी धीरे-धीरे चले गए हैं, जाणभर के लिए भी धीरे नहीं है, चित्त भी पहल ही से जाने की उद्यत है। प्रियतम के जाने की 'कृत-संकल्प' होती ही सभी साथ-साथ चले। उनका जाना अगर ठीक ही है तो

प्राणप्रिय सुहृत् का संग क्यों छोड़ा जाय।”

रूप गौस्वामी ने पद्मावती में अमर कवि की निम्नलिखित कविता को कहान्तरित राधा के प्रति दक्षिण सती वाक्य बताया है :-

“कालीञ्च प्रेमणः परिणतिमनावृत्य सुहृद,  
स्त्वया कान्ते मानः किमिति सरते प्रेयसि कृतः ।  
समाश्लिष्टा ह्येते विरहदहनोद्भासुरक्षिताः ।  
स्वहस्तेनांगारास्तदत्नधुनारण्य रुदितैः ॥२३०॥

“हे सरते, प्रेम की परिणति पर विचार न करके, सुहृदों का जापर करके प्रियतन्त्र के प्रति मन क्यों किया था! तुमने इस विरहाग्नि में उठने वाले कंगारों का जालिगन किया है, जब जरण्यरोदन करने से क्या लाभ होगा।”

पद्मावती में कवीन्द्र “नलम्पू” के त्रिविक्रम, दीपक जादि प्राचीन कवियों की पार्थिव प्रेम की कविता “राधा-वृष्ण-प्रेम” के रूप में ग्रहण की गई हैं। पूर्ववर्ती कवियों का स्तुत और सूक्ष्म सब प्रकार का प्रेम वर्णन परवर्ती काल में गोपी प्रेम या राधा-प्रेम के रूप में ग्रहण किया जा सकता था। यदि हम पूर्ववर्ती काल की संस्कृत और प्राकृत में लिखी हुई सभी भारतीय प्रेम कविताओं की तुलना परवर्ती काल की राधा प्रेम की अनगिनत कविताओं से करें तो प्रतीत होगा कि भारतीय साधारण काव्य धारा और कवि रीति तथा कवि प्रसिद्धि की ही वैष्णव कवियों ने किसी न किसी प्रकार से ग्रहण किया है। पूर्ववर्ती प्रेम कविता से ही राधा का स्वल्प निर्मित हुआ है। वैष्णव कविता के अन्दर राधिका की वयःसन्धि से प्रेम चांचल्य, प्रेम की विविधता और गहराई, मिलन-

९- यह पद कवीन्द्र वचन समुच्चय, सद्भक्ति कर्णामृत, सूक्ति मुक्तावली, जादि बहुत से संग्रह

ग्रन्थों में “मानिनी” के संबंध में दिये गये पदों में थोड़े बहुत पाठान्तर के साथ जाया है।

विरह, मान-वभिमान आदि का जैसा वर्णन मिलता है वैसा ही प्रेम-वर्णन हमको पार्थिव नायिका का अवलम्बन करने पर पूर्ववर्ती काव्य के अन्दर मिलता है। विभिन्न दृष्टिकोणों के देखने से विदित होगा कि पूर्ववर्ती कवियों की प्राकृत नायिका और परवर्ती कवियों की रायिका में कितना योग है और किस प्रकार प्राकृत नायिका ही राधा में स्फूर्तिरहित हो गई। शशिभूषणदास गुप्त लिखते हैं कि "साहित्यिक पक्ष से विचार करने पर हम राधा के परिचय में कह सकते हैं कि राधा भारतीय कवि मानसकृत नारी का ही एक विशेष रूप है। वैष्णव-साहित्य में जितने झुंझारों का वर्णन है, वह सारा का सारा भारतीय काव्य-साहित्य और रतिशास्त्र का अनुसरण करते हुए ब्रज का है। प्राकृत रति का सूक्ष्म सूक्ष्म नाना वैचित्र्य मय सु-निपुण वर्णन सबका प्राकृत प्रेम के दृष्टान्त पर अप्राकृत प्रेम का एक आभास देने के लिए ही लिखा गया था, उस जगत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि - भारत में यह भारतीय प्रेम कविता की धारा के साथ अविविध रूप में ही निःसृत हुआ था पार्थिव की सेवा की खोज की गई बहुत बाद में। परवर्ती काल में गौड़ीय गौत्वाधियों द्वारा जो राधातत्त्व मजबूती से प्रतिष्ठित हो गया, तब भी साहित्य के अन्दर राधा अपनी कल्पित सहचरी मानवी नारी को सौतलों जाने नहीं छोड़ सकी। काया और हाया ने अविनाशक भाव से एक भिन्न रूप की वृष्टि की है।"



## द्वितीय अध्याय

राधा की व्युत्पत्ति और उसके विभिन्न स्वरूप

### राधा शब्द की व्युत्पत्ति

‘राधा’ संसिद्धी धातु से राधा शब्द बनता है। इसी प्रकार सान्त ‘राधस्’ शब्द भी राध् धातु से ही बनता है। राध् धातु से ‘सर्वधातुम्याः सन्’ उणादि सूत्र में जस् ही जाने से राधस् ऐसा रूप बन जाता है, उसके तृतीया के एक वचन में राधसा ऐसा बन जाता है अर्थात् राधा शब्द के तृतीया के एक वचन का राधया और राधस् शब्द के तृतीया के एक वचन का रूप राधसा। लेकिन दोनों का एक ही अर्थ है।

श्रीमद्भागवत में लिखा है :-

‘कथाऽऽ राधितो नूनं भावान् हरिरश्वरः ।

यन्मो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनक् सहः ॥ १

जीव गोस्वामी पाद ने अपनी वैष्णवतोषिणी टीका में इसकी टीका करते हुए लिखा है कि ‘राधयति वाराधयतीति राधा राधेति नामकरणं-वर्जितं।’ अर्थात् जो वाराध करे सो राधा। भावान् हरि ईश्वर श्रीकृष्ण इन्होंने ही प्रसन्न किए हैं और वाराधना करके अपनी वश में कर लिए हैं। ‘कृष्ण’ शब्द की वाराधना किया करते हैं अर्थात् ये सर्वदा कृष्ण की वाराधना करती हैं इसलिए ये राधा कहलाती हैं। प्रेमाधिक्य के कारण उपासक और उपास्य में स्वरूपता हो जाती है। यही कारण था कि भगवान् श्रीकृष्ण जी राधा हो जाते थे और राधा श्रीकृष्ण बन जाती थीं।<sup>१</sup> देवर्षि श्री रमानाथ जी महर्षि का कथन है कि ‘अनुभव का विषय रस्य पदार्थ भी जब आप हो हो जाता है तब उस रूपान्तरापन्न रसनीय विषय रूप रस को ही राधक या सिद्धि कहते हैं। व्याकरण वेदाचार्यों को मालूम है कि राध् धातु का भाव प्रत्यय सन्ति ‘राधा’

१- श्रीमद्भागवत १०-३०-२८

२- श्रीकृष्णोति कृष्णोति गिरा वदन्त्यः

श्रीकृष्णयादाम्बुजलग्न मानशाः, श्रीकृष्णस्यास्तु कभूउरंगना।  
शिवं न पश्यात्कृतमैत्यकोटवत् ॥ गौसंक्षिता

शब्द है बीर उसका अर्थ है<sup>१</sup> तद्रूप हो जाना। " वे सिद्धि शब्द में बीर राक्षस किंवा राधा शब्द में भेद नहीं मानते। वे लिखते हैं, " सिद्धि शब्द की भी व्युत्पत्ति वैसी ही है बीर अर्थ भी तद्रूपापत्ति है राक्षस कहाँ, राधा कहाँ, राधिका कहाँ बीर चाहे सिद्धि कहाँ जीस चाहे सिद्ध कहाँ, सबका एक ही अर्थ बीर तात्पर्य है। " भावतः सिद्धिः - भावान् की सिद्धि का अर्थ राक्षस या राधा भी होता है। णिच् धातु से भाव में स्त्रिय " वित् " कर देने से सिद्धि शब्द तैयार होता है, बीर उसका अर्थ भी रूपान्तरापत्तिः किंवा तद्रूपापत्तिः होता है। जब " भावतः सिद्धि का " स्फुट अर्थ यह होता है कि भावान् का रूपान्तर ग्रहण करना। बीर यही श्रीराधा है।<sup>२</sup> " सर्वेश्वर भ्रु<sup>३</sup> की सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्ध करने के कारण श्री स्वामिनी जी का नाम श्री राधा है। श्री नासद पंवरान्न में बताया है कि " कुलस्तां समर्थं कृष्ण भावान् की भ्रम पूर्वक वाराधन करने से बीर लीलास में परिपूर्ण भग्न होने से उनको राधा कहा<sup>४</sup> है। " श्रीकृष्णायामल में कहा है कि " मेरे देह में रहे हुए भ्रू<sup>५</sup>आदि सब देवताओं ने वाराधना की इसलिये उन्हें राधा कहा<sup>६</sup> है। "

- १- वादि शक्ति श्री राधिका देवर्षि पं० रमा नाथ जी भट्ट - राधा अंक पृ० १११  
 २- वादि शक्ति श्री राधिका देवर्षि पं० रमा नाथ जी भट्ट - राधा अंक पृ० १११  
 ३- " राधोति सकलान्कामान् तस्माद्वाधैतिकीर्तिता ।

देवी भागवत

४- जनयाऽराधितः कृष्णो भावान्हरिरीश्वरः ।

लीलया रसवाहिन्या तेनराधा प्रकीर्तिता ॥

श्री नासद पंवरान्न

५- ममदेहस्थिः सर्वदेवैर्वा पुरोगमः ।

वाराधिता यतस्तस्माद्वाधैति प्रकीर्तिता ॥

श्रीकृष्णायामल

ब्रह्मवैवर्तपुराणान्तर्गत श्री कृष्णजन्मखण्ड के सत्रहवें अध्याय में

“राधा” शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि “राधा” शब्द की व्युत्पत्ति सामवेद में निरूपण की गई है जो राधा पुर ऋषि मुनियों को परमवाञ्छित मोक्ष की देने वाली है। राधा शब्द का “र” कार कोटि जन्म के शुभाशुभ कर्म योगों से बीर<sup>१</sup> वा<sup>२</sup> कार गर्भास, रोग बीर मृत्यु से छुड़ाता है। “व” कार आयुष्य की हानि बीर<sup>१</sup> वा<sup>२</sup> कार गर्भास, रोग बीर मृत्यु से छुड़ाता है। “व” कार आयुष्य की हानि बीर<sup>१</sup> वा<sup>२</sup> कार कर्त्तव्य सुनि बीर सुनाने से बिना संशय के भय बन्धन से छुड़ाता है। “र” कार निश्चल मन्त्र तथा श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में सर्ववाञ्छित सदानन्द दायक सर्वसिद्धि ऐश्वर्ययुक्त वास्यता शरणागतता प्रदान करता है। “व” कार जनन्तकाल तक स्वयं हरि का सहवास स्व सारूप्य तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करता है। “वा” कार अमित तेज, दान, शक्ति, योग की शक्ति स्व योग की गति सब काल में हरि का स्मरण कराता है। “राधा” शब्द के कर्त्तव्य सुनि स्व सुनाने के संकीर्ण से मोह, जात, पाप, रोग, शोक, मृत्यु आदि सब कांक्षी हैं, जिनमें संशय नहीं है।”

स्त्री पुराण के सत्रहवें अध्याय में श्री राधा रानी के षोडश नाम कहते हुए भगवान् श्रीमन्नारायण महर्षि<sup>३</sup> नाथ जी से कहते हैं कि “राधा” यह शब्द स्वयंसिद्ध है बीर<sup>१</sup> रा<sup>२</sup> कार दान वाचक है। स्वयं निर्वाणधात्री मोक्ष की दाय होने से वह “राधा” कहलाती है।” माता यशोदा महारानी के प्रश्न करने पर श्री राधिका जी

१- राधा शब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता । १०२ ।

+ + +  
 ब्रह्मवैवर्त-पुराण-मुरापुर मुनीन्द्रानां वाञ्छिता मुक्तिदां पराम्,  
 रफोहि कोटिजन्मासं कर्मयोगं शुभाशुभम् ॥ १०५ ॥

२- वाकारो गर्भासस्य मृत्युसं रोगमृत्युजेत् ।

+ + + + +  
 रोग शोकमृत्यु मा कैप्ये नात्र संशयः ॥

श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ब्रह्मवैवर्तपुराण अध्याय १३ श्लोक १०६ से १११ तक

३. ब्रह्मवैवर्त पुराण अध्याय १७। २२३- श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ।

स्वयं अपने नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलाती है - "मैं ही स्वयं राधाणकामिनी  
 हाया राधा हूँ। राधाण श्री हरि का अंश महान् पार्श्वद है, "रा" महान् विष्णुवाचक  
 शब्द जिसके रोम में समस्त विश्व है, विश्व में, विश्व के प्राणियों में" वा "धात्री तथा  
 मातृवाचक शब्द हैं। मैं उनकी धात्री । हाया हूँ, माता हूँ, मूल में प्रकृति ईश्वरी हूँ। इसी  
 से पूर्वकाल में श्रीहरि ने और विद्वानों ने मुझे "राधा" कहा है।" श्रीकृष्ण की  
 प्राणशक्ति प्रिया होने के कारण ही जैन माया परा प्रकृतिस्मा श्रीराधा का नाम पुरुष  
 रूप परमात्मा श्रीकृष्ण के साथ संयुक्त है। परा प्रकृति का नाम पुरुष २  
 के नाम के पूर्व जाने की प्रणाली शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार है। श्री राधा नाम का

१- "जलैव स्वयं राधा हाया राधाण कामिनी ।

राधाणः श्रीहरेशः पार्श्वद प्रवर्त महान् ॥

रा शब्दश्च महद्विश्वो विश्वानि यस्य तीमसु ।

विश्व प्राणिषु विश्वेषु वा धात्री मातृवाचकः ॥

धात्री मातात्मैतृणां मूल प्रकृतिरीश्वरी ।

तेनराधा समाख्याता हरिणा च पुरातुधे ।

२- जगन्माता च प्रकृति पुरुषश्च जगत्पिता ॥ ३४ ॥

गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः फितुः ।

राधाकृष्णैति गौरीशैत्येवं शब्दः कृती कृतः ॥ ३५ ॥

कृष्णराधेश्वरीति तौके न च क्वाकृतः ॥ ३६ ॥

† † †

राशब्दोच्चारणादेव स्फुटीतो भवति माधवः ॥ ३७ ॥

† † † ॥ ३८ ॥

स भवेन्मातृधात्री च वेदातिश्रमणे मुने ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्ण जन्म सप्तदशवर्षपुराण अध्याय ५२

रहस्य परम गूढ़ है, इसके रहस्य को मनुष्य तो क्या देवता ऋषि-मुनि भी जानने में असमर्थ हैं। भगवान् शंकर स्वयं महामुनि नारद जी से कहते हैं - "श्री राधा के रूप तावण्य और गुणादिकों के कहने में मैं सर्वथा व्योम्य हूँ। हे नारद! उनके रूपादि के माहात्म्य से मैं सज्जित हूँ। त्रिलोकी में माता के सम्बन्ध में कहने को कहीं समर्थ नहीं है जिसका वैद, रूप और माधुर्य ज्ञात को मोहन करने वाले मोहन को भी मोहित करता है, यदि मैं अनन्त मुक्तवाला भी हो जाऊँ तो भी कहने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। लाखों का मत है <sup>उलकी कहते हैं कि लक्ष्मी नाली है तथा लक्ष्मी कहते हैं</sup> कि, ईश्वरी वह परात्परा शक्ति 'राधा' है।"

शान्तनु विहारी जी शिवजी ने अपनी साधना को राधा कहने की बात की और उस प्रका संकेत किया है, "न केवल साकार प्रभु की प्राप्ति के लिए की गई वाराधनामात्र को ही श्रीराधा जी कहा गया है, अपितु निराकार और निर्गुण वाराधना करने वालों ने भी श्रीराधा जी को अपनी मूर्तिमयी साधना स्वीकार किया है। निर्गुण धारा के रहस्यवादी सन्त श्रीकबीर जी महाराज ने एक दोहे में बतलाया है कि काम पुरुष से जो वृत्तियों का बहिर्मुखीन प्रवाह चलता है उसे 'धारा' कहते हैं और जब वही वृत्तियों की धारा उल्ट जाती है अन्तर्मुखीन हो जाती है तब उसे राधा कहते हैं- और इस राधा को उसके एक मात्र स्वामी में जहाँ उस धारा का मूल उद्गम स्थान है वहाँ मिलकर स्मरण करो कहने का अभिप्राय यह है कि अपनी साधना को राधा कहने की बात नवीन

---

१- श्रीराधा रूप तावण्य गुणादीन्वक्तुमशक्यः ।

तत्तद्रूपादि माहात्म्यं तज्ज्ञे, ह्यपि नारद ॥

त्रैलोक्ये तु समर्थोऽपि न मातुं वक्तुमर्हति।

तद्देहस्य माधुर्यं जान्मोहन मोहनम् । तत्तत्तः यन्मन्तं मुक्तोपि स्यात् तत्तत्तुं नास्मिन् गतिः।

तदाशः कमला दास्यो यन्मा सा साधकीमाता, स्वं हत सहस्राणामीश्वरी राधिका पर

+

+

+

+

+

॥

नहीं है। व्याकरण की दृष्टि से भी राधा साध संसिद्धी में दोनों धातु स्कार्थक हैं तथा राधा और साधना शब्द के प्रत्यय भी स्कार्थक ही हैं। ”

### राधा का जाध्यात्मिक स्वरूप-

श्रीमद्भागवत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए श्री स्कन्दपुराण में स्वयं श्रीमद् वेद व्यास जी ने भागवत का अभिप्राय इन शब्दों में पिल्लाया है :-

“ वात्मा तु राधिका तस्य तस्य रमणावसी ।

वात्माराम इति प्रीकतो मुनिभिर्द्वेदेविभि ॥ ”

उसी स्थान पर बताया है कि एक बार द्वारिका में श्रीकृष्ण की रानियों ने कालिंदा जी से यह प्रश्न किया कि हम लोग श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल रहती हैं परन्तु आप में विरह वेदना नहीं है इसका क्या कारण है उस पर कालिन्दा जी ने उत्तर दिया कि “श्रीकृष्ण वात्माराम हैं, निश्चय ही उनकी वात्मा श्री राधिका हैं हम श्री राधिका की दासी हैं, उनके दास्य के प्रभाव से श्रीकृष्ण से हमारा कभी वियोग नहीं हो सकता। ” इससे प्रकट होता है कि श्री राधिका जी श्रीकृष्णभावान् का साक्षात् स्वरूप हैं। इस सम्पूर्ण विश्व के वात्मा श्रीकृष्ण हैं और उन श्रीकृष्ण की वात्मा श्रीराधा हैं। जो श्रीकृष्ण हैं वही श्रीराधा हैं वही श्रीकृष्ण हैं, एक ही हैं, विलीन हैं। महाकाश का घटाकाश के साथ जी सम्बन्ध है वही सम्बन्ध श्रीकृष्ण का राधा के साथ है। दोनों केवल उपाधि भेद से पृथक् हैं परन्तु वास्तव में एक ही हैं। दुग्ध और उसकी चवत्ता

१- श्रीराधा तत्त्व रहस्य- श्री शान्तनुविहारी जी त्रिवेदी- राधा कंक सुदर्शन भाग १०

जनवरी १९३८ कंक १ पृ० ४७

२- वात्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।

तस्याधास्यप्रभावेन विरहोऽस्यान्म संस्पृष्टः ॥ स्कन्दपुराण ।

की भाँति तथा सूर्य जीर उसके प्रकाश की भाँति श्री राधा जीर राधा रमण में पृथाभाव नहीं है। श्री भगवान् श्याम सुन्दर ने ही श्रीराधा जी से इस बात का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है :-

“ ये राधिकायां त्वमि कैश्चैव मपि,  
भवं न कुर्वन्ति हि दुग्ध शौक्यवत् ।  
त स्व में क्लृप्तं प्रमान्ति,  
तैस्तु स्फूर्जितं भक्ति ललाणाः ॥ ” १

श्री कृष्ण संहिता में कहा गया है कि “ जो कृष्ण हैं वही राधा हैं, जो राधा हैं वही कृष्ण हैं ”<sup>२</sup> अर्थात् दोनों एक ही तत्त्व हैं एवं अभिन्न हैं। राधातापिनी में कहा है कि “ जो यह राधा जीर जो यह कृष्ण जानन्द उस के सागर हैं वह एक ही लीला करने के लिये दो रूप बन गये हैं। जैसे हाया से देह शोभित होती है वही प्रकार श्री राधा जी से श्री कृष्ण शोभायमान हैं। उनके चरित्र पढ़ने सुनने से जीव उनके शुद्ध परमधाम की प्राप्ति होता है। ”<sup>३</sup>

श्री हनुमान प्रसाद जी पौदार राधिका के सम्बन्ध में लिखते हैं

“ भगवान् श्रीकृष्ण समग्र ब्रह्म या पुरुषोत्तम हैं। ब्रह्म, परमात्मा, जात्मा सब इन्हीं के विभिन्न लीला स्वरूप हैं। श्रीराधा जी इन्हीं की स्वरूपा शक्ति हैं। श्रीराधा जी जीर श्रीकृष्ण सर्वथा अभिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य चिन्मय जानन्द विग्रह हैं जीर श्रीराधा जी दिव्य चिन्मय प्रेम विग्रह हैं। वे रसराज हैं ये महाभाव हैं। भगवान् की इन्हीं स्वरूपा शक्तियों

१- गणसंहिता ।

२- “ यः कृष्णः साधिराधा या राधा कृष्ण स्व सः ” कृष्ण संहिता ।

३- “ येयं राधा यच्च कृष्णो रसाब्धिः वैहृदिकः श्रीङ्गार्यं विधातुः ।

देही यथा हायया शोभायमानः श्रीराधान् पठन्वाति तद्वाम शुद्धम् ॥

राधातापिनी



से अनन्त कौटि शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं जो जगत् का सृजन, पालन और संहार करती हैं। श्री राधा जी ही श्रीकृष्णजी, श्री प्रभा, श्री सीता, श्री रुक्मिणी हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। जैसे चन्द्र चन्द्रिका, सूर्य और प्रभा एक दूसरे से सर्वथा अभिन्न हैं। "वृन्दा कृष्णोपनिषद् के अनुसार भक्ति है इत्यस्य वृन्दावन भक्ति वन है। भक्ति क्षेत्र में अक्षरित गोपाल की लीलायें कृष्ण लीलायें हैं। श्री हनुमान प्रसाद पौदार का कथन है, "भावान् की इस परमोज्ज्वल दिव्य-रस लीला का अथायं प्रकाश तो भावान् की स्वल्प भूता दृष्टिनी शक्ति नित्य निकुंजेश्वरी श्री वृणभानु नन्दिनी श्री राधा जी और तरंगभूता भ्रमयी गोपियों के ही हृदय में होती है और वे ही निरावरण होकर भावान् की परम अन्तरंग रसमयी लीला का समास्वादन करती हैं।" "चिर हरण लीला का विवेचन करते हुए पौदार जी ने गोपियों की साधना में उनके समर्पण पूर्ण करने के लिये चिर की आवरण बताया है। वह "प्रेम प्रेमी और प्रियतम के बीच में एक पुष्प का भी परदा नहीं खना चाहता।" "उनके अनुसार", प्रेम की प्रकृति है सर्वथा व्यवधान रहित, क्लेश और अनन्त मिला।" वह जाने लिखते हैं, "भावान् यही सिखाते हैं कि संस्कार शून्य होकर निरावरण होकर माया का पर्दा हटाकर बाबा, मेरे पास बाबा। और, तुम्हारा यह मोह का पर्दा तो मैं ने ही डीन दिया है, तुम कम मैं ने ही डीन दिया है, तुम जब इस पर्दे के मोह में क्यों पड़ी हो। यह परदा ही तो परमात्मा और जीव के बीच में बड़ा व्यवधान है, यह हट गया बड़ा कल्याण हुआ। अब तुम मेरे पास बाबा, तभी तुम्हारी चिरसंक्षिप्त आकांक्षाएं

१- श्री राधा कृष्ण का तात्त्विक स्वल्प- हनुमान प्रसाद जी पौदार राधांक १५१ पृष्ठ

२- वैशिष्ट्य ब्रह्म का आध्यात्मिक रहस्य - श्री वासुदेव धरण अग्रवाल पौदार अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ६५०

३- श्रीमद्भागवत - दशम स्कंध - हनुमान प्रसाद पौदार पृ० २६७ गीता प्रेस, गीतापुर

पुरी हो सकेंगी। परमात्मा श्रीकृष्ण का यह आह्वान, वात्मा के वात्मा परम प्रियतम के मिलन का यह मधुर आमन्त्रण भावत्कृपा से जिसके वन्तर्देश में प्रकट हो जाता है, वह प्रेम में निमग्न होकर सब कुछ छोड़कर, छोड़ना भी भूलकर प्रियतम श्रीकृष्ण के चरणों में दाढ़ जाता है। फिर न उसे वस्त्रों की सुधि रहती है और न लोगों का ध्यान। न यह जगत् की देखता है न अपने को। यह भावत्प्रेम का रहस्य है। विशुद्ध और अनन्य प्रेम में ऐसा ही होता है।<sup>१</sup> ”

राधा पूर्ण शक्ति और श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। दोनों अभिन्न हैं परन्तु लीला स्वास्वादनार्थं भिन्न भिन्न दिखलाई पड़ते हैं। जिस प्रकार कस्तूरी और उसकी गन्ध अग्नि और उसकी ज्वाला पृथक्<sup>दिगार</sup> पड़ने पर भी वास्तव में एक ही वस्तु हैं उसी प्रकार श्रीराधा क्लृप्ता इस स्वरूपा हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर<sup>हैं</sup> श्रीराधा स्वयं शक्ति स्वरूपा हैं। श्रीकृष्ण का जो कुछ जानन्द है वह राधा के समीप है। श्रीराधा का वह मन, प्राण, वात्मा जो कुछ है वह सदैव श्रीकृष्ण प्रेम से विभाजित है। राधा श्री कृष्ण की निज शक्ति स्वरूपा वैष्ट प्रेम्सी और श्रीड़ा की सहायिनी हैं। राधा कृष्ण उभय एक ही आत्म स्वरूप हैं, स्वास्वादनार्थं उन्होंने दो वैष्ट धारण कर लिए हैं। वैष्टाणि पं० समानाथ जी भट्ट लिखते हैं, ” यह राक्षस राधा किंवा राक्षिका श्री पुरुषोत्तम की इस प्रकार श्रीकृष्ण की। नित्य सिद्धा प्रिया हैं। इसी बात को यदि लौकिक रूप से कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि शृंगार इस रूप भावनाओं<sup>में</sup> जब पुरुष अपनी प्रिय की भावना करता है तब वह अपनी भाव को ही स्त्री रूप देता है। भाव को स्त्री रूप बनावे बिना स्त्री की भावना ही नहीं हो सकती। इसी प्रकार जब स्त्री अपनी प्रिय की भावना करती है

तब उसे भी अपने भाव को पुरुष रूप देना होता है। स्त्री के हृदय में भावात्मक पुरुष है और पुरुष के हृदय में भावात्मक प्रिया है। भाव फलार्थ नित्य सिद्ध है, उस रूप है स्वप्तिर वे तद्रूपापन्न प्रिया-प्रियतम दोनों ही नित्य सिद्ध और उस रूप हैं। उस प्रकार दोनों एक रूप रहते हुए भी श्रीकृष्ण की नित्य सिद्ध प्रिया श्री राधिका हैं। श्री राधिका प्रथमा शक्ति हैं, प्रथमा सिद्धि हैं, कास्व सञ्चिष्टा, सर्वेश्वर हैं, निष्कामा हैं, प्रेमयी हैं।”

देवी भागवत नक्त स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में राधिका जी को भावान् की प्रकृति बतलाया है। बृहद् ब्रह्म संहिता के द्वितीय पाद के पंचमाध्याय में भावान् नारायण अपनी प्रेयसी महालक्ष्मी जी से वृन्दावन रहस्य वर्णन करते हुए कहते हैं, “ श्री लीला तथा राधिका नाम वाली कृष्णामयी देवी परादेवता है जो गोपन के करने के कारण गोपी कहलाती है। वह सर्वलक्ष्मी स्वरूपा है और श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाली होने के कारण ह्लादिनी शक्ति है तथा नाना क्रीड़ा करने में निपुण है। क्लीं के कला के कोटि कोटि अंश से दुर्गा जादि त्रिगुणात्मिका शक्तियाँ हैं। जिस प्रकार तुम लक्ष्मी हो उसी प्रकार गोपी भी लीला है। मैं कृष्ण सहस्रों कृष्णों का नामक हूँ और सबका कारण लीला भैर में ही वाञ्छित है। है देवी! जिस प्रकार से मैं व्यापक हूँ उसी प्रकार से ये भैरी प्रिया। जिस जिस स्वरूप को मैं धारण करता हूँ उसके अनुसार ही भैरी लीला भी। ज्ञान और ज्येष्ठन रूप समस्त जगत् हम दोनों से व्याप्त है। वही हमारी शक्ति राधिका है और दूसरी गोपियाँ उसकी सखियाँ हैं।”

१- जादि शक्ति श्री राधिका - देवर्णि पं० स्नानाथ जी फट्ट पृ० १११, ११२ राधा अंक

२- गोपनादुच्यते गोपी श्रीलीला राधिकापिवा । देवी कृष्णामयी स्या राधिका परादेवता । ५०।

+	+	+	+
+	+	+	+

कृष्णा देखिये श्लोक ५०, ५१, ५२, ५३, ५४

श्री नन्दनन्दन स्वयं सच्चिदानन्द मय हैं। चिच्छाति स्व स्व  
 कण्ठ तत्त्व होने पर भी त्रिरूपा है। सर्वश में सन्धिनी, चिदंश में सन्धित् स्व जानन्दाश  
 में "ह्लादिनी"। श्री मावान् की सहायों का जिसमें समावेश है वही उनकी "सन्धिक" शक्ति है। श्री नन्दनन्दन में भावकता का ज्ञान ही उनकी "सन्धित्" शक्ति है स्व की  
 वृन्दनन्दन को ब्रह्माव प्रदान करने वाली और स्वयं उनके सुख से सुखानुभव करने वाली  
 ह्लादिनी शक्ति है। उनमें वाह्लादिनी सर्व प्रधान शक्ति है। वे परम अन्तरंग मूला श्रीराधा  
 ही हैं जिनका आराध्य श्रीकृष्ण भी करते हैं। इन्हीं के संयोग से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई  
 है। यथार्थ में संसार की समस्त शक्तियों में श्री राधा जी का अंश है, किरण हैं, तथा  
 इन्हीं की भिन्न भिन्न प्रतिमूर्तियां हैं। श्री राधा आदि शक्ति हैं। श्रीकृष्ण की स्त्री  
 ह्लादिनी वा जानन्द शक्ति के आधार पर श्रीकृष्ण की "वृन्दावन लीला" का रहस्य  
 राधा से बरकरार विविध रूपों में विविध प्रकार से मिलता और राधा सम्मिलन के अफा  
 राधा की सत्संगति से उत्पन्न हुए "जानन्द" का उपभोग करना ही है। "श्री राधा ही  
 दुर्गा, राधा ही पार्वती और राधा ही "पराशक्ति" है। राधा ही राधेश्वरी नाम से  
 विभूषित होती है और राधा ही कृपानिधान श्री मावान् का रुख पाकर जावर्षी शक्ति  
 के रूप में बसित विश्व की जान्लांत रूप से "सेवा" करने वाली मधुस्मिन्मी जान्लाता है।  
 बसित विश्व ही उसके हृदय गर्भ में विग्राम से रहा है। श्री राधा ही कृष्ण की वह प्रकृति  
 शक्ति है जो सृजति का पालति हरति रुख पाय कृपानिधान की "के रूप में विश्व की  
 सृष्टि स्थिति और संसार करने वाली भी कनी हुई है, बसित विश्व की "लीला" उस  
 "लीलायमी" की ही। अपारा लीलायमी लीला है, वही स्व ब्रह्माण्ड का शासन अपनी  
 सत्, स्व और तम गुणायमी त्रिगुणात्मका प्रकृति त्रिशूल रूप "शासन वण्ड" से किया

कस्ती है। \*\*

श्रीराधा जी भवान् की ही दयाशक्ति है और उसका नाम योगमाया भी है और यह प्रकृति देवी का एक स्वरूप भेद है। भवान् परमात्मा अन्तर्बोधी हैं। और गोपियां प्रकृति तथा अन्तःकरण की वृत्तियां हैं। रास लीला ब्रह्मानुभूति का रहस्य प्रकट करती है। जीवात्मा परमात्मा के साथ वीर संबंध स्थापित कर भावतत्त्व प्राप्त करता है। रास लीला के द्वारा जीवात्मा का परमात्मा के साथ अनिष्ट सम्बन्ध प्रकट किया जाता है।

#### राधा का दार्शनिक स्वरूप-

जीव गौस्वामी ने राधा को दार्शनिक स्वरूप देने की चेष्टा की। ब्रजलीला के वर्णन के समय कृष्ण के कण्ठित गोपियों से सम्बन्ध का विवरण है जिनमें राधा भी एक गोपी है, स्व गौस्वामी ने "उज्ज्वल नीलमणि" ग्रन्थ के "कृष्ण वत्सभा" अध्याय में लिखा है कि जो वत्सभा साधारण गुण समूह युक्त है और जिसका विस्तीर्ण प्रेम तथा सुमाधुर्य सम्पद् के अंश में आश्रय है वे कृष्ण वत्सभा हैं जिनके दो भाग हैं स्वकीया तथा परकीया, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि विवाहिता स्वकीया और गोपियां परकीया हैं। स्व गौस्वामी ने स्वकीया महिलाओं की संख्या द्वादशपुरी में सीतल झरार आठ मानी है। वास्तव में कृष्ण की समस्त प्रेमसियां स्वकीया हैं। कृष्ण की एक "साधारणी" नायिका कुव्वा भी है। प्रकट लीला में कन्या और "परीदा" की प्रकृति की परकीया मानी हैं। कन्या आदि विवाहिता ब्रजकुमारियां "कन्या" और

दूसरे गोपाण्यां से विवाहित गोपियां परकीया हैं। परीढ़ा गोपियां, साधनपरा, "देवी" और नित्यप्रिया "तीन प्रकार की हैं। साधन परा भी पौधिका और अपौधिका दो प्रकार की हैं तथा पौधिका भी "मुनि" और "उपनिषद्" दो प्रकार की हैं।

जीव जीव कोटि और भावत् कोटि में प्रवेश करने की सामर्थ्य रखता है। जीव प्रेम भक्ति से भावान् के स्वस्म भूत धाम में प्रवेश या साधना के अनुसार लीला परिकरत्व पाता है। उच्च साधक कृष्णाम में प्रवेश कर कृष्ण वत्सला-रूप में गोपी देह पाते हैं। नित्यप्रिया, नित्यसिद्ध गोपी नित्य कात्सक वृन्दावन में श्रीकृष्ण की संगिनी होती हैं और दूसरे प्रकार की जीव के ही साधन उल्लस्य दिव्य प्रेम वपु होती हैं। दोनों के बीच में "देवी" हैं जो श्रीकृष्ण के अंशरूप में देवयोनि में जन्म लेती हैं पर उनके संतान साधन के लिये जन्म लेती हैं। कृष्णावतार में यही देवियां स्थानीय स्त्री होती हैं। राधा, चन्द्रावली, विशाखा, ललिता, श्यामा, फल्गा, शैब्या, भद्रा, तारा, चित्रा, गोपाली, बनिष्टा और पात्किा आदि नित्यप्रिया गोपियों में प्रधान हैं। प्रत्येक का एक युध और उसमें उत्तम गोपियां होने के कारण राधा आदि आठ प्रधान गोपियों को यूथेश्वरी कहा जाता है। इनमें राधा और चन्द्रावली प्रधान में भी राधा ही सर्वश्रेष्ठ हैं। यह गुणों के कारण वतिवरीयस्त्री और महाभाव स्वरूपा है। हम गोस्वामी ने कहा है कि यह वृष्णभानु नन्दिनी १- सुष्ठुकान्त स्वरूपा २- कृतगीहश शृंगारा ३- और द्वादशभरणाभिता हैं। 'सुष्ठुकान्त स्वरूपा' के लक्षण इस प्रकार बताये हैं :- जिस राधिका के स्मीत्सव से त्रिभुवन विधुनित होता है, उस राधिका के केशदाम संकुचित हैं, दीर्घ नयनों वाला मुख चंचल है, कठोर कुंजी से वक्ताः स्थल सुन्दर हैं, मयमदेश क्षीण है, स्कन्ध देह कवनभित है,

हस्त युगल नखरत्न शोभित हैं। राधिका के सौलहों शृंगारों में देखते हैं कि राधिका स्नाता हैं, उनके नासाग्र में मणियां हैं, वे नील वसन पहने हैं, उनके कटि तट पर नीची हैं, मस्तक पर बंधी वेणी है, कानों में उत्तंस हैं, वे चन्दनादि से चर्चितान्गी हैं, वे कुसुमित चिकुरा माल्यधारिणी हैं, पद्महस्ता हैं, उनके मुखकमल में ताम्बूल, चिकुर पर कस्तुरी विन्दु है, वे कंजलि नक्का हैं। सुचित्रा अर्थात् कपोल आदि चित्रित है, चरणों में महावर है ललाट पर तिलक है। राधिका के द्वादश आभरण हैं, माथे पर मणीन्द्र, कानों में स्वर्णमय कुण्डल, तिलम्ब पर कांची, गले में स्वर्ण पद्मक, कानों पर स्वर्णशिला का, करों में वलय, कंठ में कंठभूषण, उंगलियों में अंगूठियां, वक्ष पर तारानुकारी हार, भुजों पर कांछ, चरणों में रत्न नूपुर, पैरों की उंगलियों में तुंग अंगुरीयक।

इस वृन्दावनेश्वरी के अनन्त गुणों में से कुछ मुख्य उल्लिखित गुण यह हैं :- मधुरा, नववया, चलापांगा, उज्ज्वलस्मिता, चारु सौभाग्य-रेखट्या, गंधान्मादित माधवा, संगीतप्रसराभिला, समयवाक्, नर्मपंडिता, करुणापूर्णा, विदग्धा, पटवान्विता, लज्जाशीला, सुमयादा, धैर्यामीर्यशालिनी, सुविलासा, महामाव, परमोत्कर्षा तर्णिणी, गोकुल प्रेमवसति, जगच्चेणलिसदयशा, गुर्वर्पित गुरुस्नेहा, सखी प्रणयितावशा, कृष्णाप्रियावली मुख्या, सन्नताश्रवकेशवा आदि।

यूधेश्वरी गण में प्रधान राधिका हैं जिनके यूथ की सखियां सर्वगुणमंडिता और श्रीकृष्ण के मन की विलास-विभ्रम द्वारा आकर्षित करती हैं, इन सखियों के पांच प्रकार हैं :- सखी, नित्य सखी, प्राण सखी, और परम श्रेष्ठ सखी । कुसुमिका, विन्ध्या, घनिष्ठा आदि साधारण सखियां हैं। मणि मंजरिका आदि नित्य सखी हैं । शशिमुखी, वासंती, लासिका आदि प्राणसखी हैं जो वृन्दावनेश्वरी राधिका के

स्वरूपतारक जी वृन्दावेश्वरी राधिका के स्वरूप से समानता रखती हैं। कुरंगाजी, सुमध्या, मदनलता, कमला, माधुरी, मंजुश्री, कन्दमाधवी, मालती, कामला, शशिकला आदि प्रियसखी हैं। ललिता, विशाला, चित्रा, चम्पकला, तुंगविधा, लन्दुल्ला, रंगदेवी और सुदेवी परम श्रेष्ठ सखी हैं। इन सखियों का राधाकृष्ण लीला में मुख्य स्थान है। और ये लीला विस्तारिणी हैं। राधिका प्रेम का विषय है और श्रीकृष्ण का प्रेम वाक्य है। इस विषय का अवलम्बन लेकर होने वाली लीला का सखियाँ वैचित्र्य और माधुर्य से विस्तार करती हैं। इनकी संहिता की दशा में राधा के प्रति सहानुभूति एवं अनुराग तथा श्रीकृष्ण के प्रतिविद्वेष होता है और मान की दशा में कृष्ण के प्रति अनुराग और राधा के प्रति विराग होता है। राधिका से इनका कोई बला अस्तित्व न होकर उसका ही प्रेम विस्तार है। ये गोपिकां राधिका का कामव्यूह हैं। इनकी राधिका से कृष्ण के मिलन में परम आनन्द जाता था और उनके मिलन के लिये ही चैष्टायें करती थीं।

हम गोस्वामी 'रति' विश्लेषण के द्वारा भी राधिका की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। रति साधारण, समंजता और समया तीन प्रकार की होती है जो रति गहरी न होकर कृष्ण के दर्शन द्वारा ही उत्पन्न होती है और जिसका निदान संमौग अच्छा ही है वह साधारण रति है जिसका उदाहरण भागवत पुराण की कुन्जा का प्रेम है। गुणादि के सुनने से उत्पन्न हो पत्नी भाव का अभिमान रख जिससे कमी <sup>कमी</sup> संमौग की वृष्णा उत्पन्न होती है वह समंजता रति कहलाती है। रुक्मिणी आदि की कृष्ण के प्रति रति इसका उदाहरण कहलाती है। रुक्मिणी आदि की कृष्ण के प्रति इसका उदाहरण है। समंजता रति में कमी कमी निज मुख + पृष्ठ की संभावना रहती है। ~~समंजता-रति में कमी~~ कमी परन्तु समया रति में नहीं। तादात्म्य की प्राप्ति हो जिसमें कूल धर्म, धर्म, सज्जादि



सब भूल जाती हैं वह समर्था रति कहलाती है। यह रति "सान्द्रता", "कृष्ण विलासिनि" की चमत्कार करती है। इसमें स्व-संभोगेच्छा न होकर सभी उच्च कृष्ण सौख्यार्थ हैं। यह समर्था रति ही प्रीड़ा होकर महाभावा वशा को प्राप्त होती है। यह रति धीरे धीरे दृढ़ हो प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग अनुराग और भाव के रूप में परिणत होती है। रूप गोस्वामी कहते हैं कि सर्वथा कारण रहते हुए भी जिसका च्यंत नहीं होता युक्त युक्तियों के इस प्रकार के भाव बन्धन को प्रेम कहते हैं। परमाकांक्षा प्राप्त कर जब प्रेम चिदीपदीप्त होता है और हृदय को क्रीभूत करता है तो उसे स्नेह कहते हैं। उत्कृष्टता प्राप्त कर जब स्नेह नर-नर माधुर्य लाता है कि परन्तु स्वयं प्रदादिग्य धारण करता है तो उसे मान कहते हैं। मान के विग्रह प्रदान करने को प्रणय कहते हैं। प्रणयोत्कर्ष के कारण जब चित्त के अधिक दुःख का भी अनुभव सुख में होता है तो वह प्रेम राग कहा जाता है। सहानुभूति प्रिय

१- सर्वथा च्यंतरहितं सत्यपि च्यंतकारणी ।

उज्ज्वल नील मणि  
यद्भावबन्धनं युनोः स प्रेमा परकीर्तिः ॥ सित-नर्मि-रत्नकत - स्थायी भाव प्रकरण ४१

२- बाह्य परमां काष्ठां प्रेमा चिदीपदीप्तः ॥ १०॥

हृदयं द्रावयन्नेन स्नेह इत्यभिधीयते ॥ १७१॥

३- स्नेहस्तुत्कृष्टतावाप्त्या माधुर्यमानयन्मम् ।

यो धारयत्यकाङ्क्षितं समान इति कीर्त्यते ॥ ८७॥

४- मानो वधानो विग्रहं प्रणयः प्रीच्यते बुधैः । १८ ।

५- दुःखमप्यधिकं चित्तं सुखत्वेनैव व्यज्यते ।

यतस्तु प्रणयोत्कर्षात् स राग इति कीर्त्यते ॥ ११५ ॥

को और उसकी अनुभूति को नित्य नवत्व प्रदान करने वाला राग अनुराग कहा जाता है।  
 अनुराग के "यादवाश्रमवृत्ति" और स्व-संवेकदशा के प्राप्त होने पर भाव कहते हैं। यही  
 प्रेम प्रकाश की पराकाष्ठा है। ३ भाव के तीन स्वरूप हैं। प्रथम में विषुद्ध प्रेमानन्दानुभव  
 द्वितीय में प्रेमानन्द के विषय के रूप में कृष्ण विषयक ज्ञान, तृतीय में प्रेमानुभूति और  
 चैतन्य का। एक अपूर्ण। मिश्रण है। इसी प्रकार भाव में तीन प्रकार के सुख मिलते हैं।  
 प्रथम सुख श्रीकृष्ण का अनुभव रूप, द्वितीय सुख-प्रेमादि के द्वारा अनुभूतवर ही श्रीकृष्ण  
 का अनुरागीत्कर्ण के द्वारा अनुभव होना, तृतीय सुख। श्रीकृष्णानुभवत रूप वह। अनुरागीत्कर्ण  
 का अनुभव होना है। जिस प्रकार भाव श्रीराधा के हृदय में उदित हो प्रेमानन्दमयी कहता है  
 उसी प्रकार साधक भक्त और सिद्ध भक्तमणों के चित्त को श्रीराधा की प्रेमानन्द विलोडित  
 करता है। इन भावों में जो वृद्धि होती है ही सम्भव है उसे महाभाव कहते हैं। महाभाव रूढ़  
 और अधिरूढ़ दो प्रकार का है। महाभाव से सारे सात्त्विक भाव उद्दीप्त होने पर रूढ़  
 महाभाव और महाभाव के अनुभवों से भी विशिष्टता प्राप्त करने पर अधिरूढ़ महाभाव  
 कहते हैं। इस सम्बन्ध में विश्वनाथ चक्रवर्ती ने उज्ज्वलतीक्ष्ण किरण में कहा है- जहाँ  
 कृष्ण के सुख में पाड़ा की बाँझा से दाण भर के लिए भी अक्षिष्णुता होती है- वही  
 रूढ़ महाभाव है। करोड़ ब्रह्माण्ड गत समस्त सुख भी जिसके सुख का लेशमात्र नहीं होता,  
 सारे विष्णुओं- सपों के दर्शन का दुःख भी जिसके दुःख का लेशमात्र नहीं होता, कृष्ण के

१- सदानुसूक्तमपि यः कुर्यान्नवन्नवं प्रियम् ।

रागो भवन्नवन्नवः सो नुराग इतीक्षी ॥ १३४ ॥

२- अनुरागः स्वसंवेकदशां प्राप्य प्रकाशितः ।

यादवाश्रमवृत्तिश्चैव भाव इत्यभिधीयते ॥ १३५ ॥

मिलन-विरह से एक प्रकार का दुःख-सुख कजिब दशा में होता है उस दशा को ही वधिरुद्ध महाभाव कहते हैं। इस वधिरुद्ध महाभाव के 'मोदन' और 'मादन' दो भेद हैं। जीव गोस्वामी ने 'लोचन रोचनी' टीका में लिखा है कि मोदन हर्षवाचक है मादन में दिव्यमय के समान मज्जा है। मादनाख्य महाभाव में श्रीकृष्ण मिलन के एक प्रकारकेवानन्द का अनुभव है। ~~मोदन~~ मादनाख्य महाभाव में श्रीकृष्ण सदान्ता कृष्ण के चित्त में भी प्रीतिमउत्पन्न होता है और कृष्णकान्ताओं के प्रेम की अपेक्षा भी प्रेमाधिक्य व्यक्त होता है। राधा के मूढ में ही मोदनाख्य महाभाव सम्भव है। ह्लादिनी शक्ति का यही सुविज्ञास है। रुक्मिणी, सत्यभामा आदि के साथ रहने पर भी राधा के दर्शन से कृष्ण में चित्त प्रीतिम उत्पन्न हुआ। कृष्ण के दर्शन से राधा में प्रेमातिशयता और प्रेमाधिक्य दिखाई पड़ता है। विरहावस्था में मोहन ही मोदन का नाम धारण करता है। मादन ह्लादिनी का सार है। रति से लेकर महाभाव तक के समस्त प्रेम वैचित्र्य के उत्सास का यह अनुभव कराता है। राधा को छोड़ जाय किसी में यह मादनाख्य महाभाव संभव नहीं है इस हेतु ही श्री राधिका 'कान्ता शिरोमणि' कहलाती है।<sup>२</sup>

जाप्राकृत वृन्दावन धाम के श्री राधा कृष्ण नित्यलोलता को

१- कृष्णस्य सुखं पीडाशंखा निमिषस्यापि प्रसहिष्णु -

तापिकं यत्र स क्लेशं महाभावः कौटिल्याङ्गत समस्त -

सुखं यस्य सुखस्य तेषांऽपि न भवति, समस्तवृश्चि-

कस्तपादिदंशन-कृत- दुःखमपि यस्य दुःखस्य तेषां न भवति सोऽवधिरुद्धो महाभावः ॥

२- सर्वभावोद्गामी त्लासी मादनीऽयं परात्परः ।

राजते ह्लादिनीसारी राधायामेव यः सदा ॥

साहित्यिक रूप देने के लिये मनुष्य के दृष्टान्त को अपनाया गया। लंकार शास्त्र के नायक नायिका के भवों पर विचार करके कृष्ण और राधा को श्रेष्ठ नायक नायिका के रूप में स्वीकार किया गया। श्रीकृष्ण का राधा तथा वृज देवियों के साथ यह लीला प्राकृत धाम न होकर "काम-क्रोड़ा-साम्य" है जिसे साहित्यिक रूप में और बालंकारिक-विरलेक्षण में प्राकृत-काम क्रोड़ा के भाव से ग्रहण किया गया है। प्राकृत काम के वैचित्र्य और सर्वातिशयिता प्रकट करने वाली समस्त द्रष्टा और लीलाओं का आरोपण राधा में उसकी प्रेमयी बनाने के हेतु किया गया। राधिका में श्रेष्ठ नायिका में वर्णित होने वाले देह धर्म और मनोधर्म वर्णित हैं। प्रेमी में श्रेष्ठ कान्ता प्रेम से भी परकीया-रति श्रेष्ठ है जिसकी परिणति राधा-प्रेम में होती है। प्रधानांगी राधिका का साहित्य में परिचय परोक्ष गोपी-रूप में मिलता है। प्राचीन श्लोकों में राधा-प्रेम के अनेक प्रेम का जामास है। उज्ज्वल नील मणि में राधा और चन्द्रावली का वर्णन नित्यप्रिया के रूप है। राधादि सब श्रीकृष्ण की नित्य प्रेयसी हैं। रूप गोस्वामी श्रीकृष्ण के नित्य प्रेयसीत्व को ही राधादि गोपियों का स्वरूप-परिचय मानते हैं। बाहर उनका लूढ़ा कन्यापन या दूसरी गोपियों का स्त्रीत्व योग माया द्वारा घटित कराया एक प्रतिमासिक सत्य मात्र है। भागवत के रास वर्णन में कहा है "वृजवासी गोपों ने भगवान् श्रीकृष्ण में तनिक भी दोष बुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमाया से मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी

१- राधा चन्द्रावली मुख्याः प्रीक्ता नित्यप्रिया वृजे ।

कृष्णवन्मित्य सौंदर्यं वैदग्ध्यादिगुणाश्रयाः ॥

उज्ज्वल नील मणि कृष्णवस्त्रमा - ३६

२- तत्संज्ञाभूतं स्वयं योगमाया मिथैव प्रत्यायितं तद्विधानामुद्राहादिकम् । नित्यं

प्रेयस्य स्व तत्तु ताः कृष्णस्य । प्रथम अंक

पत्नियाँ हमारे पास ही हैं।" जीव गौस्वामी परकीयावाद का समर्थन न करके प्रेम स्वकीया में ही राधा-प्रेम का चरमोत्कर्ष मानते हैं। अश्रुत व्रजलीला में राधा के कृष्ण उपपत्ति नहीं राधा कृष्ण की परम स्वकीया हैं। वे गौपास लीला में स्वकीया की परम सत्य और परकीया की शक्ति मानते हैं।

अश्रुत लीला में राधा और अन्य गौपियों ने व्यावहारिक जीवन में अपने पति वादि को स्वीकार किया। कृष्ण की प्राण बल्लभ मानते हुए भी योगमाया के कारण उनके स्वल्प-सम्बन्ध का ज्ञान बाधित रहता और एक परकीया अभिमान रहता था। गौस्वामियों ने परकीया वाद की प्रधानता दी और सहजिया लोगों ने वैष्णव धर्म में इसे और दृढ़ता प्रदान की।

रस प्रेम के कृष्ण विषय और राधा आश्रय है। राधिका कृष्ण की प्रेम रूपा ह्लादिनी शक्ति का पूर्णतम वाधार है। जीव के लिये राधा के भाव से कृष्ण की सेवा संभव नहीं है। जीव के लिये सती भाव की साधना कही है। सती भाव की साधना के दो रूप हैं रागात्मिका स्वतन्त्रमयी सेवा २- रागानुगा जानुगत्यमयी सेवा। नित्य व्रजधाम में सुवल, नन्द यशोदा या राधिका वादि कृष्ण के नित्य परिकरों की ही रागात्मिका सेवा करने का अधिकार है। राग आत्म धर्म में ही प्रतिष्ठित रहकर करने वाली सेवा को रागात्मिका सेवा कहते हैं। जीव व्रज परिकरों का जानुगत्य स्वीकार कर कृष्ण की सेवा को उनके राग के अनुग के रूप में स्वीकार कर सकता है। सुवल वादि व्रज सत्ताओं की कृष्ण के प्रति सत्ताभाव से प्रीति नित्यसिद्धि आत्मधर्म है। स्वस्ति सुवल वादि की कृष्ण की सत्ता भाव से सेवा रागात्मिका सेवा है। भक्तों के लिए सत्य प्रीति

१- नासुप्तं तनु कृष्णाय मोक्षितास्त स्य मायया ।

मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजिन्सः ॥

परमादर्श और परम साध्य वस्तु है।

राधा प्रेम पूर्ण मधुर रस का रागात्मक प्रेम होने के कारण राधा के बिना और कहीं संभव नहीं है। " उस राधा की काम-व्यूह स्वस्म है सखियाँ मंजरीगण उन सखियों की अनुगता सेवा दासी हैं, श्री रूप मंजरी जादि में मंजरीगण भी ~~नैतिक-रहित~~ गौलीक की नित्य परिकर हैं, अनुग - भाव से उनकी सेवा और लीला वास्वादन ही जीव का श्रेष्ठ काम्य है। " श्रीराधा ही विचित्र अवस्थान के अन्दर उस कृष्ण लीला में विचित्र अवलम्ब ग्रहण करती हैं।

#### राधा का वैज्ञानिक स्वस्म-

जिसका हमें कुछ ज्ञान न हो सके उसे कृष्ण और जो हमारी समझ में आ जावे उसे शुक्ल कहते हैं। निगूढ़ को कृष्ण और प्रकाशित को शुक्ल कहते हैं। यदि काला पदार्थ डाल दिया जावे तो कुछ नहीं दिखाई देता और न डीलने वाली वस्तु को काली और प्रकाशमान वस्तु को श्वेत कहते हैं। कृष्ण वर्ण तीन प्रकार का होता है :-

१- अनुपास्य कृष्ण      २- अनिरुक्त कृष्ण      ३- निरुक्त कृष्ण ।

" सृष्टि के ~~वि~~ पहिले की अवस्था को कृष्ण कहा जाता है :-

" वासीदिदं तमोभूतम् । " ३

कार्य उत्पन्न न होने तक अज्ञानी कारण में निगूढ़ रहता है और उसके ज्ञान से हम विमुक्त रहते हैं। कारणावस्था को काल की अपेक्षा के कारण जिस प्रकार कृष्ण कहते हैं उसी प्रकार पूर्वावस्था को हस्तमान जगत की अपेक्षा के कारण कृष्ण

१- राधा का ज्ञान विकास - शशिभूषणदास गुप्त पृ० २३८

२- मनु ।

कहते हैं<sup>१</sup>। वायु शक्ति जो कि जगत का कारण है अथवा भगवान् विष्णु कृष्ण वर्ण ही कहे जाते हैं। इस कृष्ण को कभी अनुभव न होने के कारण और केवल शास्त्र वेष होने के कारण अनुपाख्य कृष्ण कहते हैं। जिसका अनुभव तो ही किन्तु त्वमित्थम् रूप से एक केन्द्र में पकड़ कर निर्वचन न किया जा सके वह अनिरुक्त कृष्ण कहा जाता है। जिस प्रकार वाकाश में, अंधकार में वा नेत्र मीच लेने पर काले रूप का अनुभव होता है। परन्तु यह कालेपन से वह सर्वरूप का अभाव भासित है और किसी केन्द्र में पकड़ कर उस काले रूप को निरुक्त नहीं किया जा सकता। कीयता वादि पदार्थों में निरुक्त कृष्ण है। पूर्ण पूर्ण कृष्ण से ही उत्तरोत्तर कृष्ण का विकास होता है अर्थात् अनुपाख्य कृष्ण का अनिरुक्त कृष्ण में और अनिरुक्त-कृष्ण का निरुक्त कृष्ण में।

वैदिक सिद्धान्तानुसार चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य निरुक्त कृष्ण हैं। वेद में पृथ्वी को "कृष्णा<sup>१</sup>" और काले किरणों के समूह को "अंधकार" कहा जाता है। श्रुतियों में चन्द्रमा को तथा सूर्यमंडल की कृष्ण और हिरण्य मय प्रकाश भाग को सूर्य का रथ कहा है। अभिप्राय यह है कि प्रकाश मंडल संयोजन है तथा कई प्राणों के सम्बन्ध से बनता है और सूर्य मण्डल स्वभावतः कृष्ण है। इन तीनों से परे के परमेश्वरी मंडल को अनिरुक्त कृष्ण कहते हैं। सूर्य रूपों का अधिदैवता है जिसकी किरणों से सब रूप बनते हैं। इसलिये परमेश्वरी मंडल में सूर्य मंडल की उत्पत्ति से पूर्व कोई रूप नहीं है। इसको "वापोमय मण्डल" अथवा "सोममय मंडल" कहते हैं। सोम, वायु और वाप तीनों एक ही द्रव्य की अवस्थायें हैं। वायु घनीभूत होने पर "वाप" और तरल होने पर सोम। अवस्था को

१- "चन्द्रमा वैष्ण्वा कृष्णः" शतपथ १३।२। १। ७ ।

२- "वाकृष्णीन रजसा वर्तमानो निवेश्यन्मृतं<sup>मृत्यु</sup> च। हिरण्यमयेन सविता रथेन देवो याति मुवनानि पश्यन्।"

प्राप्त होती है। " अनिरुद्ध कृष्ण " वर्ण उसी द्रव्य में प्रतीत होता है जो परमेश्वरी की किरणों द्वारा बहुत बड़े आकाश प्रदेश में व्याप्त है। सोम मंडल में सूर्य का स्थान अंधकार मय जंगल में दीपक की भांति है। जहां तक सूर्य का प्रकाश है उसे ब्रह्माण्ड कहते हैं उसकी परिधि के बाहर अनंत आकाश में " अनिरुद्ध कृष्ण " सोम का बाप है। वही अनिरुद्ध कृष्ण काल आकाश के रूप में प्रतीत होता है। " वह कृष्ण है और सूर्य प्रकाश की प्रतिमा " राधा " है, " राध " धातु का अर्थ है, " सिद्धि " सूर्य प्रकाश में ही सब कार्य सिद्धि होते हैं अतः राधा नाम वह अन्वर्थ। सार्थक। है। कृष्ण श्याम तेज है, राधा और तेज। कृष्ण के अंक। गोदी में। अर्थात् श्याम तेजोमय मंडल के बीच में राधा विराजित है। "

सोम मंडल ब्रह्माण्ड की परिधि में व्याप्त है। जिस प्रकार आकाश में कोई दीवाल बनाई जाय तो प्रतीत होता है कि यहां पर आकाश। अवकाश। नहीं रहा परन्तु वास्तव में दीवाल के आधार रूप से आकाश वहां पर है जो दीवाल के रहते ही प्रतीत होने लगता है। उसी प्रकार सोम मंडल सूर्य प्रकाश होने पर प्रतीत नहीं होता परन्तु प्रकाश के दूर होने पर वह श्याम तेज प्रतीत होने लगता है। वास्तव में प्रकाश भी उसी के आधार पर है और वह प्रकाश में अस्तित्व है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी वैसे तो पता चलता कि बिना अंधकार के प्रकाश और बिना अंधकार के प्रकाश और बिना प्रकाश के अंधकार कहीं नहीं रहता। उदाहरण के लिये देखिये यदि अंधकार कहीं नहीं रहता। उदाहरण के लिये देखिये यदि अंधकार में एक दीपक प्रकाश कर रहा है यदि वहां दूसरा और रख दिया जावे तो प्रकाश और बढ़ जावेगा और उसी प्रकार की अवस्था दूसरा,

१- श्रीकृष्णावतार पर वैज्ञानिक दृष्टि- गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी- पृ० ६३२

पीदार अभिनन्दन ग्रंथ - ब्रज साहित्य मंडल मयुरा



दूसरा, तीसरा तथा कीकानिक दीपकों के रहने से होगी। इससे जाभास मिलता है कि एक दीपक के रहने पर भी उसमें अनुस्यूत बंधकार था जिसको दूसरे दीपक ने दूर किया और उसी प्रकार तीसरे तथा अन्यो ने। श्याम तेज ही बंधकार रूप से प्रतीत होता है। प्रकाश में अनुस्यूत श्याम तेज से पता चलता है कि हजारों दीपों एवं सूर्य का प्रकाश रहने पर भी श्याम तेज वाकाश की भांति व्याप्त और अनुस्यूत रहता है। किसी स्थान पर जैक दीपक रहे हैं और एक दीपक के सम्मुख यदि लकड़ी जादि वावरक पदार्थ रख दिया जाये तो कुछ वंश में प्रकाश का वावरण होकर भीमी सी छाया दीक्ष पड़ेगी। एक दीपक का वावरण होने पर अन्य दीपकों का प्रकाश होते हुये भी छाया का होना सिद्ध करता है कि प्रकृत दीपक बंधकार के बंश को दूर करता है उसके प्रकाश का वावरण होने पर वह वंश छाया रूप में प्रतीत होता है। निविड़ बंधकार में बिना प्रकाश के बंधकार की प्रत्यक्षा-मुमुक्ति ही नहीं होती। बिना प्रकाश के नेत्र रश्मि कार्य विहीन हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि "गौर तेज और श्याम तेज राधा और कृष्ण अन्योन्य वालिंशित रूप में ही सदा रहते हैं, कभी कृष्ण के वंश में राधा छिपी हुई है, कभी राधा के वंश में कृष्ण चुनक गये हैं। इसी से दोनों एक रूप माने जाते हैं, एक ही ज्योति के दो विकास हैं और एक के बिना दूसरे की उपासना निर्विध मानी गई है।" लिखा है :-

" गौर तेजो बिना यस्तु श्याम तेजः समवेत् ।

जयन्त ध्यायति वापि स मीत् पातकी शिवे ।

तस्याज्ज्योतिरभूत् तेषां राधामाधव रूपम् । " २

१-श्रीकृष्णावतार पर वैज्ञानिक दृष्टि - गिरिधर शर्मा कर्तुर्वेदी पृ० ६३३ पीदार बभिनन्दन ग्रंथ साहित्य मण्डल, मधुरा ।

२- समीपन तंत्र, गोपाल सहस्रनाम ।

विष्णु का रूप परमेश्वर मंडल का अवतार है इसलिए भावान् श्रीकृष्ण का रूप श्याम माना जाता है जिसका वन्योन्मत्त तादात्म्य सम्बन्ध तथा निरतिशय प्रेम गौरवणां भावती श्री राधा से है। वहाँ राधा की प्रकाश भाग। परमेश्वर मंडल की अपनी नहीं परकीया माना है इसलिए यहाँ भी कृष्ण का राधा के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित न कर परकीया ही माना है। गौ कीकिरण भी कह सकते हैं और उनकी उत्पत्ति परमेश्वर मंडल में होने के कारण वेदों में परमेश्वर मंडल को "गोख" तथा पुराणों में "गौलीक" कहा है। वागी के मंडलों में गौ का विकास होने के कारण सूर्य और पृथ्वी के प्राणों में "गौ" नाम का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन गौओं की प्राण विशेष कहा है। फल-गौ में इस प्राण की प्रधानता होने के कारण गौ को आराध्य माना है। गौ का उत्पादक और पालक होने के कारण परमेश्वरी गोपाल हुये, और सर्वप्रथम गौ प्राप्त होने के कारण गोविन्द हुये। क्योंकि श्रीकृष्ण परमेश्वरी के अवतार हैं इसलिए गौओं के सहचारी हुये और गोपाल तथा गोविन्द कहलाये। परमेश्वरी का हृन्द् से सत्यसाधक्य होने के कारण भावान् श्रीकृष्ण का भी हृन्द्वांस कर्तु से साधक्य-पूर्ण सौन्दर्य हुआ। चन्द्र मंडल भी अवतारों में माना है जिसके "प्राणों" का प्रतिफल भी कृष्ण चरित में हुआ है। चन्द्रमा के समुद्र वापीमय मंडल में रहने के कारण भावान् श्रीकृष्ण ने भी समुद्र के बीच "दार्का" कहाही चन्द्र मंडल अदामय है इस हेतु भावान् श्रीकृष्ण भी आकाश और ब्राह्मणों के भी अपनी हाथों चरण धोते थे।

१- वांछितविक - चारकलाओं का विवरण देखिये

२- चार वांछितविक कलाओं में का विवरण देखिये ।

३- वापीमय होने के कारण अंतरिक्ष का नाम निबुंद में समुद्र जाया है ।

४- "चन्द्रमा अप्सवतरा सुपणों पावते दिवि।" कवेद

### राधा का ज्योतिष स्वल्प

---

कैनेक पण्डित राधा-कृष्ण तत्त्व में किसी धर्मतत्त्व को न मान कर ज्योतिष तत्त्व को मानते हैं। वेदों में विष्णु शब्द का प्रयोग सूर्य के अर्थ में हुआ है। प्रातः मध्याह्न और सायं का होना मानों सूर्य स्त्री विष्णु का त्रिपादों<sup>१</sup> परिक्रमण करना है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों में त्रिपात वामन अवतार के फलौप की कल्पा की जन्म मिला है। कृष्ण इन्हीं विष्णु के अवतार माने जाते हैं और सूर्य की रश्मि स्थानीय या प्रतिबिम्ब हैं। श्री योगेश्वर<sup>१</sup> राय ने दिखाया है कि पुराणादि में वर्णन जाने वाले गर्गमुनि एक ज्योतिष विशेषज्ञ था। उन्होंने जादित्य के अवतार कृष्ण का पहले जाविष्कार किया और कृष्ण के नामकरण से लेकर सारी शिक्षा दीक्षा का भार लिया। कृष्ण सूर्य का प्रतिबिम्ब है और गोपी तारका का।<sup>२</sup> कृष्ण की जितनी भी कृज में जन्म से लेकर बलीकिल लीलायें हुई हैं समस्त तारों पर जाधाति हैं। कृष्ण की रास लीला की ज्योतिष व्याख्या योगेश्वर ने इस प्रकार की है, "राधा नाम पुराना था और विशाखा का नामान्तर था। कृष्ण-यजुर्वेद में विशाखा, अनुराधा जादि नक्षत्रों का नाम है। राधा के बाद अनुराधा का नाम है। अतस्व विशाखा नाम राधा है। अथर्व वेद में "राधो विशाखे" यह स्पष्ट कथन है। विशाखा नाम का कारण यही है। इस नक्षत्र में शरद विष्णुव होता था और वर्ण दो शाखाओं में बंट जाता था। यह सैसा पूर्व २५०० सी की बात है। शायद इसके पहिले नक्षत्र का नाम राधा

---

१- भारतवर्ण पत्रिका, माघ १९४० अंगार

२- गो शब्द का एक अर्थ है "रश्मि" अतस्व सूर्य ही गोप और तारका गोपी है।

था, राधाश्रवण है सिद्धि। यह नाम क्यों पड़ा था, यह नहीं बताया जा सकता। कालक्रम में राधा और विशाखा एक हो गये हैं। महाभारत में कर्ण की धातृ-माता का नाम राधा है, और कर्ण राधेय के नाम से संबोधित होते थे। "

ज्योतिष में भी राधा का नाम विशाखा आया है :-

"राधा विशाखा पुष्पेति सिध्यतिष्यी नविष्टया।।" १

विशाखा की और कार्तिकी पूर्णिमा को सूर्य विशाखा में रहता है। राधा से सूर्यिका वृश्च मिला होता है। युक्त तारा और सूर्य दृष्टिगोचर नहीं हो सकते हैं। प्राचीन समय में लोग यह मानते थे कि तारा का ताराय सूर्य की रोशनी से ही है। गोप वृष्ण है, जो रश्मि है और गोपी तारा है। जिस प्रकार रवि के चंद्र और मंडलाकार में तारे हैं उसी प्रकार वृष्ण रास के मध्य में हैं और गोपिका में मंडलाकार हैं। चन्द्रमा पुच्छित नहीं है व्यक्ति कह राधा की प्रतिनायिका माना गया है।

यह उस बात से स्पष्ट है कि पूर्णिमा को चन्द्र की रवि से विपरीत दशा होती है। गुप्त रूप से क्मावस की रात्रि को चन्द्र-सूर्य मिलते हैं जिसका अभिप्राय है कि गुप्त रूप से वृष्ण चन्द्रावली की कुंभ में जाते हैं। वृणमानु वृण राशिस्थ मानुः रश्मि है ज़ीलिए राधा को वृणमानु की कन्या बताया गया है। राधा की जन्मी का नाम पद्म पुराण में "कीर्तिदा" आया है। ज़ी प्रकार ज्योतिष तत्त्वानुसार वृष्ण को वृण राशि में बताया जाने के कारण राधा की जन्मी का नाम वृष्ण माना है।

"वकी मवः वायतः" ज्यम में उदरायण के दिनों में जन्म होने के कारण वाफ की उत्पत्ति हुई और उदरायण फलशून्य नपुंसक हुआ। ज़ीलिए राधा के पति का नाम वाफपीण

।बाद में बाधान घोषा। कहलाता है। इसी प्रकार ज्योतिष तत्व के नाना विशाखों के नाम कवियों की कल्पना के आधार से रूपक बन गये। पौराणिक युग के इस जन्म ज्योतिष तत्व की परवर्ती काल के लोग भूल कर रूपक को ही सत्य मान बैठे। राधाकृष्ण की लीला का विकास उस प्रकार रूपकों से हुआ है। पुराणादि में जिन कृष्ण का उल्लेख मिलता है वह श्री योगेश चन्द्र के अनुसार सैठा पूर्व तीसरी सदी में हुए और राधा सैठ की तीसरी सदी में हुई।

परवर्ती काल में राधा की सहियों में विशाखा की मुख्य माना है परन्तु उसके वतिरिक्त कुराधा। ललिता। ज्येष्ठा, जिना, भद्रा आदि अन्य सहियों के नाम जाये हैं। तारका नाम की एक कृष्ण की देवी है। चन्द्रावली का दूसरा नाम सीमला मिलता है जिसका सम्बन्ध चन्द्र से है। कृष्ण के परिवार की अन्य कई स्त्रियों के नाम भी प्रसिद्ध नक्षत्रों के नाम पर रखे गये हैं। वासुदेव की पत्नी को रोहिणी, बलदेव की पत्नी को खेती और कृष्ण की बहन को जिना। सुभद्रा। कहा गया है।

श्री रूप गोस्वामी ने अपने नाटकों आदि में राधा का तारका रूप माना है। उन्होंने जो आसंकारिक वर्णन किये हैं उनमें कितने ही स्थानों पर इसका परिचय मिलता है। ललित भाषक के प्रथम अंक में राधा का दूसरा नाम तारा जाया है :-  
 "तारा नाम लोचोत्तरा कृष्णवा ।"

एक स्थान पर राधा को लेकर एक सुन्दर श्लोक की योजना की है :-

"वनुकमलताः पुष्करं चारुतारा ।

जयति जगद्गुरुं कामि राधाभिधाना ॥"

१- भविष्यवाचक और स्कन्द संहिता के मतानुसार, जीव गोस्वामी के श्रीकृष्ण चन्दर्म में उल्लिखित ।

\* वनुजधम श्री कृष्ण के वत्सलपी आकाश में जो राधा नामक एक जगदपूर्वा चारुतारा है - उसकी जया

विदग्ध माधव नाटक में सूत्र-धार-श्लोक में गाया है :-

\* सौऽयं वसन्तसमयः समिपाय यस्मिन् ।

पूर्णं तमीश्वरसु पौढनवानुरागम् ।

गूढग्रहा सचिरया सह राधयासी ।

रंगाय संगमभिता निशि पौर्णमासी ॥

ॐ कृष्ण मित्त के लिए देवी पूर्णमासी के साथ राधिका का आविर्भाव होता है इसी प्रकार वैशाख पूर्णिमा को राधा या विशाखा नक्षत्र के साथ पूर्णिमा का आविर्भाव होता है।<sup>१</sup> ह्मणोस्वामी की रचना में सै बीर भी लोक स्थलों पर उदाहरण मिलती हैं।<sup>२</sup> इन नाटकों में बहुत से स्थानों पर राधा सूर्य की उपासिका के रूप में हमारे सम्मुख आती है।

इससे प्रतीत होता है कि वैदिक युग के विष्णु का सम्बन्ध सूर्य के साथ था और ज्योतिष तत्त्व का पौराणिक युग में वर्णित कृष्ण लीला पर यथेष्ट प्रभाव था।

१- प्रति वैशाखपूणिमायां प्रायो विशाखानक्षत्रस्य सम्मत्तात् । विश्वनाथ चम्पती की टीका।

२- तुलसीम- वृन्दे राधामनुरुध्य मानेन विधुनेव मधुरीकृत्य -

माधवीया पौर्णमासी ।- दान कैली कौमुदी ।

तथा- ललित- महव्याहरेहि वृन्दे पहेलिं दिव्यमाहेति विष्णुाजी ।

फिरसहि किमहिदस्वार लखितज्जह माहवी भुजगी ॥

वृन्दा- सहि राधामित्यया ।

कृष्ण- युक्तमिदं यद्वैशाखपौर्णमासी माधवराशी ।- विदग्ध माधव, सप्तमः अंक

रास लीला का चन्द्रमा है विशेष सम्बन्ध है। चन्द्रमा

रासि चन्द्र से रास लीला करता है। प्राचीन काल में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से होती थी। कृत्तिका से गणना करने पर विशाला नक्षत्र जिसका दूसरा नाम राधा भी है सब नक्षत्रों के मध्य में जाता है और इस हेतु "रासेश्वरी" है। राधा के जाने के नक्षत्र को "वनुराधा" कहते हैं।

जिस पूर्णिमा को चन्द्रमा विशाला पर रहता है सूर्य कृत्तिका पर रहता है। सूर्य की चुम्बणारश्मि से जोकि संकुल स्थिति होती है विशालायुक्त चन्द्रमा प्रकाशित होता है। कृत्तिका के सूर्य के "वृष" रासि होने के कारण यह राधा वृषभानु सुता कहलाती है। कार्तिकी पूर्णिमा जबकि पूर्ण चन्द्रमा है। पूर्णिमा का चन्द्रमा। राधा के ठीक सम्मुख कृत्तिका पर जाता है रास का मुख्य दिन है। इस प्रकार से ये ज्योतिष की घटनायें भावान् श्रीकृष्ण की "रास लीला" पर बिल्कुल ठीक घटती हैं और राधा "रासेश्वरी" का रूप धारण कर लेती है।

#### राधा का धार्मिक स्वरूप-

बारहवीं सदी में श्री राधा की जो धर्म मत से मिली जुली प्रतिष्ठा मिलती है। स्पष्ट रूप से किसी दार्शनिक मतवाद का मिश्रण उससे नहीं मिलता है। बारहवीं सदी के साहित्य विशेषकर लीला श्रुति के कृष्णकणामृत और जयदेव के गीत गोविन्द से लीला वाद की प्रधानता हुई और राधावाद की प्रधानता होने लगी। वहिःसृष्टि के आधार पर ही लीला होती है स्वरूप शक्ति का लीला है विशेष विशेष सम्बन्ध नहीं है। लक्ष्मी के रूप में जिस लीला विलास का वाचास पुराणों

में मिलता है, जिस लीला विलास के सौंदर्य श्री सम्प्रदाय में मिलते हैं उसी लीला विलास की वैष्णवों ने बारहवीं सदी में राधा और कृष्ण की अप्रकृत लीला के रूप में वात्स्यादन किया। जयदेव के समय में राधा कृष्ण के युगल से बर्फी की जरा दूर हटाकर लीला-दर्शन, लीला-वात्स्यादन और लीला का जयान ही भक्तों की चरम प्रार्थनीय वस्तु बन गई। धर्म के क्षेत्र में जयदेव का मूल स्वर गुंज उठा। लीलाभय के माधुर्य की महिमा सब जगह गाई जाने लगी। मधुर रस का धनीभूत विग्रह राधा होने के कारण उसकी प्रतिष्ठा सब जगह मधुर रस के बाधार पर होने लगी और उस माधुर्य रूपिणी देवी के कारण भावान् श्रीकृष्ण भी मधुर बिलाई देने लगे। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार होने लगा। निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण की परब्रह्म माना गया और लक्ष्मी, श्री नीला आदि के स्थान पर गोपिनी राधा की ही कृष्ण की शक्ति माना जाने लगा। श्रीकृष्ण भावान् को "स्मापति" "श्रीपति", "सामानस हंस" के रूप में मान प्रेमायिनी राधा को उनकी वामांग विशारिणी माना गया। निम्बार्क ने लिखा है - "वृणभानुनन्दिनी । राधिका । देवी की स्मरण करता हूँ- जो अनुस्य सौभाग्य के रूप में । कृष्ण के। बाँधे जंग में जानन्द से विराज रही हैं, जो हजार सत्तियों के द्वारा सदा परितेवित होती हैं और जो सारी मनः कामनाएँ पूरी करती हैं। ऐश्वर्याधिष्ठात्री लक्ष्मी के स्थान पर प्रेमाधिष्ठात्री ज्य वृणधू की प्रेमात्री होने के कारण प्रधानता मानी जाने लगी। निम्बार्कचार्य ने "प्रातः स्मरण स्तोत्र" में राधा कृष्ण के बारे में लिखा तथा "कृष्णाष्टक", "राधाष्टक" आदि की रचना की।

सौतहवीं शताब्दी में गौड़ीय वैष्णव मतावलम्बी वैष्णव गौस्वामियों में राधा तत्व का विकास हुआ। भक्तराय रामानन्द का चैतन्यदेव से गौदावरी



के तीर पर जी विस्तृत विचार हुआ उससे प्रतीत होता है कि दक्षिणदेशीय वैष्णवों में राधातत्व प्रबलित था। चैतन्य चरितामृत की देखने से प्रतीत होता है कि दक्षिणात्य भ्रमण के बाद ही महाप्रभु के राधा-भाव का सम्यक् विकास हुआ। गौड़ीय वैष्णवों का दार्शनिक मत विशेषकर सनातन, रूप और जीव गौस्वामी के संस्कृत ग्रन्थों पर आधारित है। जीव गौस्वामी के "श्रीकृष्ण सन्दर्भ" और "प्रीति सन्दर्भ" की राधातत्व रूप गौस्वामी के "संदीप भागवतामृत" और "उज्ज्वल नीलमणि" से मिलता है।

श्रीमद्भागवत में परमात्मत्व के तीन रूप मिलते हैं। जो ज्ञेय ज्ञान है उसी की तत्त्व जानने वाले तत्त्व कहते हैं, वह ज्ञेय ज्ञान तत्त्व ही ब्रह्म परमात्मा और भावान् कहलाता है।<sup>१</sup> "भा" शब्द का अर्थ ऐश्वर्य है, विविध विभिन्न शक्ति ही सारे ऐश्वर्यों की देती है, क्सीलिय पूर्ण विकसित शक्तिमान पुरुष को भावान् कहते हैं। यही भावान् परमात्मा के रूप में जीव और जड़ का रूप प्रकृति के संज्ञ में प्रतिभात होते हैं। भावान् केवल स्वयं शक्ति में ही विलास करते हैं। ब्रह्म और भावान् गौड़ीय मत में वंश और वंशी समझे जाते हैं। जीव गौस्वामी ने "भावत-संदर्भ" के सारे विवेचनों के अन्त में भावान् का वर्णन इस प्रकार किया है :- जो सच्चिदानन्दरूप, स्वयंभूत, अचिंत्य-विभिन्न-अन्तःशक्तियुक्त हैं जो धर्म होकर भी धर्म हैं, निर्मल होकर भी मल युक्त हैं, अरुणी होकर भी रूपी हैं, व्यापक होकर भी परिच्छिन्न हैं, जो परस्पर विरोधी अन्त गुणों के निधि हैं, जो स्थूलसूक्ष्मचित्ताण स्वप्रकाशावच्छिन्न स्वयंभूत श्री विग्रह हैं, स्वानु-रूपास्वशक्ति की आविर्भावितदाणा लक्ष्मी के द्वारा जिनका वाभांश रंजित है, जो स्वप्रभा विशेषाकार रूप परिच्छिन्न और परिकर सहित निज वाम में विराजमान हैं, जो स्वयं शक्ति के विलास रूप जडभूतगुण लीलादि द्वारा आत्मकाराम मुनिगणों के चित्त की भी लीलास्व

१- वदन्ति तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमवयम् ।

प्रीति परमात्मेति भावानिति शब्दः ॥

से जन्मलूत करते हैं, जो स्वयं सामान्य प्रकाशकार में ब्रह्मतत्त्व के रूप में अवस्थित हैं, जो स्वयं जीवात्म्यतटस्थाशक्ति के बीर जगत् प्रपञ्च के मूलीभूत मायाशक्ति के वाक्य हैं, वही भावान् हैं।”

एक प्रकार हम कहते हैं कि एक ही वाक्य ब्रह्मण्ड परमतत्त्व के शक्ति प्रकाश से तीन भेद हैं। ब्रह्मावस्था में इन शक्तियों का अस्तित्व बीर तीला विभिन्नता कुछ क्षुब्ध में नहीं जाती। भावान् जीवशक्ति और मायाशक्ति से प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट न होने पर भी उन शक्तियों के मूलान्नय स्वरूप शक्ति में तीला मग्न रहते हैं। परमात्मा का सीधा सम्बन्ध स्वरूप शक्ति से न होकर जीव शक्ति और माया शक्ति से है। भावान् की अचिन्त्य अनन्त शक्ति के तीन रूप हैं :- अन्तरंगा स्वरूप शक्ति, तटस्था जीव शक्ति और बहिरंगा माया शक्ति। विष्णु पुराण में शक्ति को परा, पौत्रजा और त्रिजा कहा है। स्वरूप शक्ति प्रकृति से परे अप्राकृत नित्य गौलीक धाम की वस्तु है जीव तथा माया शक्ति दोनों ही प्रकृति के वश में होने के कारण प्राकृतिक शक्ति हैं। जीव शक्ति और माया शक्ति का संघन भावदश पुरुष परमात्मा होने के कारण भावान् से उनका परीक्षा सम्बन्ध है। भावान् की एक अनन्त शक्ति को त्रिविधा न कहकर चतुर्विधा भी कह सकते हैं। स्वाभाविक अचिन्त्य शक्ति के द्वारा एक ही परम तत्त्व प्रपञ्चः सर्वदा स्वरूप में, द्वितीयः तद्रूपीय में, तृतीयः जीव में, और चतुर्थः प्रधान या प्रकृति में अवस्थान करता है। जिस प्रकार सूर्य प्रपञ्चः अन्तर्मण्डल के तेज, <sup>के रूप</sup> द्वितीयः अन्तर्मण्डल के संलग्न तन्मीमण्डल के रूप में, तृतीयः मण्डल से निकली वाली रश्मि के रूप में और चतुर्थः उसकी प्रतिच्छवि के रूप में अवस्थान करता है उसी प्रकार सूर्य के अन्तर्मण्डल के तेज के अनुरूप परमतत्त्व के स्वरूप का अवस्थान, मण्डल तद्रूप वैभवं के रूप में जीव मण्डलरहित रश्मि के रूप में और जगत् प्रतिच्छवि के रूप

में अवस्थान है। इस क्षुधाविवस्थान से त्रिविधा शक्ति का ज्ञान हुआ। स्वल्प शक्त्यास्या  
 कतरंगा शक्ति के द्वारा वे पूर्ण भावान् के स्वल्प में और वैकुण्ठादि स्वल्प के रूप में  
 रश्मि स्थानीय तटस्था शक्ति के द्वारा "चिदात्म शुद्ध जीव" के रूप में और मायास्या  
 बहिरंगा शक्ति के द्वारा ।प्रतिच्छवि गत वणशाबल्य स्थानीय बहिरंगवैभव जडात्म प्रधान।  
 प्रकृति के रूप में अवस्थान करते हैं। पुराणादि में कथित भावान् की "उपरा" शक्ति माया  
 की गौडीय वैष्णवों ने "तदमात्रया" शक्ति कहा है। कतरंगा स्वल्प शक्ति श्री भावान्  
 की पटरानी की भांति और बहिरंगा मायाशक्ति बहिर्हसिबिका दासी की भांति है।  
 जीव गीस्वामी ने भागवत- पुराण के "तोऽर्थे यत् प्रतीक" वादि श्लोक की व्याख्या  
 करते हुये कहा है :- "परमात्मस्वल्प मेरे सिवा ही जो प्रतीत होता है, मेरी प्रतीति है  
 जिसकी प्रतीति का अभाव है मेरे बाहर ही जिसकी प्रतीति है- अगर अपने बाप जो प्रतीत  
 नहीं हो सकता है अर्थात् यदात्रयत्व के बिना जिसकी कोई स्वतः प्रतीति नहीं है- वही मेरी  
 माया है- जीव माया और गुणमाया।"

परिणामवादी वैष्णव गण जीव और जगत् को विवर्तन न  
 बताकर ब्रह्म का ही परिणाम बताते हैं। सृष्टि वादि लोकार्थ ईश्वर का सत्य संकल्प, सत्य  
 परायण परिणाम होने के कारण भ्रम और मिथ्या न होकर सत्य है। जीव शक्ति स्वल्प  
 शक्ति और बहिरंगा माया शक्ति दोनों के बीच की होने के कारण तटस्था-शक्ति के रूप  
 में प्रसिद्ध है। जीव शक्ति असंख्य है जिसके भावद् उन्मुक्त और भावद् विमुक्त दो वर्ग हैं।

१- स्मैव तत् परमतत्त्वं स्वाभाविकाचिन्त्यशक्त्या सर्वैव स्वल्पतद्रूपैर्भागीवप्रधानस्मैण  
 क्षुधाविवतिष्ठते। सूयान्तर्मण्डलस्थीज एव मण्डलतः बहिरंतरश्मि- तत्प्रतिच्छविस्मैण।-

"भावतुल्यदर्भ"

३- परमात्म संदर्भ, ७१

२- २-५-४-५ ॥

भावद् ज्ञान भाव और भावद् ज्ञान का अभाव उनके कारण है। भावद् उन्मुक्त जीव नित्य भावत परिकरत्व को प्राप्त होता है और भावद् विमुक्त जीव माया के द्वारा परिकृत लेकर संतारी होता है। सौपाधिक जीव, प्रकृति पुरुष दोनों के मिलने से उत्पन्न होता है। त्रिगुणामिका प्रकृति के कल होने के कारण, शुद्ध जीव रूप पुरुष भी बाध है। माया जीव में स्वल्प विस्मृति उत्पन्न करती है। ईश्वर प्रपत्ति के द्वारा ही माया से छुटकारा मिलता है। माया शक्ति जड़-~~स्वभाव~~ स्वभावा है और जीव शक्ति चैतन्य स्वभावा है। अणुस्वभावा जीव शक्ति को रहस्य स्थानीय कृतकण होने के कारण भिन्न विच्छिन्न भी कहते हैं जो कि भावान् की स्वरूपभूता निच्छिन्न नहीं है। अणुस्वभाव जीव भावान् का ही अंश है।

भावान् के ऐश्वर्य और माधुर्य की पूर्णता स्वल्प शक्ति के साथ विच्छिन्न सीता विलास में है। वीर्य, यशः आदि भावान् के हः गुण स्वल्प शक्ति के ही भिन्न भिन्न विकास हैं। ~~माया~~ माया के द्वारा भावान् भावद्रूप में परिमित, अनुभूत तथा लक्षित हैं अतएव स्वल्प शक्ति भी भावान् की मायी है। कहा है "मायास्या स्वस्मभूता नित्य शक्ति से युक्त होने के कारण सनातन विष्णु को भी मायामय कहते हैं।" स्वल्प शक्ति भावान् की आत्म माया है जिसका तात्पर्य भावदिच्छा है और जो विच्छिन्न है। माया प्रकृति से परे शुविशुद्ध भावतत्त्व में स्वल्प शक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति वृत्ति नहीं है। सच्चिदानन्द स्वल्प भावान् के स्वल्प में तीन धर्म मिलते हैं सत्, चित और आनन्द। इन तीन धर्मों का वाक्य लेकर भावान् की स्वल्प शक्ति भी तीन प्रकार की हुई :- संचिनी, संचित और ह्लादिनी। विष्णु पुराण में बताया है, "सबके आधारभूत आप में ह्लादिनी अनिरन्तर बाह्लादित करने वाली। और सन्धिनी । विच्छेदरक्षिता, संचित् । विवाशक्ति।

१- भावत-संदर्भ में उद्धृत "चतुर्वेदशिष्यनवा" नाम्नी श्रुति। "महा संहिता" में कहा गया है :- "आत्म माया तदिच्छा स्यात् ।"

अभिन्न रूप से रहती है। बाप में । विषय जन्य। बाह्यलाव का ताप देने वाली । सात्विकी या तामसी। अथवा उभय मित्रा । राजसी। कोई भी संवित् नहीं है, क्योंकि बाप त्रिगुण<sup>१</sup> है। यहाँ ह्लादकरी शक्ति का अर्थ सत्त्वगुणात्मिका शक्ति, ताफ़री का अर्थ तामसी शक्ति, मित्रा का अर्थ राजसी शक्ति है। भवान् के सत्, चित् और ज्ञानान्दांश पर ही संधिनी, संवित् और ह्लादिनी शक्तियाँ जाश्रित हैं। संधिनी शक्ति सतता अर्थात् सदाकरी, संवित्-विद्याशक्ति और ह्लादिनी-बाह्यलाव करी शक्ति है। ह्लादिनी शक्ति के द्वारा भवान् स्वयं ह्रास्वरूप होकर बाह्यलापित होते और दूसरों को बाह्यलापित करते हैं। संधिनी के द्वारा सदा रूप होकर भवान् सदा धारण करते और धारण कराते हैं, संवित्-शक्ति के द्वारा भवान् ज्ञान रूप होकर स्वयं जानते और दूसरों को जानाते हैं। सदा के परम उत्कर्ष से संवित् के पाये जाने के कारण संधिनी से संवित् प्रधाना है और संवित् के चरम उत्कर्ष के द्वारा ही ज्ञानानुभूति होने के कारण ह्लादिनी शक्ति सर्व श्रेष्ठ है।

स्वरूप भूता मूल शक्ति के अन्दर जब स्वप्रकाशासदाणवृत्ति विशेष के द्वारा जब भवान् के स्वरूप का आविर्भाव होता है तो उसे विशुद्ध सत्त्व कहते हैं। जिसमें त्रिगुणात्मिका माया का स्पर्शाभाव होता है। विशुद्ध सत्त्व में संधिनी <sup>प्रधान</sup> अंश होने पर "बाधार-शक्ति", संवित्-अंश प्रधान होने पर "वात्म-विद्या", ह्लादिनी-सारांश प्रधान होने पर "गुह्या-विद्या और एक ही साथ तीनों शक्तियों की प्रधानता होने पर भवान् की मूर्ति होती है। विशुद्ध सत्त्व में ह्लादिनी की प्रधानता होने पर श्री का प्रादुर्भाव होता है जो सम्पद्-रूपिणी है। अन्तवृत्ति काया स्वरूप शक्ति ही भावनामांश वर्तिनी लक्ष्मी है। भवान् की स्वरूपभूता अंतरंगा महाशक्ति ही महालक्ष्मी है। श्री शक्ति के अप्राकृत

१- ह्लादिनी संधिनी संवित्वयुक्ता सर्वसंस्थिता ।

ह्लादताफ़री मित्रा त्वयि नो गुणवर्जिता ॥

विष्णु पुराण १।१२। ६६ गीता प्रेस गीतपुर

बीर प्राकृत भेद से दो रूप हैं। महालक्ष्मी के संधिनी, संवित् बीर ह्लादिनी तीन भेद हैं। भावान् की स्वरूप शक्ति के अन्दर स्वप्रकाशात्मक वृद्धिविशेष है जोकि विशुद्धस्व है जिससे भावान् श्रीकृष्ण के धाम, परिकर, सैवकादि रूप वैभव का विस्तार होता है। इस स्वरूप वैभव के अन्तर्गत ही सीता पाण्डे गण हैं इसी के साथ श्रीकृष्ण की सीता वैष्णव होता है। इस वैभव में प्रथम धामतत्त्व है। भावान् बीर उनका धाम एक है बीर वैकुण्ठादि धाम उनके स्वरूप के शुद्ध सत्त्वमय विस्तार है। भावद्-धाम भी भावान् के समान नित्य है। समस्त धामों में उच्च गौलीक है जिससे गौकुल बना है। अप्रकट गौकुल बीर प्रकट गौकुल एक है। श्रीकृष्ण की अनन्त अचिन्त्य शक्ति से प्रकट बीर अप्रकट धाम तथा सीता का विस्तार होता है। श्री कृष्ण की सीता विचित्रता के अनुसार कृष्ण लीक के द्वारका, मथुरा बीर वृन्दावन तीन प्रकाश हैं। तीनों धामों में भावान् की सीता भी तीन प्रकार की है बीर परिकरादि भी तीन प्रकार के हैं। प्रकट धाम के अनुसार ही अप्रकटधाम में यमुनादि नदियाँ, कुंज-निकुंज कल्मष-वशीक, गोप-गोपी, धेनु वत्स, शूरासी आदि हैं। द्वारका-मथुरा में यादवगण ही कृष्ण के सीता-परिकर बीर गोप-गोपीगण ही नित्य परिकर है।

स्वरूप में भावान् सम्यक् हैं। स्वरूप शक्ति के अन्दर ही ह्लादिनी शक्ति इस सम्यक्ता का कारण है। ह्लादस्वरूप भावान् की बाह्यादित करना तथा दूसरों की ह्लाद दान करना बाह्याद के दो काम हैं। जहाँ जीव कौटि बीर भावान् कौटि दोनों दोनों में प्रवेश है। " भावत् कौटि में अवस्थित ह्लादिनी भावान् की विचित्र सीतास के दान के द्वारा सम्यक् कर रही है, बीर जीव कौटि में प्रवेश करके वह ह्लादिनी पवित्र भक्त के हृदय में बाधित होकर विशुद्धतम आनन्द का विधान कर रही है। " जीव का भावान् की बीर उन्मुख होकर आनन्द प्राप्त करना ही मन्त्र है। ह्लादिनी भावान् में सस्रपिणी

वीर भक्त हृदय में भक्ति रूपिणी है। राधा स्वरूप शक्ति की सारभूता ह्लादिनी शक्ति की भी सार हैं। वह नित्य प्रेम स्वरूप की प्रेम-स्वरूपिणी हैं। वह प्रेमदात्री भी हैं। राधा श्रीकृष्ण में ह्लादिनी शक्ति के रूप में अवस्थान करती हैं। ह्लादिनी शक्ति का रूप जीव के भीतर गिर वाष्पुत करने के कारण राधा भावान् की प्रेम कल्पलता वीर भक्त की भी प्रेम कल्पलता कहलाती है।<sup>१</sup> भावान् की स्वरूप शक्ति लक्ष्मी या महालक्ष्मी या महालक्ष्मी भावान् के ऐश्वर्य, कारुण्य, माधुर्य आदि की आधार हैं। ह्लादिनी शक्ति समस्त शक्तियों में सारभूता शक्ति है और उसकी विग्रह राधिका ही कृष्ण शक्तियों में श्रेष्ठ हैं। लक्ष्मी की परिणति गोपियों तथा राधिका के रूप में हुई जिनमें राधिका श्रेष्ठ हैं। गौतोक कृष्ण धाम में लक्ष्मी की प्रतिमूर्ति रूपिणी का अवस्थान आकाश-मधुरा में है सर्वोत्तम धाम वृन्दावन में राधा गोपियों के साथ वास करती हैं। वृन्दावन की कृष्णवियों भावान् की स्वरूप शक्ति प्रादुर्भाव रूपा होने के कारण "वृन्दावन-लक्ष्मी" हैं। कृष्ण वधुर ह्लादिनी की रहस्य लीला में प्रसन्न हैं। राधिका का स्वरूप "प्रेमात्मिका" पराकाष्ठा मय है क्योंकि "परममधुरप्रसूति-मयी" कृष्ण गोपियों में वे सारांशोत्कृष्टी हैं। उनमें लक्ष्मीत्व है। भगवत् शक्ति के रूप में सर्वश्रेष्ठ राधिका में शक्तितत्व ही नहीं है वे सत्य और नित्य किशोर्वती भी हैं।

१- "कृष्णके बाणलादे ताते नाम ह्लादिनी ।

सैव शक्तिद्वारे सुख आस्वादे आपनि ॥

सुखरूप कृष्ण करे सुख आस्वादन ।

भक्तगण सुखदिते ह्लादिनी कारण ॥ चरितामृत मध्य ८ म

वीर भी :- ह्लादिनी कराय कृष्ण आनन्दास्वादन ।

ह्लादिनी आराय करे भक्तैर पूजण ॥ वही आदि १ ध

२- श्रीकृष्ण सन्दर्भ ।

“ प्रेम पराकाष्ठा में मिलित यह जो अप्राकृत वृन्दावन नाम का युगत रूप है वही भक्तों के लिए आराध्यतम वस्तु है। इस वृन्दावन में श्रीकृष्ण और राधा नित्य-किशोर किशोरी हैं, नित्य किशोर किशोरी की यह नित्य प्रेम लीला ही एक मात्र वास्वावा है। कहा जा सकता है कि दोनों एक होकर भी लीला के कहाने दो हैं - ब्रज में ही भ्रम है। अचिन्त्य शक्ति के बल से ही इस ब्रज में लीला विलास से भ्रम है, यही अचिन्त्य भ्रमाभ्र है। ”

कृष्ण की पूर्ण रस स्वरूपता ह्लादिनी शक्ति के सहारे दूसरे के अन्दर प्रेम भक्ति का संचार करती है। ह्लादिनी का जितना संचार जिसके अन्दर होता है वह उतना ही भक्त होता है। स्वयं पूणह्लादिनी रूपा होने के कारण राधिका में प्रेम भक्ति की प्रकाश-पराकाष्ठा है और वे कृष्ण की सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। ह्लादिनी शक्ति संवित् शक्ति का ही चरमोत्कर्ष होने के कारण कृष्ण प्रेम निर्वस्तु और चिदानन्द स्वयम् है।

कामोर्ध्वकम्पकार के द्वारा उत्पादक होने पर अनुरागमहाभाव रूप में परिणत हो जाता है<sup>२</sup>, जो कि राधिका का स्वरूप है। राधिका के अतिरिक्त और किसी में प्रेम नियमि रूप में महाभाव की पराकाष्ठा संभव न होने के कारण ये प्रेम पराकाष्ठा रूपिणी हैं। कृष्ण की गोपियों को महाभाव का अधिकार है परन्तु राधिका प्रेम वृन्दावन की वृन्दावतीश्वरी हैं और महाभाव का पराकाष्ठा रूप “अधिरूढ़ महाभाव” केवल उनकी ही है। राधिका में कृष्ण सेवा, कृष्ण परानिष्ठा, कृष्ण में सम्पूर्ण मुक्त परम स्वयम् भाव और समभाव तथा कृष्ण में ममताधिक्य आदि वृत्तियाँ और वैष्टावों की अवधि है। प्रेम प्रकाश की विशेष तीव्रता होने के कारण राधिका में श्रीकृष्ण के सारे रसमयत्व की अनुभूति और वास्वावन की परम स्फूर्ति है।

१- राधा का रूप विकास - शशिभूषणदास गुप्त पृ० २०१

२- अनुराग स्वासमोर्ध्वकम्पकारणोत्पादकी महाभावः ॥



परतत्त्व नित्य" परास्य-स्वरूप शक्ति निम्नलिखित विशेष है। यह

परतत्त्व स्वप्राधान्य से स्फूर्ति पाने पर पुरुषोत्तम और परास्य शक्ति के प्राधान्य के कारण स्फूर्ति पाने से धर्मादि संज्ञा पाता है। श्री शशिभूषणदास गुप्त लिखते हैं—  
 पराशक्ति ही भावान् के ज्ञान-सुख-कारुण्य-ऐश्वर्य आदि के माधुर्य-धर्मरूपा होकर स्फुरित होती है। वह शक्ति ही शब्दाकार में नामरूपा, परादि वाकार में धामरूपा होकर प्रकट होती है और वही पराशक्ति "सुखादिनी सार-समेत-संविदात्मक" अर्थात् सुखादिनी का सार धनीभूत होकर जिस गहरे संवित् की उत्पन्न करता है वही संवेदात्मक। युक्तीत्य के रूप में श्री राधादि के अन्दर विकसित होती है। इसलिए शक्ति और शक्तिमान् रूप राधा कृष्ण का <sup>सम</sup>जोड़ होने पर भी अखण्ड ज्ञेय स्वरूप के अन्दर "विशेषविजृम्भित" भवकार्य के द्वारा राधादि रूप विभाव का वैलक्षण्य विभाजित होने पर ही शृंगारमिलाप सिद्ध होता है। पराशक्ति की यह जो राधादि के रूप में धर्मादिरूपा है यह किसी स्वरूप कारण की अपेक्षा करके बाद में पड़ती है ऐसी बात नहीं, यह धर्मादिरूपा ही अनादि सिद्ध है अतएव इस प्रेममिलाप के द्वारा श्री भावान् की पूर्णस्वरूपा की कोई हानि नहीं पहुँचती ।।"

### राधा का यौगिक स्वरूप-

विश्व की गति । Motion Vibration । ही प्रधान

है जो निरन्तर बढ़ है। जैसी निरन्तर बढ़ गति को हम भावान् का रास कह सकते हैं। रास में वाय्यायी समाधि माणा में लिखी गई है। इसमें बताई हुई रास तीला का स्वरूप जिस दृष्टि से समझना चाहें उस दृष्टि से ही समझकर सुख प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ

प्रवृत्त हो उसके रहस्य को समझने वाला उसके सच्चे आनन्द का अनुभव कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को भावान् अपनी मधुर वाङ्मयान से इस रास के लिये आमन्त्रित करते हैं। बुद्ध निश्चय के साथ सम्पूर्ण अभिमान दूर कर इस बीर अक्षर होने वाला परम शान्ति और आनन्द प्राप्त करता है। तथा दूसरे लोग अपनी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार ही जागे बढ़कर रह जाते हैं। ब्रह्मात्म पदा में कृष्ण परमात्मा हैं और राधा तथा गोपियां उनके जीव हैं। वृन्दावन बल्लभियों का गोकुल है सहस्र दल कमल है। पं० बलदेव प्रसाद मिश्र के शब्दों में योग की दृष्टि से रास का रहस्य इस प्रकार समझा जा सकता है "आज्ञा बाद ही भावान् श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि है, उनके नाड़िया ही गोपिकायें हैं, कुल कुण्डलिन ही श्री राधा हैं और मस्तिष्क का सहस्र दलकमल ही वह सुरम्य वृन्दावन है जहाँ आत्मा और परमात्मा का सुखमय सम्मिलन होता है तथा जहाँ पहुँचकर ईश्वरीय विभूति के साथ जीवात्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ सुरम्य रास रक्ती हुई नृत्य किया करती हैं।"

कृष्ण सीता के पाँच सूत्र ब्रज, गौरं, ब्रज गोपाल, गोप तथा गोपी हैं। उपनिषद् तथा अन्य रहस्य ग्रन्थों में इनके अर्थ दिये गये हैं। यह शरीर ब्रजभूमि है, जीव गोप और वृत्तियाँ गोपियाँ हैं। वैदिक साहित्य में भी अन्य अन्य स्थलों पर इन्द्रियों को श्रौ की संज्ञा दी गई है। वेदान्त सूत्रों को शारीरिक सूत्र भी कहते हैं। श्री हस्तिना ताल जी ने तत्त्व के स्वरूप का विवेचन शरीर का रूपक बाँधकर इस प्रकार किया है "इस पुरुष का शरीर शुद्ध प्रेम है और इसके इन्द्रिय, मन तथा आत्मा भी शुद्ध प्रेम ही हैं। इस पुरुष का शरीर ही श्रीवृन्दावन घाम है। इन्द्रियाँ सखी परिकर हैं, मन श्रीकृष्ण है और आत्मा श्रीराधा हैं। इस प्रकार चारों मिलकर एक ही त्रित पुरुष है।"

१- रास सीता में आध्यात्मिक तत्त्व- पं० बलदेव प्रसाद जी मिश्र श्रीकृष्णांक पृ० १६४

२- देखिये ब्रज का आध्यात्मिक रहस्य- वासुदेव शरण अग्रवाल - पीदार अभिनन्दन ग्रंथ पृ० ४०

३- श्रीराधा रहस्य- आचार्य हस्तिना ताल जी गोस्वामी - श्रीकृष्णांक पृ० ४८३

“ राधा श्रीहरि कृपा स्वी गुप्त-गंगा सदा बहने वाली धारा है। इसीलिए जो गुप्ती, गोपनीया अथवा गोपी कहते हैं। इसका उद्गम स्थान जीवन मात्र का हृदय है। यह बाह्यादिनी शक्ति हृदय-कमल पर ही प्रतिष्ठित है। सम्बिदानन्द से उसकी जोड़ी मिली हुई है कि वहाँ पृथक्त्व सम्भव नहीं है। जैसे “र” कार में “व” कार मिला हुआ है। “र” कार श्री हरि हैं और “व” कार बाह्यादिनी शक्ति। जब मनुष्य की जाति की फुलती भीतर को सुलती है तब पलती दृष्टि हृत्कमल पर अंकित स्वं सङ्कार के “म” कार से सम्बन्धित और सुस्पष्टित स्त्री “रा” पर पड़ती है। दृष्टि और दृश्य के समन्वय को राधे कहते हैं। ”

श्रीवृन्दावन की देह, श्रीकृष्ण की मन, इन्द्रियों की स्त्री परिकर और राधा का प्राणात्मा भी कहा जाता है। श्री किशोरी शरण बलि नेब “रसम भक्ति” का विवेचन करते हुये लिखा है, “ भुक्तियों से जांचर, श्री, कृष्ण, शिव, शुक और सनकादिकों से अतत्त्व जो रस कमी नन्दनन्दन और वृषभानु नन्दनी नाम से कृष्ण में अवतीर्ण हुआ था। वह परात्पर रस ही तब अभिनव धारा का परमाभास्य है। जो कि प्रकृत्या झीड़ा प्रिय होने के कारण झीड़ार्थ अपनी प्राणात्मा को राधा, मन को श्रीकृष्ण देह को श्री-वृन्दावन और इन्द्रियों को स्त्री बनाकर नित्य किशोर वायु से श्रीवृन्दावन में ही बनादि कात से नित्य झीड़ा किया करता है। ”

-----:0:-----

१- श्री राधे महात्मा श्री नात्कराम जी विनायक राधांक पृ० ३३

२- श्री हित राधा वल्लभीय- साहित्य रत्नावली की भूमिका - किशोरी शरण बलि पृ. ३

## तृतीय अध्याय

संस्कृत साहित्य में राधा का स्वरूप

### वेद और वैदिक साहित्य

साधारण सोचनात में भ्रुति शब्द से समस्त वैदिक साहित्य का बोध होता है। किन्तु अधिकांश विद्वानों ने वेदों के केवल मां भाग को ही भ्रुति माना है। पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों की उत्पत्ति ऐसा से ज्ञात बाठ सदस्र वर्ष पूर्व से पहले नहीं मानी परन्तु वेदों के अन्तःसाध्य से पता चलता है कि वेदों की उत्पत्ति सृष्टि के साथ हुई। ऋग्वेद में लिखा है :-

“ तस्मात् यज्ञात् सर्वं क्वः साधानि यज्ञिरे ।

इंदांश्च यज्ञिरे तस्मात्सुः तस्मादजादत ॥ ” ऋग्वेद मंडल १० सूक्त ६०

ऋग्वेद और अथर्ववेद से सिद्ध होता है कि परम सृष्टि के साथ ही चारों वेद उत्पन्न हुए। ज्योतिष के अनुसार यह गणना विज्ञानीय संवत् के सौर वर्ष १६६२ की समाप्ति तक १६५५५५५५०९७ (एक लाख पितानों करोड़, अष्टावन लाख पितानों हजार सहस्र) सौर वर्ष और ५६ दिन होती है। वैदिक साहित्य का संस्कृत और विभाजन कई बार होने के कारण वास्तव उसके बहुत से संस्करण और माठान्तर मिलते हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार से यह ज्ञात होता है कि वेद व्यास ने १११११ के अन्त में वेदों का पुनः संस्कृत किया। सत्ययुग के दीर्घकाल में वेदों का कई बार उदार हुआ। महाभारत के शत्य युग में एक कथा आई है कि एक बार वर्षा न होने के कारण कृषि लोग बारह वर्ष तक देश से बाहर रहे और वेदों की भूल गये तब दधीचि तथा सरस्वती

के पुत्र सारस्वत ने ऋग्वेदों को फिर से वेद पढ़ाये। फिर दत्तात्रेय ने भी वेदों का उद्धार किया। वेदों के सभी भाष्यकार इस बात से सहमत हैं कि वेदों में अनुज्वल रूप से प्रधानतः तीन विषयों का प्रतिपादन है :-

१- र्गकाण्ड

२- ज्ञान काण्ड

३- उपासना काण्ड

वेदों के भाष्यकार हैं ऋग्वेद का नाम सबसे पहले बताया है। इसके प्रधानतः उस विभाग है जो मण्डल कहलाते हैं। प्रत्येक मण्डल में सूक्तों का संग्रह है। मत्स्य पुराण के अनुसार त्रेतायुग में एक ही वेद यजुर्वेद था। ज्योति के वृत्तान्त सभी का समावेश था और त्रेतायुग में यज्ञार्थ की ही प्रधानता थी। यजुर्वेद अधिकांश गन्धर्वों में है। साम मन्त्रों का गान होता है और इसके मन्त्र यज्ञ में काम करते हैं। पुरुष सूक्त के मन्त्र के अनुसार ऊर्वाची के नाद सामों की वापसि का ही नाम रखा गया है :-

“ ऋचः सामानि जज्ञिरे ब्रह्माग्निं जज्ञिरे,

तस्याप्यनुस्तस्मादजायत ॥

वेदमयी में सामवेद का नाम तीसरा बताया है। इसके सभी मन्त्र गाये जाने वाले हैं जिनका नाम साम है। अथर्ववेद का नाम उस वेदों में है जो पीछे बताया है। अथर्व नामक ऋषि के देवता के कारण इसका नाम अथर्ववेद पड़ा। यह भी भागों में विभक्त है। अथर्ववेद की संहिता में भीष काण्ड है। यज्ञार्थ की अच्छी तरह बताने के लिये ऋग्वेद होता

के लिए, यजुर्वेद ब्रह्मर्षि के लिए, सामवेद उस्ताता के लिए और अथर्ववेद ऋषि के लिए है।

### ----- ब्राह्मण ग्रन्थ- -----

वेदों के उपरान्त "ब्राह्मण" का स्थान जाता है। ये सम्पूर्णतया गद्य में हैं। इन रत्नावली का उद्देश्य यज्ञविधि आदि कर्मकाण्ड पर प्रकाश डालना था। ब्राह्मणों की भाषा में ऋग्वेद का प्राचीनतम नमूना मिलता है क्योंकि ये सम्पूर्णतया गद्य में हैं। वेदिक कर्मकाण्ड की समझने और उस युग के जीवन की मूल्य देखने के लिए इनका बड़ा महत्व है। कुछ विद्वान् उन्हें वेदों का अति प्राचीन भाग मानते हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण ग्रन्थ हैं :-

१- कौण्टिकी और

२- शैलेय ।

इन दोनों ग्रन्थों में स्थान स्थान पर एक ही विषय की बातचीत<sup>होने</sup> पर भी एक ब्राह्मण में दूसरे ब्राह्मण के विपरीत वर्ण फूट दिखा गया है। शैलेय ब्राह्मण से कौण्टिकी की ब्राह्मण में अच्छे ढंग से विषय की बातचीत की गई है। शैलेय ब्राह्मण के मढ़ने से ऐतिहासिक बातें तथा भौगोलिक विवरण मालूम होते हैं। उसमें प्रधानतः सोम और राजसूय यज्ञों का विवरण है।

तेजरीय (कृष्ण यजुर्वेद) और वाजसनेयी (शुक्ल यजुर्वेद) एक ही विषय पर हैं और इन दोनों में मन्त्र भी प्रायः एक ही हैं। कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ साथ क्रिया कर्म प्रणाली भी गद्य में बतलाकर बताई है और जिन उद्देश्यों से वेदों का व्यवहार होता है वह भी बताया गया है। इस प्रकार इनका ग्रन्थ का ब्राह्मण है और पूरी संहिता

-----

क्रातुण के ढंग पर चलती है। कृष्ण यजुर्वेद के मैत्रायणी और काठक क्रातुण ग्रन्थ संहिता के वंश हैं और तैत्तिरीय क्रातुण पृथक् ग्रन्थ है। शुक्ल यजुर्वेद का सप्तम क्रातुण प्रसिद्ध है। यह सब प्रकार से पूर्ण, सुन्दर और प्राचीन है। यह सभी अध्यायों में है। इस क्रातुण ग्रन्थ में वेद कालीन धार्मिक समाज का उज्ज्वल चित्र मिलता है।

सामवेदीय क्रातुण ग्रन्थों में ताण्ड्य और सामविधान अधिक प्रसिद्ध हैं। २५ अध्यायों में होने के कारण ताण्ड्य को पंचविंश क्रातुण भी कहते हैं। साम विधान में अधिकारच्युत और वसन्त लोगों की श्रुति के लिए कृच्छादि प्रायश्चित्त और ऋ-न्याधान, अग्निहोत्रादि का संग्रह है। षडविंशक्रातुण नामक क्रातुण ग्रन्थ वास्तव में पंचविंश से अधिक है, क्योंकि इसमें केवल एक अध्याय 'अमुत' क्रातुण नाम से अधिक है जिसे शून्य कहते हैं वाता वेदांग जातीक ग्रंथ कहा है। सामवेदीय क्रातुण ग्रन्थों में वैमितीय क्रातुण सबसे प्राचीन है। जहाँ तक धार्मिक और पौराणिक कहानियों के विवरण का सम्बन्ध है, यह बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। सामवेदीय सौम्य शाखा का क्रातुण ४० अध्यायों में विभक्त है। सप्तमस्कन्ध ०५० जिसके भिन्न - भिन्न अंश पंचविंश, षडविंश मन्त्र और हान्दोग्यक्रातुण के नाम से प्रसिद्ध हैं। सामवेद के जाण्य क्रातुण, वंश क्रातुण, संहितापनिषद् क्रातुण आदि भी क्रातुण ग्रन्थ हैं।

वर्षा वेद का एक मात्र क्रातुण ग्रन्थ गोपथ है। यह अधिक प्रसिद्ध है और इसके दो खण्ड हैं- मूर्धनि और उवराधी। मूर्धनि में लोक प्रकार के बाल्यान, अन्यान्य विषयों पर विचार है और उवराधी में कर्मकाण्ड पर बालीक्षा है। यह क्रातुण वास्तव में वेदांग त्रेणी का ग्रंथ है जो परवर्ती रहना माना जाता है।



ब्राह्मण ग्रन्थों के तीन विभाग हैं :-

१- ब्राह्मण

२- वारण्यक

३- उपनिषद्

वारण्यक और उपनिषद् की निजी विशेषता होने के कारण उनका वर्णन पृष्ठ किया गया है।

-----  
वारण्यक-  
-----

संसार के सब विषयों का त्याग करके और सर्व वस्तुओं से हटकारा पाकर प्राचीन ऋषि लोग निजि शान्त वरण्य में जा रहने लगे थे और ब्रह्म विद्या का अध्ययन करके गम्भीर भाव से परमात्मा की चर्चा में ला जाते थे। उनके गम्भीर अनुभूत विचार लोक-कल्याण के लिए प्रकट करते थे। इसी विचार समूह का नाम वारण्यक है। संसार त्याग कर मन में बसने वाले पुण्यात्मा ही उन्हें पढ़ते थे। सायण के मतानुसार ब्राह्मण वारण्यक और उपनिषद् ऋषि जीवन की तीन स्थितियों- गार्हस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों के प्रतीक हैं। वारण्यक ग्रन्थों में अधिकतर उपनिषद् के ही वंश हैं।

ऋग्वेद के स्तौत्र और कौषीत्की वारण्यक हैं। स्तौत्र वारण्यक के वाचस्पति पाये जाने वाले पाँच ग्रन्थों में प्रत्येक का नाम वारण्यक है। दूसरे और तीसरे स्वतन्त्र उपनिषद् हैं। दूसरे के उपरार्थ के शेष बार परिच्छेद वेदान्त ग्रन्थ में गिने जाने के कारण स्तौत्र उपनिषद् कहलाता है। कौषीत्की वारण्यक के तीन खण्ड हैं जिनमें दो खण्ड

कर्म काण्ड से भरें हैं और तीसरा खण्ड कौण्टिकी उपनिषद् कहलाता है। यह चार गम उपादेय ग्रन्थ है जिसमें भौगोलिक बातें भी मिलती हैं, हिमालय, विन्ध्यादि पर्वतों के तथा फलादियों के नाम भी मिलते हैं। स्तौर्य, कौण्टिकी, वाष्पल और मैत्रायणी ऋग्वेद हैं, के उपनिषद् हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण कौशमीय तैत्तिरीय वारण्यक हैं। इसका सात्वत बाठवां तथा नवां प्रकरण ब्रह्म विद्या सम्बन्धी होने के कारण उपनिषद् और इसका प्रकरण याज्ञिकी ब्रह्मा नारायणी उपनिषद् कहलाता है। इसमें मूर्तिमान् ब्रह्म तत्त्व का वर्णन है। भिन्न भिन्न स्थानों में इसका भिन्न भिन्न पाठ प्रचलित है। तैत्तिरीय वारण्यक में श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण तथा ब्रह्म विद्या के तत्त्व मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण का चौदहवां ब्राह्मण का चौदहवां काण्ड वारण्यक के नाम से प्रसिद्ध है। इस संहिता में एकवीस से लेकर उन्तासीस अध्यायों तक की सब कथाएँ उद्धृत हैं और एक स्थल पर विष्णु सूर्य को ही सब देवताओं में श्रेष्ठ बताया है। इसके शेष छः अध्याय वृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें युद्ध प्रेम विरह सम्बन्धी कथाओं के साथ ऊषेन, कुरु, पांचाल आदि ऐतिहासिक नाम भी जाये हैं। शुक्ल यजुर्वेदिक के उपनिषद् वृहदारण्यक और कृष्ण यजुर्वेद के उपनिषद् कठ, तैत्तिरीय । श्वेताश्वेत, मैत्रायणी और कैवल्य हैं। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित भौगोलिक सामग्री के आधार पर यह कह सकते हैं कि कुरु पांचाल प्रदेश आर्य संस्कृति का केंद्र था।

सामवेद का वारण्यक साम संहिता के अन्तर्गत है। सामवेदी ब्राह्मण के हन्दीमय मन्त्रों का गान करने के कारण वारण्यक ग्रन्थ का नाम हान्दीमय वारण्यक है

यह वारण्यक ग्रन्थ है: 'अपाठों' में विभक्त है। शान्दोग्य- उपनिषद् और कैतौपनिषद् सामवेदीय उपनिषदों में प्रसिद्ध हैं।

अथर्ववेद का कोई वारण्यक न मिल कर लोक उपनिषद् मिलती हैं जिनमें मुख्य भाण्डूक्य, प्रश्न और मुक्तितापिनी है। व्यासरायण ने अपने वेदान्त सूत्र में लोक चार इन्हीं चार उपनिषदों के प्रमाण दिये हैं। मुक्तितापनिषद् में अथर्ववेदीय ६३ उपनिषदों के नाम दिये हैं।

#### उपनिषद्-

जिस तत्त्वज्ञान का परिचय वैदिक ऋषीयों ने उपनिषदों में दिया उसका बीज ऋग्वेद के सूक्तों में ही विद्यमान था। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध सुक्ता पुरुष सूक्त १०। ६०, छिण्मार्ग सूक्त १०। १२१ तथा नासदीय सूक्त १०। १२६ से इस कल्प की पुष्टि होती है। ऋग्वेद के सैखर वाद ने उपनिषदों में जाकर जातिवाद का रूप ग्रहण कर लिया है। उपनिषद् की वेदान्त व्याप्ति वेद का अन्तिम भाग कहकर अधिष्ठित किया जाता है जिससे प्रकट होता है कि उपनिषद् वेदों में प्रतिपादित ज्ञान का सार है। उपनिषदों का साधुसार इसमें है कि "यह कीन सी वस्तु है जिसे जान लें पर सब कुछ जान लिया जाता है।" भिन्न प्रकार से इस प्रश्न का उत्तर भिन्न उपनिषदों में मिलता है कि वह क्या है। यथायथा: सब कुछ ही है। "सर्वं तत्त्वं" शान्दोग्य ३। १४। ४ किन्तु क्या वस्तु है। "यह न तो स्थूल है, न सूक्ष्म है, न तम है, न दीर्घ है, न हाया है, न अन्धकार है, न वायु है, न आकाश है, न स्वाद है और न गन्ध है। नेत्र और कर्ण

कठम वाणी और म, प्राण और मुख नीतर और बाहर से रहित यह वस्तु न तो किसी का भक्षण है और न किसी का भक्ष्य ही है।” तब यह अद्भुत वस्तु क्या है। उपनिषद् में उसका उत्तर मिलता है “ वह तू ही है, मैं ही हूँ, यह वात्मा ही हूँ है वस्तुतः सब बातों का सार यही है कि वात्मा ही ही पहचानी।” इसी एक विचारधारा को उपनिषद् में भिन्न भिन्न प्रकार से तरह तरह की मनीसक वात्माभिरात्री और उदाहरणों से उस प्रकार समझाया है कि उसकी वर्णन ऐसी बड़ी रौक़ और भाषा बाँधस्विकी ही नहीं है तथा इसी विचार धारा को संसार में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ है।

मुक्ति कोपनिषद् में २०८ उपनिषदों की सूची मिलती है।

उनका प्रकाशन कमलार साह्येरी मद्रास ने बाठ जिल्लों में श्री उपनिषद् का गौरी की टीका के साथ किया है। पृथक् जिल्लों में कोसी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। कमलार साह्येरी से हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर ७९ उपनिषदों का प्रकाशन अप्रकाशित उपनिषद् के नाम से किया है। इस प्रकार १७६ उपनिषद् उपलब्ध होती हैं परन्तु सर्वमान्य और महत्वपूर्ण उपनिषदों की संख्या बहुत कम है। निम्नलिखित श्लोक में इस सर्वमान्य उपनिषद् गिनाये गये हैं।

“ ईश-कै-कठ-प्रश्न-मुराड-नाराडूक्य-तैत्तिरिः ।

स्तैर्यश्च हान्दीग्यं वृद्धारण्यक तथा ॥ ”

अर्थात् १- ईश २- कै ३- कठ ४- प्रश्न ५- मुराडूक्य

६- नाराडूक्य ७- स्तैर्य ८- तैत्तिरीय ९- हान्दीग्य और १०- वृद्धारण्यक-

ये दस उपनिषद् हैं। कुछ लोग कांशीतकी और और श्वेताश्वतर को भी मुख्य उपनिषदों में गिने हैं। कुछ औरों का मत है कि इनका उपनिषदों का रचना काल बड़ा बड़ा निर्णय करना असम्भव है। श्री राधा कृष्णन के अनुसार इनका रचनाकाल बड़ी शताब्दी सेवी पूर्व है। प्राचीन उपनिषदों में दार्शनिक चिन्तन अधिक और बाद के उपनिषदों में धर्म और भक्ति के भाव जाये हैं। विषय के अनुसार कभार लाल्लरी ने इस प्रकार से विभाग किये हैं :-

- १- दशोपनिषद्
- २- बीस योग उपनिषद्
- ३- चौबीस वेदान्त उपनिषद्
- ४- चौदह वैष्णव उपनिषद्
- ५- पन्द्रह शैव उपनिषद्
- ६- बाठ शक्त उपनिषद्
- ७- सप्तसत्यास उपनिषद् ॥

---

#### वेद और वैदिक साहित्य में राधा का स्वल्प-

---

किसी भी शब्द के कई अर्थ निकाल लेना साधारण बात है। वेदों में प्रयुक्त हुए शब्दों के भी कई कई अर्थ व्याख्याकारों ने किये हैं। कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग भी वेदों में हुआ है जिनका अर्थ बड़ा भाव राधा से व्याख्याकारों ने लाया है। ऋग्वेद की ब्रह्मतायनि शाखा परिशिष्ट त्रुतिः में जाया है कि :-

“ राधा माध्वो देवा माध्वे नैवराधिका विभ्राजते जगिष्यति । ”

---

वर्थात् श्री राधा जी के द्वारा श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण जी के द्वारा श्री राधा सुशोभित होते हैं। यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय के मावानी मन्त्र में लिखा है :-  
 " श्रीरक्ते लक्ष्मीश्च पत्नी " वर्थात् है परमात्मन् । बापके दो पत्नी हैं श्री तथा लक्ष्मी। श्री रुक्मिणी जी को लक्ष्मी का अवतार और श्री राधा जी को श्री का अवतार बताया गया है। ब्रजभूमि में ज़ीतिए श्री राधा जी को प्रायः श्री जी के नाम से पुकारा जाता है। मावान् कृष्ण के साथ तो वास्तव्य राधा जी का नाम लिखा ही जाता है। राधा जी की शक्ति 'श्री' के बिना किसी भी अवतार वक्ता देवता का नाम पूरा नहीं समझा जाता वतस्व हम सभी के साथ श्री शब्द का प्रयोग करते हैं। एक वन्य स्थल पर यजुर्वेद में बाया है, " यः कारुण्यं सत्तत्माद्भूतात्सत्या इतीज्योतिस्ते-  
 जोराधा माधव रूपं ध्याभूत् ॥ " वर्थात् करुणावश मन्त्रवत्सलता के कारण एक ज्योति राधा माधव का रूप करके दो प्रकार की तेजस्वी हो गयी।<sup>१</sup> इस वेद में मावान् के चार वंश बताये गये हैं जिनमें केवल एक ही है सत्तत्मा पण्ड व्याप्त है। उसकी मावान् का प्रकृति पुरुषात्मक स्वस्म कहते हैं। ज़ी के विषय में श्रुति भावती कहती है :-

" पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादो अस्यामृतं दिवि ॥ " <sup>२</sup>

सामवेद रहस्य में बाया है :-

" " स स्वार्यं पुरुषः स्वसणार्थं स्वस्वस्मं प्रकटितवान् तदस्मं स सर्वतितं वानन्द रसोऽयं पुराविदो वदन्ति सर्वे वानन्दरसा यस्यात्प्रकटिता मन्ति। "

वर्थात् इस पुरुष ने अपने सण के लिए अपने स्वस्म को प्रकट

१- यजुर्वेद का भाग श्रुतिः

२- यजुर्वेद ३१- ३

किया, उस स्वसंज्ञित रूप की पुरास्ति। जानी। लोग वानन्द उस कहते हैं। उस वानन्द  
 और उस स्त्री से प्रसूत होते हैं। यह पुरुष वानन्द रूप में रमण करने के कारण स्वयं  
 वाराधना में तत्पर होता है। इसलिए यह अपनी ही वाराधना करने के कारण लीला  
 और वेद में श्री राधा कहकर गाया जाता है।

वर्णवेद नाम रहस्योपनिषद् श्री लक्ष्मी नारायण सम्वाद

श्रुतिः में लिखा है :-

‘जगदीशं पुरुषं एकं साक्षिं तैव’ रूपं ।  
 विधाय स्नानं स्नानं समाहरति स्वयमेव ।  
 नायिका रूपं विधाय समाराधनं तत्परीक्षते ।  
 तस्माच्च राधां रासिकानन्दां वेद विधीव ।  
 यन्ति तस्मादानन्दं मयोऽयं लोक इति ॥”

अर्थात् एकका वापि कारण पुरुष एक ही है ऐसे उसी रूप के  
 दो प्रकार बता करके सम्पूर्ण स्त्री की स्तुति करता है। प्रकाशित करता है और वह  
 स्वयं ही स्त्रीलिंग (रूप रूपं प्रति स्त्रीं वक्षः, स्व वर्णवेद के मन्त्रानुसार) रमणी रूप धारण कर  
 लीला वाराधन में तत्पर होता है। स्त्रीलिंग श्री राधा रूप से स्वयं वेद के रहस्य की जानने  
 वाले ही जानते और वर्णन करते हैं। स्त्रीलिंग गौतम वानन्दमय है।

वर्णवेद के राधा ताक्षिणी उपनिषद् में बताया है :-

‘धेयं राधा यश्च वृष्णी सावित्री ।  
 वैश्वदेवः श्रीलक्ष्मी विद्यावत् ।

-----

दे ही यथा शोभा शोभाभानः -

शुरावर पश्यति तदामशुद्धम् ॥ "" १

वर्थात् जो वह राधा और जो यह कृष्ण जानन्द उस के सार हैं वह एक ही लीला करने के लिये दो रूप बन जाग्रत हुए हैं। जैसे हाया से देव शोभित होती है, उसी प्रकार श्री राधा जी से श्रीकृष्ण जी शोभायमान हैं। उनके चरित्र पढ़ने सुनने से जीव उनके सुहृद परम धाम को प्राप्त होता है। "" उसमें बताया है कि राधिका जी के के सहित देव कृष्ण हैं और माधव कृष्ण के ही सहित राधिका हैं। जो कर्म में देवता है वह संसार से मुक्त नहीं होता। जो राधा के बिना कृष्ण का ध्यान करता ३ नाम जपता तथा कथावार्ता करता है वह अतिशय मूर्खों से भी मूर्ख है। उसका वास जब तक चन्द्रमा सूर्य रहते हैं तब तक काल-सूत्र नरक में होता है। जान जान फल राधाक<sup>४</sup> फिर कृष्ण कहते हैं। उसमें और भी कहा है :-

"" राधया सहितो देवो माधवो नैव राधिका ।

जननीमैदं पश्यति संयुतेमुक्ती न भवति ॥ "" २

बाधुनिक प्राप्त गोपाल तापिनी उपनिषद् में राधा का वर्णन देने को नहीं मिलता। परन्तु कितनी ही लोगों का कहना है कि श्री तापिनी वादि वेद प्रतिपादित शास्त्रों में राधा के दो रूप पाये जाते हैं - एक तो जीव जीति गत वाक्ता "" सिद्धात्पिनी और दूसरी अव्यक्त परमात्मा की नित्य त्रिद भूत प्रकृति रूपा जितका वृक्षदारण्यक उपनिषद् में "" स वै नैव रैमै "" वादि में वर्णन किया गया है। राधिका

१- वर्णन वेद गत राधा तापिनी उपनिषद्

२- प्रोक्ताः साधन सिद्धासु राधा नाम्ना परतः स्थितः । "राधा तापिनी उपनिषद्  
उपरधात्मा तस्मै रव्यातिमुखा-प्रवृत्तये ॥

३- राधा तापिनी उपनिषद्

४- कृष्ण भारती वर्ण १२ अंक ४ पृ० ६० दृष्टव



के विवाह के संबंध में गोपाल तापिनी उपनिषद् में बताया है कि उनका गुप्त विवाह परमेश्वरी ब्रह्मा जी वृन्दावन के पास जन रहित सुन्दर स्थान में बाकर मली भाँति कराये।

श्रीकृष्णोपनिषद् में बताया है :-

‘वामाङ्गं सञ्चिता देवी राधा वृन्दावनेश्वरी ।

सुन्दरी नागरी गौरी कृष्ण इदमङ्गमङ्गरी ॥

कण्वली उपनिषद् में बताया है :-

‘यदापश्यः पश्यति रुक्मवर्णं कर्तारसीशं पुरुषं ब्रह्मानिम् ॥

रुक्म अर्थात् सुवर्ण के वर्ण (रंग) वाला । कर्तः राधिका जी का कनक गौर तैलमय शरीर है।

ऋग्वेद के उपनिषद् भाग में एक राधिकापनिषद् की कल्पा कर उसका सम्बन्ध ऋग्वेद से जोड़ा गया है परन्तु वास्तव में यह बहुत बाद की रचना प्रतीत होती है। यह एक राधिकापनिषद् का प्रकार है :-

“ऊं वयौर्ध्वमन्विता कणयः सनकाया भावन्तं हिरराकाभैरुपासित्वापुः॥

देव कः परमादेवः का वा सच्चिन्तयः तासु च का वरीयसी भवतीति सृष्टि हेतु मृता च केति। सहावाच। हे पुत्रकाः अणुतेनं हुमानं गृह्याद्गृह्यतस्मप्रकाश्यं यस्मै कस्मै न देयम् । स्निग्धाय ब्रह्मादि नै गुरुभक्ताय देयमन्यथादातुमर्हस्यं भवतीति। कृष्णा ह वै हरिः परमादेवः अहं विश्वस्य परिपूर्णां भावान् गोपी गोप सेव्या वृन्दाः राधिकावृन्दवनाधिनाथः स एक स्वेश्वरः तस्य ह वै नै तनूनारायणाः सितं ब्रह्माण्डाधिपतिरकोशः प्रकृतैः प्राचीनैः नित्यैः सर्वं हि तस्य शक्तयस्त्वनैकधाः। वायुहादिनी सन्धिनी शान्तिश्चाग्निनाभा बहुविधाः शक्तयः॥

१- भाण्डीर इति भाण्डीरवनं श्रीवनं लोहवनं वृन्दावनम् ॥”

तास्वाद्यादिनी वरीयसी परमान्तसंभूता राधाः। कृष्णेन वाराध्यते इति राधा।  
 कृष्णं समराधयति सर्वेति राधिका गान्धर्वीति व्यपदिश्यते इति वस्या स्व कायकूटस्मा  
 गोप्यी महिष्यः श्रीश्वेति यै यं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेकः श्रीजनार्थं विधा भूता।  
 रणा वै हरिः सर्वेश्वरी सर्वविधा सनातनी कृष्ण प्राणाधिपवीचेति, विविक्तै वेदाः  
 स्तुवन्ति, यस्या गतिं क्लृभाणा वदन्ति। महिमा स्याः स्वायुमेनि नाभिरालेन वक्तुं न  
 वेत्स वै। सैव वस्य प्रसीदति तस्य कर्तृत्वावकृतिर्यमन्त्रामेति। स्तामव ज्ञाय यः कृष्ण  
 माराधयितुमिच्छति, स भूढत मोभूढतमश्नेति। यथ द्वैतानि नामानि गायन्ति कुतः। राधा  
 राधेश्वरी रथ्या कृष्णमन्त्राधि देवता। स्वधिया सर्वेन्धा च वृन्दावन विहारिणी॥  
 वृन्दा राध्या रसाऽशेषगोपी म ष्ढत पूजिता। सत्या सत्य परा सत्यमाप्ता श्रीकृष्णवस्तमा॥  
 वृणभानुं ज्ञेता गोपी मूल प्रकृतिरीश्वरी। गान्धर्वा राधिका र- या रुक्मिणी परमेश्वरी।  
 परात्परतर पूर्णा पूर्णचन्द्र निभानना। मुक्ति मुक्ति प्रदा नित्यं न्न व्याधि विनाशिनी॥  
 इत्येतानि नामानि यः पठेत्त जीवन्मुक्तो भवति ॥ इत्याह हिरण्य गर्भो नावानिति।  
 सन्धिनी तु धाम पूषण शस्यासनादि भिन्न भृत्यादिरूपेण परिणता मृत्युलोका वतरण  
 काले मातृ पितृ रूपेण च॥ सीदित्यनेकावतार काला ज्ञान शकृस्तु दोत्रैतशक्तिरिति। कृष्ण-  
 न्तमूर्ता माया/सत्त्व रजस्तमोऽपीयदिरंगा जगत्कारणभूता सैवा विधा रूपेण जीवन्न्वभूता  
 त्रिनाशक्तिस्तु लीलाशक्तिरिति। च व्यामुपनिषदमधीते, सोऽकृती कृती भवति, सर्वतीर्थेषु  
 स्नातो भवति सोऽग्निपूतो भवति, स वायुपूतो भवति स सर्वपूतो भवति, राधा कृष्ण त्रिवी  
 भवति समावज्जह्नुःपात पंक्ती पुनाति । ऊं तत्सत् । इति श्री श्रीमहादेव कृष्णाने परम  
 रहस्ये श्री राधिकोपनिषद्-संपूर्ण।

अथ ब्रह्म वेता सनादि महर्षिर्षी नै मावान् श्री कृष्ण जी श्री

स्तुति करके यों पूजा । हे देव ! कौन से सर्व प्रधान देवता हैं और उनकी कौन कौन सी शक्तियाँ हैं, उन शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ सृष्टि का कारण कौनसी शक्ति है। उनके वचन सुनकर श्री कृष्ण जी बोले । हे भैया ! सुनो किन्तु इस बात गोपनीय रहस्य की प्रकट मत करना और धीरे धीरे को इसे मत बताना। हाँ, जो स्नेही हों, भ्रूवादी हों, गुरु भक्त हों, उन्हें देना, नहीं तो देने वाले को महापाप होगा। श्री हरि श्रीकृष्ण ही परमदेव हैं, ये वहाँ देवियों से परिपूर्ण भवान् हैं, यह गोपियों और गोपों के सेव्य हैं, ये वृन्दा के नारायण वाराहिक हैं, ये श्री वृन्दाक के जीश्वर हैं और ये ही एक मात्र सर्वेश्वर हैं। उन्हीं श्री हरि के नारायण भी एक रूप हैं, जो वलित कृष्ण के जीश्वर हैं। ये ही एक श्री कृष्ण स्वभावतः परम प्राचीन और नित्य हैं। इस प्रकार उनकी शक्तियाँ भी लोक हैं। बाह्यादिनी सन्धिनी, ज्ञानेश्वर, क्रिया बादि बहुत ही उनकी शक्तियाँ हैं। उनमें बाह्यादिनी सर्व प्रधान शक्ति है, ये परम अन्तरंग भूता हैं, ये राधा है जिनका वाराधन श्रीकृष्ण भी करते हैं। और श्री राधा श्री कृष्ण का सदा वाराधन करती हैं। श्री राधिका को गन्धर्वा भी कहते हैं। उन्हीं श्री राधिका के शरीर से गोपियाँ, श्रीकृष्ण की महिषियाँ और लक्ष्मी हुई हैं। ये जो श्री राधा और श्रीकृष्ण हैं सो एक सागर श्रीकृष्ण ही एक रूप से दो रूप हो गये हैं। यह श्रीकृष्ण का युगल स्वल्प भक्तोद्धारिणी झीड़ा के निमित्त ही हुआ है। यह श्री राधा सर्वेश्वर भवान् श्रीकृष्ण की सर्वेश्वरी हैं, ये श्रीकृष्ण की प्राणाधिका प्रियती हैं :- ' ऐसा स्कान्त में चारों देव भी स्तुति किया करते हैं, और जिनकी गति भ्रूवादी कृष्ण जानते और कहते हैं। उनकी महिमा को हम ।कृष्ण। अपने वायु पर्यन्त भी वर्णन करने में सर्वथा

कर्मयों हैं। वे ही श्रीराधा जिस पर प्रसन्न होती है, उसके साथ मैं परम धाम जा जाता है। इन राधा की अवज्ञा करके जो श्रीकृष्ण के वाराधन करने की इच्छा करता है वह मूढ़तम है, मूढ़तम है। इन श्री राधा के ये नाम हैं, १- राधा २- राधेश्वरी ३- रम्या ४- कृष्णमन्त्राधिकारिणी स्वाधा ५- सर्वान्धा ६- वृन्दावन विहारिणी ७- वृन्दाराध्या ८- रमा ९- वहीन गौपी मण्डल पूजिता १०- सत्या सत्य परा ११- सत्य भामा १२- श्रीकृष्ण वत्सला १३- वृणमानुष्यता १४- गौपी १५- मूल प्रकृति १६- सौन्दर्य १७- गान्धर्वा १८- राविका १९- रम्या रुक्मिणी २०- परमेश्वरी २१- परात्परतरा २२- पूर्णा २३- पूर्णविन्द निभानना २४- मुक्ति मुक्ति प्राप्ता २५- नव व्याधि विनाशिनी इन सप्त विंशति २७ नामों को जो पढ़ते हैं वे अविन्मुक्त हो जाते हैं। ऐसा मान् श्री कृष्ण जी ने कहा है। इस प्रकार श्री कृष्ण की <sup>आकाशिनी शक्ति श्री राधा का वर्णन किया अब श्री कृष्ण की</sup> सन्धिनी शक्ति का वृत्तान्त सुनो। यह सन्धिनी शक्ति नाम भूषण, शैवा, वासन आदि तथा भिन्न भृत्यादि रूप में परिणत होती है और मृत्यु लोक में अवतार अवतार होने के समय माता पिता के रूप में परिणित हो जाती है। यही लोक अवतारों का कारण है। ज्ञान शक्ति को ही सौमित्र शक्ति कहते हैं और कृष्ण शक्ति के वन्तकृत माया शक्ति है वही सत्त्वस्व तमो गुण रूपा है और बहिरंग है, जड़ है और जड़ होने के कारण श्री मान् की दृष्टि पड़ी है जन्तु कीटि ज्ञानों की उत्पन्न करती है और यही माया ब्रविषा रूप है जीव का बन्धन करती है और श्रिया शक्ति ही तीव्रा शक्ति है जो इस उपनिषद् ~~है~~ को पढ़ते हैं, वे जात्रती भी ज़ती हो जाते हैं वे स्वस्त

तीर्थों में जाता ही जाती हैं, वे सर्वभूत ही जाती हैं और वे जहाँ तक दृष्टिमात्र करते हैं, वहाँ तक सबों की भक्ति कर देते हैं।

---:0:---

### बृहद् कृष्ण संहिता

श्री बृहद् संहिता में राधा और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं माना गया है। उसमें कहा गया है कि "जो कृष्ण है वही राधा है जो राधा है वही कृष्ण है" यथात् दोनों स्व ही तत्त्व हैं स्व अभिन्न हैं।<sup>१</sup> "जितने भावान् के रूप हैं उतने ही रूप वाली लीला देवी हैं जो लीला में जीक नाम से प्रसिद्ध हैं। श्री वृन्दावन में वह राधा नाम से ही प्रसिद्ध है।<sup>२</sup> वैदोक्त लीला नाम ही श्री राधिका जी का कृष्ण में स्वामी नाम से प्रसिद्ध है।<sup>३</sup> श्री बृहद् संहिता में जाया है :-

जानन्दचिन्मयरस प्रतिमावितामि -

स्ताभिर्गं स्व निवरुप्तया कतामिः ।

गौलीक स्व निवसत्यसितात्मकृती

गौविन्दगादिपुरुषं तमहं भवामि ॥ ३।३७॥

श्रीकृष्ण जीवन धन और कृष्णभानु नन्दिनी ही राधा हैं। बृहद् कृष्ण संहिता के द्वितीय पाद के पञ्चाध्याय में भावान् नारायण अपनी प्रेम्णी महात्मनी जी से वृन्दावन रहस्य वर्णन करते हुए कहते हैं, "हैं लक्ष्मी जी वादनरति रूपा परम विशुद्ध प्रेमाशक्ति ज्ञान करके राधिकानन्द प्रपन्नों की रक्षा करने वाली कृष्णमयी परादेवता लीला शक्ति माना कैलि विशाखा हैं।<sup>४</sup> लक्ष्मी के कला के कौटानु कौटि अंश से दुर्गा, सरस्वती, शची प्रभृति त्रिगुणात्मिका शक्तियाँ हैं। जैसे लक्ष्मी तुम्ही हो उसी प्रकार लीलादेवी ही गौफिका हैं। जैसे कौटा-

१- यः कृष्णः साधिराधान्य या राधा कृष्ण स्व सः ।

२- यावन्ति कम रूपाणि लीला तावत्स्वरूपिणी ।

नानाभिधानस्य राधा वृन्दावती कौ ॥

३- वेदुम्भेतु रमा प्रोक्ता अयोध्यायां तु जानकी । रुक्मिणी हारसत्यां तु राधा वृन्दावती वन

नुकीट क्वाण्ड नायक हम नारायण ही कृष्ण हैं। उसी प्रकार चैतना चैतन्य संपूर्ण त्रिपाद, एक पाद विभूति के कारण लीला देवी हमारे ही वाक्य से रहने वाली परा शक्ति हैं। है देवी तन्मी जी<sup>१</sup> जैसे हम व्यापक हैं उसी प्रकार हमारे प्राणवत्तमा लीला देवी भी व्यापिका हैं पर अतः विभक्त अन्यायी कर्ता प्रभृति जैसा हमारा स्वरूप है उसी प्रकार लीला देवी को भी समझना चाहिये। चैतना चैतन्य एक जगत हम और हमारी शक्ति है व्यापक है वही हमारी शक्ति राधिका गौपी है और जन शब्द का अर्थ लक्ष्मिादि सती गण हैं। \*

### सन्तुष्टार संहिता-

सन्तुष्टार संहिता में भी कृष्ण और राधिका की अभिन्नतर स्थापित की गई है। इसके अनुसार कृष्ण को राधिका कहा जा सकता है अथवा राधिका को कृष्ण कहा जा सकता है। राधा कृष्ण एक संज्ञा से युक्त राधिका का रूप माल है अथवा राधिका के रूप का माल ही ।

#### १- गोपानुचरितापी श्रीलीला राधिकाभिया ।

देवीकृष्णायै नमः राधिका परदेवता ॥५०॥

सर्वतन्मी स्वस्मा च श्रीकृष्णानन्ददायिनी । अतः साहस्यपिनी शक्तानिर्वाहसिधिरासा ।

तत्पत्ताकोटि कोट्यांशं दुर्गापारिवृणात्मिकाः ।

यथासन्मीस्त्वमेवाऽसीकृतयासीताच गोपिका ॥ ५२॥

अहं नारायणः कृष्णा क्वाण्डाशु नायकः । सर्वस्य कारणं लीला सामर्थ्यं कृतान्माः ॥

यथाहं व्यापकी वैवि तर्क्य मम वत्तमा । यथा यथा स्वरूपीऽहं ज्ञेया लीला तथा तथा ॥

किञ्चित्तादायं सर्वमावाभ्यां पूरितं जगत् । ऐषीहि राधिका गोपीजनस्तस्याः सतीगणः ।

#### २- राधाकृष्णंति संज्ञाद्वयं राधिका रूप मालम् ॥

## पुराण साहित्य और उसमें राधा

### पुराण साहित्य-

वर्ध्व संहिता के अनुसार यज्ञ के उच्छिष्ट में से यजुर्वेद के साथ साथ ऋग, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि पुराण वेद हैं और वर्ध्व पुराणों का कीर्तन करते रहते हैं। शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक में एक स्थान पर लिखा है, " गीली लकड़ी में से निकलती हुई आग से जैसे बलम बलम धुंवा निकलता रहता है, उसी तरह इस महाभूत के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्वांगिरस, इतिहास पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्याख्यान होता है यह सभी इसका निश्वास है।" छान्दोग्योपनिषद् के मत से इतिहास और पुराण वेद समूह में पांचवे वेद हैं। सायणाचार्य ने स्तरेयब्राह्मणोपक्रम में अपने माध्य में लिखा है, " वेद के अन्तर्गत देवासुर युद्धादि का वर्णन इतिहास कहलाता है और बागी यह असत् था और कुछ न था इत्यादि जगत् की प्रथमावस्था से लेकर सृष्टि क्रिया का वर्णन पुराण कहलाता है।" शंकराचार्य ने बृहदारण्यक के माध्य में लिखा है कि " उर्वशी पुरुखा आदि

१- ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषासह " वर्ध्व ७१। ७। २४

२- वर्ध्वर्युस्ताद्वै वे पश्यतो राजेयत्याह पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत। "

शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।१३

३- " स यथा आदेन्द्राग्नेरेम्याहितात् पृथक्पृथक्माविनिश्चिरन्ति स्वम् वा अरेहस्य महताभूतस्य निश्चसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वागिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषद् श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैव स्तानि सर्वाणि निश्चसितानि। "

शतपथ १४।६।१०।६ बृहदारण्यक २।४।१०

४- सहोवाच ऋग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेद सामवेदमथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पंचम-

वदानां वेदम् ॥ छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।१



संवाद स्वरूप ब्राह्मण भाग को इतिहास कहते हैं और पहले ब्रह्मा ही था इत्यादि सृष्टि प्रकरण को पुराण कहते हैं।<sup>१</sup> वैदिक साहित्य में जिन पुराणों का उल्लेख है वे आज तक उपलब्ध नहीं हैं।<sup>२</sup> उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि सर्गादि का वर्णन पुराण और ऐतिहासिक कथार्य इतिहास कहलाता था। विष्णु ब्रह्माण्ड, मत्स्य आदि महापुराणों में पुराणों के पांच लक्षण बताये गये हैं :-

“ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोन्मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ ”

- १- सर्ग का सृष्टि का विज्ञान
- २- प्रतिसर्ग अर्थात् सृष्टि का विस्तार लग्न और फिर से सृष्टि
- ३- सृष्टि की आदि वंशावली
- ४- मन्वन्तर अर्थात् किस किस मनु का अधिकार कब तक रहा और उस काल में कौन सी महत्व की घटना हुई और
- ५- वंशानुचरित अर्थात् सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं का संक्षिप्त वंश वर्णन यही पांच विषय पुराणों में वर्णन हुये हैं। यह

प्रवृत्ति १८ पुराणों की परिभाषा है परन्तु प्राचीन पुराणों की परिभाषा है परन्तु प्राचीन पुराणों का विषय प्रायः सृष्टि प्रकरण ही रहता था। पुराणों के प्रायः ये ही

१- इतिहास इत्युर्वशी पुरुखसोः संवादादिरुर्वशीह्यम्वरा इत्यादि ब्राह्मणमेव,

पुराणमस्यैव इत्यमर आसीदित्यादि । बृहदारण्यक भाष्य ३। ४। १०

२- हिन्दुत्व पृ० १६१

पांच विषय रहे हैं परन्तु श्रीमद्भागवत में दस विषयों का वर्णन है :- सर्व, विराट्<sup>१</sup> स्थान, षोडश पोषण, उत्ति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और वाक्म। महाभारत के बादि पर्व में शौनक ने कहा है कि "पुराण में दिव्य कथाएँ हैं और बुद्धिमान् व्यक्तियों के वादिवंश के वृत्तान्त हैं। पहले हमने तुम्हारे पिता से यह सब कथा सुनी है।" महाभारत से पहले प्रचलित प्राचीन पुराणों में "दिव्य कथा और वंश के वर्णन" भी विस्तार से दिये हुये थे। ब्राह्मण और बारण्यक की मांति ही समस्त प्राचीन पुराण भी कणि प्रोक्त थे। प्राचीन पुण्य के प्रणेता का कोई स्रोत नहीं मिलता। मनु संहिता, वाश्वलायन, गृह्यसूत्र और महाभारत से ज्ञात होता है कि पुराण का कोई एक ग्रन्थ न होकर कई ग्रन्थ होंगे। उनके संग्रह का समूची संहिता का नाम पुराण<sup>२</sup> होगा। वेद व्यास जी ने जब वेदों के चार विभाग किये तो उस पांचवे वेद पुराण का संग्रह किया। विष्णु पुराण में लिखा है :-

"उसके बाद पुराणार्थ विशाल भावान् वेद व्यास ने वात्स्यान उपाख्यान, गाथा और कल्मषुद्धि के साथ पुराण संहिता की रचना की। व्यास का जूत जातीय लोमहर्षण नाम का एक विख्यात शिष्य था। महामुनि व्यास ने उसको पुराण संहिता दी। लोमहर्षण के ६ शिष्य हुए, उनके नाम सुमति, अग्निवर्मा, मित्रयु, शांसपायन कृतव्रण और सावीर्ण थे। इनमें से कश्यपशैली कृतव्रण सावीर्ण और शांसपायन इन तीनों ने लोमहर्षण से पढ़कर मूल संहिता के आधार पर एक एक पुराण संहिता की रचना की। उन्हीं चार संहिताओं का सार संग्रह करके यह पुराण संहिता रची गयी है। सब पुराणों में सबसे पुराना ऋग पुराण कहलाता है। पुराणविदों ने पुराणों को १८ संख्या

१- श्रीमद्भागवत द्वि० स्क० अध्याय १० श्लोक १, २

२- इस प्रसंग के लिये शिव पुराण का रेवा महात्म्य १।२३३० ऋगपुराण का सृष्टि खण्ड पहला अध्याय और मत्स्य पुराण का ५३।१।७ और विष्णु पुराण का

निर्दिष्ट की है। ”

एक प्रष्ट होता है कि व्यास जी ने १८ पुराणों का प्रचार नहीं किया बल्कि उनकी शिष्य परंपरा ने १८ पुराणों की रचना कर डाली। विष्णु, मत्स्य ब्रह्माण्ड आदि पुराणों के पढ़ने से पता चलता है कि पुराणों में एक ही बात और एक ही विषय है। सब पुराणों का मूल एक होने से भेद बहुत कम है परन्तु प्रत्येक पुराण में किसी विशेष प्रसंग का विस्तार से वर्णन है जिसमें पुराण का उद्देश्य निहित रहता है। वाजसनेयिन् २ संप्रदायों के पुराणों पर पड़े हुये प्रभाव से प्रतीत होता है कि सम्प्रदायों के ग्रन्थ विशेष हैं। शिव, ब्रह्मा, आदि देवताओं के उल्लेखों तथा पौराणिक कथाओं और नामों के प्रयोगों से पता चलता है कि पौराणिक साहित्य के और बीड़ धर्म से पहले मौजूद था।

पुराण का एक प्रधान का अवतारवाद है। सभी पुराणों में प्रायः अवतारका विषय मिलता है। वैष्णव पुराणों में विष्णु के कल्पित अवतार बताये हैं। उसी प्रकार अन्य पुराणों में भी अवतारों का उल्लेख है। भविष्यादि पुराण और पुराण हैं जिनमें सूर्य के अवतार गिनाये हैं। मार्कण्डेय आदि शाक्त पुराणों में देवी के अवतारों का उल्लेख है। शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति, गणेश आदि के प्रसंगों, कथाओं और आदि मालात्म्यों से पुराण भरे पड़े हैं। पुराणों में जहाँ हुई सूर्य की उपासना भी प्राचीन प्रतीत होती है। पुराणों को वेदों का उपांग कहते हैं। वेद के मन्त्रों में केवल देवताओं की स्तुतियाँ हैं, ब्राह्मण भाग में कहीं कहीं यज्ञादि के प्रसंग में कथा पुराण का संक्षेप में उल्लेख है परन्तु पुराणों में कथाओं और उपाख्यानों का विस्तार के साथ वर्णन है।

हमारे देश के एक बड़े दल के लोगों का कहना है कि ”

वैदिक ग्रन्थों में देवतत्व का जिस प्रकार आभास है वही पुराणों में विकृत रूप होकर बड़े पैमाने में दिखाई पड़ता है। पहले के देवता -विशेष जोकानेक उपाख्यानो में रूपांतरित और परिवर्धित हो गये हैं। जैसे विष्णु शब्द सूर्य के अर्थ में वेदों में आया है, परन्तु पुराणों में सूर्य से बिल्कुल भिन्न एक अलग ब देवता का नाम है जिसका माहात्म्य पुराणों में भर दिया गया है और जिसके अवतारों की कथा का विकास कर दिया गया है। भक्त जनो ने दूसरों के सुशोभन अवतारों का अपहरण करके अपने अपने इष्टदेव का मन माना <sup>अंग</sup> किया है। इस तरह ऊँची की फाड़ी माथों के सर पहिराकर हिन्दूधर्म का एक नया रूप गढ़ लिया है। इस प्रकार हिन्दू शास्त्र क्रमशः परिवर्तित और विकसित हो गया है।<sup>१</sup> परन्तु राम दास गोड़ के कथानुसार जो पदा पुराणों की आधार मानता है वह ऊपर दिये हुये पूर्व पदा का पोषण नहीं करता, क्योंकि वैदिक साहित्य में पुराणों की कथाओं के पोषक अंश <sup>२</sup> जौक हैं। परन्तु डा० हरवश लास शर्मा <sup>३</sup> जौ गोड़ की के इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि पुराणों में विशेष रूप से अवतारों का ही वर्णन है। उनका उल्लेख जौक स्थलों पर हुआ है। पुराणों में विशेष रूप से अवतारों का उल्लेख है जिनका उल्लेख जौक स्थलों पर हुआ है। ऋग्वेद संहिता में विष्णु सम्बन्धी मन्त्र जौक सूक्तों में हैं। उसमें शिवजी का नाम रुद्र आया है और यजुर्वेद में रुद्र की पूर्ण स्तुति है। वाजसनेयी संहिता की शतरुद्री में शिवजी के जौक नाम आये हैं - शिव, गिरीश, पशुपति, नीलग्रीव, इन्द्र शीतिकण्ठ आदि। जौमें ही "शिव" और "वर्षिका" का भी उल्लेख <sup>३</sup> है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी अवतारों का उल्लेख मिलता है। "शतपथ" ब्राह्मण में

१- हिन्दूत्व रामदास गोड़ पृ० १६५

२- सूर और उनका साहित्य - डा० हरवश लास शर्मा पृ० १६७

३- वाजसनेयी संहिता ३।५७ और १६। १

मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वाराहवतार तथा वामनावतार का उल्लेख<sup>१</sup> है। तैत्तिरीय  
 ब्राह्मण<sup>२</sup> में कूर्मावतार, बृहदारण्यक<sup>३</sup> का तथा वासुदेव श्रीकृष्ण का वर्णन है।  
 तैत्तिरीय संहिता<sup>४</sup> और तैत्तिरीय ब्राह्मण<sup>५</sup> में वाराहवतार का वर्णन है। उपनिषदों  
 में भी अवतार विषयक उल्लेख है। हान्दोग्योपनिषद् ३।१७ में देवकी पुत्र श्रीकृष्ण का  
 उल्लेख है। ऋग्वेद अष्टममण्डल ७४ वें मन्त्र के दृष्टामण्डल के ४२, ४३, ४४ वें सूक्तों के  
 ऋषि का नाम श्रीकृष्ण है। कौशीतकी ब्राह्मण में जागिरा ऋषि तथा कृष्ण का  
 उल्लेख है। कहीं कहीं ब्राह्मण ग्रन्थों में पुराणों की कथाओं का संक्षेप में वर्णन है। इस  
 प्रकार वैदिक साहित्य में भी इन्द्रश्चि, विष्णु, सूर्य, शक्ति गणेश, कृष्ण आदि का  
 उल्लेख है।

पौराणिक कथायें स्मृत और श्रुति परम्परा से संगृहीत हैं  
 और इसलिये उनमें कल्पना का भी योग है। वेद में जो बात किसी विशेष उद्देश्य से संक्षेप  
 में कही गई है पुराण में उसी को विस्तृत आख्यायिका का रूप दे दिया गया है। इस  
 प्रकार वृहत् आख्यायिका में अनेक अवतार कथाओं का समावेश हो जाना स्वाभाविक है।  
 वेदों के उपाख्यान मूलक ग्रन्थ न होने पर भी उनमें स्थित विशेष स्थलों पर उदाहरण स्वरूप  
 उपाख्यान भी आये हैं। पुराणों में ऐसे उपाख्यानों को स्वरूप कर दिया गया है इसलिये

१- शतपथ ब्राह्मण १। ८। १। २ - १०

२- तैत्तिरीय ब्राह्मण के १। २३। १

३- तैत्तिरीय ब्राह्मण १०। १। ६

४- तैत्तिरीय संहिता ७। १। ५। १

५- तैत्तिरीय ब्राह्मण १। १। ३। ५

उनमें बाल्यायिकाओं का विस्तार हो गया है। वेद का जुड़ प्रसंग पुराण में विपुल काय चारण कर स्वतन्त्र रूप ग्रहण कर लेता है। यही कारण है कि वेद और पुराणों में ज्ञान वैलक्षण्य मिलता है।

पुराण १८ हैं। स्कन्द पुराण के कैदाखण्ड के अनुसार १८ पुराणों में १० पुराण हैं, ४ ब्रह्म, दो शक्त और दो वैष्णव हैं। स्कन्द पुराण में लिखा है कि ऐश्वर्य, भविष्य, मार्कण्डेय, लंका, वाराह, स्कन्द, मातस्य, कौर्म्य, वायव्य और ब्रह्माण्ड ये दस पुराण हैं। उनकी समस्त श्लोक संख्या २ लाख है। वैष्णव, भागवत, नारदीय और गरुड़ ये चार वैष्णव पुराण हैं जिनमें विष्णु की महिमा है। ब्रह्म और भास्व ये दो ब्रह्म के पुराण हैं। अग्नि पुराण अग्नि और ब्रह्मवर्तपुराण सूर्य की महिमा से संबंध रखता है। चारों वैष्णव पुराणों में महादेव और विष्णु का साम्य प्रतिपादित है तथा ब्रह्मादि की अपेक्षा विष्णु को श्रेष्ठ बताया है। त्रिमूर्ति का साम्य बताते हुये भी ब्रह्माण्ड पुराण में सूर्य को त्रिदेवात्मक और ब्रह्मा को श्रेष्ठ कहा है। " शिवपुराणकार शिव को ब्रह्मा और विष्णु का स्रष्टा, वैष्णव पुराणकार विष्णु को शिव और ब्रह्मा का स्रष्टा शक्त पुराणकार भावती को ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों की जननि मानते हैं और और सम्प्रदाय वाले सूर्य को ही सबके प्रसविता मानते हैं। " ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, और शक्ति की उपासना पुराणों का प्रधान उद्देश्य है। इनमें ब्रह्मा की शोढ़ कर एक को प्रधान और शेष चार को गौण माना गया है। ये पांच परमात्मा के भिन्न २ सगुण रूप हैं जिनका सृष्टि में कार्य विभाग पृथक् पृथक् है। वायु पुराण और शिव पुराण तथा श्रीमद्भागवत और देवी भागवत में महापुराण तथा उप पुराण विजयक मगड़ा है। इन सबकी महापुराण में गिनने से महापुराणों की संख्या बठारह की गणना की जा सकती है।

१- पहला अध्याय - कैदाखण्ड

२- सम्प्रदाय काण्ड २।३०। ३६

३- हिन्दुत्व पृष्ठ १६७ राम दास गौड़

भिन्न २ कालों में पुराणों का संकलन होने के कारण इनका भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति के दृष्टि से बड़ा महत्व है। इनमें भिन्न कल्पों की कथाएँ हैं जिनमें वैदिक साम्य होते हुए भी भेद है। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण पुराणों में हुआ है। वेदों, वेदों अन्य नास्तिकों की जहाँ तथा जहाँ तथा वाक्य की होती हुई बढ़ती के कारण पाश्चात्य विद्वान् पुराणों को अधिक प्राचीन रचना नहीं मानते और कम से कम शीफों का बाहुल्य तो इनमें मानते ही हैं। महापुराणों में से निकले हुए उप पुराणों की रचना उन्नीस है :-

- १- सतकुमार
- २- नरसिंह
- ३- बृहन्नास्तीय
- ४- शिव वा शिव धर्म
- ५- दुर्वासस
- ६- कापिल
- ७- मानव
- ८- उज्जयिनी
- ९- वारुण
- १०- कात्तिका
- ११- साम्य
- १२- नन्दकेश्वर
- १३- चौर

- १४- पाराशर
- १५- वादित्य
- १६- ब्रह्माण्ड
- १७- माहेश्वर
- १८- भागवत
- १९- वाशिष्ठ
- २०- कौर्म
- २१- मार्गव
- २२- वादि
- २३- मुन्दत
- २४- कल्लि
- २५- देवी
- २६- महाभागवत
- २७- बृहदर्म
- २८- परानन्द
- २९- पशुपति ।

इन उन्तीस पुराणों के अतिरिक्त महाभारत का सिल फर्मा  
उपपुराणों में गिना जाता है और इत्थिंश पुराण कहा जाता है।

हिन्दुओं की पुराण कल्पा है जैनियों की पुराण कल्पा  
में अन्तर है। जैनी पुरानी कहा की ही पुराण कहते हैं :-

---



“पुरातन पुराणं स्यात्सहस्रमहवाक्यात् ।”

वेदियों के अनुसार पुराण पुरुषों के पुण्य चरित्र का कीर्तन करने वाले ग्रन्थ ही पुराण कहलाते हैं। वेदों के चौबीस महात्मा सीधे हैं। दिगम्बर वेदियों ने उन्हीं चौबीसों की कथा के प्रसंग में चौबीस महापुराणों की रचना की। वेदों के अनुसार पुण्य पुरुष 43 हैं जिनमें 28 तीर्थंकर हैं, 12 कल्पवृक्ष, 4 ब्रह्मदेव, 4 वासुदेव तथा 4 प्रति वासुदेव। वेद पुराण भी बहुत विस्तृत हैं। इनमें चार मुख्य हैं :- रवि तैत्तिरीय पुराण, जिनतैत्तिरीय का बरिष्ठतैत्तिरीय पुराण जिसे हरिवंश भी कहते हैं वादि पुराण और गुणमन्त्र का उत्तर पुराण। इनके पढ़ने से वेद सम्प्रदाय का पौराणिक तत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में पुराणों का उल्लेख न होकर सिर्फ जातक कथाएँ हैं जिनमें बुद्ध द्वारा कहे हुए उनके पूर्व जन्म वृत्तान्त हैं। वाक्यस्त नेपाळी बौद्ध समाज में स्वतन्त्र बौद्ध पुराणों का प्रचार है। नेपाळी बौद्ध लोग भी पुराण मानते हैं जिन्हें नव धर्म भी कहते हैं। इनमें बाल्यायन इतिहास बौद्धों के वृत्तादि और प्रधान प्रधान तथागतों की जीवनीयों का वर्णन है इन भी पुराणों के नाम इस प्रकार हैं :- १- प्रज्ञा-पारमिता २- गण्डव्यूह ३- समधिपराज ४- लंकावतार ५- तथागतगुह्यक ६- सद्धर्मपुण्डरीक ७- बुद्ध का लक्ष्मिविस्तार ८- सुवर्णप्रिया ९- वज्रसूत्रेश्वर । इन भी पुराणों के अतिरिक्त नेपाळी बौद्धों में वृक्ष और मध्यम दो स्वयम्भुव पुराण भी मिलती हैं।

पुराणों की देखने से विदित होता है कि उनमें राधा का वर्णन विस्तृत रूप से हुआ है। कितने ही पुराणों में तो राधा का स्पष्ट रूप से उल्लेख हुआ है और कितने में ही उसे प्रधान गौपी के रूप में चित्रित किया गया है। मत्स्य पुराण की में राधा भगवान् की विभूति है। ब्रह्मवैवर्त में राधा प्रकृति के रूप में और कृष्ण पुरुष के रूप में हमारे सम्मुख जाये हैं। जब दोनों में कोई भेद नहीं है। देवी भागवत में वह वैवत ब्रह्माना निवासिनी ही नहीं बल्कि पराशक्ति की अवतार कही गई है। भविष्यत पुराण में उसे निराकार ब्रह्म की विलासिनी शक्ति बताया गया है। वह ब्रह्म वैवर्त के अनुसार गौरीय की अधिष्ठात्री है। ब्रह्माण्ड पुराण में कृष्ण उनकी वाराधना करते हैं। वह दुष्टों का बं संहार करने के लिए प्यारी हैं। पृथ्वी का भार धरने के लिए कृष्ण और राधा का जन्म हुआ है। मत्स्य पुराण के अनुसार राधा का जन्म मादृ पद श्रेष्ठा वष्टमी को हुआ है। वास्तव में वे मूल प्रकृति हैं। वे लक्ष्मी का स्वरूप हैं और उन्हें भगवान् की वाह्यादिनी शक्ति कहा गया है। उनके ही वंश से सरस्वती जादि पंच प्रकृतियाँ पैदा हुई हैं। राधाष्टमी के व्रत के माहात्म्य का भी पुराणों में उल्लेख जाया है। उन्हें स्कन्द पुराण में उपराधा भी कहा गया है। वह वृन्दावन में विराजमान हैं। राक्षस रूप, गुण, सोमाम्य और प्रेम में सर्वश्रेष्ठ स्वर्णोत्पन्न हैं। वह कलावती की पुत्री हैं। पुराणों में राक्षस के विवाह का भी वर्णन है और इस प्रकार उन्हें स्वकीया माना गया है। किन्हीं पुराणों में उनका विवाह कृष्ण के साथ हुआ है तथा किन्हीं पुराणों में उनका विवाह गौपरायण के साथ हुआ है। भी कराया गया है। कहाँ ऐसा हुआ है कहाँ राक्षस की दाया गौपरायण

के साथ रहती है परन्तु वास्तविक राधा स्वयं कृष्ण के साथ ही रमण करता है। वार्गेष्म पुराणों में राधा का विस्तृत विवेचन करेंगे।

### ----- ऋग पुराण- -----

संस्कृत भाषा में 'प्रिया' राधिका जी की भी कहा है।  
इसका प्रमाण उपनिषद् और पुराणों में भी मिलता है। इसी के आधार पर कृष्णभाषा में भी जी राधा जी की 'प्रियारी' कहा जाता है। ऋग पुराण में एक स्थल पर बताया है :-

‘सह रामेण मधुरमतीव चरतीं प्रियाम् ।

जाति स्तम्भं शौरितमि तम कृत कृतः ॥” १

### ----- पद्म पुराण- -----

पद्म पुराण के पाताल तन्त्र , ७१ वें अध्याय में राधा का नाम बताया है। जहाँ उन्हें मावान् की पराशक्ति माना है। उनका जन्म वृष्णभानु के यहाँ होता है परन्तु वह न जीकती, न सुनती न चल्ती फिरती ही है। नारद जी यह ज्ञान होता है कि मावान् कृष्ण राधा सहित भूतल पर पधारे हैं। उनके दर्शन की कामना है नारद ब्रह्म में जाते हैं। वह छूटते-छूटते वृष्णभानु के यहाँ पहुँचते हैं जहाँ वह अपनी लड़कें को पिल्लाते हैं। उसके लड़ाकों को देखकर नारद जी उसे राम-कृष्ण के सत्ता होने का वाशीबानि देते हैं। यह सुनकर वृष्णभानु कहते हैं कि “ महाराज मेरे एक जड़, गुंगी और जहरी कन्या

१- ऋग पुराण अ० ८० श्लोक १५

२- बुद्धि-स्थिति समाहार रूपिणी त्वमधिष्ठिता ।

तत्त्वं विशुद्धवत्याशु शक्तिविधात्मिका मया ॥” पाताल तन्त्र ७१, ५२

कन्या है। यदि बाप उसकी इसी प्रकार वाशीवविचार दें तो बाप्की बड़ी कृपा होगी।” वृणभानु के साथ नारद जी जाकर देखते हैं कि एक वत्पन्त तैजोमय कन्या पृथ्वी पर पड़ी हुई है उसे वृणभानु ने उठाकर सटीक पर डाल दिया। नारद जी ने उसे का जननी का स्म जान किसी कार्य से वृणभानु को बाहर भेज उनका स्तन करने ली। फिर उन्होंने श्रीकृष्ण की स्तुति की जिसे सुनकर कन्या स्म राधा ने चौदह वर्ष की किशोरी स्म से नारद को दर्शन दिया। उसी समय उनकी वत्स सखरी भी प्रसन्न होकर शृंगार करने लगी। राधा की रास क्लृप्ताने की प्रार्थना को उन्होंने स्वीकार कर रात्रि समय कुल्ले सरौवर पर वशीक वृद्धा के नीचे जाकर बैठने की आज्ञा दी। नारद ने रात्रि के समय वहाँ जाकर देखा कि समस्त वृद्धा नारी स्म हो गई और जिस वृद्धा के नीचे वह सदैव थे वह वशीक मंजरी नामक लक्ष्मी बन गई। उन सत्तियों ने नारद को नारी स्म देकर उस रास-झीड़ा में सम्मिश्रित किया क्योंकि वहाँ पुरुष को प्रवेश करने की आज्ञा न थी।

इसी तन्त्र में चौदहवें अध्याय में श्री वज्रप्रताप पता की रास लीला की कथा है जिसमें भगवान् कृष्ण द्वारा निज लोक दर्शन की प्रार्थना पर चतुर सेंदुरि के साथ उन्हें गो लोक भेजा वहाँ सरौवर में स्नान करा लक्ष्मी स्म दिया गया और ताम्बूल वाक्षिनी के स्म में उसका प्रवेश भगवान् के रास में किया गया। वहाँ उन्होंने राधा का शीर्ष जोर स्म देखा।

यस पुराण के उत्तराखण्ड अध्याय ७३ और ८२ में कृष्ण के स्वस्म का बहुत अच्छी प्रकार से नित्यपुनः स्तुतियों के मार्ग की व्याख्या करते हुए किया गया है। अध्याय ७३ में व्यास जी के एक प्रश्न पर कि उपनिषद्वादी में जिस सत्य पर

कृत का प्रतिपादन किया गया है जिसका वेदों में कहीं प्रकृति, कहीं पुरुष और कहीं शून्य कह कर तीन प्रकार से वर्णन किया है, बाफ़ा वह वास्तविक स्वस्म कौन सा है। भावान् ने उन्हें प्रतिदिन वृन्दावन और उसमें श्री राधा कृष्ण स्म के दर्शन कराये हैं। इसी प्रकार के प्रसंग में ब्रह्माय ६२ में अपनी दर्शन देकर उपनिषदों में बार हूँ विशेषणों की व्याख्या करते हुये कहा है कि बाप मेरा जो लोकोक्ति स्वरूप देत रहे हो, यह धनी-भूत शुद्ध प्रेम ही है, इसी से इस सच्चिदानन्द विग्रह कहते हैं।

फस पुराण में नारद जी कहते हैं कि जिस रूप द्वारा शंकर जी की भी मोह प्राप्त हुआ ऐसा जी विष्णु का मोहिनी रूप है उसकी भी हमने देखा परन्तु वह रूप राधिका जी के स्वस्म के तुल्य नहीं हो अर्थात् मोहिनी रूप भी राधा के समान स्मवान नहीं है। नारद जी विचार करते हैं कि जब साक्षात् नारायण विष्णु बाये हैं तो लक्ष्मी जी ने जरूर अवतार लिया होगा।

फस पुराण में राधा कृष्ण का माहात्म्य है। फस पुराण में राधाष्टमी का वर्णन आया है। उसके कृत के सम्बन्ध में लिखा है कि " राधाष्टमी कृत में रत के वेष्णव जानने योग्य हैं अर्थात् जो निष्कष दृष्टि से इस कृत को नहीं करते वे वेष्णव नहीं हैं।

जिस समय भूमि पर बसुरों का प्रावत्य हो रहा था, कालरा साधुदानी ध्यानी बताये जा रहे थे, धर्म झड़ धर्म सब बन्द हो गये, धर्म की दृष्टि

१- यदय मे त्वपर दृष्टमिदं स्मम लोकिन् । धनी भूतामल प्रेम सच्चिदानन्द विग्रहम् ॥

२- फस पुराण पाताल तण्ड व० ७१

३- यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कृष्णं तथा प्रियम् ॥ फस पुराण का माहात्म्य

४- राधाष्टमी कृत रता विज्ञेयास्ते च वेष्णवाः ॥ फस पुराण प्र स० व० १ श्लोक

३१ राधाष्टमी कृत माहात्म्य ॥

हो रही थी, पृथ्वी पाप के बोझ से झुकी जा रही थी, कभी-कभी और मुझसे उड़ा रहे थे, धर्मात्मा हाय हाय पुकार रहे थे। उस समय शिष्ट राजा और दुष्ट नाश धर्म वृद्धि प्राप्त के निमित्त श्री कृष्ण भावान् गोलोक से ब्रज में पधारे। उस समय उनकी विभूतियां भी पृथ्वी पर पधारीं। उनमें प्रधान श्री राधा जी थी, क्योंकि श्री राधा तो श्री कृष्ण स्वरूप ही हैं। श्रीकृष्ण से पहले ही भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को बापका प्रादुर्भाव हुआ। श्री कृष्णभानु गोप यज्ञ के तिर भूमि में इस जन्त रहे थे उस समय बाप सीता जी की भांति धरती से फूट हुई थीं। उस दिन कृत करता, श्री राधिका जी का पूजन करता, गान वाद्य नृत्य जादि अभिनय करना चाहिर क्योंकि "भित्तुं गुणी माता गोस्वादतिरिच्यते" उस दिन कृत करने से जो फल होता है उसकी फस पुराण में इस प्रकार लिखा है "स्नान स्नादशी कृतौ वै भी सौगुना फल राधाष्टमी के कृत का है। सुमेरु समान सुवर्ण के दान से भी अधिक राधाष्टमी के कृत का फल है।

फस पुराण में लिखा है कि यद्यपि श्री ब्रज सुन्दरीगण सब ही प्रेम मूर्ति स्व प्रेम विभाजित हैं, तथापि श्री स्वामिनी जी उन सबों में सर्वोत्तमा हैं वधात्स्व, गुण, सीमाभ्य स्व प्रेम में सर्व श्रेष्ठ हैं। उनमें राधिका की मूल प्रकृति बताया

१- भाद्रमासि शिताष्टम्यां जाता श्री राधिकायतः ।

अष्टमी चार्ध संप्राप्ता तां क्वभिः प्रयत्नतः ॥ फस पुराण

२- भाद्रमासि शितैपदौ अष्टमी संतै तिथौ ।

वृणभानोयैतभूमेर्जाता सा राधिका दिवा ॥ फस पुराण

३- स्नादश्याः सप्तम्या यत्फलं लभते नरः ।

००

००

सकृदाष्टमी कृत्वा तस्मिन्नुणाधिकम् ॥ फस पुराण

४- " सर्व गोपीणु सेवा विष्णोरत्यन्त वत्तमा ॥ " फस पुराण

१. भूत पर अवतार लेने के समय भार द्रवि हर श्री राधावर ने गौपीय्याग्रवर श्री माधुरी जी से कहा :-

उवाच वक्तं देवि गच्छेहं पृथिवी तलम् ।

पृथिवी भारनाशाय सख्यं त्वं मर्त्यं मण्डलम् ।

भाद्रे मासि क्षितौ पत्नी वष्टमी संज्ञा के तिथी ॥

वृषभमानोयं ज्ञातो जाता सा राधिका दिवा ॥ २

एक समय नारद जी यमुना किनारे बैठे हुए संसार के गुरु देवों के देव सदाशिव को प्रणाम करके बोले। मैं ने वृष्ण मन्त्रों की तुमसे व पिता से पाकर विधिवत् वाराधन किया है शंकर, ऐसा करने पर भी मेरी वात्मा न प्रसन्न हुई। वात्मा शब्द हिन्दी भाषा में स्त्रीलिङ्ग माना गया है- श्री घर भाषा कीश में लिखा है :- है प्रभो ! वह कहिये जिससे संस्कारादि कों के बिना सिद्ध हों। जिससे उत्तम और नहीं है दुःख श्रीकृष्ण मंत्र तुम्हारे लिये कह्यो।

एक प्रकार वृन्दावन में ग्यारी राधिका के उल्लिखित कल्प वृक्षा की जड़ पर रत्न सिंहासन के ऊपर अच्छी प्रकार बैठे हुये वृष्ण की स्मरण करो।

१- मूल प्रकृति राधिका । पं ३० पु० पा० ख० व० ७० श्लोक ४

२- पद्म पुराण अ० सं० अ० ना० स० व० ७

३- स्कन्दा यमुना तीरे समासीनं जगद्गुरुम् ।

नारदः प्रणि प्रत्याह देवदेव सदा शिवम् ॥ १० पं ३० पु० पा० ख० वृन्दावन मट्ट व० ८१

४- सर्वं कृतंऽपि नैवात्मा सन्तुष्टो नम शंकरा। क्वचिदपि यत् प्रसिद्धयेत संस्काराणि विना प्रभो । ६।

५- वक्ष्यामि दुःख तुभ्यं वृष्ण मन्त्रं मनुजम् ॥ १३॥

६- इत्थं कल्प तरो मूलं रत्नं सिंहासनापरि। वृन्दावन्य स्मरत् वृष्णं संस्थितां प्रिय या सह ॥ १॥

है नारद इसके अनन्तर तुम्हारे लिये मन्त्र का वर्ण करूँगे। कृष्ण प्यारी राधिका जी गोपनीय है अर्थात् प्रेम के बिपाने के कारण गोपी नहीं जाती हैं अर्थात् गोप वेश में अवतार लेते हैं गोपी कृष्णमयी कृष्ण स्वरूपिणी देवी नहीं हैं, राधिका पर देवता है। है विप्र नारद। वे राधिका सब लक्ष्मियों की स्वरूप हैं। कृष्ण के आनन्द रूप वाली होने के कारण मनीषियों ने उन्हें ह्लादिनी कहा है। उन राधिका की कलाओं के करोड़ करोड़ बंशों वाली त्रिगुणात्मक दुर्गा इत्यादि हैं। अर्थात् सात्त्विक दुर्गा, राजस कृष्णाक्षी तामस भवानी वे राधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं, कृष्ण नारायण स्वामी हैं। है मुनियों में श्रेष्ठ उन राधा कृष्ण में थोड़ा भी भेद नहीं है अर्थात् दोनों एक हैं। कृष्ण जी महेश्वर हैं कहते हैं, है महेश्वर जो मुझको ही प्राप्त है और मेरी प्यारी को नहीं अर्थात् मुझे भक्ता है और मेरी राधिका को नहीं भक्ता वह किसी समय भी उस प्रकार हमको नहीं पाता। तुम भी उन मेरी प्यारी राधिका के ज्ञान्य होकर मेरा सुल राधा कृष्ण मंत्र जपते हुए सदा मेरे स्थान वृन्दावन में रहो ॥”

फस पुराण में राधा जी की माता जी का पीहर उस प्रकार वर्णित है :- “ मलन्दनस्य नृपतिः कान्य दुव्यस्य सत्मा। कीर्तिनाम्नी सुता साध्वी

१- अथ हुम्भं प्रवक्ष्यामि मन्त्रार्थं शृणु नारद ॥ ५१ पा० ल० वृ० भा० ल० १

२- गोपनादुच्यते गोपी राधिका कृष्ण वत्सला । देवी कृष्ण मयी प्रीक्ता राधिका परदेवता ॥

३- सर्व लक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लाद स्वरूपिणी ।

तनःसा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनीति मनीषिभिः ॥ ५३ ॥

४- तत्कला कौटि कौमल्य दुर्गाद्यास्त्रि गुणात्मिकाः ।

सातु साक्षा महालक्ष्मीः कृष्णा नारायणः प्रभुः ॥ ५४ ॥

५- नैतयोर्विभक्ते भेदः स्वल्पोऽपि मुनि सत्तम ॥ ५५ फस पु० पा० ल० वृन्दा० मं० ल० २९

६- फस पुराण पाताल सण्ड वृन्दावन माहात्म्य ल० ५४ श्लोक ८४/



या पत्नी वृषभानोर्महीपातस्य सद्युगाः॥ तस्यां सूर्यं सुता तीरे रावल ग्रामवर्गम् ।  
हायास्मेण संजाताष्टम्यां सीमे दिनान्तरे ॥”

### विष्णु पुराण :-

विष्णु पुराण में राधा का नाम नहीं मिलता और न श्री राधा जी की प्रणय लीलाओं का स्पष्ट उल्लेख है। विष्णु पुराण ५, १३, २३, ४९ में गोपियों की प्रणय लीला के वर्णन में ही एक विशेष प्रेम-पात्र स्त्री का उल्लेख है। इस उल्लेख को ही वाचार्यों ने श्री राधा जी का सांकेतिक उल्लेख बताया है। जैसे श्री राधा जी के भाव की अत्यन्त उच्चता व गोपनीयता प्रकट होती है और यह भी प्रकट हो जाता है कि श्री राधा <sup>गोपी भाव</sup> भाव की ही सीमा है। ज्यों में लिखा है कि यह वास्तव ही साक्षात् पुरुष है और स्त्री है और समस्त का स्त्री रूप है। श्री वीरन्दनन्दन की अन्तः शक्तियों में स्वाभाविक तीन शक्ति प्रधान मानी गई हैं। शास्त्रों में उनको त्रिविध शक्ति माया शक्ति स्व जीव शक्ति के नाम से कहा गया है। इन तीनों शक्तियों में त्रिविध शक्ति को “वन्तरां” स्व भावस्वरूप में सदा संतन्त्र रहने से उसी को स्वयं शक्ति कहते हैं। इन शक्तियों की विष्णु पुराण में भी उल्लेख है। सर्व शक्तियों में श्रेष्ठ होने के कारण स्वयं शक्ति को ज्यों “परा” शक्ति, जीव शक्ति को अपरा व दमिता शक्ति स्व माया शक्ति को अविद्या कर्म शक्ति नाम से अभिहित किया गया है। उसमें “त्रिविध”

१- स स्व वासुदेवोऽयं साक्षात्पुरुष उच्यते ॥ सीशय मितरः

कर्म जादू कर्म पुरः सामः ॥ विष्णु पुराण

२- विष्णु शक्ति परा प्रोक्ता दमिताख्या तथा परा ।

अविद्या कर्मज्ञाना कृतीया शक्ति रिच्यते ॥ ६-७-६९ विष्णु पुराण

की एक स्त्री का जन्म होने पर भी विस्मा कहा है। संक्षेप में 'सन्धिनी', चित्र में 'सन्धित्' एवं वानन्दाक्ष में 'ह्लादिनी' कहा है।

### शिव पुराण-

शिव पुराण के तृतीय पार्वती खण्ड में राक्षसा का वर्णन इस प्रकार आया है:- " दत्ता जी ने उन ६० लड़कियों के मध्य में स्वधा नामवाली लड़की को फिर देवताओं को दिया। " उस स्वधा के सुन्दर भाग्यों वाली धर्म की मूर्तियाँ मेता, धन्या, कलावती ये तीन पुत्रियाँ पैदा हुईं। जो फिरों के मन से ये उत्पन्न होनी वाली हैं। सनकादि चार मुनियों ने स्वर्ग दीप में अपने को देखकर न उठने पर उनकी शाप दिया है कि ज्ञान से मोहित ब्रह्मा गवींसी तुम तीनों ही मनुष्यों की स्त्रियाँ होगी। ऐसा सुन भयातुर उन तीनों ने शापोंदार मारना। मुनियों ने कहा कि सुता, मेता हिमवान् की स्त्री, धन्या सीरध्वज जनक की स्त्री पार्वती व सीता के अवतार से उद्धार होगी। और सबसे छोटी कलावती वृषभानु गोप की प्यारी स्त्री होगी। आपर के वन्त में उस कलावती स्त्री काहुँ सीता हैं, कन्या राधा के साथ जीवन्मुक्त होकर गौतम की रहने वाली वृष्ण के गुप्त स्नेह से युक्त वृष्ण जी की पत्नी होगी। " उनका हिमा हुआ प्रेम

१- ह्लादिनी सन्धिनी सन्धित् त्वयैका सर्वोत्पत्तिः॥ विष्णु पुराण

२- 'तासां मध्ये स्वधानान्मी पितृभ्यो दत्तवान् सुतान् ।

तिष्ठो भवन् सुतास्तस्यास्तुभा धर्ममूर्तयः ॥५॥

पितृणां धानसौदमाः ॥७॥

नरस्त्रियः संभवन्तु तिष्ठोऽपि ज्ञान मोहिताः ॥ २२॥

सर्व वणिर्ति है। जब प्रेम गुप्त होता है तब वे भी गुप्त रहती है। वतः बिना प्रेम के कहीं कोई पहचान नहीं सकता। कलावती का उपनाम कीर्ति भी हुआ है।

### श्रीमद्भागवत-

श्रीमद्भागवत महापुराण में स्पष्ट रूप से राधा का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु फिर भी विद्वान् राधा की कल्पना कितनी ही स्थलों पर करते हैं। श्रीमद्भागवत जैसे पुराण में जिसमें कि श्रीकृष्ण के चरित्र का इतना विस्तृत वर्णन है स्पष्ट रूप से राधा का वर्णन न होना ही राधा पात्र की प्राचीनता के संबंध में सन्देह उत्पन्न करता है। परन्तु किन्हीं विद्वानों का कथन है कि कृष्ण जी ने राधा के गोपनीय रहस्य को प्रकट प्रकाशित करता उक्ति नहीं समझा और राधातत्त्व प्रकट प्रतीत न होते हुए भी निगूढ़ भाव से समस्त श्रीमद्भागवत में विराजमान है। श्रीमद्भागवत में कुछ स्थानों पर राधा के भाव के अतिरिक्त राधा शब्द राधा के लिये प्रयुक्त न होकर विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ राधा तक लाने का प्रयास विद्वानों ने किस प्रकार किया है इसकी विवेचना नीचे की जायेगी।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के प्रथम अध्याय में ही मंगलाचरण इस प्रकार किया गया है :-

जन्माथस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्यैर्विभक्तः स्वराट् ।

तेनैकं वृद्धा य वादिक्रमे मुह्यन्ति यत्सूत्यः ।

तेजोवाग्निमुदा यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृणा

१- दृष्टव्य श्रीमद्भागवत में श्री राधातत्त्व- श्री राधानाम - पं० श्रीकृष्ण बल्लभ झा  
उपाध्याय राधा विशेषांक जनवरी १९३८ पृ० ५३

धाम्नास्तेन सदा निरस्तकुलकं सत्यं परं धीमहि ॥ "" १

जिस प्रकार से 'जातपितरावन्द्ये' में पितरों शब्द से

माता पिता दोनों का ग्रहण होता है उसी प्रकार शब्द से परा वीर पर दोनों का ही बोध होता है। परा श्री राधा वीर पर श्रीकृष्ण ही हैं। इस प्रकार जल्दा ही यह भी हो सकता है कि हम श्री राधा कृष्ण युक्त का ध्यान करते हैं।

श्री शुद्धदेव जी ने श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में क्या प्रारम्भ करने से पूर्व श्री राधा का नामोल्लेख पूर्वक माताचरण किया है :-

'नमो नमस्ते स्तुतुणभाय सात्वता' विदूषकाः कायमुहुः कुर्यान्निनाम् ।

निरस्तसाम्यातिशयेन राधया स्वधामनि कृष्णि रंसते नमः ॥ "" २

अर्थात् सात्वत जी भक्त हैं, उनके कर्णनामपात्र वीर भक्ति विहीन बहिर्मुख जनों को जिनकी दिशा का भी पता नहीं लगता, ऐसी श्री कृष्ण निरस्त साम्यातिशय प्रेम से जिस श्री राधाकृष्ण के पारस्परिक प्रेम की समानता वीर अधिकता रखने वाला कोई प्रेम नहीं है, उस समुज्ज्वल रस प्रेम से कृष्णस्वरूप अर्थात् निज स्वरूप श्री वृन्दावन घाट में श्री राधा राधसा के साथ स्मरण करने वाले श्री इन्द्रिका राधिका स्मरण

१- श्रीमद्भागवत १-१-१

२- "शक्ति स्वतन्त्रता परा" गीतमीयतन्त्र

३- श्रीमद्भागवत २- ४- १४

४- यहाँ राधसा न कहकर राधसा पर्यायवाचक शब्द का प्रयोग कर दिया है। जहाँ में किसी प्रकार की भी मित्रता नहीं है, राध धातु से सर्व धातुम्याः स्तु उणादि सूत्र में बस-ही जाने से राधसा स्ता रूप बन जाता है, उसके-तृतीया के एक वचन में राधसा स्ता बन जाता है अर्थात् राधा शब्द के तृतीया के एक वचन का राधसा वीर राधसा शब्द के तृतीया के एक वचन का रूप राधसा अर्थ दोनों का एक ही है।

की निरन्तर नमस्कार हैं। श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के तीसरे अध्याय में लिखा करते करते गोपियाँ वृन्दावन के वृन्दा वीर लता वादि से श्रीकृष्ण का फता फूलने लगी हैं और एक स्थान पर श्रीकृष्ण के वीर उनके साथ ही किसी कृष्ण युवती के चरण चिह्न देख करने लगी हैं, " वैसे हथिनी अपनी प्रियतम गजराज के साथ गयी हो, वैसे ही नन्द नन्दन श्याम सुन्दर के साथ उनके कंधे पर बल्ल हाथ रखकर चलने वाली किस बड़ नागिनी के चरण चिह्न हैं। " अवश्य ही सर्व शक्तिमान् भवान् श्रीकृष्ण की यह " वाराधिका " होगी। स्त्रीलिये जब पर प्रसन्न होकर हमारे प्राण प्यारे श्याम सुन्दर ने हमें हाँक दिया है वीर जो स्कान्त में ले गये हैं। "

" जया ५५ राधिता नूनं भवान् हरिरीश्वरः ।

यन्मो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयः सः ॥ " २

श्री राध पंचाध्यायी के प्रथम श्लोक में देखिये कि वाचुरी से मनिकर्षी श्री राधा प्राधान्य वर्णन करते हैं :-

" भवानपि ता रात्रीः शरीरकुल्लमस्त्रिताः ।

वीक्ष्य रन्तुं मासक्रे योगमाया मुपाश्रितः ॥ " ३

१- श्रीमद्भागवत में राधातत्त्व श्री राधानाम - राधा बंक पृ० ६०

२- श्रीमद्भागवत १०- ३०- २८

ब- श्री जीव गोस्वामीपाद अपनी वैष्णवतोषिणी टीका में लिखते हैं, " राधयति वाराधय-  
तीति राधा राधेति नामकणज्जदक्षि ॥ " जो अर्थात् जो वाराधन करे वा राधा

ब- श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती भी अपनी सारार्थकक्षिणी टीका में लिखते हैं कि "

" राधयतीति राधेति नाम व्यक्ति कर्तुवेति, मुनि प्रयत्नेन तृतीय नामाध्यात् पर ।

किन्तु तदास्य चन्द्रास्त्वयं निरोतित्य वृषानु तस्याः साधग्यं भेष्यां च वादनार्थं । "

अर्थात् राधानाम फ्राट हो गया। श्री शुक्लैव मुनि ने नाम वृषाने का प्रयत्न किया किन्तु फिर

भी श्री राधानाम साधग्य भेष्यां च " डके की चोट प्रकाशित होगया । "

३- श्री मद्भागवत १०- २६- १

इस श्लोक का अपि शब्द प्रत्यक्षा वाचुगत्प सूचन करता है  
वर्थात् मल्लिका जिसमें फूली हुई है, ऐसी शरद ऋतु की रात्रियों को देखकर पहले श्री  
बागमा राधेश्वरी जी की रमण करने की इच्छा हुई तो पुनः भावान् भी रमण करने लगे।

श्रीमद्भागवत में श्री स्वामिनी जी के जन्म का दिग्दर्शन  
श्री नन्दोत्सव में होता है :-

‘तत वारव्य नन्दस्य कृः सर्वसमुद्दिमान् ।

हरनिवासात्कृष्णं रमाक्रीडभूम्नूप ॥” १

वर्थात् श्रीहरि श्रीकृष्ण के निवासात्मक गुण से रमाश्री  
राधा का भी क्रीडास्पद कृज हुआ। रमा क्रीड शब्द से श्री राधा का जन्म ही सूचित  
होता है।

श्रीराधिका का श्रीकृष्ण के साथ विवाह होने का बीज  
क्य प्रमाण श्रीमद्भागवत में मिलता है :-

‘कस्तुरीरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकृष्णम् ।” ३

गोपी कृष्ण के विरह में कहती हैं कि हे कान्ता, समस्त  
कामनाओं का देने वाला वफा श्रीहस्त कमल हमारे सिर पर धारण कीजिए। वह हस्त  
कमल कैसा है। जिस हस्तकमल से श्री राधिका जी का पाणिग्रहण हुआ है।

१- श्रीमद्भागवत १०-५-१८

२- श्री जीव गोस्वामीपाद अपनी वैष्णव तीर्थिणी टीका में स्पष्ट लिखते हैं कि “तदेव”  
प्रसंगतः श्री कृष्णदेवी नामति मावत्त प्राकट्यमान, <sup>जन्म</sup> सूचित रमाक्रीड शब्देन च सर्व समुद्दिभत्वे वाच्ये  
पानरुक्त्यं स्यात् ॥” वर्थात् सै प्रसंगवत् श्री कृष्णदेवी परमरमा श्री राधा जी तथा जन्म सती  
वृन्द का भी श्रीकृष्ण के समान जन्म सूचन किया है, यही तो रमाक्रीडशब्द से ही सर्व समुद्दि  
मंश ही जाती है, समुद्दिमान् पुररुक्तलोभ ही जाता है।

३- श्रीमद्भागवत १०-३१-५

श्री कृष्ण का राधिका जी के साथ विहार वर्णन भी

मिलता है :-

“स्वं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः ममूह ।

सै संवारयन्न्देः बलिष्ठोयस्तु सानुः ॥” १

नाख पुराण-

नाख पुराण में सत्कुमार के नाख से कहे पर कि जहाँ-  
वतार से कृष्ण की पूजा करनी चाहिए मन्त्र प्रार्थना करता है कि निरन्तर हृदयगत हरि  
कृष्ण का चिन्तन कर शरण प्राप्त होता हूँ वे कृष्ण ही मेरा नित्य पालन करेंगे। उसमें  
बाया है कि :-

“त्वास्मि राधिकानाथ कर्मणा मनसा गिरा ।

कृष्ण कान्तैति वैवास्मि युवामैव गतिमै ॥” २

१- श्रीमद्भागवत १०- १५- ६

श्री विश्वनाथ कृष्णतीर्थ महोदय इस पत्र की श्री चारार्थ दर्शिनी टीका में लिखते हैं :-

“मो श्री मन्नाथ ! हाण यह मन्त्र सुनैत सार्ध गौवर्द्धन कन्दरा राधसि विनाभ्या  
गन्तास्मि त्वमेकं काञ्चिन्दी राधस्तु तावदि हरित्युक्तवा ततो विमुच्य पांगरीऽपि कैशोरा  
विमर्वाङ्ग हरिणं कृज्जालाभिः सार्धं सै हत्याह । स्वकर्म स्तुत्वा तदारेव ममूह वृन्दावनं  
संवारयन् बडे सरितः मानस गंगाया राधास्तु सै हत्यन्वयः । श्रीमति कृज्जालाभ्याम्भ्या स्व  
प्रीता प्रेमवती यस्मिन्तः वतुगामिः क्लीमिः सहितः व्याख्यानस्यास्य रहस्यत्वादेतस्या वरक  
रत्नस्य कनकसामुद्र मिव व्याख्यानन्तरम् ॥

२- प्रमत्तोऽस्मीति सततं चिन्तयद्भुतं हरिम् । स स्व पालनं नित्यं करिष्यामिमेति च ॥ २६

नाख पुराण अ० ८

३- नाख पुराण अ० ८२, २६

“ है राधिका नाथ, है कृष्ण कान्ति राधे, कम कर्म है मन  
है , वाणी है सुन्दर ही। तुम दोनों मेरी गति ही । ”

नारद पुराण में राधा के ही वंश है सरस्वती वादि पांच है  
प्रकृतियों के पैदा होने के वर्णन में सरस्वती का उद्भव राधा से इस प्रकार बताया है :-

“ जन्मत्वासे तु कृष्णस्य प्रविष्टेऽ राधिका मुक्तम् । ” १

या तु देवी समुद्भूता वीणा मुस्तक धारिणी ।

तस्या विधानं विप्रन्द्र शृणु लोकोपकारकम् ॥ ” २

“ कृष्ण जी की जंभार की श्वास राधिका जी के मुँह में प्रवेश  
होने पर वीणा पुस्तक लीं हुये जी देवी सरस्वती पैदा हुई (राधिका जी की जीभ उसका  
उत्पत्ति स्थान है) है ब्रह्मण श्रेष्ठ ! उस सरस्वती का लोकोपकार करने वाला विधान सुनी।  
इसी प्रकार राधिका जी से प्रकट हुई लक्ष्मी इत्यादि का विधान है।

१- नारद पुराण पुत्रादि अ० ८३ - ६१

२- “ “ “ ८३ - ६२



### ब्रह्मवैवर्त पुराण

ब्रह्म वैवर्त पुराण का मुख्य विषय राधाकृष्ण लीला है।

इसका आधार श्रीमद्भागवत पुराण होते हुए भी राधा की कल्पना के कारण इसका स्वल्प बदल गया है। लीला के लिये कृष्ण जी कि महा विष्णु से भी ऊपर हैं राधा के साथ अवतार लेते हैं। राधा श्रीकृष्ण की मूल प्रकृति है। ब्रह्मवैवर्तकार ने नारी रूप में प्रकृति का चित्रण कर प्रकृति के एक विशाल रूप की शक्ति रूपा नारी में परिणत किया है। यह नारी रूपा प्रकृति साकार ब्रह्म के साथ रमण करने वाली बन जाती है। उसी रमण में सहयोग देने वाली जीव सत्त्वरी प्रकृति रूपा शक्ति शक्तिनी देवियाँ हैं। सत्त्वरी रूप प्रकृति और ब्रह्म के साथ रमण करने वाली प्रकृति में अन्तर करने के लिए वे उसे मूल प्रकृति की संज्ञा से राधा नाम से प्रख्यात किया है। ब्रह्म स्वल्प भावान् श्री कृष्ण अपने को कुछ क्षुब्ध हेतु दो मार्गों में विभक्त करते हैं। वामार्ग से मूल प्रकृति रूपा राधा का प्रादुर्भाव होता है। अर्थात् वह वायुजादिनी शक्ति रूप है।

१- तस्य प्राणाधिका राधा बहु सौभाग्य सयुताः ।

महाविष्णोः प्रभुः सा च मूल प्रकृतिरीश्वरी ॥ ७० वे० पु० प्रकृति तण्ड २० ४८- ५९

जानेत्वा देव देवीनां सुसिन्धां चिद्वियोगिनाम् ।

सर्वशक्तिः स्वल्पां च मूलं प्रकृतिरीश्वरीम् ॥ ७० वे० पु० कृष्ण जन्म तण्ड ६३- ३३

जाविवीक्ष्य कन्यका कृष्णसखाम पार्श्वतः ।

धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रसीदते ॥२५॥

राधे संभ्रम गौरीके सावधान हरेः पुरः ।

तेन राधा स्मारयन्त्याता पुराविर्लिंगीजम् ॥ २६ ॥ ७० वे० पु० तण्ड ५

प्रारंभिक पुराण प्रकृति स्रष्टा व्यास ४८ में बताया है कि राधा प्रकृति और कृष्ण पुरुष हैं। उस प्रकृति और पुरुष में कुछ भी फेद नहीं है। वे दोनों परस्पर एक दूसरे को मजते हैं :-

\* राधा मज्जति तं दृष्ट्वा स च तां च परस्परम् ।

उभयोः सर्वं सामर्थ्यं च सदा सन्तौ वदन्ति च ॥३८॥

इसी वज्ज्याय में उमा महेश्वर स्नापन में स्नान वषाती प्रशस्ती पावती है वषाति क रती हैं :-

\* पुरावृन्दावने रम्ये गौलीक रास मण्डले ।

शत शृङ्गदेशे च मालतीमल्लिकावने ॥२६॥

रत्नसिंहासने रम्ये तस्यां तत्र जात्यतिः ।

स्वर्गेशाम्यश्च भावान्बभूव रमणीतुलः ॥२७॥

रिचोस्तस्य जगतां पत्युस्तन्महिम्नानि ।

यज्ज्ञ्या च भवैत्सर्वं तस्य स्वैच्छाभयस्य च ॥ २८॥

स्तस्मिन्नावरे दुर्गे हि धारुणो बभूव सः ।

दक्षिणां च श्रीकृष्णौ वासाद्विंशं च राक्षस ॥२६॥

राश्वन्नीचरणान्वतो राति मुक्तिं सदुत्तम ॥ न-सन्नीचरण

या शब्दाञ्चारणादुर्ध्वं यावत्यैव हरिः फम् ॥४०॥

कृष्णवामांशस्तभूता राधा रासैश्वरी पुरा ।

तस्याश्नां शां शकलया बहुमुद्वयीषितः ॥४१॥

रा इत्यादानवचनौ पर व निवाणि वाचकः ॥

ततोऽवाप्नोति मुक्तिं चेतनं राधा प्रकीर्तिता ॥४२॥

राधावामांशमगने महात्मनीर्बभूव सा ।

तस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा ॥४४॥

चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी बहुष्ठवासिनी ।

तदंशा रात्र लक्ष्मीश्च रात्रसम्पत्प्राप्तिनी ॥४५॥ \* १

इस अध्याय में बागे कहा गया है कि उनके वंश मनुष्यों के घर की लक्ष्मी हैं जो कि उनके घर में हैं। वह कीपाधिष्ठातृ देवी उनके घर में हैं। वही देवी उनकी गृह देवता है। स्वयं श्री राधा कृष्ण प्यारी है। वे श्री राधा श्री कृष्ण के वंशः स्थल पर स्थित हैं और वे ही श्री कृष्ण परमात्मा के प्राणों की अधिष्ठात्री हैं :-

\* तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहीणां च गृहे गृहे ।

कीपाधिष्ठातृदेवी च सा चैव गृहदेवता ॥४६॥

स्वयं राधा कृष्ण पत्नी कृष्णवक्त्राः स्थलस्थिता ।

प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः ॥४७॥

वा क्व स्तम्भपर्यन्तं सर्वं मिथुनं पार्वतिं ॥

अत्र सत्यं परं क्व राधेशं त्रिगुणात्मसम् ॥४८॥

परं हि प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम् ।

सर्वार्थं सर्वपूज्यं च निरीहं प्रकृतिः परम् ॥४९॥

स्वेच्छामयं नित्यस्यं मक्तानुहविश्रम् ॥

तद्विष्णुनां च देवानां प्राकृतं स्य नैव च ॥५०॥

तस्य प्राणाधिका राधा बहुसीमाग्यसंयुता ।

महाविष्णोः प्रभुः सा च मूल प्रकृतिरीश्वरी ॥५१॥ \* २

अध्याय ४६ में बताया है कि बारह वर्षों बीत जाने के अनन्तर उन राधा की नवीन यौवन वाली देखकर उन वृष्णभान जी ने उन निज तनया का सम्बन्ध राधाण गोप के सां किया। यह प्रज्ञा जानकर कि मेरा विवाह राधाण बाभीर के साथ होगा। कतः उन्होंने वृष्णभानु के भवन में अपनी हाथा की स्थापित करके अपनी बसती राधा के स्वल्प की वस्तुस्थिति कर दिया अर्थात् वस्तुस्थिति हो गयी। अतस्व उस राधाण वैश्य का विवाह हाथा के साथ हुआ क्योंकि श्रीदामा ने उनकी शपथ दिया था कि हाथा का वंश से ही पर इस्लाम कर्तव्य वाली होगी। परहाही देह के हिस्से से माध्य ज्ञाती तत्त्वस्वरूप का विवाह का विशारी मुस्लीमारी के ही साथ हुआ है। लोकेश्वर सरस्वती वर ने विधि से पवित्र वन वृन्दावन में वृष्ण जी के साथ राधा का विवाह कराया। गोप तीन स्वप्न में भी राधा के चरण कमल नहीं देखते। स्वयं ज्योतिर्मय राधा हरि वृष्ण के वदःस्थ में विराजमान हैं, हाथा राधाण गोप के मन्दिर में प्रावमान हैं।

१- कति ते हादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नव यौवनाम् ।

सार्धं राधाणवैश्येन तत्सम्बन्धं कृतार सः ॥३८॥

हाथा संस्थाप्य तत्प्रेष्ठं साऽन्तर्धानिम्वाय ह ॥

कनू तस्य वैश्यस्य विवाहशाय्यां कः ॥३९॥

गते चतुर्दशाब्दे तु कम्भीरैश्चरितं च ।

जगाम गोक्षुलं वृष्णः शिशुरूपी जात्पतिः ॥४०॥

वृष्ण माता क्लीषा या राधाणस्तत्तलीवरः ॥

गौलीके गोपवृष्णांशः सम्बन्धात्कृष्णमातुलः ॥४१॥

००

००

स्वयं राधा हरिः श्रीदे हाथा राधाण मन्दिरं ॥४२॥

३० वे० पुराण प्रवृत्ति सण्ड व० ४६

श्रीकृष्ण और श्री राधा जन्म का कारण का वैवर्त पुराण के

कृष्ण जन्म बण्ड में पृथ्वी के भार हरण का कारण से पूर्ण उपस्थित किया है। उस समय श्रीकृष्ण गौलीक में राधा को ढोड़ कर विरजा के पास चले गये। जब वह कृष्ण के महलों में रमण कर रहे थे, राधा की सखी ने समस्त वृत्तान्त राधा से बाकर कहा। राधा उस पर बैठ कर कृष्ण के महलों में पधारी। श्री दामा द्वार पर थे वह उसकी पुत्ता श्रीकृष्ण को वे स्वयं साधियों सहित भाग गये। श्रीकृष्ण भी राधा को डर से कृष्ण को त्याग वंतव्यानि हो गये। कृष्ण भी डर कर वी सखि का रूप होकर गौलीक में चले लगे। उसकी सखियां भी डर और डर से कातर हो झुड़ बहियों के रूप में परिणित हो गयी। राधा कृष्ण तथा कृष्ण किसी को भी महल में न बैठकर वह अपनी महलों में वापिस जा गयी। जब राधा के गोप मंदिर द्वार पर श्रीदामा के साथ श्रीकृष्ण आये तो राधा ने कृष्ण को पैर उनकी मत्सना की। श्रीदामा से यह नहीं पैता क्या उसने राधा को दुरा मत्ता कहा। उस पर राधा ने उसे शाप दिया कि "तू दूरसे तू राजस हो जा।" उस पर श्रीदामा ने राधा को शाप दिया :-

"मम गोपी गोप कन्या गोपीभिः स्वापिरिव च ।

उस प्रकार ११ वर्ष हुआ मैं वृषभानु वैश्य के यहां उसकी पत्नी कलावती से वायु गर्भा (यौनि गर्भा नहीं) कन्या के रूप में राधा का जन्म हुआ। बारह वर्ष की होने पर उसका विवाह रायणाधीन के साथ कर दिया गया। विवाह के समय राधा अपनी दाया ढोड़ वंतव्यानि हो गई और राधा की दाया के साथ रायण बीज का विवाह हुआ। चौदह वर्ष व्यतीत होने पर कृष्ण का जन्म गौकुल में हुआ और उनके वृन्दावन में रास क्रीड़ा करने के समय राधा स्वयं हरि के साथ रास में पधारी थी तथा दाया को रायण के महलों में ढोड़ जाती थी।

ऋग्वेद पुराण के पांचवें अध्याय में राधा मन्दिर के सीतलों

पारों का अत्यन्त वैभव संपन्न वर्णन है। इसमें अध्याय में श्लोक २१५ से २१६ तक राधा और कृष्ण का सम्बन्ध इस प्रकार स्पष्ट किया गया है : जैसे दुग्ध में धतता और अग्नि में दाहकता है, भूमि में गन्ध और जल में शीतलता है, उसी प्रकार राधा और कृष्ण की स्थिति है। जैसे उनमें कोई भेद नहीं है, वैसे ही राधा और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। जैसे मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बन सकता, उसी प्रकार कृष्ण राधा के बिना भव या निर्माण नहीं कर सकते।

श्रीकृष्ण जन्म सण्ड के १३ वें अध्याय में राधा शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि राधा शब्द की व्युत्पत्ति सामवेद में निरूपण की गई है। जो राधा सुर ऋषि मुनियों को परम वाञ्छित मोक्ष की देने वाली है। राधा शब्द का 'र' कार कौटि जन्म के शुभाशुभ कर्म भागों से और 'वा' कार गर्भाशय रोग और मृत्यु से छुड़ाता है। 'व' कार वायुष्य की हानि और 'वा' कार कहने सुनने और सुनाने से बिना भव

१- भिना देहेन ब्राह्मणा च क्व शरीरं भिना ऽऽत्मना ॥

प्रान्थं च तयो देवि भिना त्वाह्व्य कुतोभवः ॥२१५॥

न कुनाप्यावयोक्तो राधे संसारलीजयोः ॥

यन्नात्मा तत्र देहं च न भेदो विनयेन किम् ॥२१६॥

यथा क्षीरे च धावत्यं दाहिका च हुताशने ॥

भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्ववि मपि स्थिते ॥२१७॥

धावत्यदुग्धयोरेक्यं दाहिकानत्यौक्ये ॥

भ्रान्त्य जल शैत्यानां नास्ति भेदस्तथा ऽऽवयोः ॥२१८॥

मया भिना त्वं निर्बीजा चादृश्योऽहं त्वया भिना ।

त्वया भिना भक्तुं शालं सुन्दरि निश्चितम् ॥२१९॥ अ० ६

बन्धन को छुड़ाता है। 'र' कार निश्चल भक्ति तथा श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में सर्व वांछित सदानन्ददायक सर्व सिद्धि ईश्वर्य युक्त दास्यता शरणगतता प्रदान करता है।

'ध' कार बन्धकाल तक स्वयं हरि का सत्वाच स्व सारूप्य तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करता है।

'वा' कार बन्धित तैव, दान, शक्ति, योग की शक्ति स्व योग की मति, सब काल में हरि का स्मरण कराता है। 'राधा' शब्द के कहने सुनने स्व सुनने के संयोग से मोह, जाल पाप, रोग, शोक मृत्यु आदि सब कांपते हैं ज्यमें संशय नहीं है।

१- 'राधा' शब्दस्य व्युत्पत्तिः चाम्बेदे निरूपिता ।

००

००

शुभाशुभसुखदुःखाणां वाञ्छितां मुक्तिदां पराम् ।

रेकी हि कौटि जन्माद्यं कर्म भागं शुभाशुभम् ॥१०५॥

वाकारे गर्भार्थं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत् ॥

फकार वायुणो हानिमाकारो भवन्त्ययम् ॥१०६॥

श्रवणस्मरणौक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः ।

रेकी हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाब्जम् ॥१०७॥

सर्वेष्वितं सदानन्दं सर्वसिद्धिप्रदमीश्वरम् ॥

फकारः सत्वाद्यं च तत्तुल्यकास्तेव च ॥१०८॥

ददाति सार्वभौमसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरिः समम् ॥

वाकारस्तैजसां राक्षसान् शक्तिं हरी यथा ॥१०९॥

योग शक्तिं योग मतिं सर्वकालं हरिस्मृतिम् ॥

मृत्युशक्तिस्मरणायोगान्मोह जालं च किल्बिषम् ॥११०॥

रोग शोक मृत्युपमा वेयते नात्र संशयः ॥ १११॥ अन्त्येष्ट्य ॥ १२ ॥

अध्याय १५ के प्रारम्भिक श्लोकों में बताया है कि एक दिन नन्द कृष्ण के साथ माण्डौर वन में जाकर गौरी को चराने ली। उसी बीच में श्रीकृष्ण ने जमी माया से वाकाश की मयाच्छन्न कर दिया। अकम्पात दारुण शब्द कर करने लगा वृष्टि से पादप कांपने ली। नन्द ने सोचा कि कच्चे कृष्ण को घर पहुँचाऊँ कि वहाँ में राधा कहाँ जा गई और नन्द ने उसी कृष्ण को घर पहुँचाने के लिये कहा।

राधा कृष्ण को लेकर चली और उसी माण्डौर वन में एक अत्यन्त सुन्दर मंडप के नीचे कृष्ण ने उन दोनों का विवाह करा दिया। उसमें सभी विधि अनुष्ठान किये गये - स्नान हुआ, सात प्रक्षिणायें हुई, पाणि ग्रहण हुआ, वैदीक सप्त मंत्रों से सप्तपदी का पाठ हुआ और दोनों ने एक दूसरे के गले में पारिजात पुष्पों की माला डाली।

अध्याय १६ में श्लोक ८५ से ८७ तक राधा के ध्यान करने का उल्लेख करते हुये राधा की राधेश्वरी, रम्यराशौल्लास रसोत्सुक्य रास मंडल नयस्थ, राधाधिष्ठानतु, देवता, राशौखरीवः स्थलस्थ रक्षिका, रक्षिकप्रिया, रसा रमणीतुला और शलाकीय राशि प्रभा मौक्त लीचना जैसे विशेषणों से वर्णित किया है।

अध्याय १७ में वृन्दावन का वर्णन है और राधा के सौन्दर्य नामों की व्याख्या की गई है। उसमें राधा की कृष्ण पत्नी तथा कृष्ण वामान में स्थित बताया है :-

“कृष्णवामानसंभृता परमानन्दरूपिणी ।

कृष्णवृन्दावती वृन्दा वृन्दावन विनोदिनी ॥२२१॥

राधेश्वरस्य पत्नीयं तेन राधेश्वरी स्मृता ॥२२४॥

१- गीत गोविन्द का प्रथम श्लोक इसी प्रकार है।

२- देखिये ब्रज केवल पुराण अध्याय १५ श्लोक १२२ से १२८ तक



१७ वें अध्याय में राधिका की वृणभानु स्त्री कलावती की पुत्री

बीर श्रीकृष्ण की वधाँति बताया है :-

\* पित्रुणा मानसी कन्या कमलांश कलावती ।

सुन्दरी वृणभानस्य पतिव्रत परायणा ॥

यस्याश्च तस्या राधा कृष्ण प्राणाधिका प्रिया ॥२६॥

श्रीकृष्णधरि संभूता तैत्तुल्या च कैला ।

यस्याश्च चरणाम्भोज स्तः पूता वसुन्धरा ।

यस्यां च सुहृदां भक्तिं सन्ती वाञ्छति सन्ततम् ॥ ३०॥

वधाँति(नारायण बोलते कि है नाह)पितरों के मन से पैदा होने वाली कन्या तन्मी की कंत कलावती है। वह पतिव्रत परायण वृणभानु जी की सुन्दर स्त्री है। जिसकी कुमारी कृष्ण प्राणाओं से भी अधिक प्यारी राधिका है। कृष्ण के बापे कंत के नाग से भूमी माँति उत्पन्न जब राधिका कृष्ण का बाधा भाग है तब तो वह कृष्ण स्वल्पिणी हो सिद्ध हुई है। जिनमें ईश्वरीय सत्ता प्रकट रूप से हो रही कृष्ण स्वल्प है। यों तो सभी कृष्णांश हैं। तब से उन कृष्ण के तुल्य हैं जिन राधिका के चरण कमल की ध्वनि से प्रकट पवित्र हुई। सन्त लोग निरन्तर जिन राधिका में सुन्दर बृद्ध भक्ति चाहते हैं। "

स्त्री अध्याय में श्री राधा रानी के षोडश नामों का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीमन्नारायण महर्षि नाहद है कहते हैं, " राधा वह शब्द स्वयं सिद्ध है बीर " रा " कार दान वाचक है। स्वयं निर्वाणि धात्री मौदा की धार होने से वह राधा कहलाती है।

१- ऋग्वेद पुराण कृष्ण जन्म सण्ड अध्याय १७

२- राधेत्थैव च संधिदा राकारौ दान वाचकः ।

स्वयं निर्वाणिधात्री या सा राधा परिकीर्तिता ॥ ३० वें पु० १७ अध्याय १७-२२३

अध्याय ५२ और ५३ में राधा और माधव का गोपियों के साथ माँडीरादि कर्तों में विहार वर्णन तथा पुनः रास लीला का प्रसंग है। इस स्थल पर शृंगार सामग्री की योजना भी है। योगमाया परा प्रकृति रूपा श्री राधा श्रीकृष्ण की प्राणाधिक प्रिया होने के कारण ही उनका पुरुष रूप परमात्मा श्री कृष्ण के साथ संयुक्त है। परा प्रकृति का नाम पुरुष के नाम के पूर्ण जानने की प्रणाली शास्त्रीय कथा है मुक्त है।

अध्याय ५२ और ५३ में राधा और माधव का गोपियों के साथ माँडीरादि कर्तों में विहार वर्णन तथा पुनः रास लीला का प्रसंग है। इस स्थल पर शृंगार सामग्री की योजना भी है। योगमाया परा प्रकृति रूपा श्री राधा, श्रीकृष्ण की प्राणाधिक प्रिया होने के कारण ही उनका नाम पुरुष रूप परमात्मा श्रीकृष्ण के साथ संयुक्त है। कृष्ण से राधा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए इसमें बताया है कि "रा" शब्द के उच्चारण से ही श्रीकृष्ण का नाम राग से स्फूर्ति हो जाते हैं और "धा" शब्द कहते ही राधा के पीछे दौड़ो जाते हैं।" इसलिये कर्तों की प्रथम प्रकृति कथात् राधा का नाम और उसके पश्चात् पुरुष कथात् कृष्ण का नाम लेना चाहिये।

१- रा शब्दोच्चारणादेव स्फूर्ति भवति माधवः । ३८॥

धा शब्दोच्चारतः पश्चाद्भावत्येव स संग्रहः ॥

बाधो पुरुष मुच्चार्य पश्चात्प्रकृति मुच्चारत् ॥ ३९॥

स नैन्मातृधात्ती च वेदातिश्रमणोऽपि पुनः ॥ ४० ॥ ३० वे० पु० अध्याय ५२

२- क्व नन्दात्स्य नाथ त्यज वृन्दावनं वनम् ।

००

००

॥३०॥

पुरेतां च संग्राह्य गोलोकं च गमिष्यसि ॥ ३१॥

३० वे० पु० अध्याय ५३

६६ वें अध्याय में कृष्ण जी को वृन्दावन की त्याग नन्द मन्दिर में चली के लिए कहते हुए सुदामा के ती वर्यों के शाप का स्मरण दिलाते हैं। भक्त के शाप के जुरोष से शत वर्ष पर्यन्त प्यारी राधिका को छोड़ उस अध्याय में राधा कृष्ण की ग्रीहा का पुनः पुनः जैसा शृंगारिक वर्णन है।

अध्याय ७० में कछूर गोकुल पहुंच समस्त जन को श्रीकृष्ण का दैत क शब्दों में श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं।

“राधा रम्य रमाय, राधा रम्यराय च ॥६१॥

राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च ॥६२॥

राधा प्राणाधिदेवाय विश्वरमाय ते नमः ॥६३॥

कृष्ण और बलराम को मधुरा से जानने के लिए कछूर को उषाँन शीत दैत राधा भुक्ति ही गोपियों को भी उसका रथ भंग कराती हैं। गोपियाँ कछूर को दूर कष्टी और अपने कंकण तथा करों से उसे वस्त्र विहीन और दात-विदात करती हैं। श्रीकृष्ण राधा को समझा कर दूसरे दिन बलराय, नन्द तथा कछूर के साथ मधुरा चले जाते हैं।

अध्याय ७३ में नन्द कृष्ण को छोड़कर सब जाकर यशोदा और राधा के विरह जन्य शोक को निवृत्त कर यशोदा की प्रेरणा से पुनः मधुरा कृष्ण के पास पहुंच जाते हैं।

अध्याय ६० के अन्त में कृष्ण से नन्द कुछ दिनों के लिए गोकुल ही जाने को कहते हैं जिसमें यशोदा, रोहिणी, राधा, गोप तथा गोपियों की वात्स्यात्म मिली।

बड़े बाय ६२ में उद्व को कदली बन में प्रवेश होने पर बल्यन्त हैं निर्वन रम्य स्थान में राक्षसबात्रम मिला। वह बात्रम रत्नेन्द्रसार से रचित, रत्न स्तम्भों से सुशोभित, कलश वीर पताकाओं से परिष्कृत था। इसके सिंह द्वार पर रत्न कपाट ली थे। द्वार के ऊपर चित्र वृन्दावन था। उद्व सामने के द्वार में प्रविष्ट ही, दूसरे तीसरे चौथे वीर पांचवें द्वार का उत्खनन कर छठवें द्वार पर पहुँचे जहाँ मोतियों पर राम रावण युद्ध के मनीहर चित्र लगे हुए थे। विष्णु के दशावतार, कृत्रिम रास मण्डल तथा यमुना जल कैलि के चित्र भी वहाँ विश्व कर्म ने अंकित कर दिए थे। सहस्रों गोपिकाओं से यह छठवाँ द्वार रक्षित था। उनके हाथ में हीरक मृणित रत्न दण्ड थे। इनमें प्रधान गौपी माधवी ने राधा की प्रिय वस्तुओं को उद्व के आगमन की सूचना दे शब्द ज्वनि कर उद्व को आभ्यन्तर घाम में राधा के पास पहुँचा दिया। राधा की विरह दशा इस प्रकार है :-

‘ददर्श पुरतो राधां क्षुब्धा चन्द्र कलीपमाम् ॥ ६०॥

सुमन्त्र पद्म नेत्रां श्यामां शोक मूर्च्छिताम् ।

रुदन्ती रक्तवदनां क्षिप्तां त्यक्ता भूषणाम् ॥ ६१॥

निश्चेष्टां च निराशारां सुवर्णं वर्णं कुण्डलाम् ॥

शुष्कतायस्कंठां च किञ्चिन्नि स्वासस्तुताम् ॥ ६२॥

उद्व देखते हैं कि राधा वृष्ण पद्म की चतुर्विंशी की रात्रि में चन्द्र की क्षीण कला के समान क्षीण, लाल नेत्र किये, शोक मूर्च्छित अवस्था में पड़ी है। उसका मुख रक्त वर्ण है। वह कलश से पूर्ण, निश्चेष्ट, निराशार वीर बाभूषणों का परित्याग कर री रही है। उसके बाँध वीर कंठ सूत गये हैं। उसके हाँव बहुत धीरे धीरे चल रही है। राधा को देख उद्व के रोमांच सड़े हो गये और उन्होंने मन्त्रि पूँके राधा

की प्रणाम किया।

अध्याय ६३ में ऊदक के स्नान की तुल्य राधा वाले जीत फैली है कि कृष्ण की वाचुति का एक पुरुष सामने खड़ा है। राधा ने उसका नाम तथा जाने का प्रयत्न पूछा। उदक के नाम और जाने के प्रयत्न के पताच के बाद राधा बोलती, " उदक वही सुना है, वही सुगन्धित फल है, वही कोकिल का विलाप है, रम्य झीड़ा जल, उद्यान, सरोवर का कुछ वही है सारा विम्व वही है और यह दुरन्त, बुद्ध, पापिष्ठ मन्त्र भी वही है, पर मैं प्राणनाथ कहाँ हूँ। " वह " हा " कृष्ण, हा कृष्ण कहती हुई मुहूर्ति हो गयी। उदक ने उसे सचेत कर कहा नन्द श्री कृष्ण के उपनयन के पश्चात् ही उन्हें लेकर यहाँ बाँधे " यहाँ उदक राधा की माता और राधा भी उन्हें वत्स कह कर संशोधन करती हैं।

उदक की कष्ट क्या सुनाते हुए राधा के पुनः मुहूर्ति होने पर उदक ने उन्हें पुनः सचेत करते हुए कहा :-

" त्वमेव राधा त्वं कृष्णस्त्वं पुमान् प्रकृतिः परा ।

राधामाधवयोर्मयो न पुराणो ब्रूतो तथा ॥ " २

राधा की मुहूर्ति के ल माधवी कहती है, वही कल्याणी राधा तू उस और कृष्ण का स्मरण क्यों करती है । वह गोप वैश बालक किसी राजा का पुत्र भी तो नहीं है। " माधवी ने कहा " राधा तू बल्यन्ति निरलम्ब है। विश्व की कुतियों के यश का डाय कर रही है। अपनी माधना को बन्दर ही रख । "

उदक इसी अध्याय में गोपियों के प्रेम से अपनी प्रेम की तुल्य समक गण्ड कंठ से कहते हैं कि " धन्य है जङ्गलीप और जम्बूद्वीप में भास्त्वर्ण की गोपियों के

चरण कमल की रज से पवित्र है। गौपियां भी घन्य हैं, जो राधा के पुरावक पाद फलों का नित्य दर्शन करती हैं। मैं भी घन्य हूँ जो गोकुल वाया वीर गौपियों से हरि भक्ति प्राप्त करके कृत कृत्य होगया।

राधा नाम का रहस्य परम गूढ़ है इसे मनुष्य तो क्या देवता, ऋषि, मुनि भी जानने में असमर्थ हैं। भवान् संतर स्वयं महामुनि नारद जी से कहते हैं :-

“ श्री राधा के रूप, तावण्य वीर गुणादिकों की छाने में मैं सर्वथा व्योम्य हूँ। है नारद ! उनके रूपादिकों के महात्म्य से मैं तण्जित हूँ। तीनों लोकों के विषय में कहने में तो मैं समर्थ हूँ किन्तु माता के विषय में कुछ नहीं कह सकता जिसका देह, रूप वीर माधुर्य जात की मोहन करी वाते मोहन की भी मोहित करता है। यदि मैं वत्सन्त मुक्त वाला भी हो जाऊँ तो भी कहने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। तात्तों का मत है कि उसकी तात्तों लक्ष्मी दास हैं तथा सेकड़ों स्वाराओं की ईश्वरी वह परात्परा शक्ति “राधा” है।

श्रुत वैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म तण्ड वध्याय १२४ में लिखा है, “ श्री भवान् श्री राधा से कहते हैं कि हे राधे मिथिला में तुम सोता हुई वीर सती

१- घन्यं यशस्वं दीपानां जम्बूदीप मनोहरम् । यत्र भारतवर्षं च पुराणं शुभम् ॥६४॥ अत्र तथा गौपी फलाब्धिरना फलं परम् निर्मलम् ॥ व० ६४ श्लोक ७७

ततोऽपि गौपिका घन्या मान्या यौणित्यु भारते। नित्यं पश्यन्ति राधायाः पाद फलं  
सुपुराणम् ॥७०६ श्लोक ७८॥

२- श्री राधा रूप तावण्य गुणादीन्वक्तुमक्षमः । तच्छ्रुत्वादि महात्म्यं लब्धेऽस्मपि नारद॥

त्रैलोक्यो तु समर्थोऽपि न मातुं वक्तुमर्हति । तद्देह रूप माधुर्यं जान्मोहन मोहनम् ।

यन्मते मुक्तोपित्यां तद्वक्तुं नास्ति मे प्राप्तिः । लज्जशः कमला दास्यो यस्या ताताताकी माता ।  
स्व शक्त सहस्राणामीश्वरी राधिका परा ॥

डोपड़ी तुम्हारी ही हाथा है। तुम्ही श्री रामकृष्ण की भार्या होकर रावण के तारा हरण की गई थी।”

ऋग्वेद पुराण में राधा कृष्ण के अनेक नग्न चित्र उपस्थित मिले गये हैं। राधा 'गौलीक' की बधिष्ठात्री देवी है जिसे श्रीवामा के शाप के कारण पृथ्वी पर जाना पड़ा और कृष्ण राधा की प्रशंसा करने के हेतु उस लोक में जाये। ऋग्वेदकार राधा की प्रकृति मानते और राधा और कृष्ण में अनेक वैल्लेख हैं। राधा और कृष्ण स्वयं हैं वे भिन्न होते हुए भी अधिष्ठित हैं। राधा की कृष्ण की पूर्ण शक्ति कहा है जिसके बिना वे अस्त हैं। इस पुराण में राधा शब्द की दो व्युत्पत्तियाँ बताई हैं। एक में राध है रा और धा धातु के धा की लकार राधा शब्द की सिद्धि की गई है दूसरी में रा की दान वाचक और धा की निर्वणि वाचक मानकर राधा की निर्वणि प्रदात्री कहा है। इस पुराण में राधा की कृष्ण की अर्द्धांश और मूल प्रकृति कहा है। इसमें राधा तरुणी और कृष्ण शीटे बालक के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। राधा के कृष्ण की गोकुल से जाते समय कृष्ण ने अपनी वास्तविक सत्ता का परिचय दिया है। अज्ञ के चले जाने के बाद राधा कृष्ण के विलास का वर्णन है और और हरण प्रसंग में राधा नग्न दौड़ती है। इसमें राधा और कृष्ण का विवाह भी करा दिया है। इसमें कृष्ण राधा की अनेक पौराणिक गाथायें सुनाते और विदाई के प्रसंग में अनेक रति प्रसंगों के अतिरिक्त भोग साधन के उपदेश देते हैं। पुराणकार ने उक्त के राधा के यहाँ पहुँचने पर राधा की प्रेम विह्वलता के अनेक चित्र उपस्थित किये हैं और राधा का पुर्मिलन भी कराया है। हम कह सकते हैं कि राधा ऋग्वेद पुराण में संतत तरुण रास रंगानुरक्ता तथा कैलि कलित रूप में हमारे सम्मुख आई है।

-----:0:-----

१- कञ्च मिथिलायाचं त्वच्छाया डोपड़ी सती ।

रावणो न हृता त्वं त्वं रामस्य कामिनी ॥

### वाराह पुराण

वाराह पुराण के ६४ वें अध्याय में कृष्ण के वृष बधुर मारने की हत्या करने के लिए चिन्तित होने पर राधा क्रुद्ध करने का उल्लेख है। उसमें लिखा है :-

‘वृष हत्या समायुक्तः कृष्णश्चिन्तान्वितोऽभवत् ।

वृषो हतो भ्या चाप मरिष्टः पाप पुस्तकः ॥

तत्र राधा समाश्लिष्य कृष्णमभितष्ट कारिणम् ।

स्वनान्मा विदितं कुण्डे कृतं तीर्थमद्वयतः ॥ १

### स्कन्द पुराण-

श्री स्कन्द पुराण में श्रीमद्भागवत के महात्म्य का वर्णन करते हुए स्वयं श्री वेद व्यास जी ने भागवत का अभिप्राय इन शब्दों में दिलाया है, “जिनकी वात्मा श्री राधा है उनके साथ रमण करने से ठीक वात्माराम रहस्य के वैरा माने गये हैं”<sup>२</sup>

उसमें बताया है कि “श्री राधिका जी की कृपा से भावदाराधन रूप पुण्य द्वारा पितृ कन्या प्रभावती नाम वाली ऋषि में राधा नाम से प्रसिद्ध हुई जिसकी उपराधा भी कहते हैं।

१- वाराह पुराण अध्याय ६४ श्लोक ३२ तथा ३३

२- वात्मा तु राधिका तस्य तस्य रमणादती ।

वात्माराम इति प्रोक्तो मुनिभिर्बुद्ध वेदिभिः ॥ अध्याय के महात्म्य

३- श्रीराधा कृष्ण पुराणः पितृकन्या प्रभावती ।

राधात्मासीत् ऋषीकैरुपराधेति कीर्त्यते ॥



एक बार हारिका में श्रीकृष्ण की रानियों ने कालिंजी से यह प्रश्न किया कि हम लोग श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल रहती हैं परन्तु बाप में विरह वेदना नहीं फैली जाती इसका क्या कारण है इस पर कालिन्दी जी ने उत्तर दिया कि " कृष्ण वात्माराम हैं, निश्चय ही उनकी वात्मा श्री राधिका है। हम श्री राधिका जी की दासी हैं, उनके दास्य के प्रभाव से श्रीकृष्ण से हमारा कभी वियोग नहीं हो सकता। " श्री कृष्ण जी की सब नायिकारं वर्यात् स्त्रियों उन राधिका के ही वंश विस्तार हैं। संसृष्ट भाव के योग से उन राधिका जी का ही नित्य संगीन है। वर्यात् राधा कृष्ण वात्माराम से सदा संगीनी हैं। वे राधा कृष्ण ही हैं वे कृष्ण राधिका ही हैं वर्यात् राधा कृष्ण दोनों एक हैं। उन राधा कृष्ण के प्रेम रूप वाली वंशी हैं। श्रीकृष्ण जी के नख रुपी चन्द्रमार्ज की पवित्र के साथ चन्द्रावली स्मरण की गई वर्यात्, कर वीर चरण के नखों से चन्द्रावली पैदा हुई। "

#### मत्स्य पुराण-

मत्स्य पुराण में बताया है कि रुक्मिणी हारिका में वीर राधिका जी वन वृन्दावन में विराजमान हैं।

#### श्रीमद् पुराण-

श्रीमद् पुराण में राधिका को नित्य कृष्ण की वात्मा वीर

१- वात्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुव वात्मास्ति राधिका ।

तस्यादास प्रभावेण विरहो जस्मान् न संस्पृष्टः ।

००

००

श्रीकृष्ण नखचन्द्राति सौम्यचन्द्रावली स्मृता ॥ \* स्कन्द पुराण वै० त० ६ भा० मा० १०२

२- रुक्मिणी हारिका तु राधा वृन्दावने वने ॥ मत्स्य पुराण

कृष्ण की निश्चय राधिका की वात्सा बताया है। यही कृष्ण ने अपने मुँह से कहा है।  
वे कहते हैं, 'जिह्वा में, नेत्र में, हृदय में तथा सर्व जगत् में व्याप्ति राधा का मैं  
जाराधन करता हूँ। ब्रह्माण्ड पुराण में गणेश व परशुराम ब्रह्माण्ड में छुटार करता है  
कटा हुआ दांत कृष्ण पर गिरने पर शीकातुर शंकर जी के ध्यान करने पर गौडीक से राधा  
सहित कृष्ण जी बायीं। राधिका ने गजानन गणेश जी की गोंद में लेकर चिर सूँघकर अपनी  
हाथ से उनके पायल गाल को स्पर्श किया। गाल स्पर्श करते ही धाव पूरा हो गया। इस  
पुराण में ब्रह्मा नारद संवाद में भी राधा का वर्णन इस प्रकार मिलता है :-

“ वाराक्षितमनाकृष्ण राधाराक्षितमानसः। कृष्णः कृष्णमनाराधाराधा  
कृष्णोति यः फेडु शृणु गुरुं तु मे तात नारायणमुक्ताचक्रम्। सर्वदा पूज्यते देवैः राधा  
वृन्दावती यो ॥ ” ने देवी राधा को शाय दिया। तुम भी जनक्य हो। लकी जनक्य  
कस्मात् उस देवी राधिका की जीभ के अग्रभाग से उज्ज्वल स्वर्ण खण्ड वाली मनीषर स्त  
क न्या प्रकट हुई। वह सफेद वस्त्र पहनने ली। जीणा पुस्तक धारण करने वाली सरस्वती  
है। उसके जनन्तर वह समय बीतने पर वे राधा दो प्रकार रूपों वाली हुई। बाएँ बाँधे लंग  
से लकी राधिका कल्ला लम्बी हुई। दाहिने बाँधे लंग से स्वर्ण राधिका स्थूल रूप से प्रकट  
हुई। उसके जनन्तर कृष्ण जी भी दो प्रकार रूपों वाले हुए। दाहिना बाधा विभुज, बायाँ

१- राधाकृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुम् ॥ ब्रह्माण्ड पुराण

२- “ जिह्वा राधा स्तुता राधा नेत्रे राधा हृदिस्थिता। सर्वाणि व्याप्ति राधा राधारा-  
धति मया ॥ ” ब्रह्माण्ड पुराण

३- सतुवन्तः छुटारेण विचरन्तौ मुक्ते वप फल ॥४॥ वायु प्रीति ब्रह्माण्ड  
स्वमुक्त्वा तु सा राधा क्रीडे कृत्वा गजाननम् ॥ ५॥ पुराण मध्यभाग तृतीय उपोद्घात  
मूर्धन्युपाधाय परस्पर्श स्वहस्तैः कपोलैः ॥  
स्पृष्ट मात्रै कपोले तु दातं पूर्तिमुदानतम् ॥ ५२॥ व० ४२

बाधा नहोई। कृष्ण जी उस बाणी सरस्वती से बोले कि तुम जो मेरे स्वयं चतुर्भुज विष्णु की कामिनी हो। राखिला मान करते के स्वभाव वाली हैं जैसी तुम्हारी जोर लकी नहीं बनी, तुम जोर लकी विष्णु के पास रहोगी। इस कारण मैं यहीं गौलीक में रहूँगी। है लकी जी, तुम्हारा कल्याण होगा। फिर प्रसन्न हो कृष्ण जी ने उसी प्रकार नारायण के लिये लकी जी को भी दे दिया। वे जात पति विष्णु भगवान उन सरस्वती और लकी के साथ बैठे में गए। वे दोनों सरस्वती और लकी जिस हेतु राधा के जस से पैदा हुई उस कारण जनपत्य हैं।

### देवी भागवत

राधा मन्त्र की परंपरा के सम्बन्ध में देवी भागवत में बताया है कि भक्ति परायण कृष्ण जी ने भूल देवी वाकाश बाणी के उपदेश से गौलीक रास मण्डल में पहले इस राधा मन्त्र को ग्रहण किया। उन कृष्ण के उपदेशित उपदेश से विष्णु ने ग्रहण किया। उन विष्णु के उपदेश से उस प्रकार विराट् कृष्ण ने ग्रहण किया। कृष्ण के उपदेश से धर्म ने ग्रहण किया। जहाँ पिता धर्म के उपदेश से है नारद, हमने ग्रहण किया। इस प्रकार राधा मन्त्र की परंपरा है। राधा के सम्बन्ध में देवी भागवत में बताया है कि पहले वे गौलीक में द्रव्य जिस रूप वाली गंगा जी हुई। सदा नारद वर्ण वाली कन्या और नव गोवता। लकी और लकीश्वर विष्णु से पूजित महालकी हैं।

१- जग्राह प्रथमं मन्त्रं श्रीकृष्णो भक्तिपरः । उपदेशान्भूतैर्व्या गौलीके रास मण्डले ॥१२॥

विष्णुस्तेनोपदिष्टस्तु तैः कृष्ण विराट् तथा । तैः पर्यस्तेन चाहमित्येषा कि परम्परा ॥१३॥

देवी भा० न० ० स्कन्ध ० अ० ३ २

२- पुरा बभूव गौलीक ता गंगा प्रवररूपिणी ॥७॥

सदा नारदवर्णीया कन्यामिवगोवताम् ॥२३॥

पूजिता च महालकी लक्ष्म्या लक्ष्मीश्वरेण च ॥२६॥

देवी भागवत न० स्क० अ० १३

### देवी भागवत

देवी भागवत में भी राधा का नाम आया है। उसमें उन्हें मूल प्रकृति के रूप में ही माना है। राधा परम आनन्द रूप, सन्तोष और हर्ष स्वरूप निर्गुण निराकार किसी में सिद्ध न होने वाली तथा वात्माओं के स्वरूप वाली है। इस पुराण के अनुसार "राधा" केवल बरसाना निवासिनी वृषभानु की पुत्री मात्र नहीं है। श्रीकृष्ण की भाँति ही राधा भी पराशक्ति की अवतार है। राधा प्रकृति के पांच रूप हैं :-

१- दुर्गा २- राधा ३- लक्ष्मी ४- सरस्वती और ५- सावित्री ।

देवी भागवत नवम स्कन्ध अध्याय दो में आया है :-

“वयं सा कृष्णविज्ञातिः कृष्णं गर्भं धारय ॥४५॥

बुधाय हिम्भं स्वर्णमं विश्वाधारात्मं परम् ॥४७॥

दृष्ट्वा हिम्भं च सा देवी हृदयेन व्यसूयत ॥४८॥

शशाप देवी देवेशः ॥४९॥

भक्त्यमनपत्याऽपि ॥५०॥

स्तस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात् सहसा ततः ।

वाक्त्रिभूजं कन्यकां शुक्लवर्णां मनोहरा ॥५२॥

१- परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी ।

निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी ॥

देवी भा० न० स्क० अ० ९ श्लो० ४६

२- गणेश जन्ती दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ।

सावित्री च सृष्टि विधा प्रकृतिः पञ्चा स्मृता ॥

देवी भागवत ६।१।१

श्वतेःस्वपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी ॥५३॥

तद्य कालान्तरे सा च विधारुमा बभूव ह ।

वापाधारिण्य कमला दक्षिणाधारिण्य राधिका ॥ ५४॥

स्तस्मिन्नन्तरं कृष्णो विधारुषो बभूव ह ।

दक्षिणाधारिण्य विभुजो वापाधारिण्य चतुर्भुजः ॥५५॥

उवाच वाणीं कृष्णस्तां त्वमस्य कामिनी भू ।

अत्रैव मानिनी राधात्वद्भ्यं भविष्यति ॥५६॥

स्वं तन्मी च प्रवदो तुष्टो नारायणात्त च । च०स्क०प०वे०कु०ठे०व०द०व्या०व०व०व०व०

स ज्ञानं वेकुण्ठे ताभ्यां सार्धं जात्पतिः ॥५७॥

वनपत्यं च तै ह च जाते राधाशं संभवे ॥५८॥ १

देवी भागवत अध्याय ५० में बताया है कि राधिका की की पूजा करनी चाहिये। उन राधिका से हीन कृष्ण जी नहीं टिकते। कृष्ण के प्राणों से अधिक वेदों से बोधित परमेश्वरी राधा हैं।

### भविष्य पुराण-

भविष्यत पुराण में राधिका की निराकार का की विलासिनी शक्ति कहा है। कृष्ण विलासी स्वयं हैं और ये उनकी सहचरी शक्ति। उसमें कहा है, उस

१- देवी भागवत नवम स्कन्ध अ० २

२- कर्तव्यं राधिकाचनम् ॥ १६॥ तथा हीनो न तिष्ठति ॥ १७ ॥

३- कृष्ण प्राणाधिकां वेद बोधितां परमेश्वरीम् ॥२७॥

देवी भागवत न० स्क० अ० ५०

वज्रव्यवहारी, वज्रवन्त, निराकार से सनातन राधा कृष्ण प्रकट हुए। बुध (जानी) दोनों के बीचों की रक्त कहते हैं। राधाकृष्ण ने जिस कारण से हजार कुओं तक परम तप किया उस कारण से वे राधा कृष्ण कला कला हुये। इसी ही वागे लिखा है कि कृष्ण जी से गुण वाले तीन करोड़ गोप पैदा हुये। दिव्य लीलाओं के कस्ते वाले कलादिक सभी-गुण वाले पैदा हुए। कल श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया इसी वह गीताक में पार्श्व हुआ। श्री राधा की मुखाची से सतीगुणवाली ललिता व विशाखा तथा राजगुणवाली कुन्दा इत्यादि सत्तियां पैदा हुयीं ।”

---:0:---

१- तदव्ययात् समुद्भूता राधा कृष्णः सनातनः ।

स्त्रीभूतं च यौलं राधा कृष्णो बुधः स्मृतः ॥१५६॥

सहस्रं तु फलान्तं यत् तैम परमं तपः ।

तदा स च विधा जाता राधा कृष्णः पृथक् पृथक् ॥१५७॥

भविष्य पुराण प्रति सर्ग परं चतुर्थ स्कन्ध व० २५

२- कलाया स्तामसा जाता दिव्य लीला प्रगर्णिता ।

राधागोपदुग्धा गोप्यस्तिस्त्रः कोप्यस्तथा ज्ञात ॥१५८॥

ललितायाः सात्विकाश्च कुन्दाया राजसास्तथा ॥

तामसाः पूजायाश्च नानावैताचस्तिकाः ॥१५९॥

भविष्य पुराण प्रति सर्ग चतुर्थ स्कन्ध व० २५

### वादि पुराण

वादि उप पुराण में भी राधा का नाम आया है। जहाँ कृष्ण जी की सखियों के ग्रुप की संख्या तीन सौ बताई है जिसमें सातवीं स्त्री संकेपी है। उस सौ स्त्री की गति का नाम ममता है। यह ममता राधिका जी को मनाने वाली बाठवीं स्त्री है। उन्हीं राधिका के जन्म के सम्बन्ध में इस प्रकार आया है :-

“वष्टम्यां माद्रु हुतस्य सा जाता रवि वासरे ।

रात्री पराक्षसमै ज्येष्ठायाश्चान्तिमे फौ ॥” २

वर्षात् माद्रौ सुदी वष्टमी की रात के समय जहाँ रात्रि की पिहली बैला में ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्तिम वर्षात् चतुर्थ चरण में रविवार के दिन राधिका जी उत्पन्न हुई।

इस पुराण में राधिका का कृष्ण के साथ विवाह का वर्णन भी इस प्रकार आया है “उत्तरे अन्तराष्ट्रपर्वणे गुह्यादय कृष्णभानु ने वैशाख शुक्ल पक्ष अष्टम्य तृतीया को रोहिणी नक्षत्र से पूर्ण आया लग्न में राधिका जी का विवाह कृष्ण जी के साथ किया।” ३

इस प्रकार जहाँ सभी पुराणों की देखने से प्रतीत होता है कि राधा भगवान् कृष्ण की मूल प्रकृति रूपा, बाइलादिनी शक्ति है जो मूलतः पद्म शायक अवस्थित हो भक्तों के हृत् रास लेता करती है।

१- वादि पुराण अ० ११ श्लोक ५६, ६१, ६२

२- वादि पुराण अ० १२ श्लोक ६

३- वादि पुराण अध्याय १२ श्लोक १९, २२

### गर्ग चरितम्

गर्ग चरितम् में गौडीय सण्ड, ब्रह्माय २ श्लोक १४ व० ३ श्लोक २५  
श्लोक २९ श्लोक ४०-४९ वादि में राधा का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त  
अन्य किसी भी स्थानों में राधा का वर्णन मिलता है। गर्ग चरितम् कार ने राधिका की  
परिपूर्ण कहा है :-

\* स्वायातु स्मारः स्वादाकार स्थापि गौफिका ।

कनारी परायासि स्वादाकनारी-पिरणा नवी ।

मीकृष्णस्य परयापि कृष्णं तैजसी भवत् ।

लोहा भूः श्रीस्य पिरणा वततः पत्य स्य दि । \* ५

भादों हुनी लष्टगी की वाकाल फल्ल के भावलों के पिर जाने पर दिन  
के मध्य क्वात् दीफर के समय की राधिका की का कतार हुआ।

१- नीराफिकालंस्तवागनाहुः ।

२- राधापराय परिपूर्णतिमात्र तथा की राधिका कृष्ण पुनर वन्द्यारः ।

३- राधाप्री भुति पराधिप्रीः ।

४- वृष्णभावः पुनरप्य सत्यभावां कलापवी ।

पूनी श्रीतिरिति स्थाता तस्या राधा भविष्यति ॥

५- गर्ग चरितम् १५। ६८, ६९, ७०

६- कान्वृत्त ज्योत्स्नि विनस्य मध्ये भाङ्गे सिते नागसिन्धौ च वीर्या गर्ग सं० गौ० व० २ श्लोक ६\*

६-अ- राधां प्राप प्रिय श्रीरु गन्ध स्वपि भूतते। \* गौरीचरितम् वृष्ण० व० २ श्लोक ६\*

६-ब- राधावतारिण तथा कृष्णवीर्य-मलापास्य विष्टः प्रोदुः । \*

गर्ग सं० गौ० व० ८ श्लोक ८



महाभाव स्वहपिणी होने के कारण गोपिकाओं में भी राधा की समीप थी। एक बार महाराज की कृष्णचन्द्र के पाद पंजों में हाथों देकर उनकी वन्द्य राधियों ने उसे पूजा कि यह हाथों की पद गये। भवान् ने कहा कि तुम भी राधा की गर्म पूष पिता दिया था जिससे मेरे पदों में हाथों पद गये क्योंकि मेरे ने कारण तदा कदा उनके पुत्र में रहते हैं :-

‘ भी राधिकाया पुन्यारविन्दे, पावारविन्दे कि विराजते मे ।

कानिष्ठं प्रत्यमासहं भवं भार्द न चक्रेयाम् ॥ १

राधा का विवाह कृष्ण के वतिरिक्त वन्द्य किसी के साथ नहीं हुआ। गर्म भी ने कहा है कि हे नृप, राजा कृष्णभानु ! मैं उन राधा कृष्ण का विवाह नहीं कराऊंगा। उन राधा कृष्ण का विवाह युता की के किनारे भाण्डीर बन में होगा :-

‘कहं न करिष्यामि विवाह मयीनृपः ।

ततोविवाही भविता भाण्डीरे युताष्टे ॥६०॥

वृन्दावन स्मीपे च निती सुन्दरत्पते ।

पत्नीष्टी समागत्य विवाहं कारयिष्यति ॥६१॥ २

राध क्रीड़ा में वर्णन है कि भवान् राध क्रीड़ा में सब गोपिकाओं को त्याग कर सब को छोड़ कर दूर दूर गये और उसकी पत्नी देकर उसे पर चढ़ा लिया। गार्गाचार्य जी ने गर्म संहिता में कहा है कि कृष्ण के भारं कं (कन्ये) के कस्तूरी हुई कान्तिवाता और स्वर्ण के रंभाता उज्ज्वल तैल फेला हुआ।

१- गर्म संहिता भा० सू० सू० २०

२- यत् तै त्रिमे तत् प्रकरोमि राधे मे सन्कारस्य सुतं कृपायु ।

ग० सू० सू० सू० २२ स्तोत्र ३५

३- तादाभाषात् सुसुप्तं गौरीयः स्फुरत्प्रभ । सीता श्रीगुरुविराज तस्याज्वाला श्रीःप्रियाः

सीतापती प्रिया तस्य तां राधां तु पिदुः परी ॥२३॥

गर्म सू० गिरि० सू० सू० ६

## तन्त्र शास्त्र और उसमें राधा

तन्त्र

तन्त्र शास्त्र-

तन्त्र शास्त्र शिव प्रणीत बताया जाता है। इस शास्त्र के द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है और यह साधकों का बाणकारक है। तन्त्र का व्यापक अर्थ शास्त्र सिद्धान्त, क्लृप्तान, विज्ञान, विज्ञान विषयक ग्रंथ आदि हैं। तन्त्र <sup>तीन</sup> भागों में विभक्त है आगम, यामल और मुख्यतन्त्र। बाराही तन्त्र के अनुसार जिसमें सृष्टि प्रलय, देवताओं की पूजा, सब कार्यों के साधन, पुरुश्चरणा, षट्कर्म साधन और चार प्रकार के ध्यान योग का वर्णन हो उसे आगम और जिसमें सृष्टितत्त्व, ज्योतिष नित्यकृत्य, क्रम, सूत्र, वर्णमैत्र और युगधर्म का वर्णन हो उसे यामल कहते हैं और जिसमें सृष्टि, लय, मन्त्र निर्णय, देवताओं के संस्थान यन्त्र निर्णय, तीर्थ वाक्त्रम धर्म, कल्प, ज्योतिष-संस्थान, व्रत-कथा, शौच और अशौच, स्त्री पुरुष लक्षण, राजधर्म, शान धर्म, युगधर्म व्यवहार तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन हो, उसे मुख्य कहते हैं। तन्त्र शास्त्र के अनुसार कलिगुप्त में सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि वैदिक मन्त्रों, जपों और यज्ञों आदि से न मिलकर तन्त्र शास्त्र में वर्णित मन्त्रों और उपायों से मिलती है। इस शास्त्र के सिद्धान्तों की दीक्षा लेती फड़ती है और ये बहुत गुप्त रहे जाते हैं। बाजकल मारण, उच्चकदस उच्चाटन, वशीकरण और सिद्धि प्राप्ति के लिये ही तन्त्र के मन्त्रों और क्रियाओं का प्रयोग होता है। प्रधानतः शक्तों के इस शास्त्र के मन्त्र प्रायः वर्णमैत्र और

स्वाधारी होते हैं जैसे हीं, क्लीं, श्रीं, स्त्रीं, शूं, हूं आदि। तान्त्रिकों के पंच मकार म, मय, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मधुन- और चक्रपूजा प्रसिद्धि है। सब देवताओं का पूजन करते हुये भी तान्त्रिकों की पूजा का विधान सबसे भिन्न और स्वतन्त्र है। तान्त्रिक लोग चक्रपूजा तथा अन्य धनक पूजाओं में मय, मांस और मत्स्य का व्यवहार करते हैं और नगी, घोषिन, तैत्ति आदि स्त्रियों की पूजा करते हैं। यह कहा जाता है कि भावती उमा के जाग्रह से महादेव जी ने वैदिक क्रियाओं, अभिचारों और मन्त्र मन्त्रादि विधियों की कीर्ति कर कलिमुखा के लिये तन्त्रों की रचना की। बौद्धों में भी तन्त्र ग्रन्थ मिलते हैं जिनका प्रचार चीन और तिब्बत में है जो हिन्दू तान्त्रिकों के अनुसार उपतन्त्र कहलाते हैं। वाराही तन्त्र से पता चलता है कि पैमिनि, कपिल, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, मृग, वृहस्पति आदि ऋषियों ने भी कई उपतन्त्र रचे हैं। पुराणों की भांति तन्त्रों का भी बड़ा विस्तार है, तन्त्र शास्त्र कीर्णत तथा अभिषिक्त के अतिरिक्त किसी के सामने नहीं प्रकट किया जाता। इसे हिन्दू और बौद्ध दोनों सम्प्रदायों में अति गुह्य समझा जाता है। प्राचीन स्मृति, संहिता और महापुराण में तन्त्र शास्त्र का उल्लेख न होने के कारण इसे प्राचीन तम कार्य शास्त्र नहीं मान सकते। " हिन्दुओं के अनुसार वे बौद्ध तन्त्रों की रचना हुए हैं। ऐसा की ६ वीं शताब्दी से ११ वीं शताब्दी के भीतर बहुत से बौद्ध तन्त्रों का द्वि-तिब्बतीय भाषा में अनुवाद हुआ था। ऐसी दशा में मूल बौद्ध तन्त्र ऐसा की ७ वीं शताब्दी के पहले और उनके बाद ही हिन्दू तन्त्र बौद्ध तन्त्र से भी पहले प्रकाशित हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। " तन्त्रराज के अनुसार गौड़, केरल, और काश्मीर इन तीनों देशों के लोग ही विशुद्ध शाक्त हैं परन्तु गौड़ देश की ही प्रधान शाक्त स्व तान्त्रिकों की जन्मभूमि माना

जा सकता है। शैव, वैष्णव और शाक्त ये सन्त ये तीन तान्त्रिकों के भेद हैं परन्तु कार्यतः अधिकतर शाक्त ही हैं। उस प्रकार बौद्ध तान्त्रिकों को भी शाक्त कह सकते हैं। रामदास गोड़ के अनुसार<sup>१</sup> सम्भव है बंग का गोड़ से ही नेपाल, भूटान, चीन आदि दूर देशों में तान्त्रिक कर्म फैला था।<sup>१</sup> गुजराती भाषा में लिखे बागम प्रकाश में लिखा है कि हिन्दू राजाओं के राज्य काल में कंगालियों ने गुजरात, डमोई, पावागढ़, बल्लमदाबाद पाटन, आदि स्थानों में आकर कालिका मूर्ति स्थापित की थी। बहुत से हिन्दू राजा और प्रधान व्यक्तियों ने उनसे मन्त्र दीक्षा ग्रहण की थी<sup>२</sup>। सभी तन्त्रों को प्राचीन नहीं माना जा सकता।

तन्त्रों में प्रातःस्मरण, स्नानविधि, त्रिपुण्ड्रधारण, भृशुदि, भूतशुदि, प्राणायाम, सन्ध्या, व्रत, पुरश्चरण, कराग्न्यास, वन्तमातृका, बह्मितीका, चित्रान्यास, नामादिविद्या, नित्यादि विद्या, मूल विद्या, तत्त्वान्यास द्वार पूजा, तर्पण, दशविद्यान्यास, पात्र निर्णय, नित्य पूजा, सूर्यार्घ्य, तीर्थ संस्कार, गुवांदि पूजन, दीक्षा, पूजाभिषेक, प्रायश्चित्त, निम्बपुष्प पूजा, दमनक पूजा, वसन्त पूजा, श्रीचक्र पूजा, दीक्षाकाल, दीक्षामेद, सर्वतोभद्रादि मन्त्रीद्वार, नाम परायण, तत्त्वपारायण, फंगन्यास, महागौड़ान्यास, महान्यास, सम्मोहनन्यास, सौभाग्यवर्धन्यास, वन्त्येष्टिप्रिया, विविध मुद्रा, ज्वधूतादि निर्णय आदि नाना विषयों का वर्णन किया गया है। बिना दीक्षा ग्रहण किये तान्त्रिक कार्यों में हाथ डालने का अधिकार नहीं है। त्रेण्णि के अनुसार कलागर्व में तान्त्रिक गुण सात प्रकार के आचारों में विभक्त हैं :- १- वैदाचार २- वैष्णवाचार ३- शैवाचार ४- उदिपाचाचार ५- वानाचार ६- सिद्धान्ताचार ७- कौलाचार । मध, मांस, मत्स्य, मुद्रा +

१- हिन्दुत्व - राम दास गोड़ पृ० ४६०

२- बागम प्रकाश १२

और मेषु ल पांच मकारों से जादुमिका की पूजा होती है जो तन्त्र के प्राणस्वरूप हैं। तान्त्रिक साधक ल वानन्द दायक फायों द्वारा ईश्वर का सान्निध्य करने का प्रयत्न करता है। ऐसी अवस्था में मनीषिकारों का दवा मोगों की श्रुतिसिद्धि का साधन बनाना पड़ता है जो कठिन कार्य और विषट् साधन है। मय बाहरी शरण न होकर अन्दर में स्थित सहस्रदल कमल से पारित होने वाली सुधा है। इसी को पीने वाला मय कहलाता है। इसी प्रकार मानों मकारों के दूसरे अर्थ हैं। काली या तारा का मन्त्र ग्रहण कर मय सेवन न करने वाला कश्चिदुग में पतित होता है। तान्त्रिक जप, होम आदि कार्यों में अनधिकारी होता है। सुरा का नाम तीर्थ और पान है जो मुक्तिदायिनी है। चाण्डाली कर्मकारी, मातंगी, मत्स्य कारिणी, मयकत्री, रज की, दगीर की, और कवस्त्रमा बाठ श्रिया कुलमोगिनी है जो समस्त विदियों को देनेवाली है।

पंच भूत से एक एक भूत के पांच पांच गुण हैं इस प्रकार पंच भूत के पञ्चीस गुण हैं। जल के पांच गुण शुक्ल, शोणित, मज्जा, मल और मूत्र हैं। ऐत के पांच गुण निद्रा, द्युधा, वृष्णा, स्तान्ति और जातस्य है। वायु के पांच गुण धारण, चाल, दीपण, संकोच और प्रसव है। आकाश के पांच गुण काम, क्रोध, मोह, लज्जा और लोभ हैं। स्पर्श-रसन 'प्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियाँ और मन साधन इन्द्रिय है। यह क्ताण्ड लक्षण देह के मध्य व्यवस्थित है तथा सप्तधातु, वात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ल में शरीर के मध्य अवस्थित हैं। शुक्ल, शोणित, मज्जा, मेद, मांस अस्थि और त्वक् ये सप्त धातु हैं। शरीर ही वात्मा है, अन्तरात्मा है। मन और परमात्मा शून्य मय है। इसमें ही मन विलीन होता है। रक्तधातु माता, शुक्रधातु पिता और शून्य-धातु प्राण से ही गर्भापिण्ड की उत्पत्ति होती है। अव्यक्त से प्राण, प्राण से मन, मन से

१- वायमार्ग पृ० २६, २७

२- कार्य संस्कृति के मूलाधार पृ० ३१५

वाक्य उत्पन्न होते हैं और मन वाक्य के साथ विलीन होता है। तालु मूल में चन्द्र, नाभि मूल में सूर्य, सूर्य के वागे वायु और चन्द्र के वागे मन तथा सूर्य के वागे चित और चन्द्र के वागे जीवन अवस्थित है। पाताल/सक्ति की ओर प्रवाण्ड में शिव की और वन्तरिका में कात की अवस्थिति है जिससे जरा की उत्पत्ति होती है। प्राण वाहार की जाकांता करता है, हुताशन पान भोजनादि करता है और वायु की प्रतिबुद्ध जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्ति में होती है। तन्त्र शास्त्र की उत्पत्ति वह हुई जिसका निर्णय होना कठिन है। प्राचीन स्मृति, संहिता और किसी महापुराण में तन्त्र का उल्लेख नहीं है इसलिए तन्त्रशास्त्र को प्राचीनतम धर्म शास्त्र नहीं मान सकते। अथर्व संहिता में मरणादौटन-वर्षाकरणविधि आभिवारिक क्रिया के प्रसंग मिलते हैं परन्तु अन्योन्य प्रधान लक्षण न मिलने के कारण हम तन्त्र को अथर्व संहिता मूलक नहीं कह सकते। सर्व प्रथम तन्त्र का लक्षण अथर्वविद्वीय नृसिंह ताम्पीयोपनिषद् में देने को मिलता है। लोक बौद्ध तन्त्रों का तिब्बतीय भाषा में अनुवाद ईसा की ६ वीं शताब्दी से ११ वीं शताब्दी के भीतर हुआ। बौद्ध तन्त्रों की रचना हिन्दुओं के अनुकरण पर हुई। इसलिए हम कह सकते हैं कि बौद्ध तन्त्र ईसा की ७ वीं शताब्दी के पहले और हिन्दू तन्त्र बौद्ध तन्त्र से भी पहले प्रकाशित हुए। मन ही पाप करता, पाप का उपाय करता, पुण्य का उपार्जन करता, पाप में लिप्त होता और पाप का उपार्जन करता है। मन ही पुण्य का उपार्जन करता है। प्रान्ति युक्त जीव ही प्रान्ति मुक्त होने पर शिव कहलाता है। तामस व्यक्ति तीर्थ के लिये भ्रमण करते रहते और वज्रानान्ध होकर आत्मतीर्थ से अभिन्न नहीं होते हैं। अनात्म ब्रह्म ही वेद है। ब्राह्म्य के प्रभाव से उच्चरिता होने वाले ही तपस्वी हैं। ब्रह्माग्नि में प्राणों का समर्पण ही होम है। पुण्य, पाप दोनों के त्याग ही ही मोक्ष लाभ रहता है और ज्ञान उत्पन्न होने पर वर्ण विभाग दूर हो जाते हैं। चंचल

चित्त में शक्ति और स्थिर चित्त में शिव का अवस्थान होता है। बंगाल की पूजा पद्धति, क्रिया काण्ड तो तान्त्रिक है ही भारतवर्ष में भी सर्वत्र इसके बंधुर मिलते हैं जिसके उदाहरण मन्त्र बीज गायत्री, न्यास मुद्रा, दुर्गा, तारा आदि शब्द हैं।

बौद्ध तन्त्रों का विवरण भी हिन्दू तन्त्रों की भाँति ही मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू तन्त्रों के शिव, दुर्गा आदि नाम ही कृष्णत्व वज्र डाकिनी आदि नामों में रूपांतरित हुए हैं। बौद्ध तन्त्रों में भी चण्डी, तारा वाराही, महाविषा, योगिनी, डाकिनी, मैत्र मैत्री आदि की उपासनाशक्ति है। शिवोक्त तन्त्रों की देव मूर्तियों की भाँति ही बौद्ध तन्त्रों में भी हेरुकादि देव देवी की मूर्तियाँ हैं। बौद्ध तन्त्र के अनुसार कृष्णत्व और कर्तारा जिस प्रकार हिन्दू तान्त्रिक दक्षिणवर्त के क्रम से न्याय करते हैं उसी प्रकार बौद्ध तान्त्रिक बायावर्त से न्यास करते हैं। बौद्ध तान्त्रिकों के मत से साधन इच्छानुसार प्रत्येक अवस्था में किया जा सकता है। बौद्ध तन्त्रों में भी माला, मन्त्र मातृका, क्वच हृदयादि को अतिगुह्य माना गया है। मय और मांस का बौद्ध शास्त्रों में निषेध और बौद्ध तन्त्रों<sup>में</sup> उसी की सुख्याति है। बौद्ध तन्त्रों में पशु और वीर दो मार्गों का उल्लेख आया है। बौद्ध तान्त्रिक इस जगत् को वामोद्भव मानते हैं। वज्र पूजा, वीर भाग भा पूजा आदि का वर्णन भी बौद्ध तन्त्र में आया है। बौद्ध तान्त्रिक चतुर्वर्ण की भी मानते हैं। बौद्ध तन्त्र तिब्बत और चीन के बहुसंख्यक बौद्धों में पर्यवसित हुआ है।

साधक पंच शुद्धियों के बाद ही देवता की पूजा का अधिकार प्राप्त कर पाता है ये पंच शुद्धियों इस प्रकार हैं :- १- वात्म शुद्धि २- स्थान शुद्धि ३- मन्त्र शुद्धि ४- द्रव्य शुद्धि ५- देवता शुद्धि । तन्त्र के तीन प्रधान विभाग हैं :-

१- अभिधानीयर हृदय ३ फटल

२- अभिधान ४ फटल

३- मन्त्र शुद्धि, ४- कृष्ण शुद्धि ५- देवता शुद्धि । तन्त्र के तीन विभाग हैं :-

१- ब्राह्मण तन्त्र २- बौद्ध तन्त्र ३- जैन तन्त्र । ब्राह्मण तन्त्र उपास्यदेव की भिन्नता के कारण बनेक प्रकार का है - १- सौर तन्त्र २- गणपत तन्त्र ३- वैष्णव तन्त्र ४- शैव तन्त्र ५- शाक्त तन्त्र । इनमें प्रथम दो का प्रकार कम अन्य तीन विशेष लोकप्रिय हैं।

-----  
तन्त्र शास्त्र में राधा-  
-----

तन्त्रों में बनेक स्थानों पर राधा का वर्णन आया है इसलिये राधा और विचार करने के लिये तन्त्र शास्त्र का अध्ययन अनिवार्य है। जानाणव तन्त्र में आया है :-

“वसन्त सहितं कामं कदम्बवन मध्यगम् ।

मन्त्रेणानेन तं कामं पूजयित्तिद्विहेतवे ॥

इससे सम्भवतः कृजलीला पर प्रकाश पड़ता है। तन्त्रों के अनुसार राधा और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। एक ज्योति ही राधा माधव एक से दो प्रकार की हो गई है। भवान् सर्वेश्वर हैं राधिका सर्वशक्ति लक्ष्मी गोपस्म है। परस्पर एक सनातन हैं। राधिका भवान् के सत्त्व तत्त्व, परब्रह्म तीन गुणों वाली है। भवान् कृष्ण के समान ही वह तीन गुणों से लोकों का पोषण करती है। जन्मोद्धन कृष्ण की भी वह मोहित करने वाली है। अब हम आगे विभिन्न तन्त्रों में आये हुए राधा सम्बन्धी वर्णन का विवेचन करेंगे।

-----  
समीक्षित तन्त्र -  
-----

समीक्षित तन्त्र के अनुसार कृष्ण और राधा में कोई अन्तर

-----



नहीं है। एक ज्योति ही राधा माधव से दो प्रकार की हो गई है। बिना श्री राधा के वकिल श्रीकृष्ण के स्मरण वर्णन में अपराध बताया गया है। इसमें एक स्थान पर शिवजी कहते हैं कि जो श्याम बीर गौर तेज में भेदकर गौर तेज के बिना जो श्याम तेज का वर्णन बीर ध्यान करता है वह पातकी होता है। गौर तेज बीर श्याम तेज-राधा बीर कृष्ण अन्यान्य बालिंत रूप में ही सदा रहते हैं कभी कृष्ण के वर्णन में राधा छिपी हुई है, कभी राधा के वर्णन में कृष्ण दुबक गए हैं इसी से दोनों एक रूप माने जाते हैं। एक ही ज्योति के दो विकास हैं :-

“ गौर तेजो बिना यस्तु श्याम तेजः समवीत् ।

समेवत्पातकी भद्रे सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥

स ब्रह्मा सुरापी च स्वर्णशैवी च पंचमः ।

स्तंभोऽविर्विलिप्यते तेजोभिरान्धश्वरी ॥

यस्माज्ज्योतिरमुक्ता राधामाधव रूपधृक् च

तस्मादिदं महादेवि गोपालेनैव भाषितम् ॥

-----  
गीतमीय तन्त्र-  
-----

बृहद् गीतमीय तन्त्र में श्री राधिका कृष्ण के समान वर्णन की गई है। वह सब लक्ष्मीमयी, स्वर्णकांति बीर समोहिनी है। जिन तीन गुणों से युक्त भावान् लोकों का पूजा करते हैं, राधा भी उन्हीं-सत्त्व, तत्त्व, परत्त्व तीन तत्त्वों के रूप वाली है। उनमें सत्त्व कार्य, तत्त्व कारण बीर परत्त्व उनसे भी पृष्ठ है। उस मय श्री

-----  
१- देवी कृष्णमयी प्रीति राधिका परदेवता ।

सर्वलक्ष्मी मयी सर्वकान्तिः समोहिनी परा ॥ बृहद् गीतमीय तन्त्र

२- त्रितत्त्वरूपिणी सापि राधिका मम वल्लभा ॥ गीतमीय तन्त्र

३- सत्त्वं तत्त्वं परत्त्वं च तत्त्वत्रयं महं किल । त्रितत्त्वरूपिणी सापि राधिका । परदेवता । इति सत्त्व कार्यं तत्त्व कारणं परत्त्वं ततोऽपि श्रेष्ठम् ॥

वृषेन्द्रनन्दन जगन्मोहन हैं फिर भी श्री कृष्णभानुजा उनकी मोहित करती हैं इसलिये शास्त्रों में उनकी सबसे परा कहा गया है। गौतमीय तन्त्र में कही इस काम बीज की व्याख्या इस प्रकार की गई है :-

“क्कारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।

एकारः प्रकृति राधा नित्यं वृन्दावनेश्वरी ॥

सर्वानन्दोत्पत्तिः प्रेम सुखं च परिकीर्तितम् ।

बुम्बनाश्लेषमाधुर्यं विन्दुनाबमुदीरितम् ॥”

क्कार है पुरुष सच्चिदानन्द विग्रह कृष्ण हैं। एकार, प्रकृति नित्य वृन्दावनेश्वरी राधिका हैं। ककार वानन्दात्मक प्रेम सुख कहा गया है। विन्दु बीर नाद ये दोनों बुम्बनाश्लेषन माधुर्य स्वल्प हैं।

तथा उसमें बाया है :-

“तन्मध्य मण्डले सुष्ठु योजनत्रयवर्तुलम् ।

तन्मध्योर्णोदशतलं पद्मं तदुपरिस्थितम् ॥

किशोरी गौरश्यामार्गी कौटि कन्दर्प मोहनी ।

राधाकृष्णावितिस्थाती वणुना चिन्तितानुभाः ।

मुल्याष्टसुखीभिर्मुक्ता गौफिकास्तयूथपी ।

राधाकृष्णवहं वन्दे रासमण्डल मध्यगी ॥

उसके बीच में मनीहर तीन योजन विस्तीर्ण गोलकार मण्डल है। उस मण्डल में णोडश दलाला पद्म है। उस कमल के ऊपर किशोर अवस्था वाली गौर श्याम रंग वाली बीर करौड़ों कन्दर्पों को मोहित करने वाली तथा विष्णु परिलक्षित राधा

कृष्ण उस नाम से विख्यात उन दोनों को हम नमस्कार करते हैं। ललिता वादि प्रधान षष्ट सक्षियों से युक्त, सैकड़ों गोपियों के युथ से परिवेष्टित रास मण्डल में विराजमान राधाकृष्ण की हम वन्दना करते हैं।

### रुद्रयामल तन्त्र

रुद्रयामल तन्त्र में गीता के समान योग का विस्तृत विवेचन है। इस ग्रन्थ के उत्तर तन्त्र में राधा का वर्णन इस प्रकार है :- स्वाधिष्ठान नामक जलतत्त्व प्रधान चक्र किंवा पद्म है। इसे अद्भुत कमल कहते हैं। यह दीप्तिमान, अरुणवर्ण और व म, म, य, र, ल इन छः मातृका वर्णों से युक्त है। प्रत्येक दल की ६ वृत्तियाँ हैं यथा वज्रता, मूर्धा, प्रणय, अविश्वास, सर्वनाश और क्रूरता। इसकी कर्णिका के वन्दर श्वेत वर्ण वर्षवम्ब्राकार वरुण मण्डल है, जिसमें वरुण बीज 'व' है। इसमें श्वेत वर्ण त्रिभुज वरुण देव मकराधिष्ठित है। उनके अंक में राधा कृष्ण का वर्णन है।

बह्वीसवें पटल में अनेक मंत्रों का वर्णन है। उसके ३५ वें श्लोक में आया है "योगेश्वर कृष्णमीशं राधिकाराकिणीश्वरीं" ३६ वें पटल के १४ वें श्लोक में लिखा है "राकिण्याः प्रेम सिद्धं नववयसि गतं गीतवथानुरक्तं ।" बालीसवें पटल में योगी की वृद्धता प्राप्त कराने के नियमों का वर्णन करते करते ध्यान वृद्धता का मार्ग बताते हुये आया है कि "इस कारण से महाविषा उत्पन्न शक्ति राकिणी राधा ध्यान करने योग्य है।" फिर कुम्भकादि द्वारा वायु निर्मित करके साक्षात्कार के समय प्रत्यक्षा रूप से राधा का उल्लेख कर दिया है :-

"राधाविनीपीवृन्दैश्च गोपिकाभिः समन्ततः" श्लो० सं० १४८

इस तन्त्र में बानन्द मैखी मैख जी से कहती है कि :-

“शृणु राकिणीस्तोत्रम् ॥१०॥

स्ततः स्तवनपाठेन योगीन्द्रमाप्नुयेत् ॥११॥

कृष्णप्रिया मनसुखमपरिपातु राधा ॥२०॥

राधेश्वरी प्रियकरी सुर सुन्दरी या ॥ २१ ॥

शान्ता' बडम्बुजदलीपरि पूजयामि ।

रम्या' शिवा' परमवेष्यावपूजिताकिम् ॥ २५ ॥

स्वा' सुधा' वसयी जगता' गुणस्थाम् ॥ २६ ॥

याकातरं निराविधि प्रत्यःपि रक्षोत् ॥ २७ ॥

वायुस्थिता लम्पयी स्थितिमार्गसिंहा ।

मंगप्रिया सुवसना परिपातु राधा ॥

श्रीकृष्ण चितहरणी कुशला रसज्ञा ।

राधेश्वरी शुभकरी जगदम्बिका सा ॥ ३० ॥

पूज्यातिपूज्याशया ॥३१॥

वैकुण्ठधामेश्वरी ॥३२॥

अवश्यं प्रयठेतिहान् राकिणी राधिका स्तवम् ॥ ३७ ॥

ततोभावपरो भूत्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ३८ ॥

तद्वैष्णविनी देवी राधिका चायकामिनी ॥ ४४ ॥

तात्पर्य यह है कि राकिणी अर्थात् राधिका का स्तोत्र सुनी ॥ राधा राधाजी के स्वप्न श्रीकृष्ण की प्रिया हैं। पूर्णमासी की सुधारण होने के

कारण इनका नाम राक्षिणी है। ये गुणों में स्थिति है। सूक्ष्म से भी बति सूक्ष्म वाश्याली हैं। वैकुण्ठधाम की ये दैवरी हैं। ये फल स्तुति के साथ साथ मुक्ति साधक उपदेश प्रकट करती हैं। राधिका वादि कामिनी हैं।

### ----- माहेश्वर तन्त्र- -----

माहेश्वर तन्त्र के सप्तदश पटल ।ज्ञानतण्ड। में राधा का उल्लेख इस प्रकार से मिलता है :-

“ स्वामिनी वासिनी राधा स्वयं वृन्दावनेश्वरी । ” श्लोक ३१

राधिका स्वामिनी वासिनी स्वयं स्वयं वृन्दावनेश्वरी है।

“ कृष्णो राधा स्वर्ग्येण विरहाकुलान्ता चेतनः ।

कथं सा संता मस्यात्... ॥ श्लोक ३३ ॥

श्रीकृष्ण राधास्वरूप के विरह से जान्तान्ता चित्त वाले हैं। वह मुझे किस प्रकार प्राप्त होगी ।

“ इत्येव राधया प्रोक्ता सखी प्राणपतिं ययौ ॥ श्लोक ४६

इस प्रकार राधिका से कहती हुई सखी प्राणेश्वर श्रीकृष्ण के पास गई ।

“ स्त्वत्समविरहात्कृष्ण राधापि क्लिश्यते ।

कृष्णकृष्णोत्थि मंत्र विरहाकुलान्ताया । ” सप्तदश पटल ४

हे कृष्ण तुम्हारे संग के विरह से श्री राधिका क्लेश पारसी हैं। वह राधिका विरह से व्याकुल होकर कृष्ण कृष्ण इस मन्त्र का जाप करती हैं।

“ राधिका राधि के चैति महामन्त्रं जपन्मरः । ” ३८

मनुष्य राधिक राधिके इस महामन्त्र का जप करे ।

-----

### कृष्णायामल तन्त्र

कृष्णायामल तन्त्र में बताया है कि भावान् सर्वेश्वर हैं और राधिका सर्वशक्ति से परिचरित हैं। कृष्ण के नाम का जाराधन करने के कारण उनका नाम राधा पड़ा है। उसमें बताया है कि जिस मोर के फंल में श्री राधिका जी के चैत्रों की छटा देखने की मिल जाती है उसे श्री राधा के उस प्रिय मोर के बूढ़ा समूह की श्रीकृष्ण च चन्द्र जी अपने शिर के मुकुट पर धारण करते हैं जतः मोर मुकुट वाले कहे जाते हैं। कृष्ण यामल में बताया है कि जिस शक्ति का सम्यक् वर्णन किया है वह गोपीस्वरूप होकर श्री राधिका की स्त्री बनकर श्रीकृष्ण चन्द्र की उपासना करती है। इसमें कृष्ण एक स्थान पर कहते हैं कि हम अपने जात्मा के दो स्वरूप करेंगे, धरा गोपीक है और लक्ष्मी गोपस्वरूप श्री राधा है। हम गोप रूप रखकर गोविन्द नाम से विख्यात होंगे, ललित्यादिक स्त्री राधिका जी की दासी होवैगी। कृष्ण राधा से कहते हैं :-

‘त्वया चाराध्यते यस्मादहं कुंभमहोत्सवे ।

राधेतिनाम विख्याता रसलीलाधिनायिका ।

वर्धात् तुम्हारे द्वारा मैं रसकुंभ महोत्सव में जाराधन किया गया हूँ जिससे तुम्हारा राधा नाम विख्यात है। वेदों तो शास्त्रों में जेक प्रकार से श्रीराधा जी का वाधिभावं होना लिखा है परन्तु कृष्णायामल में लिखा है कि श्री लक्ष्मी जी राधा

१- वह सर्वेश्वरी राधा सर्वशक्तिनिर्णयिता । कृष्णायामल तन्त्र चौदश अध्याय

२- चाराध्या यन्नाम्नापि विख्याता तेन राधिका ॥ कृष्णायामल

३- राधिका प्रिय मयूरस्य यत्र राधिकाणप्रसम् । विमर्ति शिरसा कृष्णास्तस्य बूढ़ानिर्म यतः ॥  
कृष्णायामल तन्त्र

४- याः शक्त्यः समारव्याता गोपीरूपेण ताः पुनः ।

भूत्वा राधिकायाः कृष्णचन्द्रमुपासते ॥ सत्यौ

हुँ है।

कृष्णायामल में श्री वृन्दावन विहारी की वृन्दावन झीड़ा की  
वो प्रकार का बताया है एक तो विहारात्मिका और दूसरी लीलात्मिका । उसमें कहा है :-

“ स्नेन वपुषा गोपप्रसवदो रसान्मुधिः ।  
अन्विनवपुषा वृन्दावने क्रीडति राधया ॥  
गोपेश्वरी गोपापीभीरुसविग्रहः ।  
शृंगारोचित वेशाढ्यः श्रीमान् गोपालनरः ॥  
स्व प्रकाशविध्यस्थो नित्यविहारिणाम् ।  
तया सह विहारी यः कृष्णस्य परमात्मनः ।  
स स्वोपनिषदिभ्यस्तु नित्यानन्द स्तीयसी ।  
राधामाधवयोरेव शृंगारः श्रुतिरोक्तः ॥

-----  
मूढांमनाय तन्त्रे -  
-----

मूढांमनाय तन्त्र में श्री राधिका के स्तवराज में वर्णन किया है कि  
कोई तुमको श्री कहता है, कोई गौरी कहता है और क्वीन्द्रगण परेशी कहते हैं। तुम  
परात्पर ब्रह्म सनातन हो। तीन गुणों से लोकों का पोषण करते हो।

“ केचिच्छिवं त्वां कतिचिज्ज गौरी परे परेशीं ब्रुवते क्वीन्द्राः ।  
परात्पर ब्रह्म सनातनं त्वं गुण त्रयीवविभक्तिं लोकम् कृति ॥

-----  
हरितन्त्रे-  
-----

हरितन्त्र में लिखा है कि चन्द्रकान्ति नाम सर्व कल्याण नाथ

मुनि के उपदेश से नित्यसिद्धा श्रीराधा जी की उपासना करके ब्रज में भानु गौप की कन्या राधा नाम से प्रसिद्ध हुईं चन्द गौप से व्याही गईं श्रीकृष्ण कृपा से नित्य रास में प्रविष्ट हुई :-

“ काचिज्जन्दकला नाम्नी गान्धर्वी नवयौवना ।

सुतस्या महाबुद्धिरासीदिन्द्र प्रियानुगा ।

कस्यचिद्भानुगौपस्य पत्नी कृष्णस्य मायिनी ।

श्रीकृष्णपत्या भक्त्या सप्रियं रासमण्डले

संतीज्य साधिराधास्या लब्धवासीनित्य कैलासा ।

ज्यातु जन्दकला नामवाली गंधर्व कन्या नवीन यौवनावस्था वाली सुन्दरी महाबुद्धिपत्नी इन्द्रपत्नि सहचरी भानुनाम वाले किसी गौप के घर में जन्म लेकर राधा नाम से प्रसिद्ध हुईं जो चन्द्र गौप की पत्नी और भवान् कृष्ण की प्राण वत्समा हुईं। नित्य लीला किनारी श्रीराधास्य को रास मण्डल में वाराधन करके भवान् को सन्तुष्ट करके वह उपराधा नाम से प्रसिद्धा रक्षितेश्वर वृजचन्द के हस्तीसमृत्यकराजक महा-रास में प्राप्त हुई।

---

हरिलीलामृत तन्त्र-

---

ऋग्वेद पुराण के राधिका जी के विवाह की मांति ही हरिलीलामृत तंत्र में भी राधिका का विवाह किया गया है। शिवजी पार्वती से कहते हैं :-

“ क्व तत्र शुभे काले विप्रानाह्य सखान् ।

वृषमातुर्महा मातःपद्मच्छोदीहवातरम् ॥

---



वहाँ पर स्थित विवाह के शुभ काल जाने पर शुश्रूषुमान् महा-  
मान्यवान् वृष्णभानु महाराज ने विप्रों को बुलाकर विवाह का दिन पूछा।

वृज की जनता के उत्सासवर्धक संस्कारार्थ श्री नन्द जी के घर  
पर वर के मार्ग लेने के समय उनके कुन्तामणि प्रभृति वृष्णभानु नृप ने भेंट रूप में भेष। बाद  
में वेदादि शास्त्ररीति तथा लौकरीति के अनुसार राजा वृष्णभानु स्मन् गोप ने अपने घर  
पर बाकर बड़े समारोह के साथ श्रीकृष्ण की राधा वर्णित की। विवाह के विस्तृत वर्णन  
सम्बन्धी कुछ वंश निम्न प्रकार हैं :-

“ अथ नन्द गृहे प्रीत्या प्रणिता लग्नपत्रिका ।  
वश्वात्कृता हाता हस्तिनश्च स्युता ॥  
सौवर्णाणि ववासांसि नारिकेलिस्तानि वै ।  
नाना विधानि रत्नानि कृष्णप्रीत्यै समादिशत् ।  
अथोत्सवः प्रवृधे गोपयोरुभयोरुहौ ।  
उत्तर्नं दधुनायौ तयोरो महात्मनोः ॥  
अथोद्वाहदिने रम्ये गोपा गोप्यः स्वत्कृताः ।  
उपायनान्युपादाय उभयोरायुर्गुहम् ॥  
हस्त्युक्त्वा प्रक्रमं कौ वीवृन्दावननायकः ।  
ततो मशोत्सवी कृतः पश्यता दम्पती मुदा ॥  
नराणामथनारीणामतिविस्मयदायकः ।  
वृष्णभानुर्ददौ दानं विप्रस्यो बहुसंपन्नम् ॥  
वधूवरो रथे स्थाप्य प्रणयामास सावत्म् ॥

मासमेकै वासयित्वा पुनरानीय स्वयं ॥

दम्पति वासयामास बभूव परमोत्तवः ।

वृषभानुपुरे रम्ये देवानामपि दुर्लभम् ॥ ११ ॥

### मन्त्रमहोदधि तन्त्र-

मन्त्रमहोदधि तन्त्र के भावशः तरंग में गोपाल सुन्दरी शब्द का प्रयोग हुआ है कहाँ ऐसा प्रतीत होता है यह गोपाल सुन्दरी राधा के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। कहाँ लिखा है :-

गोपाल सुन्दरी वक्ष्ये भोगमौषा प्रजायिकाम् ।

माया रमा चित्तवन्मा कृष्णयेति फलतः ॥ १५५ ॥

जहुता वैष्णवे पीठे पूजयेत् सुन्दरी त्रिश्र सरस्वती ।

रतिः पुनर्विन्दु पूज्या रुक्मिणी सत्यभामिका ॥ १५६ ॥

भोग व मौषा की देने वाली गोपाल सुन्दरी को कहेंगे। इसके अनन्तर कृष्णाय यह पद है। इन्हीं वैष्णव पीठ में स्थापित करके हवन करें। सुन्दरी व हरि (कृष्ण) का पूजन करें। अग्नि इत्यादि सब कौणों में शान्ति, श्री, लक्ष्मी और सरस्वती जी का पूजन करना योग्य है। फिर पूर्वादि दिशाओं में रति, रुक्मिणी, सत्यभामा का पूजन करना योग्य है।

### सारस्वत तन्त्र-

सारस्वत तन्त्र में कहा है कि :-

यथा मानोः प्रकाशस्य मण्डलस्य पृष्ठा स्थितिः ।

स्व. श्री कृष्णदेवस्य व्रतणः परमात्मनः ॥

वाचार्थ्य उसका अर्थ लाते हुये उसका सम्बन्ध राधा से जोड़ते हैं। उनका कहना है जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश मण्डल की भिन्नि(बाहर)स्थिति है उसी प्रकार व्रत परमात्मा श्रीकृष्णदेव के प्रकाश मण्डल की मधुर हटा राधिका जी की बाहर स्थिति है। जैसे सूर्य व सूर्य दीप्ति में कोई बंध नहीं है। वैसे कृष्ण और राधिका में कोई बंध नहीं है किन्तु केवल व्रत लोगों को देखने में विला से प्रतीत होते हैं।

-----:0:-----

### संस्कृत साहित्य में राधा

पीछे हम पुराणों में राधा के वर्णन का पर दृष्टिपात कर चुके हैं जब हम प्राकृत ग्रंथ, संस्कृत चम्पू तथा काव्य ग्रन्थ, ताम्र पत्र, शिलालेख आदि में मिले गये राधा के चित्रण पर प्रकाश डालें।

नारद पंचरात्र, कृष्ण पांचरात्र आदि ग्रन्थ बहुत की रचना होने के कारण प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं कहे जा सकते। वैष्णव तन्त्रों में राधा की शक्ति का ब्रह्मादिनी शक्ति माना गया है और उन्हीं के प्रभाव स्वल्प नारद पांचरात्र में ~~एवमप्राप्यपरिष्कारप्रवृत्तिव~~ राधा की तान्त्रिक दृष्टि से चित्रित किया गया है। यद्यपि प्रकाशित नारद पांचरात्र प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता फिर भी उसमें जाये हुये राधा के विवरण का संप्रतिष्ठ परित्व देना आवश्यक प्रतीत होता है। जहाँ राधा शब्द की उत्पत्ति के विषय में लिखा है :-

‘शब्दोच्चारणाद् धावत्येव भक्तौ भक्तिं मुक्तिर्वराति सः ।

धा शब्दोच्चारणेनैव धावत्येव हरिः फम् ॥२-३- ३८

वर्थात् ‘रा’ शब्द के उच्चारण से ही भक्त होता है और वह भक्त भक्ति और मुक्ति को प्राप्त होता है और ‘धा’ के उच्चारण के द्वारा हरि के फ की ओर धावित होता है।”

इस ग्रन्थ के नमस्कार श्लोक में मिलता है :-

‘लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका परा । १-२-

नारद पांचरात्र में श्रीकृष्ण का कथन है कि " सत्य सत्य  
 बारम्बार सत्य सत्य कहता हूँ कि संसार में श्री राधा का नाम बिना वैरी प्रसन्नता नहीं  
 हो सकती। " व्यक्ति " वादि में श्री राधा की उच्चारण करे पीछे श्रीकृष्ण माधव  
 को उच्चारण करे। जो विपरीत करेंगे तो निश्चय क्रा हत्या के पाप को प्राप्त होंगे।  
 श्रीकृष्ण ज्ञात के तात हैं श्री राधिका माता हैं। पिता से सौगुनी श्रेष्ठ माता वन्दन  
 पूजन करने योग्य हैं। राधा और कृष्ण दोनों एक हैं दूध और उसकी श्वेतता के समान  
 उनमें भेद नहीं है। उसमें लिखा है कि " कैार लक्ष्मी प्रकृति राधिका जी हैं जो नित्य  
 रहने वाली वृन्दावन की रक्षक हैं। उनकी दुःखहर्ता समर्थ कृष्ण भगवान् के प्रेमपूर्ण वाराधन  
 करने के कारण और लीला उस में परिपूर्ण भग्न होने के कारण राधा कहा गया है। "

चाहे नारद पांचरात्र की अप्रामाणिक मान लिया जावे तथा  
 अवैतनिक श्री राधा का विश्व वर्णन करने वाले पुराणों की वाद की रचना मान लिया जावे  
 परन्तु राधा की प्राचीनता में सन्देह नहीं किया जा सकता क्योंकि जब से लाभ दो हजार  
 वर्ष पूर्व अर्थात् लाभ पहली शताब्दी में लिखी गई प्रकृत रचना " गायिका सप्तशती " में राधा  
 का उल्लेख आता है।

१- सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव पुनः पुनः ।

राधा नाम्ना बिना लोके मत्प्रसादी न विधीते ॥ नारद पांचरात्र

२- वादी समुच्चरैराधा-पश्चात् कृष्णचमाधकम् ।

विपरीत यदि पौर क्रा हत्या लोके धुमम् ।

श्रीकृष्णोऽस्ति ज्ञातात् जन्माता न राधिका ।

पितुः स्वरुण माता वन्द्यापूज्या गरीयसी ॥ नारद पांचरात्र

३- ह्याश्चैकी न भेदश्च दुग्ध धावतय धौर्यथा ।

४- कैार प्रकृति राधा नित्या वृन्दावनीश्वरी । नारद पांचरात्र

५- जया राधिकाः कृष्णो भगवान्दरिरीश्वरः ।

लीला उस वादिन्या तेन राधा प्रकृतिता ॥ नारद पांचरात्र

### गाथा सप्तशती-

गाथा सप्तशती में राधा कृष्ण के उसी स्वरूप के वर्णन होते हैं जिसका जाने चत्तर रीतिकालीन कवियों ने वर्णन किया है। गाथा सप्तशती की निम्नलिखित गाथाओं में से एक में राधा कृष्ण का तथा अन्य में कृष्ण के नाम का उल्लेख है :-

‘मुह्यारुण्य तं कण्ठ गौरं राखिवारं वणोन्तो ।

स्ताणं वल्लभीणं वण्णाणं वि गौरं हरति ॥१-८६॥

‘ है कृष्ण! तुम राधा के नेत्रों में ली हुई रज की झुल की बाधु से हरण करते हो (बधाएँ उसी रज से बुझन करते हो)। स्वति वन्यान्व गौपियाँ का गौरं हरण करते हो। ”

‘वज्रि काली दामोदरी चि त्व जम्पिर जलोबार ।

कण्ठमुहपतिज्जं णिह्वं हस्तिं वल्लहृदि ॥ २-१२॥

दामोदर वनी भी काल की हैं जब यशोदा ने उस प्रकार कहा तब कृष्ण के झुल की वीर दैतकर गौपियाँ खिपी हुई हसी हंस रही थीं।

पञ्चणसताह्णणिहेण पावपरिखटिजा णिह्वणोवी ।

सरिक्खोविवाणं बुम्भं क्खोत्तपडिमागवं कण्ठ ॥ २-१४ ॥

कृष्ण वनुरक्ता निपुण गौपी नृत्य के प्रस्ताव समीप की समान गौपियों का बुझन कर लेती हैं वनाह उनके कपोलों पर कृष्ण प्रतिविम्ब दैतकर बुझन कर लेती हैं।

जह मासि भमसु खेव कण्ठ सोहग्गाध्विरो गौट्ठे ।

महिलाणं दोसुणो विवारखण्डं जह समोसि ॥ ५-४७॥

है कृष्ण! यदि तुम अपने सौभाग्य पर गर्वित होकर गीत में प्रमग्न रहते हो तो भी इसे ही करो परन्तु सच्चा गर्व तो तभी रहेगा जब तुम में उस स्त्रियों के गुणगुण का विचार करने की क्षमता होगी।

‘सच्चासृष्णविवाहे समं कर्त्तव्यं वरुणगौवीरि’ ।

वडहन्ते महामहर्षे संन्या गिर्यकिंन्ति ॥ ७-१५॥

जिन वरुण गौवियों का विवाह अत्यन्त निकट आ गया है, वे महामहर्षे की कृपा होते बैठकर यशोदा के साथ के अपने सम्बन्ध को भी छिपाती हैं।

गाथा सम्यक्ती की रचना से प्रतीत होता है कि उसका रचयिता राधा कृष्ण का भक्त नहीं है। उसके लेखक ने राधा कृष्ण के नाम का वाक्य लेकर शृंगारिक कविता की है। यह संभव है कि इस प्रकार की प्रेरणा उसे अपने पूर्ववर्ती कवियों की उन रचनाओं से मिली हो जो अब उपलब्ध नहीं हैं। जागे चत्तर ब्रह्मवर्त और गाथा सम्यक्ती की परिपाटी ने ही संस्कृत तथा भाषा के कवि जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, बूर आदि को प्रेरणा दी।

पंचतन्त्र-

ब्रह्मवर्त पुराण में राधा का कर्त्तविक, लौकिक, शृंगारी, कृष्ण की परकीया प्रेमिका के रूप में जो स्वल्प द्धितार्थ देता है वही स्वल्प दूसरी शताब्दी से पाँचवीं शताब्दी के बीच के पंचतन्त्र (मिश्रलाभ प्रथम तन्त्र) की विष्णु स्मयारी रत्नार की कथा के इस विवरण में द्धितार्थ देता है :- ‘रत्ना नाम बाहराजपुत्रि ! सुप्ता किम्बा द्धितार्थमा

सह समागम इति सापिस्त्राष्टं चतुर्थं सायुषं कौस्तुभोपेतं मल्लोक्तस्य स विस्मया हन्ता  
 दुत्थाया। प्रौवाच-<sup>१</sup> भावन् । क्वं मानुसी कीटिकाऽद्युचिः। भावांस्त्रैलोक्य पावनी  
 वंदनीयश्च। तत्कथं तमुच्यते। कौत्सि वाह सुभो। सत्यमभिहितं मत्स्या परं किन्तु राधा  
 नाम मे मायां गौकुल प्रकृता प्रथम भासीत् सा त्वमन्वतौर्णा। तेनाहम् क्वायात्रः इत्युक्ता  
 सा प्राह-॥<sup>२</sup> ९

साहित्य के अतिरिक्त पांचवीं छठी शताब्दी के समाग की  
 प्राप्त मूर्तियों लोहों और ताँबे पत्रों में भी राधा का स्वरूप देने की मिलता है। पांचवीं  
 छठी शताब्दी की देवगिरि और फाड़पुर की मूर्तियों की पुरातत्व वैज्ञानों ने राधा और  
 कृष्ण की प्रेम सीताओं की मूर्ति बताया है।<sup>३</sup> पारा के अमोघ अमोघ वर्ष के ६८० ई०  
 के शिलालेख में राधा का उल्लेख कृष्ण की प्रिया के रूप में हुआ है।<sup>४</sup> मालवा के पृथ्वी  
 वल्लभ मुंघ के सन् ६७४ ई० तथा सन् ६७६ ई० के लोहों ताँबे पत्रों के मालाचरण में राधा  
 विषयक दो श्लोक पाये हैं :-

यत्कलीकलीन्दुना न सुखितं यन्नाद्रितं वारिषे-  
 वारायन् नित नाभि वरसीपयैः शांति गतम् ।  
 यच्छेषादिफरणा सह्र मधुरश्वासेनं वाश्वाचितं ।  
 तद्राधाविरागुरं मुरारियोर्वैल्लभुः पातुः॥<sup>५</sup>

१- पंतन नृसिंह देव शास्त्री संस्करण १६३२- ई० पृ० १२१- १२२

२- गंगा पुरातत्वांक- फाड़पुर की खुदाई -के० स० दीक्षित

३- कै० स० मुंघी - गुजरात और उत्तर साहित्य पृ० १२५- १२७

४- प्राचीन लेखपाला प्रथम भाग सं० १



धर्मेय दशरूप -

उसी मुँह के दरबारी कवि धर्मेय के दशरूप के चौथे परिवर्तन में रुद्रकवि के दो श्लोकों में राधा का उल्लेख आया है :-

“ निर्मलैः मया मयि स्मरराधाली क्वालिगिता ।

कैलासीकभिर्द तवाप कथितं राधै मुधा ताम्भसि ।

इत्युत्स्वप्नपरम्परास्तु त्वमी भुत्वा क्वः शार्ङ्गिणः

सव्याजं शिथिलीकृतः कमला कण्ठः पातुवः । ” १

अर्थात् पानी में डूबे हुए मैं ने काम के बौद्ध के कारण किसी तरह उस स्त्री का बालिगन कर लिया था, है राधै, तुमसे यह झूठी बात कि मेरा मैं उस स्त्री से है, किसी कह दी, तुम बिना बात ही क्यों दुःखी हो रही हो। निद्रा के समय स्वप्न में कहे गये विष्णु कृष्ण का कवनों को सुनकर किसी न किसी बहाने से अपनी रुक्मिणी ने अपने हाथों से उनके कण्ठ से हटा लिया, कण्ठ को शिथिल कर दिया। इस तरह से कमला के द्वारा शिथिल विष्णु का कण्ठ तुम्हारी रक्षा करें। ”

जानन्दवर्धन ध्वन्यालोक :-

काश्मीर के राजा ज्योतिषर्षभ ८५६ ई० ८८३ ई० के सम्राट्तीन जानन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक (सन् ८५० ई०) में राधा का उल्लेख करते हुए एक पुराना श्लोक उद्धृत किया है जिसमें श्रीकृष्ण उल्लेख से राधा की कुशल पूछ रहे हैं। वह श्लोक इस प्रकार है :-

१- धर्मेय दशरूप व्याख्याकार - डा० भीला शंकर व्यास चौहन्ना विद्याभवन चोक,

बनारस १ स० २०१९ पृ० २६४- ३६५

तेषां गोपधु विलास सुहृदः राधा रूः साक्षिणाम् ।

मङ्ग मङ्ग! कलिं राजतनया तीरे क्तावेशमनाम् ।

विचक्षन्ते स्मरतत्कालाविधिर्ज्योपायोगेऽधुना ।

ते जाने जग्णी भ्रान्ति विगतस्तीक्ष्णः पल्लवाः ॥

इं मङ्ग! यमुना तीर के जो क्ता हूँ गोपधुओं के विलास में सुहृत्स्वरूप थे, राधा की निपुण ग्रीवाओं के जो साक्षी थे, उनकी वृक्षा तो हैं! नीली नीली कौपों तो जब फल ही जाती होंगी, क्योंकि विलास शैला की रचना में उपयोग करने के लिए जब उन्हें कोई तोड़ता ही न होगा।

अन्यातीक में एक और राधा विरह सम्बन्धी प्रस्ताव लेख द्वारा लिखित मिलता है :-

“याते तारस्वतीं पुरी मधुरिणीं तत्स्वतन्व्यान्वा ।

कालिन्दी तटकुं मञ्जुलताभालम्ब्य जीतुंठया ।

उद्युतं गुरुवाभ्याशुद् गत्तार स्वर राधया ।

कान्तार्जुनारिभिं जलरसलठभाङ्गितम् ॥” १

“मधुरिणु कृष्ण के तारका की जाने के बाद उन्हीं कपड़ों की शरीर पर लपेट कर और कालिन्दी तट कुं की मञ्जुल क्ताओं से लिपट कर जीतुंठा राधा ने रुधै हुए नक्षद् कं से विगलित तारस्वर से गाना गया और उसी यमुना के जलरों ने भी

१- ज्योति रचयिता का नाम नहीं है यह श्लोक दत्तों और ग्यारहवीं सदी के बालकान्तिक मुन्ता के “वक्रोक्ति जीवितं जलंर ग्रंथ में भी उद्धृत है। उद्धृत कर्णामृत में ब्रह्मात लेख के नाम से और पद्मावती में अपराजित कवि के नाम से और कुछ पाठान्तर के साथ हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में भी उद्धृत है।

उत्कीर्ण होकर झूझ बारम्ब कर दिया था।

### भट्टनारायण वैष्णवसंहार-

कवि भट्टनारायण वृत्त 'वैष्णव-संहार' नाटक में रास के समय नान्दी श्लोक में कालिन्दी के जल में कैलि कुमिता वकुलवृणा राधिका वीर उनके लिये किये गये वृष्ण के वनुय का उस प्रकार उल्लेख है :-

‘कालिन्दाः पुलिणु कैलिङ्गपित्तानुत्पृञ्च रासै रसं ।  
गच्छन्ती मनुञ्चतीः वृ कलुणां कलङ्गिणी राधिकाम् ।  
तात्पादप्रतिमानिवेशित फल्गोद्वृत्तरीमोक्षते ।  
रत्नान्ताः सुनयं प्रसन्नदायितादृष्टस्य पुष्पास्तु वः ॥

कालिन्दी के पुलि पर रास के रस को होड़कर जाती हुई कैलि कुमिता वकुल विखन करती हुई श्रीराधा के वरणों में श्रीवृष्ण ने जो वनुय विनय किया था वह तुम्हारी रक्षा करे। राधिका उस समय प्रसन्न दृष्टि से वृष्ण को देख रही थी। वाचन-कारिक वाचन के वक्तव्य ग्रन्थ में भट्ट नारायण की कविता उद्धृत है, अतएव यह नाटक निस्सन्देह वाच्यी शताब्दी से पूर्व की ही रचना है।

श्री सरस्वती स्ताभरणः- मुं के पश्चात् माला के राजा भीम ने वही 'सरस्वती स्ताभरण' में प्राचीन ग्रन्थों से राधा विजयक वाठ श्लोक उद्धृत किये हैं :-

‘वृष्णो नाम गते रत्नान्ताः सुनयं प्रसन्नदायिता दृष्टस्य पुष्पास्तु वः ॥  
सत्यं वृष्ण व रस मालवैय मुक्ती मिष्टान्म पश्याननं ।

### श्री सरस्वती स्ताभरण-

\* आदेहीति विदारिते । (च) वदने दृष्ट्वा समस्तं जात ।

मातायस्य काम विस्मय फलं पायात् स वः वैश्वः ॥ पृ० ५, २३

२

रातावधाधिराज्या विसरस्तविदं व्याज्जवाक्यमा फारा ।

राजावज्जामहैषा नमनन्यत्वात्तया स्तव्यभारा ॥

रामाव्यस्त स्थिरत्वा बुद्धिननदितुः श्रीकृष्णाख्यारा ।

राधारतास्तु मह्यं शिखमभम शिव्या व्याज विवायतारा ॥

पृ० २७५, २६४

३

गहापाता सस्तिमुदकं दारिका ना जिहीषी ।

नयामीति त्रयसि यमुनातीर वीरुप् गृहाणि ।

गौर्धवायी विशसि पिप्पिनान्वैव गोवर्धनादे ।

न त्वं राधे दृशि नियतिता दैवकीनन्दनस्य ॥ पृ० ५९९- ६००

४

दुस्तं राधे, दुस्तितां सि क्वं क्वंः क्व नु सा राधा ।

प्रतिपारी प्रतिवर्त्तवित्ता दासी हरि जयति ॥ पृ० २६७, २५९

५

कलक कलस त्वचै राधापयोधर मंडले ।

नवजलवरस्यामामात्मधुतिं प्रतिविम्बिताम् ।

वसित सितय प्रान्तप्राप्त्या मुहुर्मुहुर्त्तिताम्

जयति वनित फ्रीडा दासः प्रिया दसिती हरि ॥

पृ० ३६४, १९०

६

लीलाञ्छी णि वसणी रक्षिणु तं राखिवाह वणवट्टे ।

हरिणी पठमागमसङ्गसकरीहि वैगिरी हत्थी ॥ पृ० ६३८ सं० २३५

७

प्रत्यग्रीणि कलाकुलस्य श आहुत्स्वपद्मस्य मे,

ता गौत्रस्तलापयितुं च विवा राधेति मीरौरिति ।

राधावस्वयती विवा च विजने नामैतिवाम्यस्यता

राधाप्रसूतः अत्र सक्तः सैव हरिः पातु वः ॥ पृ० ७०२ सं० ४४८

८

सैतस्तमहीधरस्यतुताभालीक्य दौषी हरि -

हस्तेनासंते नलम्ब्य नरणावारीष्य तत्पादयोः ।

सैतीदार सहायतां जिनिमिषीरस्पृष्ट गौवर्धना ।

राधायाः सुचिरं जयन्ति गगने बंध्याकर प्रान्त्यः ।

काव्य माला पृ० ७३८ , सं० ४६३

चौमैन्द दशावतार-

काश्मीर के राजा कलश के समकालीन चौमैन्द कवि थे जिन्होंने

१०६५ ई० के बास पास दशावतार चरित की रचना की उसी श्रीकृष्णावतार प्रसंग में राधा विषयक श्लोक वाये हैं :-

९

\* प्रीत ये कल्ल कृष्णस्य श्यामानिक्य सुम्भिनः ।

जाती मङ्गुरस्यै राधेवाधिक वल्लभा ॥ " ९

१- काव्यमाला पृ० ८२ , ८३

वीर देखिये :-

- \* गच्छन् गोशुलं गृह्णन् गहनान्यालीक्यन् कैशः ।
- सौत्थं वनितानती वनमुवा सख्यैरुदाचलः ।
- राधाया न नैति नीविहर्णौ वेत्तम्यत्तयाचाराः ।
- सस्मार स्मरसाध्वसान्मुत सौख्यैर्वितरिक्ता गिरः ॥

रुद्र काव्यालंकार की टीका नमि साधु ने १०६८ ई० में की

उत्तम राधा विनयक एक श्लोक है :-

- \* यौ गोपीजनवल्लभः स्तनतटव्यासलव्यास्पदः ।
- किं राधे मधुसूदनी नहि नहि प्राणाधिक शीलः ॥

काश्मीरी पंडित विल्हण के विष्णुार्क देव चरित में झुला है

प्रसंग पर राधा का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से मिलता है :-

- \* नौ तालीतल्लन जयनया राध या यत्र मग्नाः ।
- पृष्णाग्नीडागंण विहपिती नखुताप्युद्वयन्ति ।
- जलमग्नीडाभक्ति मधुरा दूरि चक्रेण कैचित् ।
- तस्मिन्मुन्दावन परितरि वाचरा येन नीताः ॥

विल्हण कृत विष्णुार्क देव चरित १८, २७

अर्थात् जिस मुन्दावन में चंचल वीर धन जन वाली राधा के झुला

झूलने के कारण पृष्ण के विहार कुंज के वृक्ष टूट कर गिर पड़े हैं, जहां मधुरा नारी के  
जैसे विहारी त्यों की मैं (विल्हण) ने शास्त्रार्थ में परास्त किया वही मुन्दावन की भूमि में कई  
दिन तक मैं ने निवास किया।

दसवीं शताब्दी में त्रिविज्ज भट्ट ने 'नलधम्म' की रचना की

जिसके नल दम्पन्ती के वर्णन के प्रसंग में कई हय वर्णक श्लोक मिलते हैं। जिनमें कृष्ण और उनके जीवन के बारे में उल्लेख है। एक श्लोक का वर्ण इस प्रकार है। " कता कौशल में चतुर राधा परम पुरुष माया मय कैशिकन्ता के प्रति अनुरक्त है। " दसवीं शताब्दी के पूर्वाध में विभिन्न काव्यों के टीकाकार वल्लभदेव ने माघकृत 'शिष्टपात्र वर्ण' के ४-२५ श्लोक की टीका में लौकिक शब्द की व्याख्या करते हुये राधा कृष्ण के नाम से युक्त एक श्लोक किसी प्राचीन ग्रन्थ से उद्धृत किया है जिसमें राधा कृष्ण की न देखकर दुःख प्राप्त करती है। " निश्चय ही बाज किसी अभागिनी ने मेरे कृष्ण का छरण किया है। " राधा की बात सुन कोई स्त्री कहती है, " राधा तुम क्या मधुसूदन की बात कह रही हो। " राधा बात उलटते हुये कहती है, " नहीं नहीं, अपनी प्राण भ्रम बोद्धनी की बात कह रही थी। " सोमदेव धूरि जी कि दसवीं शताब्दी के लेखक थे, के यशस्तिलक। चम्पू में अमृतमति नामक नारी अपनी वाचरण का समर्थन इस प्रकार करती है, " राधा क्या नारायण के प्रति अनुरागिनी नहीं थी। "

एक सुन्दर संस्कृत कविता संज्ञ कमीन्द्र कल समुच्चय जिसके संकलक तां का नाम अभी पता नहीं चला दसवीं शताब्दी का माना गया है। जहाँ बाये कवियों की और भी प्राचीनतर होने की संभावना है। राधा कृष्ण के सम्बन्ध में इस संकलन में चार पद संग्रहीत हैं। राधा के उल्लेख के साथ ही उसमें परवर्ती काल की वैष्णव कविता की भाव, उस और अभिव्यक्ति वाली सम्बन्धी सभी विशेषताएं निहित उठी हैं। एक पद में राधा कृष्ण सम्बन्धी प्रणय चपल हास्यात्ताप इस प्रकार है, " द्वार पर कौन है।

१- शिष्टपात्रेदम्भकलाप राधात्मिका परपुरुषे ।

मायाविनिवृत्तकैशिके रागे वध्नाति । " प्राचीन की मध्ययुगी भारतीय साहित्य की-  
राधार उल्लेख नैन्दनाथ तादाः सुवर्णवर्णिका- समाचार वर्ण २४ का है

२- वही

३- वही

“हरि” कृष्ण बन्दर उपवन में जावो, शातामृत की यहाँ कौन सी जरूरत है।” है  
 दयिते में कृष्ण हूँ, तब तो वीर भी डर ला रहा है, बन्दर की (काला) ही बनता है।  
 “है मुझे मैं मधुसूदन (मधुकर) हूँ, तो पुष्पित लता के पास जावो, प्रिया के द्वारा उस  
 प्रकार निर्वन्नीकृत लज्जित हरि हमारी रक्षा करें। एक दूसरे फल में है कि कृष्ण की लतास  
 में एक दूसरी की राधा ने पैदा। मत्ती भाँति हूँदने पर भी कृष्ण के न मिलने पर वह राधा  
 से कहती है, “सही सारी रात में मैं उस धूर्त को ढूँढा- यहाँ ही सकता है वहाँ ही सकता  
 है, वही तरह लीजा, कश्य ही उसने दूसरी गोपी के साथ बभिसार किया है। मुरारिपु को  
 मैं ने कट वृक्षा के तले नहीं बैठा, गौवर्धन गिरि के नीचे भी नहीं बैठा, कालिन्दी के तूट  
 पर भी नहीं बैठा, वेत्त कुं में भी नहीं बैठा।” एक वीर स्त्री में लिखा है, “गाय  
 के दूध का कल्ल लेकर गोपियों घर जावो, जो गार्स अभी दुही नहीं बढें हैं उनके दुहै जाने  
 पर वह राधा भी तुम लोगों बाद जायगी। दूसरे बभिसार की हृदय में गुप्त रखकर जो वह  
 प्रकार है फल को चिकन करते रहे हैं, वही नन्द पुत्र के रूप में अवतीर्ण देव तुम्हारे सारे  
 कर्मों को हरण करें।” एक वीर फल में गौवर्धन गिरि को करान से धारण किने हुये  
 कृष्ण को बैत कर राधा की दृष्टि प्रियुष के कारण प्रीतिपूर्ण हो उठी है।

- १- कौः वं हरि हरिः प्रयास्य मनं शातामृतात् किं,  
 कृष्णो हं दयिते विमौमि सुतः रां कृष्णः कथं वानरः।  
 मुग्धे हं मधुसूदनां क्व लतां तामेव पुष्पाखराः - मित्यं निर्वन्नीकृतो दयितया द्वीपां हरिः पादः  
 २- मयान्विष्टो धूर्तः स सति नितितामेव रजनीम्, कस्यादवस्थादिति विपुणमन्ध्यामभिसृतः।  
 न दृष्टो भाण्डीर तदमुवि न गौवर्धनगिरिः न कालिन्दाः न च निचुल्लुमुरारिपुः॥ हरिकृष्ण  
 ३- लीलाञ्जलि धेनुगुणकलनादाय गोप्यो गृहः।

मुग्धे वक्त्रयिणीकृते पुररिपं राधा शनैरित्यति ।

कथान्यव्ययैश्च गुप्त हृदयः कुन विविक्तं फलं ।

देवः कारणानन्दमुहुरित्वं कृष्णः स मुष्णातु वः ॥



एक अन्य फल में राधा का नाम प्रत्यक्ष न होने पर भी ऐसा

प्रतीत होता है कि वह राधा के लिये ही कहा गया है। कोई सही कह रही है :-

“ कुर्वी के विलेपन को कितने पोंछ दिया है। जातों के वाजिन को कितने पोंछ दिया है। तुम्हारे कंधों के राग को कितने प्रमथित किया। केश की मालाओं को कितने नष्ट किया।” सति यह लीलाजित श्रोत के कल्पलताशी नीलपत्र भास से द्वारा हुआ है।” (ती) कृष्ण के द्वारा हुआ। नहीं जमुना के कल से हुआ।” (समझ गई) कृष्ण के प्रति हीरे (जाते के प्रति) तुम्हारा धुराण धुराण है।”

ग्यारहवीं सदी के प्रथम भाग के लगभग वास्तविक की लिपि में एक कृष्ण सम्बन्धी श्लोक है जिसमें व्यंजना है कि कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम ही श्रेष्ठ है। उसमें कहा है “ तत्प्रीति के वदनेन्दु द्वारा जिते हुए नहीं प्राप्त था, जो शेष भाग के हजार कर्णों को मधुर सांस से भी वास्तविक नहीं हुआ, राधा विरहातुर मुरारि की स्त्री जो कल्पित देह है वह तुम्हारी रक्षा करे।”

हैमचन्द्राचार्य के व्याकरण में जो अपभ्रंश के दोहे संक्षिप्त हैं वे उनके समय से पूर्व के हैं। कुछ दोहे ऐसे भी होंगे जिनकी उन्होंने कथना उनके समकालीन कवियों

१- अस्तं केन विलेपनं कुर्वन्ते केनाजिनं मेवपी

रागः केन तन्धारे प्रमथितः केशेषु केन भ्रजः ।

तेना(शेणज)नीलकल्पलतामुखा नीलपत्र भासा सति

किं कृष्णेन न यामुनेव पयसा कृष्णानुरागस्तत्तम् वही ५१२

२- यत्तत्प्रीतिवदनेन्दुना न सुखितं यन्नाऽदितम्बास्ति ।

वीरा यत्र निवेन नाभिरसापकेन शान्तिताम् ।

यक्षेणादिकृष्णात्तद्वत्प्रमथुरस्वासेन वाऽस्वासिताम् ।

तन्नाथा विरहातुरं मुरारिणोर्वैलक्ष्युः पातु वः ॥

The Indian Antiquary, 1877 पृष्ठ २९ पृष्ठ २५

ने लिखा होगा। उनमें राधा का प्रान गौपी रूप में उल्लेख है। एक दाँहि में राधा के वपःस्थ की महिमा का प्रकार बताया गया है कि उसी बागन में तो हरि को नवा ही दिया, लोगों को विस्मय के गर्त में गिरा ही दिया। उसी जड़ी सफरता उसकी बना ही सकती है। तो वह उसका जो होना ही तो ही -

“हरि गान्धास्य पौराण विन्दु पाळ लीङ् ।

रमहि राह फौरह न भावह तं शीङ् ।

वही दसवीं शताब्दी में राधा का नाम उग्र भारत में सत्यन्ता परिचित हो चुका था। केन ग्रन्थकार हैमचन्द्र ने बारहवीं सदी में लिखे अपने काव्यानुशासन ग्रंथ में राधा कृष्ण प्रेम सम्बन्धी एक श्लोक मिला है।<sup>१</sup> हैम चन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ११००-११५५ ई० ने गुणचन्द्र के साथ मिलकर ‘नाट्य’ दफैण’ नामक नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ लिखा जिसमें मैज्जत कवि लिखित ‘राधा विप्रलम्भ’ नामक नाटक का उल्लेख है।<sup>२</sup> शास्त्रा सत्य के बारहवीं सदी में रहे हुए भाव प्रकाश में राधा सम्बन्धी ‘रामा राधा’ नाटक का<sup>३</sup> मिलता है। उसी वाच श्लोक का उद्धरण भाव प्रकाश में मिलता है। राधा संबंधी ‘सर्व-मंजरी’ नाटक का उद्धरण कवि कर्णपुर के ‘कलंगार कीस्तुन’ में मिलता है।

१- यह श्लोक श्रीधर दास की ‘संक्षिप्त कर्णामृत’ में भी मिलता है - देखिये उपर्युक्त निबन्ध तादा का ।

२- यदि यह मैज्जत कवि वीर अभिनव गुप्त द्वारा भारत के नाट्य शास्त्र की टीका में उल्लिखित मैज्जत कवि कार एक है तो राधा विप्रलम्भ नाटक को दसवीं सदी के पहले की रचना मान सकते हैं। डा० तादा का निबन्ध ।

३- किमिना कीमुदी किंता तावण्य सरसी सी ।

इत्यादि राम राधाया संसः कृष्ण माणिते ॥ वही

## चतुर्थ अध्याय

भक्ति के विभिन्न सम्प्रदाय और उनमें राधा का स्वरूप

शंकराचार्य-

शंकराचार्य के ज्ञानवाद का कोई विशेष सम्बन्ध हमारे विषय से नहीं है परन्तु उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का संक्षेप में विवेचन करना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि अन्य सम्प्रदायों का ज्ञानवाद सिद्धान्त की भूल विचार धारा एवं दार्शनिक तत्त्वों से किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध है। यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करें तो प्रतीत होगा कि अन्य सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में ज्ञानवाद का आश्रय ले। संक्षेप ब्रह्मा मंज कर। जाने नदें हैं।

बौद्ध मत के प्रचार से तर्क शक्ति और बौद्धिक विचारों का प्राबल्य बहुत बढ़ गया था। परन्तु लोगों की यह अच्छी प्रकार विदित हो गया था कि तर्क शक्ति से ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता। अतएव मीमांसकों की प्रवृत्ति शब्द प्रामाण्य की ओर कसर हुई। उन्हीं के नियमों के अनुसार शंकराचार्य ने वेदान्त शास्त्र का निर्माण किया। उनके समय में बौद्ध, जैन, कापालिक आदि का प्रभाव भारतवर्ष में लाया हुआ था। शंकराचार्य ने बताया कि तर्क-शक्ति के अप्रतिष्ठित और अनिश्चित रहने के कारण ब्रह्म ज्ञान का वास्तविक आचार शास्त्र उपनिषद् हैं और उन उपनिषदों के वाक्यों का सम्बन्ध करना ही ब्रह्म ज्ञान का मार्ग है। शंकराचार्य जी ने वैदिक औपनिषदिक सनातन धर्म की पुनः स्थापना कर तर्क बुद्धि द्वारा चंचल बुद्धि को शांत कर ज्ञानवाद की स्थापना की जितने दर्शन क्षेत्र की विरोधी प्रवृत्त धारा को रोकें। उन्होंने निवृत्ति मार्ग के वैदिक अनुयायियों को भारतवर्ष में पुनर्जन्म दिया। यद्यपि वेदान्त दर्शन के ज्ञानवाद का प्रचार भारतवर्ष में

प्राचीन काल से ही था परन्तु शंकराचार्य ने उसको नूतन और परिष्कृत रूप देकर उसका प्रचार किया। उन्होंने वेदान्त के ब्रह्म सूत्र का भाष्य किया। उन्होंने "तत्त्वमसि" वादि वाक्यों द्वारा ज्ञानान्तर्चितों को अन्तर्मुख करके "वदं ब्रह्मास्मि" का साक्षात्कार कर्त्तव्य करवाया और तर्क वितर्कों से विचलित हो जाने वाले मन को स्थिर किया।

शंकराचार्य जी में पाण्डित्य, कर्मशीलता, भावदृष्टि, त्याग वादि अनेक गुण थे। उनके अनुसार बुद्धि कक्षित सिद्धान्तों में कोई विरोध न होकर उनकी व्याख्या में अन्तर था। उन्होंने ज्ञान और वाचरण कर्म के दो विभाग बताये और ज्ञान में ब्रह्म का स्वरूप-निर्णय कर उसका सम्बन्ध जीव और प्रकृति से स्थापित किया तथा वाचरण में मनुष्य को किस प्रकार वाचरण करना चाहिये पर विचार किया। वैदिक कर्म की रक्षा के लिये समस्त भारतवर्ष में स्थान स्थान पर उन्होंने मठ बनवाये और वैदिक कर्म का पुनरुत्थान छोटे मोटे मठ मतान्तरों को समावेश उनके वास्तव में ही हो गया।

डा० ताराचन्द्र का कथन है :- "Sarkar's career is the great watershed in the history of Sanskrit learning. Behind him lies the world of ancient ideas, half reconciled systems, profound but scattered thoughts, rival philosophies, struggling for ascendancy, the changing pantheon and theologies in a fluid condition, a living culture almost anarchic in its exuberance, before him the medieval world of set ideas, fixed systems, scholastic ingenuity, accretion not growth, explanation not invention, commentaries not philosophies, a stereotyped uniformity. The living stream of culture abandons the ancient bed of Sanskrit and flows through new channels. Tamil, Telugu and canarese in the south, Hindi, Bengali, Marathi and Urdu in the north but the abandonment is never quite complete, an increasingly thinning rill continues to linger in the old beds."

भावान् शंकर भक्ति से ज्ञान की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं।

उन्होंने बुद्ध स्वल्प का स्मरण करना ही "भक्ति" बताया है<sup>१</sup>। आत्म विज्ञान के लिये इस भक्ति को प्रधान बताते हुये भी उन्होंने सगुणीपासना की उपेक्षा नहीं की। उन्होंने कितने ही भक्ति स्तोत्र भी लिखे हैं। उनके मतानुसार निष्काम कर्म से आत्मशुद्धि होती है और परम फल की प्राप्ति आत्मतत्त्व का बोध प्राप्त होने पर ही होती है। उन्होंने मोक्ष के लिये ज्ञान मार्ग को क्लृप्त बताया। वे बहिष्ता परमधर्म है, ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है जीव और ब्रह्म दोनों एक ही हैं तथा विश्व मात्र ब्रह्म स्वल्प है<sup>२</sup> का उपदेश देकर स्वात्म भाव का प्रचार करते थे। उनका कहना है कि ब्रह्म केवल श्रुति द्वारा ज्ञेय है अन्य प्रमाणों का विषय नहीं है।<sup>३</sup> माराद्वयकारिका।३।१। पर टीका करते हुये उन्होंने कहा है कि केवल तर्क से भी ब्रह्म का बोध हो सकता है परन्तु तर्क को विशुद्ध नहीं हो जाना चाहिये। श्रुति से अनुगृहीत तर्क का ही, अनुभूति का कं होने के कारण, वाक्य लिया जाता है।<sup>४</sup> उनका कथन है कि जगत् मिथ्या है शून्य नहीं अनिर्वचनीय है, कसत् नहीं। कर्म वास्तव में अनिर्वचनीय होता है। सत्य रस्ती का विवर्त है क्योंकि उसकी सत्ता रस्ती से भिन्न है। रस्ती की सत्ता व्यावहारिक है और सूर्य की प्रातिमासिक। जगत् ब्रह्म का विवर्त है। ब्रह्म की सत्ता पारमार्थिक।<sup>५</sup> सर्व ब्रह्म एक है और जगत् की व्यावहारिक। परा विद्या से ब्रह्म का ज्ञान होता है।

शंकराचार्य के अनुसार सम्पूर्ण प्रपञ्च दृष्टा और दृश्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। दृष्टा सम्पूर्ण प्रतीतियों का अनुभव करने वाला है और

१- "स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते" विवेक बुद्धिमणि ।

२- "बहिष्ता परमो धर्मः ॥" ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या, "जीवो जीव नापरः," सर्वत्र त्विदं ब्रह्म।

३- "न च परिनिष्ठत वस्तु स्वरूपत्वेऽपि प्रत्यक्षादि विषयत्वं ब्रह्मणः ।"

११, ४ पृ० ६३

४- श्रुत्यनुगृहीत स्वल्पं तर्कानु भागविनाधीयते।।

दृश्य अनुभव-~~तत्त्व~~ का विषय है। समस्त प्रतीतियों के चम साक्षी का नाम आत्मा और उसके विषय का नाम ज्ञात्मा है। आत्मतत्त्व निर्विकार, निश्चल नित्य और निर्विशेष है। बुद्धि आदि का जो आत्मा के साथ तादात्म्य होता है उसे 'अध्यास' कहते हैं। सम्पूर्ण प्रपञ्च अध्यास अर्थात् माया के ही कारण सत्य प्रतीत होता है। सम्पूर्ण दृश्य वर्ण माया के कारण विभिन्न सा प्रतीत होता है परन्तु वह अण्ड, शुद्ध, चिन्मात्र है।

वैतवाद के अनुसार एक अण्ड सच्चिदानन्दधन का ही अनुभव करना 'ज्ञान' और भेद में सत्य बुद्धि करना 'अज्ञान' है। जब हमें यह बोध होता है कि जो काल विषय भेद संकलित संसार, तरंग मंचर और जल की भांति विभिन्न और शुद्ध पर-  
ब्रह्म तथा आत्मा है तो यह बोध भाव ज्ञान कहलाता है। ऐसा बोध होते ही जीव शरीर रहते हुये भी आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है।

श्रवण, मनन और निदिध्यासन से ज्ञान प्रीप्त होता है। धिक्, वैराग्य, शमादि और मुमुक्षाता से चित्त शुद्ध होकर देवी सम्पत्ति की सहायता से विज्ञाप्ता होती है। जो जैसा न हो वैसा जानना अध्यास कहलाता है। एक वस्तु में दूसरी वस्तु के गुणों का आरोप और प्रतीति अध्यास है। आत्मा स्वयं सिद्ध है, वह किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं करती।

निर्गुण और अण्ड ब्रह्म नाम रूपात्मक जगत् के रूप में माया के कारण प्रतीत होने लगता है। माया आदि और स्वाभाविक है। सर राधाकृष्णन् के अनुसार माया वेदांतियों की ब्रह्म और जगत् में सम्बन्ध बता सकने की शक्ति या वक्षता का नाम है। फ्रिशियन लेखक कर्हार्ट कहते हैं कि रहस्यवादी की शक्ति की अनुप्राप्ति उसे भेदों को 'माया' कहने की बाध्य करती है।

१- 'स्मृति रूपः परम पूर्वदृष्टाव मासः ।

'वेदान्त भाष्य भूषिका- संकर'

२- वेदान्त अण्ड माहती धाट- पृ० १०६

माया जगदि जीर भावक है, ज्ञान से नष्ट हो जाती है, सत् जीर जगत् से विलक्षण है। वास्तव में माया जीर ब्रविषा स्तु ही वस्तु है। <sup>१</sup> के-~~न-न-न~~ संसार-ही-उत्पत्ति-होती-है। ज्ञान का अभाव ही ब्रविषा है। जीव ब्रविषा की उपाधिवाला है, माया की उपाधिवाला नहीं। क्रमा, विष्णु जीर नरेश्वर माया के गुणों से बाध्य हैं। शंकराचार्य के अनुसार ईश्वर, सगुण ब्रह्म या कार्य ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण जीर उपादान कारण है। माया की आवरण शक्ति ईश्वर के ऊपर काम नहीं करती। ईश्वर-शक्ति माया की विशेष शक्ति के कारण संसार की उत्पत्ति होती है।

जीव परिच्छिन्न जीर वस्तु है। ईश्वर ब्रविषा से रहित जीर जीव उससे युक्त है। कवि शंकराचार्य ने ब्रह्म की "निस्तारानन्दस्वल्प" कहा है जीर दार्शनिक शंकर ने उसे नानन्दमय कौश बताया है। <sup>२</sup> ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है। जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है। सर राधाकृष्णन् लिखते हैं :- "The world of duality is mere maya, the real being the nondual." Sankara says, "The variety of experiences subsists in the Atman, as the snake does in the rope."<sup>३</sup>

यस सिद्धान्त के प्रभाव के सम्बन्ध में कहा है कि "यस सिद्धान्त के फल स्वल्प व्यावहारिक जगत् में प्रेम जीर स्नेह को कोई स्थान ही न रहा। यद्यपि

१- देखिये पंच पादिका विवरण । विजया नगरम् संस्कृत सीरीज़ । पृ० ३२ भाष्यकारेण चा विषा मायाऽविषात्मिका शक्तिरिति तत्र तत्र निर्दिष्टात्। टीका कारणेन चा विषा

मायाऽकार मित्युक्तत्वात्।

२- विवेक बूझामणि श्लोक २३६

३- विवेक बूझामणि श्लोक २१९

४- Indian Philosophy page 460 Vol. II S. Radha Krishnanan.



शंकराचार्य के शिष्यों ने जात्मा की ज्ञानावस्था में प्रेम आदि को स्थान दिया था पर यह सिद्धान्त प्रवर्तित होकर वैष्णव धर्म के मूल में कुठाराघात का कारण हुआ।<sup>१</sup>

### रामानुज-सम्प्रदाय-

भक्ति के प्रसार के लिये जिस बृद्ध बाधार की आवश्यकता थी वसा बृद्ध बाधार रामानुजाचार्य जी ने खड़ा किया। रामानुज ने नम्माळ्वार के गीतों के संकलनकर्ता नाथमुनि के पौत्र श्री यामुनाचार्य के मत की ही विस्तृत व्याख्या करके उसका प्रचार किया। तत्कालीन ने उन्हें जिस मत का उपदेश दिया उसी के बाधार पर अपने सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा करने के कारण यह सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय कहलाता है। विशिष्टान्त सम्प्रदाय वाले तत्कालीन तथा विष्णु और उनके अवतारों की पृथक्-पृथक् वध्मा युक्त रूप में उपासना करते हैं। श्रीराम में ये विशेष जास्था होते हैं। उनके अनुसार भ्यान और उपासना मुक्ति के साधन हैं। मुक्ति की प्राप्ति ज्ञान से नहीं अपितु भक्ति से होती है। भगवान् के चरणों में आत्म-समर्पण से जीव को शान्ति और उनकी प्रसन्नता से मुक्ति मिलती है। विशिष्टान्तवाद के अनुसार जगत के सारे प्राणी ब्रह्म के ही अंश और उसी से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाते हैं।

रामानुजाचार्य ने भक्ति परितुष्टित स्वरूप की स्थापना की जिसने उपरभारत के भक्ति बान्धोक्त को प्रभावित किया। उन्होंने उपनिषद्, ब्रह्म सूत्र पुराण आदि सभी का बाधार ग्रहण कर सृष्टि का क्रम सार्वभौम शास्त्र के अनुसार स्वीकार किया। श्री सम्प्रदाय नारायण व विष्णु के तत्त्वों से समाविष्ट "पक्षिरात्र" के वासुदेव सम्प्रदाय से मिलता जुलता है जिसमें नारायण को विशेष महत्त्व दिया गया है। तत्कालीन ने ही नौपास

गोपाकृष्ण का नाम आया है, न राम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है वरन् मावदगीता के भावान् के स्वर्णों का उल्लेख करते हुये परम्परागत भक्ति<sup>की</sup> ब्राह्मण धर्म के साथ में ढाला है।

रामानुज ने शंकर के माया, मिथ्यात्ववाद दोनों को झूठा सिद्ध कर बताया कि जीव, जगत् और ईश्वर तीनों भिन्न भिन्न तत्त्व होते हुये भी जीव चित् और जगत्। ब्रह्म। दोनों एक ही ईश्वर के शरीर हैं जलिये चित्निवृत्ति ईश्वर एक ही और ईश्वर शरीर के सूक्ष्म चित् ब्रह्म से ही स्थूल चित् और स्थूल ब्रह्म की उत्पत्ति हुयी। वाचाचार दृष्टि से "भक्ति" को ही ब्रह्म निष्ठा स्वीकार कर तात्त्विक रूप से उन्होंने चित्, ब्रह्म और ईश्वर को वाधार मान अपने मत की पुष्टि उपनिषदों द्वारा की। उनके सिद्धान्त के सम्बन्ध में सर वार० जी० मण्डारकर लिखते हैं :-

"The form that he gives to his theory that the individual soul and the insensate world are the attributes of the supreme soul. The constitute his body, as stated in the Upanishad also, and thus, they with the controlling in ward Supreme soul constitute one entity called Brahman, just as the body and the in dwelling soul constitute the human being."<sup>1</sup>

रामानुज का इस तीन गुणों से युक्त वासि सिद्धान्तः "भोक्ता भोग्यं प्रेक्षितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म स्तत्" पर आधारित है। " ये पदार्थ त्रितय की स्थिति में विश्वास रखते थे, जिसमें परब्रह्म विष्णु, चित् जीव। और ब्रह्म

<sup>1</sup>- Vaisnavism, Saivism and minor Religious systems. page 73

<sup>2</sup>- श्वेताश्वतरोपनिषद् १।१२।

।दृश्यम्। सम्मिश्रित हैं। ये तीनों बिकिारी हैं। परब्रह्म स्वतंत्र है और किन्तु और बक्ति परब्रह्म पर निर्भर हैं। किन्तु और बक्ति दोनों ब्रह्म से ही निर्मित हैं, पर वे परब्रह्म के समान नहीं हैं। पर ब्रह्म ही कर्ता है और कही उपादान कारण भी। जीव परब्रह्म की क्रिया है, वह परब्रह्म पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर है। इसीलिए जीव को परब्रह्म से सामीप्य प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य करना पड़ता है। परब्रह्म के भाग होते हुये भी किन्तु और बक्ति अपनी सेवा में चिन्म और सत्य हैं। प्रलय होने पर किन्तु और बक्ति ब्रह्म में लीन हो जाते हैं किन्तु वे अभिन्न नहीं हो जाते। सृष्टि होने पर वे पुनः पृथक् हो जाते हैं, ब्रह्मवाद के समान वे अपना अस्तित्व नहीं खो देते। ज्ञाना होते हुए भी ब्रह्म और जीव समान नहीं हैं। \*\*

रामानुजाचार्य ब्रह्म की सत्ता अद्वितीय न मानकर चिन्म वात्मा तथा जड़ प्रकृति से विशिष्ट मानते हैं। वे शरीर, वात्मा और ईश्वर तीनों की सृष्टि मानते हैं अर्थात् ज्ञेय की सेवा मानते हैं। वे जगत् में निर्गुण वस्तु की कल्पना न करके सगुण या सविशेष ब्रह्म को प्रतिपाद्य विषय मानते हैं। वे यथावस्थित व्यवहारानुगुण ज्ञान को ही प्रमा मानते हैं। प्रमा का कारण प्रमाण है प्रमाण तीन प्रकार के हैं :- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द जोकि प्रमा के कारण हैं। प्रत्यक्ष साक्षात्कार प्रमा का कारण है। प्रत्यक्ष प्रमाण निर्विकल्प और सविकल्प दो प्रकार का है। दोनों विशिष्ट विषय हैं। जब वात्मा मन के साथ मन इन्द्रिय के साथ, इन्द्रिया विषय के साथ संयुक्त होती है तो ज्ञानोदय होता है। निर्विशेष वस्तु का ज्ञान नहीं होता। पूर्वनिष्ठ वस्तु के संस्कार से स्मृति उत्पन्न होती है जोकि प्रत्यक्ष के वन्तर्गत आती है। पुण्यवान् पुरुष की प्रतिमा और कर्मों का ज्ञान भी प्रत्यक्ष ही के वन्तर्गत आता है। सब ज्ञान सत्य और सविशेष विषय है। उपमान और अर्थापत्ति अनुमान के वन्तर्गत हैं और अपौरुषेय और नित्य

वेद वाक्य शब्द प्रमाण हैं।

जिस व्यक्ति को कर्म और <sup>कर्म</sup> फल की अनित्यता के सम्बन्ध में ज्ञान है वही ऋषि जिज्ञासा का अधिकारी है। कर्म की अनित्यता का ज्ञान वेदाध्ययन से होता है जिसके बाद मुक्ति की अभिलाषा होती है। फिर क्लेश फल प्राप्त करने की इच्छा और उसी ऋषि की जिज्ञासा होती है।

जीव का ज्ञान उपासना द्वारा ऋषि साक्षात्कार होने से दूर होता है मुक्त जीव ईश्वर की नित्य लीला में अपार आनन्द का उपभोग करता हुआ ईश्वर के दास के रूप में स्थित रहता है।

श्री लक्ष्मी नारायण रामानुज सम्प्रदाय में परम उपास्य हैं। भगवान् नारायण लक्ष्मी जी के पति, सम्पूर्ण अवगुणों से रहित, विलक्षण, कल्याणमय स्व सन्मात्र अन्त ज्ञानानन्द स्वस्व हैं। उनका दिव्य श्री विग्रह स्वच्छानुरूप सदासुख, उज्ज्वल, अचिन्त्य, ~~स्व~~ निर्मल सावण्य आदि गुणों से युक्त है। श्री ।लक्ष्मी। गुण वैभवं, ऐश्वर्य शील आदि गुणों से युक्त हैं और उनके प्रियतम नारायण हैं। जगत् का उत्पन्न स्थिति स्व संहार ही पर ऋषि नारायण की लीला है जो सदैव अपने रूप में ही अवस्थित रहते हैं। वे ही भूमि का भार करते और जीवों को शरण देने के लिये भूमि पर अवतार लेते हैं।

ऋषि सगुण और सविशेष हैं। वे सर्वगुण सम्पन्न, अरुण, अक्षित, सर्वोपरि, महान्, सर्वकल प्रदाता, सर्वाधीन, सबका स्वामी, विश्वात्म स्वस्व और पुरुषोत्तम हैं। वह सत्य, ज्ञान, आनन्द और निर्मलता धर्मवाला सब जीवों का अन्तर्दामी और सब चीजों से रहित है। रामदास गौड़ लिखते हैं " वे सूक्ष्म अविच्छिन्न रूप में

जगत के उपादान कारण हैं। संकल्प विशिष्ट रूप में निमित्त कारण हैं। जीव और जगत् उनका शरीर है भावान् ही बात्मा है। उनके गुणों की संख्या नहीं। वे गुणों में बहिर्तीय हैं। ईश्वर सृष्टि कर्ता, कर्मफल दाता, नियन्ता सर्वान्तर्यामी हैं। नारायण विष्णु ही सगर्भो ज्योतिर्देव हैं। प्रकृति और जीव दोनों के सत्य होते हुये भी उनकी सत्ता उसी पर निर्भर है। प्रत्येक कल्प के अन्त में प्रत्यक्ष होने पर सब उसी में विलीन हो जाता है। केवल तमस ही जो कि इतना सूक्ष्म होता है कि जिसकी सत्ता सत्ता कल्पित नहीं की जा सकती अवशिष्ट रहता है और वही ब्रह्म का शरीर है। उसी से इस जगत् की सृष्टि होती है जो ब्रह्म को लोक रूपों में परिवर्तित कर लेता है। ईश्वर ही सृष्टि पातक और संहार करने वाले हैं। ईश्वर की विशिष्ट मूर्ति उपासकों की बुद्धि और पवित्रता के अनुसार ही पूजनीय है। उनके पांच रूप माने गये हैं।

१- परब्रह्म :- "सूक्ष्म" या "परब्रह्म" को नारायण या वासुदेव भी कहते हैं। वे वैकुण्ठ वासी परब्रह्म भी समझे जाते हैं। वे हाथियों से निरन्तर रक्षित, स्वर्गीय स्त्रियां श्री, भु, सीता आदि से शक्ति और शेष नाग पर विराजमान हैं। वे चारों हस्त-कमलों में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये और सुन्दर अलंकारों से विभूषित हैं। वे सदा अनन्त, गरुड़, विश्वक्सेन प्रभृति घण्टे एवं मुक्तकाम मुनियाँ से घिरे रहते हैं।

२- ब्रह्म :- परब्रह्म ने पूजा तथा विश्व-उत्पादनार्थ चार रूप -

- १- वासुदेव
- २- संकर्षण
- ३- प्रद्युम्न
- ४- अनिरुद्ध

धारण किये हैं विन्हे व्यूह रहती है।

३- विभव-

दुष्कृती के विनाश और साधुओं की रक्षा के लिये उच्छा के हेतु वे मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वराह, वामन, परशुराम, नीराम, बल्लभ, श्रीकृष्ण और कलि अवतार होता है।

४- कर्मा या मूर्ति -

परम मन्दिरों, घरों आदि लोक स्थानों में स्थापित मूर्तियों में शुद्ध शरीर से लैला रहता है।

५- जन्तयामी-

जब स्वप्न से वह योगियों के हृदय में प्रवेश और घट घट में वापस फरो वापस है।

रामानुज का ग्रन्थ 'विषयक सिद्धान्त' 'सत्त्व्याति' कहलाता है। वे जैसा कि इस सिद्धान्त को नहीं मानते कि प्रत्येक ज्ञान का विषय होता है वरन् प्रत्येक विषय सन्निवेश या गुणवाला भी होना चाहिए, अन्यथा उसकी प्रतीति न होगी। प्रज्ञान का भी विषय सत् होता है वास्तविक होता है। शुक्ति में जो रक्त देखती है उसकी वास्तविक सत्ता है।

ईश्वर तथा ज्ञात और जीवों का आत्मा और शरीर का सा सम्बन्ध है। ईश्वर जैसी आत्मा है। जिस प्रकार भौतिक शरीर की आत्मा जीव है उसी प्रकार जीव की आत्मा ईश्वर है। ईश्वर जीव का जन्तयामी है। ईश्वर और जीव में शेष- शेषी-भाव संबंध है। ज्ञान को रामानुज दर्शन में धर्मज्ञान ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान में परिवर्तन होता है इसलिए विशिष्टाद्वैत संप्रदाय में उसे द्रव्य माना है। वह ईश्वर और

१- रामानुज 'दि वाइडिया वाफ' की फाल्साहट सेल्फ' पृ० ४०

जीवों का धर्मभूति । गुण। भी है।

रामानुज ने भी पदार्थ विभाग वैशेषिक, सांख्य और जैनमत की भांति किया है। उनका मत जैन सिद्धान्तों का मिश्रण सा है। वेङ्कटनाथ या वेदान्त वैशेषिक दृष्ट पदार्थ विभाग का सारांश "सर्वदर्शन" संग्रह में इस प्रकार दिया है, "द्रव्य और अद्रव्य के भेद से तत्त्व की प्रकार का है जड़ और अजड़। जड़ द्रव्य प्रकृति और काष्ठ है अजड़ द्रव्य प्रत्यक्ष । चैतन्य और पराक्ष भेद दो तरह का है। प्रत्यक्ष अजड़ द्रव्य जीव और ईश्वर हैं। पराक्ष अजड़ द्रव्य, "नित्यविभूति" और "धर्मभूत" ज्ञान है। नित्य विभूति को कुछ विद्वान् जड़ बतलाते हैं।

पदार्थ के प्रमेय और प्रमाण दो भेद हैं। प्रमेय के द्रव्य और अद्रव्य दो भेद हैं। प्रमाण-पदार्थ प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन प्रकार का होता है। अद्रव्य पदार्थ सत्, रज, तम, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, संयोग और शक्ति केवल दस हैं। विशिष्टांश की प्रकृति चौबीस तत्त्वों वाली है।

प्रकृति जीवों का विकास स्थान है जो प्रथम जड़ द्रव्य है। प्रकृति त्रिगुणमयी जाति चौबीस तत्त्वों की जननी है। रामानुज की प्रकृति सर्वथा चैतन्य तत्त्व पर अवलंबित नीचे की ओर अंत और ऊपर की ओर "नित्यविभूति" से परिच्छिन्न है। जगत् का उपादान और निमित्त कारण ब्रह्म है और वह ही जगत् रूप में परिणत हुआ है। जगत् जड़, सत् और ब्रह्म का शरीर है।

जीव अणु, स्रष्टा कार्य और दास है। ब्रह्म विभु-पूर्ण कारण

१- द्रव्याद्रव्यप्रमेदायिक्तमुपयविषं तद्विषं तच्चाहुः ।

द्रव्यं तैवाविभक्तं जड़मजड़मिति, प्राच्यमव्यक्तकाली ॥

अन्त्यं प्रत्यक्ष पराक्ष प्रथममुपयथा तत्र जीवेशमैतात् ।

नित्याभूतिर्मतिश्चेत्यपीमिह, जड़ामादिमां केचिदाहुः ॥

बीर ईश्वर है। वह बीर जीव दोनों के तन स्वयं प्रकाश ज्ञानाश्रय बीर आत्मस्वरूप हैं। दोनों में सजातीय बीर विजातीय भेद नहीं है। जीव नित्य है बीर स्वाभाविक रूप में सुखी है। जीवकता, मौक्ता, शरीरी बीर शरीर है। जीव प्रत्यक्ष शरीर में भिन्न है। जीव अपनी कार्य कलाओं के लिये ईश्वर पर अवलम्बित बीर उसी के द्वारा निर्मित है। रामानुज ने जीवों के तीन भेद किये हैं :-

१- बद्ध :- ब्रह्मा से लेकर चण्डकीट, फाँटे <sup>वृक्षादि</sup> जी संसार बन्धन बंधे हैं वह जीव बद्ध कोटि में जाते हैं।

२- मुक्त

३- नित्य

बद्ध के दो वर्ग हैं १- भोगेच्छु जी २- मुमुक्षु। जी फाँपों तथा स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये शास्त्रीय कर्म, दान, दान तीथाटन आदि कर भावान् में मग्न लाते अथवा देवी देवताओं का पूजन करते हैं भोगेच्छु की श्रेणी में जाते हैं बीर जी मुक्ति के द्वारा ईश्वर साक्षात्कार करना चाहते हैं तथा भक्ति के द्वारा अविद्या के बन्धन का नाश करना चाहते हैं मुमुक्षु की श्रेणी में जाते हैं।

जीव या आत्मा शरीर बीर इन्द्रियों से भिन्न है यह मानना ही ज्ञान योग है। भावान् को बिना जाने जीव का स्वरूप ठीक ठीक नहीं जाना जाता। वह जीव के अन्तरात्मा हैं। अपनी की प्रकृति से अभिन्न मानकर भावान् का अंश। मानना ज्ञान है। भक्ति-मार्गज्ञान प्राप्ति के पश्चात् प्रशस्त होता है। ज्ञान से अविद्या की निवृत्ति नहीं होती। मुक्ति ही प्राप्त होती है। ध्यान बीर उपासना में भक्ति प्राप्त



होती है और भक्ति से भावान् प्रसन्न होकर मुक्ति प्राप्त करते हैं। भक्ति साधन भक्ति और फल भक्ति दो प्रकार की है। पूजा में वर्तन और प्रतिमा पूजन का विधान है। उपासना से दुरति-राशि दूर होती है और विभवांपासना में अधिकार संघटन होता है। इसके पश्चात् उपासक व्यूह की उपासना का विधकारी सूक्ष्म उपासना का अधिकारी होता है और वन्तयामी के साक्षात् की शक्ति समुद्रभूत होती है। पूजा के पांच प्रकार हैं :-

१- अभिन- देवता के स्थान और मार्ग का शौच और लेप करना ।

२- उपाधान- गन्ध पुष्पादि का स्मृत करना ।

३- इज्या - देवता का पूजन करना ।

४- स्वाध्याय - वधानुसंधान पूर्वक मंत्र जाप, वैष्णव- सूक्त और स्तोत्र का पाठ करना एवं तत्त्व प्रतिपादक शास्त्रों का अध्ययन करना।

५- योग - देवता के अनुसंधान करना । वन्तवाह्य पवित्रता रखना और कम-नियमादि वष्टांग योग के साथ सात्त्विक वन्म जल का ग्रहण करना ।

सत्य, शौच, ब्रह्मिणा वादि नियमों के पालन के साथ ही उपवास तीर्थ, दान यज्ञादि निष्काम भाव से करने चाहिये। सर राधाकृष्णन कहते हैं, " रामानुज के अनुसार निष्काम कर्म से संचित कर्मों का नाश होता है। बाह्य रूप पूर्ण कर्मों का फल वस्थायी होता है तथा <sup>वृष्ट</sup> ज्ञान का फल वदाय होता है। परन्तु कर्मों का सम्पादन भावान् की समर्पित किया जाय तो वह मोक्ष का कारण होता है। " राधाकृष्णन जाने स्थिते हैं :-

१- तत्राभिमानम् नाम देवता स्थान मार्गस्य, सर्वदर्शन संग्रह रामानुजदर्शनम् पृ० ६३

२- " Work under taken in a disinterested spirit helps to remove the past accumulations. So long as karma enjoined in the Scriptures is undertaken with selfish motive the end can not be gained. The results of ceremonial observances are-transitory, while the result of the knowledge of God is in destructible(aksaya);but if we perform work in the spirit of dedication to God it helps us in our effort of salvation."

Indian Philosophy , Radhakrishnan page 704.

रामानुज के अनुसार मुक्तावस्था में भी जीव ब्रह्म का दास है और वह जीवन्मुक्ति नहीं मानता। जीव, क्रीड, ससीम और घन है ब्रह्म और कसीम और प्राज्ञ है। वात्मा परमात्मा के समान होते हुए भी उससे पृथक् है। जीव स्वरूपतः नित्य है, नित्य दास है, नित्य बण्ड है और वह कभी विभु नहीं हो सकता। मुक्ति उपासनात्मक भक्ति के द्वारा प्राप्त होती है। मुक्त जीव में बाँटों गुणों का समावेश होता है। वह ईश्वर के इच्छाधीन होता है और सर्वत्र सञ्चरण करता है, भावान् के दासत्व का प्राप्त होना ही मुक्ति है। युद्धावस्था में भी वात्मा को शरीर प्राप्त होता है क्योंकि बिना शरीर के वात्मा किसी भी अवस्था में अवस्थित नहीं रह सकता। यह अप्राकृत शरीर शुद्ध सत्त्व से बना होता है और भावान् की सेवा के लिये यह धारण किया जाता है। वैकुण्ठ जादि लोक भी स्त्री शुद्ध सत्त्व से निर्मित होते हैं। वैकुण्ठ में मुक्त वात्मा श्री, मू, लीला जादि देवियों के साथ नारायण की सेवा करती है जो परम पुरुषार्थ कहा जाता है। जीव मुक्तावस्था में प्राकृत देह के विज्युत हो जाने पर अप्राकृत देह से नारायण के समान वैकुण्ठ में अनन्त भोग्य पदार्थों का भोग करता है और यही मुक्ति कहलाती है।

जीव को विभु और भूमा नारायण के चरणों में वात्मा समर्पण करने से शान्ति मिलती है। प्रपत्ति में जानकूल का संकल्प और प्रतिकूल का वर्जन किया जाता है और भावान् को वात्मा समर्पण कर दिया जाता है। शरणायन्न भक्त अपने को भावान् के भरोसे छोड़ देता है। प्रपत्ति में जीव सर्वस्व निवेदन कर सब विषयों को त्याग कर भावान् की शरण लेता है।

रामानुजाचार्य मयादि के बड़े पदापाती थे। उनके सम्प्रदाय में ज्ञान-मान, वाचार - विचार जादि पर बड़ा जोर दिया जाता है।

वत्सम-सम्प्रदाय

वत्सभाचार्य द्वारा चलाये हुये पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय की वास्तविक दृष्टि से शुद्धादित्त सिद्धान्तवाद, ब्रह्मवाद तथा अविकृत परिणामवाद कहते हैं और साधन की दृष्टि से पुष्टि मार्ग कहते हैं। शुद्धादित्त का अभिप्राय है कि "शुद्धं च तददित्तं च" अर्थात् शुद्ध अदित्त माया के सम्बन्ध से रहित है। ब्रह्मवाद का अभिप्राय है कि "सर्वं ब्रह्म इति वादः ब्रह्मवादः", अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है। जगत् भी ब्रह्म रूप है और जीव भी ब्रह्म रूप है। तत्त्वदीप निबन्ध में लिखा है :-

"जात्मेव तदिदं सर्वं ब्रह्म तदिदं तथा" १

अविकृत परिणामवाद का अर्थ है कि जगत् ब्रह्म का ही परिणाम है जो अविकृत अर्थात् विकार रहित है। "एक भवा द्वितीयं ब्रह्म" वृत्ति के आधार पर ब्रह्म को एक और अद्वितीय बताया गया है। ब्रह्म माया से नितान्त शुद्ध है। माया से अलिप्त होने के कारण ब्रह्म अदित्त है इस हेतु इस मत को शुद्धादित्त कहते हैं।

वत्सभाचार्य जी के अनुसार पुष्टिमार्ग भावान् के एक अनुग्रह है ही साध्य है, "पुष्टि मार्गो<sup>२</sup> अनुग्रह साध्यः" तत्त्वदीप निबन्ध में लिखा है, "वृष्णानुग्रह-<sup>३</sup>रूपादि पुष्टिः" अर्थात् "व्रीहृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है।" ब्रह्म स्वात्म्य, स्वजातीय, विजातीय और स्वगत में वर्णित है इसमें जीव, जगत् और ब्रह्म को एक ही माना गया है। ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। व्यापक और अव्यय है, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है सर्व गुणों से रहित है। वृत्तियों में वात्मा को निर्गुण बताया है उसी को शुद्धादित्त सिद्धान्त में परम ब्रह्म

१- तत्त्वदीप निबन्ध - शास्त्रार्थप्रकरण सर्व निर्णय प्रकरण पृ० १७६

२- अणुभाष्य चतुर्थ अध्याय, चतुर्थ पाद सूत्र ६ टीका

३- तत्त्वदीप निबन्ध - भागवतीय प्रकरण

कहा गया है। वही आनन्दात्मक दिव्य धर्मों वाला होने के कारण सृष्टि भी है। परब्रह्म एक अद्वैत, वादि, अनादि अद्वैत तत्त्व रूप है। बल्लू मार्ग परब्रह्म लिखते हैं :-

" In the Pushti Marg the highest Devo or Almighty who is concealed in all beings who is the inner soul of all who is omniscient etc. is loved served and worshipped." 1.

अद्वैतता पर प्रकाश डालते हुए वे बागे लिखते

" Though Bhakti or devotion generally presupposes two entities in the Pushti Marg it is not tainted by dualism, since the Almighty to be loved is the soul of the person loving. " 2.

श्री हरिराय जी " श्री पुष्टि-मार्ग-तत्त्वणामि " नामक लेख में लिखते हैं, " जिस मार्ग में लौकिक तथा अलौकिक सकाम अथवा निष्काम सब साधनों का समावेश ही श्रीकृष्ण के स्वस्व प्राप्त में साधन है अथवा जहाँ जो फल है वही साधन है, उसे पुष्टि मार्ग कहते हैं। और जिस मार्ग में सर्व सिद्धियों का हेतु भावान् का अनुग्रह ही है, जहाँ देह के लोक सम्बन्ध ही साधन रूप बनकर भावान् की इच्छा के बलपर फल-रूप सम्बन्ध बनते हैं जिस मार्ग में भाव-विरह अवस्था में भावान् की सीला के अनुभव मात्र से संयोगवस्था का सुख अनुभूत होता है और जिस मार्ग में सर्व भावों में लौकिक विषय का त्याग है और उन भावों के सञ्चित देशादि का भावान् को समर्पण है। वह पुष्टि मार्ग कहलाता है। "

वत्सल सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को पूर्ण आनन्दस्वरूप पुरुषोत्तम परब्रह्म माना गया है। तत्त्वदीय निबन्ध में वत्सलभाचार्य जी ने ब्रह्म का बोध कराते हुए कहा

१- The pushti Marg- by Lallu Bhai P. Parekh, 1925 page 8.

२- The Pushti Marg by Lallu Bhai P. Parekh, 1925 page 8.

३- परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं वृत्तम् ।

सिद्धान्त सुस्तावलि श्लोक ३ श्रीकृष्ण ग्रंथ महामानार्थ अमरि४

है कि " ब्रह्म, सत्, चित और ज्ञानस्वस्वरूप है। वह व्यापक है, नाश रहित और सर्वशक्तिमान् है। वह स्वतन्त्र, सर्वज्ञ और गुणों से वर्जित है। " " ब्रह्म हजारों नित्य गुणों से युक्त है, वह सजातीय, विजातीय और स्वातन्त्र्यरहित है, वह जीत है अर्थात् सजातीय चेतन सृष्टि उससे बला नहीं, विजातीय जड़ सृष्टि उससे भिन्न नहीं और स्वातन्त्र्यवर्तिनी रूप भी उससे भिन्न नहीं। " " ब्रह्म के अनन्त व्यक्त हैं, सर्वत्र व्याप्त रहते हुए भी उनकी स्थिति है, उसके अनन्त रूप हैं। वह अविभक्त और अनादि है और अपनी इच्छा मात्र से विभक्त होने वाला भी है। " वह सम्पूर्ण ज्ञातृ का आधारभूत है। माया को अपने वशीभूत करने वाला ज्ञानान्दाकार और सम्पूर्ण प्रपञ्च फलार्थों से बला है। " इस ज्ञातृ का वही समवायी और

१- सच्चिदानन्दरूपं तु ब्रह्म व्यापकमव्ययम् ।

सर्वशक्तिस्वतन्त्रं सर्वज्ञं गुणवर्जितम् ।

तत्त्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण ज्ञान सागर बम्बई पृ० २२९

२- सजातीय विजातीयस्वातन्त्र्यवर्जितम् ।

सत्यादिगुणसहितं युक्तमोत्पत्तिकैः सद ॥

तत्त्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण ज्ञान सागर बम्बई पृ० २२९

३- सर्वतः श्रुतिमल्लीकैः सर्वमावृत्य तिष्ठति ।

जान्त्रमुक्तिवद्ब्रह्म ह्यविभक्तं विभक्तितम् ॥

तत्त्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण ज्ञान सागर बम्बई पृ० २३०

४- सर्वाधारं वश्यमात्मानंदाकारमुत्तमम् ।

प्रापञ्चिकफलार्थानां सर्वेषां तद्विज्ञाणम् ।

तत्त्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण ज्ञानसागर बम्बई पृ० २३३

निमित्तकारण है। वह अपनी स्वल्प में और अपनी रक्ति लीला में नित्य मग्न रहता है। परब्रह्म के तीन मुख्य धर्म हैं- सत्, चित और ज्ञान-नन्द जतः "सच्चिदानन्द" अथवा "सदानन्द" भी कहलाता है। सदानन्द का ही पर्यायवाची शब्द कृष्ण है जतः उसे कृष्ण भी कहा गया है। वेदान्त में जैसे भगवान् कहते हैं शुद्धान्त सिद्धान्त में परब्रह्म कृष्ण कहते हैं। उत्सु भाई परब्रह्म "पुष्टि मार्ग" में लिखते हैं, "The word Krish cannotes power, the word na cannotes bliss. The combination of the two means Krishna Parmatma. He is called Brahman in the Upanishads, Parmatma in the Smritis and Bhagvan in Shreemad Bhagvat." 2.

श्रीकृष्ण सर्व धर्मों के वात्रय रूप हैं इसीलिये वे धर्मों कहलाते हैं। बल्लभाचार्य ने लिखा है "ब्रह्म अन्तर्मूर्ति, चल और चल दोनों प्रकार का है तथा वह सम्पूर्ण विरुद्ध धर्मों का वात्रय है।" निर्विशेष और निर्गुण होते हुए भी सविशेष और सगुण है। बण्ट से बण्ट है और महाने से महान् है। अन्तर्मूर्ति होते हुए भी एक ही व्यापक है। कर्तुं तथा कर्तृ है। अविभक्त तथा विभक्त है, ज्ञान्य तथा गम्य है, अदृश्य तथा दृश्य है। निर्दोष तथा सर्व अप्राकृत गुणों से युक्त है। परब्रह्म सत् है और वह सत् रूप है। ब्रह्म सर्वकर्मा और सर्वशक्तिमान है सर्वकर्ता और सर्व भोक्ता भी है। अविभक्त होते हुए भी विभक्त है। ज्ञान्य होते हुए भी गम्य है। "रसावैशः" परब्रह्म सत् है और वह सर्व सत् रूप है।

१- जगत् समवाप्ति स्यात् तदेव च निमित्तम् । कदाचिद्रमतेस्वस्मिन् प्रपञ्चेऽपि स्वचित्सुखम् ।  
तत्त्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञान सागर बम्बई पृ० २३३

२- Pushti Marg by Lalit Bhai Parekh p.9. 1925.

३- अन्तर्मूर्ति तद्वत् कृत्स्नं चतुर्विधं च । विरुद्धसर्वधर्माणामात्रयं युक्तयोचनम् ।  
तत्त्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञान सागर बम्बई पृ० २४६ तथा  
बण्टभाष्य ३ अध्याय, पाद २, सूत्र २१

४- हादोग्य उपनिषद् ३-१४-२

सच्चिदानन्द ब्रह्म नित्य है और उसकी लीला भी नित्य है। ब्रह्म ही सच्चिदानन्द है परन्तु वह गणितानन्द है। परब्रह्म के ब्रह्मरूप को गौलीक भी कहा गया है। बल्लभाचार्य जी ने ब्रह्मा विष्णु और शिव को ब्रह्म का ही रूप कहा है जिसकी उपासना से मोक्ष प्राप्त होता है।

ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं :- १- बाधित्विक - परब्रह्म ।

२- बाध्यात्मिक- ब्रह्मरूप ।

३- बाधिभौतिक- जगत् ब्रह्म ।

जगत् ब्रह्म रूप ही है क्योंकि कार्य रूप जगत् कारण रूप ब्रह्म से ही बाधित्व होता है। यह सृष्टि ब्रह्म की आत्मकृति है। ब्रह्म में सब धर्म माने हैं। बल्लभाचार्य जी ने ब्रह्म को जगत् का निमित्त और उपादान कारण माना है। भवान् जब रमण करने की इच्छा करता है तो वह सत् चित् ब्रह्मा तानन्द में किसी एक का या स्थायिक का बाधित्व करके जीव और जड़ की उत्पत्ति करता है। लल्लू भाई परेख "पुष्टि मार्ग" में लिखते हैं :-

"When the Almighty wishes to be many the world with its God's Devas and other entities comes into existence." 1.

सांकरमत में एक ब्रह्म ही सत्य है और सब कल्पना मात्र है।

बाध्यात्मिक ब्रह्म ही जीव और जगत् को ईश्वर के अंश मानकर सत्य माना है। बल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार जड़ जगत् और जीव सृष्टि सच्चिदानन्द ब्रह्म के अंश हैं। मण्डारकर लिखते हैं :-

"By his own inscrutable power he rendered the properties of of intelligence and joy inspercephble and in the first and his joy alone in the second while the third has all the attribut perceptible in it. Simple Brahman as such has perceptible joy prevailing in it. "2.

ब्रह्म के अनन्त अवयव है वह अविविक्त और अनादि है। वह व्यापक और सर्वशक्तिमान है। वह स्वतन्त्र सर्वज्ञ और गुणी है वर्णित है। वह अपनी इच्छा से विभक्त होने वाला है। ब्रह्म के ब्रह्म में सब हैं। अपने को अंश रूप जीवों में बिखरना ब्रह्म की लीला है। ब्रह्म अपनी "संधिनी" शक्ति द्वारा "सत्" का "संवित" द्वारा चित् का तथा "ह्लादिनी" द्वारा "आनन्द" का तिरोभाव करता है। अतएव ब्रह्म अपनी आविर्भाव तिरोभाव की अन्तिम शक्ति से जगत् के रूप में परिणत भी होता है और उसके परे भी रहता है। वह अपने सत् चित् और आनन्द इन तीनों स्वरूपों का आविर्भाव और तिरोभाव करता रहता है। जीव में सत् और चित् का आविर्भाव रहता है, चित् और आनन्द दोनों का तिरोभाव। माया कोई वस्तु नहीं है। श्रीसीताराम वर्मा ब्रह्म दिग्विजय भाषा में लिखते हैं:-

" श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं अर्थात् सदा आनन्द धनदार हैं पर पुरुषोत्तम हैं। सौ श्रीकृष्ण की स्वल्पान्तर वृक्ष नाम अतएव ब्रह्म है सौ सत् चित् आनन्द और अर्ध विशिष्ट है स्तावृक्ष अतएव ब्रह्म के दो स्वरूप हैं एक तो दृशमान सम्पूर्ण प्रपञ्च जगत है ताते विलक्षण दूसरी स्वरूप है सौ स्वरूप को देशकाल करके अपरिहित व्यापक स्वयं प्रकाश्य गुणातीत करके वेद उपनिषद् में वर्णन है मुमुक्षा ज्ञानी जनन के मोक्ष को स्थान भावत् धाम है। "

पुरुषोत्तम वृत्तियों के परब्रह्म को ब्रह्मभाचार्य ने "पुरुषेश्वर" "पुरुषोत्तम" माना है। निर्गुण परब्रह्म अपनी अनेक शक्तियों के साथ अपनी वात्मा में निरन्तर आन्तर रमण करता है इसलिये वह "वात्माराम" कहलाता है। जब उसकी वाह्य रमण करने की इच्छा होती है तो दिव्य आनन्द धर्म वाले अपने "आधिदैविक" रूप है वह अपनी शक्तियों के साथ वाह्य रमण करता है। आनन्द धर्मवाला यही वाह्य रूप



"पुरुषोत्तम" कहलाता है। इसमें अपरिमित आनन्द है इसलिये यह "आनन्द रूप" कहा जाणितानन्द कहा गया है। यह अक्षरादि से पर उत्तम है इसलिये पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध है। पुरुषोत्तम अत्कर्ता, वादकर्ता, नाना सृष्टि प्रवर्तक, सर्वाकार सदानन्द शरीर आदि है। पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म अप्राकृत रूप और अप्राकृत गुणों से युक्त अक्षररूप में सदैव एक रूप अपने आनन्दाकार में मग्न रहता है। वत्सल सम्प्रदाय में "श्रीकृष्ण" को पूर्ण आनन्दस्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म माना गया है। सर भण्डारकर लिखते हैं :-

"Sri Krone is the highest Brahman. He has hands and feet not made up of ordinary matter (Aprakrta) but celestial. His body consists of Sat existence, cit intelligence, Ananda joy. He is called Purusottama as the most excellent of all beings and has all attributes which are not ordinary, but celestial." 1.

पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म जाणितानन्द है और अक्षर ब्रह्म जाणितानन्द क्योंकि इसमें आनन्द की कमी है। श्रीकृष्ण जो कि परब्रह्म हैं सब दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर "पुरुषोत्तम" कहलाते हैं। आनन्द का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम रूप में रहता है इसलिये यही श्रेष्ठ रूप है। पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हः अप्राकृत धर्मों से व्यक्त है- ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। जब भावान् की इच्छा से प्रेरित जीव के ऐश्वर्यादि हः गुण तिरोहित हो जाते हैं तभी उसे अन्यथा ज्ञान होने लगता है और वह दुःख का भागी होता है। "स्त्री हं बहु स्याम" के आधार पर वह अक्षर ब्रह्म अपनी इच्छा से अनन्त मूर्ति हो गया। "पुरुषोत्तम में अनन्त शक्तियों की निरन्तर

1- Collected works of Sri R.G. Bhandarkar Vol. IV page 111.

2- तैत्तिरीय उपनिषद् २-६

स्थिति रहती है। पुरुषोत्तम नित्य हैं और उनकी सब लीलायें भी नित्य हैं। वे अपने भक्तों के लिये व्यापी बैकुण्ठ में अनेक प्रकार की ब्रीडायें करते हैं। गौतम जी "व्यापी" बैकुण्ठ का एक खण्ड है जिसमें नित्य रूप में यमुना, वृन्दावन, निकुंज इत्यादि सब कुछ हैं। भगवान् की इस नित्य लीला का आनन्द ऐसा ही जीव की सबसे उत्तम गति है। जब पुरुषोत्तम बाह्य रूप लीला करते हैं तो उनकी शक्तियाँ भी बहिःस्थिति ही उनसे विलास करती हैं। इन अनन्त शक्तियों के विविध रूप, गुण और नाम होते हैं जिनमें श्रिया, पुष्टि, गिरा, और कांत्या आदि द्वादश शक्तियाँ मुख्य हैं। ये ही श्रीस्वामिनी चन्द्रावती, राधा और यमुना आदि हैं। इन द्वादश शक्तियों से अनन्त भाव प्रकट होते हैं जो अनेक सखी, सहचरी रूप में उनके साथ रहते हैं। श्रीकृष्ण के अवतार रूप में दो रूप मान्य हैं। एक लोक वेद ग्रन्थि पुरुषोत्तम और दूसरा लोकवेदातीत पुरुषोत्तम। कृष्ण में पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के रूप में और शक्तियाँ कृष्ण गोपियों के रूप में प्रकट हुईं। कृष्ण, विष्णु और शिव, कृष्ण के ही रूप हैं। विष्णु की उपासना से मोक्ष की प्राप्ति होती है प्रकृति पुरुष और नारायण इन्हीं के अंश हैं। अकार कृष्ण, परकृष्ण पुरुषोत्तम से भिन्न न होकर उसका बाह्यैतिक स्वरूप है। अकार कृष्ण, बीकार ज्योति रूप, परकृष्ण धाम रूप और परकृष्ण के ही समान सनातन, अमूर्त एवं अविकृत है। वेदान्त में जिसको कृष्ण, हरि, यज्ञ, स्मृति में जिसे परमात्मा और भागवत में जिसे भगवान् कहा गया है उसी को शुद्धादित सिद्धान्त में परकृष्ण कृष्ण कहते हैं।

तत्त्वदीप निबन्ध में बल्लभाचार्य लिखते हैं,<sup>१</sup> "जिस प्रकार सुदीप्त अग्नि से विस्फुलिंग अर्थात् चिनगारियाँ उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार कृष्ण से अज्ञेय

१- विस्फुलिंगा एवाग्नेस्तु सर्वज्ञ जडा अग्नि ।

आनन्दोऽंश स्वरूपेण सवान्तियाँमिरूपिणाः ॥ ३२॥

तत्त्वदीप निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण ज्ञान सागर बम्बर पृ० ६३

स्वस्म जीव उत्पन्न होते हैं।" ब्रह्मण्य मत के अनुसार जीव ब्रह्म और परमात्मा वंशी है। जीव अणुमात्र है। वह अतल्य, नित्य और सनातन है। सच्चिदानन्द ब्रह्म के बिना ब्रह्म से अतल्य जीव, सब ब्रह्म से जड़ प्रकृति और ब्रह्मन्दांश से उसके अन्तर्गामी रूप निकले। जीव अपनी शुद्ध अवस्था में ब्रह्म रूप है, माया से ग्रसित होने पर वह अपने सत्य स्वस्म को भूल भ्रमित हो जाता है।

जीवात्मा ब्रह्म ही है केवल उसका ब्रह्मन्दि स्वस्म आवृत रहता है। जीव और ब्रह्म में अंतर है। जीव और ब्रह्म विभु होने से अनन्य है। जीव ज्ञाता है। वह कर्ता और भोक्ता होते हुए भी कुछ से परे है। जीव ज्योति रूप और प्राकृत वाकार से रहित है। जीवों की अनेकता तथा उनकी ब्रह्म रूप से स्थिति सत्य है। एक अवस्था में मुक्तता है दूसरी अवस्था में जीव और ब्रह्म की एकता है। जीव सृष्टि दो प्रकार की है:-

१- देवी जीव सृष्टि

२- बाह्य जीव-सृष्टि

देवी सृष्टि भी दो प्रकार की है :-

१- पुष्टि-सृष्टि तथा

२- मयादा सृष्टि

पुष्टि जीव भावान् की सेवा के योग्य और मयादा जीव सेवा के अयोग्य है। पुष्टि सृष्टि के जीव चार प्रकार के हैं :-

१- शुद्ध पुष्ट

२- पुष्टि पुष्ट

३- मयादा पुष्ट

४- प्रमादी पुष्ट

बाधुरी जीव सृष्टि प्रवाही सृष्टि है जो दो प्रकार की है:-

१- दुर्ल तथा

२- क्त

शुद्धांत सिद्धान्त के अनुसार यह समझ जातू क्त रूप है। स्वस्थि यह क्त के समान सत्य है जातू क्त रूप होने से नष्ट <sup>नहीं</sup> होता। यह क्त और जीव के समान नित्य है। वतार क्त के सद् अंश से जड़ जातू की उत्पत्ति हुई। क्त से ही यह जातू बना है स्वस्थि क्त कारण और जातू कार्य है। क्त का एक रूप जातू है और दूसरा रूप उससे भिन्न है। पुष्टिभार्य में अविकृत परिणामभाव के अनुसार जातू शुद्ध क्त का अविकृत परिणाम है रूप होने पर शुद्ध क्त ही ही जायगा जैसे स्वर्ण के वाष्पण गलने पर फिर स्वर्ण ही जाती है। क्त ही इस जातू का निमित्त और उपादान कारण है। भावान् स्वयं ही जातू के रूप में प्रकट हुए हैं। यह जातू ईश्वर का ही कार्य है। 'सिद्धान्त मुक्तावली' में बल्लभाचार्य जी कहते हैं, "परब्रह्म तो श्रीकृष्ण ही हैं। सच्चिद, गणितानन्दि वतार क्त है जो दो प्रकार का है जगत्स्वरूप और उससे भिन्न।" प्रत्यय के समय जातू का तिरौभाव होता है, नाश नहीं, जैसे घट के टूट जाने पर घट के बीतार का वाकाश वृद्ध वाकाश में समा जाता है वैसे ही प्रत्यय के समय जातू अपने मूल तत्त्व रूप से क्त में समा जाता है।

बल्लभाचार्य जी के अनुसार जातू ईश्वर कृत और संसार जीव कृत है। यह जातू सत्य तत्त्व का अविकृत परिणाम है स्वस्थि सत्य है जातू भावान् का अंश होने के कारण भावान् का ही स्वरूप है। जातू का रूप कभी नहीं होता। संसार जीव की अविद्या से माना हुआ कल्पना मात्र है। जीव की कल्पना और क्त के बाधार पर संसार की सृष्टि हुई है स्वस्थि संसार झूठा है। जहां अज्ञता और ममतात्मक कल्पना

होती है वही संसार का जन्म होता है। जीव की मुक्ति होने पर संसार का लय ही जाता है। संसार का उपादान कारण अविद्या और निमित्त कारण जीव है।

माया परब्रह्म की सर्व भवन समर्थ, रूपाशक्ति है परब्रह्म में ही माया की स्थिति रहती है। माया परब्रह्म के बाधीन है परब्रह्म इसके बाधीन नहीं। तत्त्वदीप निबन्ध में ब्रह्मभाचार्य जी ने माया के दो रूप बताये हैं एक विद्या दूसरी अविद्या। जीव माया के बाधीन है। अविद्या माया जीव को संसार <sup>को</sup> बांधने वाली और विद्या माया जीव को संसार से छुटाने वाली है। माया दो प्रकार से अन्वधा प्रतीति करती है। एक तो सत्य ज्ञान को ढक देती है और दूसरे सत्य अस्त्य का वाभास करती है। अविद्या माया पंच फल है जिसमें बंधन जीव संसार दुःख को प्राप्त करता है। अविद्या के नाश होने पर विद्या से जीव संसार के दुःख से छूट जाता है। अविद्या के पांच स्वरूप हैं। अन्तःकरण, प्राण, इन्द्रिय, देह तथा स्वल्प का अज्ञान अथवा अभ्यास। अन्य वस्तु में अन्य का रूप अभ्यास कहलाता है। अविद्या का छटाने का मार्ग भावान् के अनुग्रह द्वारा प्राप्त भावभक्ति की ही बताया है।

ब्रह्म सम्प्रदाय में बुद्धाभाव पूर्वक नित्यानन्द की प्राप्ति मोक्ष मानी गई है। <sup>हे अविद्या</sup> विद्या का नाश होकर जीव मुक्त होता है। ज्ञान योग और भक्ति से संसार दुःख का निवारण होता है। भक्ति से मुक्ति सरलता पूर्वक प्राप्त होती है। सांख्यिक, सामीप्य, सारूप्य, सामुज्य और सामुज्य-अनुरूप मुक्ति पांच प्रकार की मुक्ति अवस्था में हैं। सुहासित ज्ञानियों की लयात्मक सामुज्य मुक्ति मिलती है। ज्ञान से जंश जीव जंशी अवतार ब्रह्म में लीन हो जाता है उसकी पृथक् सत्ता नहीं रहती। ब्रह्मभाचार्य ने अणुभाष्य में सभी-मुक्ति और क्रम-मुक्ति दो प्रकार की मुक्तियों का उल्लेख किया है। बिना भिन्न भिन्न

लोकों में जाये और बिना प्रारब्ध कर्मों के भीगे ही पुष्टि मार्गीय भक्त की मुक्ति हो जाती है। श्री हरिराय जी कहते हैं कि जीवों का भावान् के साथ सम्बन्ध हो जाना भक्ति मार्ग में मुक्ति कहलाती है। मुक्ति दो प्रकार की होती है:-

१- जीवकृति है साध्य मुक्ति

२- प्रभुकृति है साध्य मुक्ति ।

भावाद् कृपा से ही चरम मोक्ष लाभ होता है। वत्सल सम्प्रदायीक भक्त चरम लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम के लोक में पहुँचकर पूर्ण पुरुषोत्तम की आनन्द लीलाओं का आनन्द विग्रह है अनुभव करना है।

#### माध्व-सम्प्रदाय-

माध्वाचार्य जिनके कि दूसरे नाम आनन्दतीर्थ और पूर्ण प्रज्ञा भी हैं, का आविर्भाव रामानुज के बाद हुआ और उन्होंने शंकर के मायावाद व लीलावाद का सफ़ेद कर विष्णु के सर्वोच्च परमात्मत्व बताते सिद्धान्त की स्थापना की। उन्होंने 'भागवत' पुराण को अपनी मत का आधार बनाया। श्रीकृष्ण की भागवत कार ने पूर्णावतार और शेष सभी को अंशावतार कहा परन्तु उन्होंने भावान् के सभी अवतारों को पूर्ण कहा और उड़ीसी 'मात्मावारा' के मन्दिरों में विष्णु के अतिरिक्त सीताराम, कालिय मर्दन, वराह, नृसिंह -मूर्ति देवताओं की मूर्ति प्रतिष्ठा की। उनके अनुसार भावान् विष्णु ही अविनाशी हैं जो अचिन्त्य शक्ति से युक्त, अनन्त व असीम गुणों से विभूषित व असीम सामर्थ्य सम्पन्न हैं। भावान् सच्चिदानन्द है, शरीरी होने पर भी नित्य तथा

स्वतन्त्र है, उनके मच्छ, कच्छपादि अवतार स्वयं पूर्ण होते हैं। "मत्स्य, कूर्मादि स्वरूपों से करवर्णादि अवस्थाएँ हैं, ज्ञानानन्दादि गुणों से भावान् उत्पन्न अभिन्न हैं, ज्ञास्व भावान् तथा भावान् के अवतारों में भ्रम दृष्टि रखना नितान्त अनुचित है।" अन्य वाचायों के विष्णु साधना मार्ग में प्रतीक रूप में सामने जाये परन्तु मध्वाचार्य ने विष्णु को परम तत्त्व का प्रतीक न मानकर स्वयं परमतत्त्व माना है। उन्होंने परमतत्त्व तथा ज्ञानी सगुण वाराह्य में विच्छिन्न भ्रम नहीं रखा। अन्य वाचायें भक्ति द्वारा भक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति मानते हैं परन्तु मध्वाचार्य भक्ति द्वारा विष्णु की प्राप्ति ही मुक्ति मानते हैं।

वह तत्त्वमी को विष्णु है भिन्न उनके बाधोन् और उनके गुण स्वं शक्ति परमात्मा से कम मानते हैं। भावान् की भाषा तत्त्वमी माया स्फुरिणी नित्य मुक्त, अप्राकृत, अतीर, दिव्य शरीर सम्पन्न और व्याप्त है। तत्त्वमी परमात्मा के सदैव और सृष्टि जादि कार्यों का सम्पादन करती है। वह नित्य सर्व गुण पूर्ण और सदैव भावान् की सेवा में रहने वाली है। वह सृष्टि स्वयिता ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाली और मुक्त भक्तों में वादह स्वरूपा है। तत्त्वमी के श्री, श्रीं, दक्षिणा, सीता, प्रीती, सत्या, रुक्मिणी जादि जनेक रूप हैं।

१- अवतारादयो विष्णोः सर्वे पूर्णाः प्रकृतिताः । "माध्व बृहद् माध्वे"

२- भारतीय दर्शन श्री बलदेव उपाध्याय पृ० ४६१

३- परमात्म भिन्ना तन्मात्राधीना तत्त्वमीः ।

४- "माध्वे नित्य मुक्तोत्तु परमः प्रकृतिस्तथा ।

देशतः कास्तस्मैव समन्या व्याप्ताधुमाव जी ।"

श्री मध्वाचार्य ने स्वतन्त्रता स्वतन्त्रवाद की स्थापना की।

ज्ञान, कर्म, नामकरण और भजन के द्वारा प्राप्त होता है। निर्वाण मुक्ति कुछ नहीं चारुण्य, चालीक्य आदि मुक्ति ही परमार्थ है। भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त करना ही पुरुषार्थ है। उनके मतानुसार ब्रह्म सृष्टि और सविशेष तथा ब्रह्म परिमाण और भगवान् का दास है। जीव परतन्त्र और परमात्मा स्वतन्त्र है। अपने उद्धार हेतु जीव को भगवान् विष्णु की उपासना करनी चाहिये। " जीव ब्रह्म से ही उत्पन्न है। किन्तु ब्रह्म स्वतन्त्र है और जीव परतन्त्र। दोनों में स्वामी तथा सेवक अथवा राजा और प्रजा का सम्बन्ध है। ब्रह्म और जीव में जो अन्तर है वह स्कान्त सत्य है, मिथ्या नहीं। ब्रह्म वाराध्य है, जीव वाराधक। शरीर और शक्ति में जो अन्तर है वही जीव और ब्रह्म में है। एक बार ब्रह्म से उत्पन्न होने पर जीव सबैव के लिये अनन्त काल के लिये स्वतन्त्र सत्ता है। जिस प्रकार कारण से कार्यकी उत्पत्ति होती है- कारण ही कार्य नहीं है और न कार्य कारण ही। उसी प्रकार ब्रह्म जीव नहीं है और न जीव ब्रह्म। " माध्व सम्प्रदाय के सम्बन्ध में डा० हरवंश लाल शर्मा लिखते हैं, " इस सम्प्रदाय की उल्लेखनीय बात यह है कि स्वयं ब्रह्म तथा वासुदेव आदि का स्थान नहीं है। परमात्मा को विष्णु नाम से अभिहित किया गया है। " राम " और " कृष्ण " की उपासना भी विहित है परन्तु गोपाल कृष्ण, " गोप " अथवा " राधा " का कहीं उल्लेख नहीं है। "

ध्यान के बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता। मध्वाचारी उपासना के तीन कर्म मानते हैं:-

१- कर्म - विष्णु के शंख, चक्र, गदा, परमादि चिह्नों से शरीर को

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा पृ० २०८

२- सूर और उनका साहित्य- डा० हरवंश लाल शर्मा पृ० १२६



वंक्ति करना और सप्त मुद्रा धारण करना। यह कृत्य पापों से छुड़ाता है।

२- नामकरण- अपनी संतानों का विष्णु परमात्मा की नाम रखना।  
 स्थापन है उदैव आराध्य का स्मरण बना रहता है।

३- भजन :- नाम का मानसिक, वाचक, कायिक तीन प्रकार है भजन करना।

अ- मानसिक - दया, स्मृति, क्रदा। दखि का दुःख दूर करना दया है। भवान् का ही केवल दास बनने की इच्छा करना स्मृति है। शास्त्र तथा गुरु के प्रति विश्वास क्रदा है।

ब- वाचक - वाचक भजन में सत्य बोलना, हित के वाक्य बोलना, प्रिय भाषण तथा स्वाध्याय बातें हैं।

स- कायिक :- सत्यान्न की दान देना, विपन्न व्यक्ति का उद्धार करना और शरणागति की रक्षा करना कायिक भजन है।

इन वसीं प्रकार के कार्यों की भावान् के समर्पण करना भजन है। उपासना दो प्रकार की और बताई गई है- सतत शास्त्राभ्यास रूपा और ध्यान रूपा। इसके साथ ही जगत् के समस्त फलार्थ एक दूसरे से बढ़कर हैं, ज्ञान-सुखादि का वन्त भावान् में होता है इस तारतम्य-परिज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है। स्वाभाविक तथा नित्य पंच भेद का ज्ञान होना भी आवश्यक है। ये ईश्वर जीव और प्रकृति के भेद पांच प्रकार के हैं :-

- १- ईश्वर और जीव का भेद :- ईश्वर जीव है तथा <sup>जीव</sup> ईश्वर है नित्य भिन्न है।
- २- ईश्वर और जड़ का भेद :- ईश्वर जड़ है तथा जड़ ईश्वर है नित्य भिन्न है।
- ३- जीवात्मा और जड़ का भेद :- जड़ जीव है और जीव जड़ है नित्य भिन्न है।
- ४- जीवात्मा और जीवात्मा का भेद :- एक जीव दूसरे जीव से भिन्न है।

५- जड़ और जड़ का भेद :- एक जड़ दूसरे जड़ से भिन्न है।

जीव और ईश्वर वादि के ये भेद भी वही प्रकार से सत्य हैं जिस प्रकार से भावान् के सर्वगुण सत्य हैं। इन पांच भेदों के कारण इस जगत् को "प्रपञ्च" कहते हैं। इन सब साधनों के करने से ही निर्मल प्रीति अर्थात् "कमला" भक्ति प्राप्त होती है। कमल भक्ति के पश्चात् भावान् का अनुग्रह होता है जिससे मुक्ति प्राप्त होती है। इन पांच भेदों का ज्ञान हुए बिना जीव की मुक्ति नहीं होती।

लक्ष्मी परमात्मा के सैक्त पर सृष्टि वादि कार्यों का सम्पादन करती है। वह नित्य सर्व गुण पूर्ण और सदैव भावान् की सेवा में रहते वाली है। वह सृष्टि रक्षयिता कृपा को उत्पन्न करने वाली और मुक्त भक्तों में आदर्श स्वल्पा है। लक्ष्मी के "त्री", "ही", वशिष्ठा, सीता, प्रीती, सत्या, रुक्मिणी वादि लोक रूप हैं <sup>जिन</sup> की उत्पत्ति होती है।

मध्वाचार्य के अनुसार ज्ञाता और ज्ञेय से ज्ञान सम्भव होता है और सत्य व दृश्य वस्तु अभिन्न है। ज्ञान और चिन्तन में कोई अन्तर नहीं है। ज्ञान निर्विकल्प नहीं बल्कि आपेक्षिक है। वेद स्वतः सिद्ध अपौरुषेय स्वतः प्रमाण स्व नित्य है। यथार्थ ज्ञान और विचार के लिये प्रमाण की आवश्यकता होती है। ज्ञान ही प्रमाण है। वस्तु का वास्तु के साथ भेद है और भेद पारमार्थिक है।

प्रकृति जगत् का उत्पादन कारण है ईश्वर केवल निमित्त कारण है। जगत् अतीत, सत्, जड़ और अस्वतन्त्र है। भावान् जगत् के नियामक हैं। अतीत वस्तु नित्य अनित्य और नित्यानित्य तीन प्रकार की है। ज्ञान निर्विकल्प नहीं है। ज्ञान की स्फूर्ति ज्ञेय के सत्य होने से होती है। उन्होंने जगत् की असत्यता का खंडन करके जगत् की

सत्यज्ञा सिद्ध की है।

प्रकृति जड़ तथा अजड़ दो प्रकार की है। अजड़ प्रकृति किन्तु स्वल्प वाली है। जड़ प्रकृति बाँट प्रकार की है। काल, सत्, रज, तम तीन गुण तथा मल्लादि तत्त्व जड़ प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। जड़ प्रकृति नित्य है। भगवान् जब सृष्टि की कामना करते हैं तो सत्, रज, तम तीन भागों में लक्ष्मी द्वारा उसे बाँट देते हैं। जहाँ तीन गुणों से मल्ल तत्त्व अकार, बुद्धि तथा मन आदि उत्पन्न होते हैं।

जीव माया से मोहित है इसलिए जनादि काल से बड़ और वज्रान से युक्त है। जीव और ईश्वर पत्नी और सूत्र तथा नदी और समुद्र की भाँति भिन्न है। जीव ऐक्य और ईश्वर ऐक्य है। जीव प्रत्येक देह में भिन्न है और स्वतन्त्र न होकर पूर्णत्वं से ईश्वर पर निर्भर है। जीव का ज्ञान ससीम है तथा वह अणु और चेतन है। वह मोह, दुःख आदि दोषों से युक्त है। परमाणुओं से भी अनन्त गुणी संख्या जीवों की है। जीव मुक्ति योग्य, नित्य संसारी, तमोयोग्य तीन प्रकार के हैं।

१- मुक्ति योग्य जीव :- आकाश, अग्नि, वायु आदि देव नादादि कण, विश्वमित्र, <sup>आदि</sup> पितृगण, सप्त, अम्बरीष आदि चक्रवर्ती तथा उत्तम मनुष्य ये ही मुक्त जीव होने के अधिकारी हैं।

२- नित्य संसारी जीव :- उत्तम मनुष्यों की छोड़ मध्यम मनुष्य नित्य संसारी जीव हैं। ये निरन्तर पृथ्वी, स्वर्ग, नरक आदि लोकों में संवरण करते हुए सुख दुःख का भोग करते हैं।

३- तमोयोग्य जीव :- दैत्य राक्षस, पिशाच आदि तमोमय जीव

१- वह ब्रह्म अनन्त सद्गुणों से पूर्ण है जिसका प्रत्येक गुण उत्तीम है। वह भाव और अभाव के परे स्वतन्त्र तत्त्व तथा स्वतन्त्र प्रेय है। वह ज्ञानानन्द, अद्वितीय और एक है तथा जैक कम धारण कर सकता है। उसकी इच्छा पर ही सुख-दुःख, विषा-अविषा, बन्धन-मोक्षा निर्भर हैं। निर्गुण ब्रह्म का निराकरण कर सगुण परमेश्वर ही सत्य है। उसका कार्य विमानक बाठ प्रकार का है।-

- १- सृष्टि
- २- स्थिति
- ३- संहार
- ४- नियम
- ५- आवरण। अज्ञान।
- ६- बोधन
- ७- बन्धन
- ८- मोक्षा

इन बाठों कार्यों में और किसी चैतन का अधिकार ब्रह्म के अतिरिक्त नहीं है। वह अप्राकृत नित्य तथा ज्ञानात्मक है। वह काल देश और शक्ति में उत्तीम है। विष्णु, ब्रह्मा और शिव से त्रेष्ठ है। ब्रह्म भाव और अभाव से परे है। भाववस्तु जैतन और चैतन दो प्रकार की है। ज्ञात जैतन और जीव चैतन है। भावान् जीव और ज्ञात से पृथक् है और ये भावान् के बाधीन हैं।

मध्वाचार्य के अनुसार भ्रम या भ्रान्ति सर्वथा नियमबद्ध नहीं होती। भ्रम के लिये आवश्यक है कि दो वास्तविक पदार्थ हों। रस्सी में सर्प का और शुक्ति

में रजत का भ्रम होता है। सर्प और रजत का भ्रम इसलिये होता है क्योंकि उनकी वास्तविक सत्ता है। यदि जाल की वास्तविक सत्ता न हो तो उस में उसका अभ्यास या भ्रम न हो। जब संसार में दो पुरुष हैं चार और अचार सब भूत चार हैं और स्वयं ब्रूटस्थ की अचार कहते हैं। अचार का न कभी नाश होता है और न इसकी कमी कल्पना ही की जा सकती है। ये जीव और ईश्वर इन दोनों तत्त्वों को नित्य मानते हैं इसलिये इनका दर्शन त्रिवादी कहा जाता है।

इन्द्रियां नित्य और अनित्य दो प्रकार की हैं। परमात्मा, लक्ष्मी और जीव मात्र<sup>की</sup> भी इन्द्रियां नित्य हैं। परमात्मा और लक्ष्मी की वशीं। वशीं। इन्द्रियां रूप-रस आदि वाले समस्त फलार्थों को ग्रहण करती हैं परन्तु जीव की इन्द्रियां अपने योग्य फलार्थों को ही ग्रहण करती हैं। ज्ञान तथा कर्म भेद से भी उनके दो भेद माने हैं।

अविद्या से संसार में कलेश होता है। यह प्रत्येक जीव में अज्ञान होता है। अविद्या ज्ञान, नास्त्वादि पर भी अपना प्रभाव डालती है। ज्ञान के शरीर में होकर जाने के कारण इसे ज्ञानी सृष्टि भी कहते हैं। अविद्या की सृष्टि पंच भूतों की सृष्टि के बाद होती है। इसके चार भेद हैं :-

१- जीवाच्छादिका

२- परमाच्छादिका

३- ऐश्वर्या

४- माया

त्रिवाद में फलार्थों के दस भेद माने गये हैं :-

१- दृश्य

२- गुण

३- कर्म

४- सामान्य

५- विशेष

६- विशिष्ट

७- कंठी

८- शक्ति

९- सादृश्य तथा

१०- अभाव

१- दृश्य पदार्थ के बीच में हैं :- परमात्मा, तन्मी, जीव, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्त्व, बलकार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, सन्माना, भूत, क्वाण्ड, वक्त्रा, वर्ण, वक्त्रा, वासना, काल, प्रतिबिम्ब।

२- गुण पदार्थ :- रूप रस, सौन्दर्य, धर्म शौर्य आदि जीव प्रकार के हैं।

३- कर्म :- विहित, निषिद्ध, उपासीन तीन प्रकार के होते हैं तथा नित्य और अनित्य दो प्रकार के भी होते हैं।

४- सामान्य: जाति तथा उपाधि दो प्रकार का है। वह नित्य तथा अनित्य है। मुक्तावस्था में जो वस्तुभाव रहता है वह नित्य और भौतिक शरीर है सम्बन्धित जातियाँ अनित्य हैं।

हितवाद में जीवों का अतिक्रम होता रहता है परन्तु अकारण है निवृत्ति होने पर जीव को अपना स्वाभाविक स्वरूप मिल जाता है। मुक्तत्व के जाति बोधक विमान स्थावर, जंगम, वर्णाश्रम आदि नित्य हैं।

- ५- विशेष :- भेद के निवारक पदार्थ का नाम है।
- ६- विशिष्ट :- विशेषण युक्त विशेष का नाम विशिष्ट है। यह नित्य व अनित्य दो प्रकार का है।
- ७- वंशी :- वंशि, वंश से पृथक् पदार्थ है।
- ८- शक्ति :- इसके अधिनित्य बाधक, सत्त्व, अधिनित्य और फल चार विभेद हैं। अधिनित्य कौन्-फल-कर्म शक्ति भावान् में ही पूर्ण रूप में है जिसका नाम ऐश्वर्य है। ईश्वर ईश्वर में विरुद्ध धर्मत्व का यही कारण है। बाधक शक्ति स्वाभाविक है। जीव किसी मूर्ति में देवता की प्राणा प्रतिष्ठा कर देव शक्ति का जो आह्वान किया जाता है वह बाधक शक्ति ही कहलाती है। सत्त्व शक्ति - स्वभाव का नाम है जो नित्य और अनित्य पदार्थों के अनुसार ही नित्य तथा अनित्य दो प्रकार की होती है। पदार्थ का वाच्य-वाचक सम्बन्ध ही फल शक्ति है जो ध्वनि वर्ण फल तथा वाक्य से सम्बन्ध रखती है।

सादृश्य तथा अभाव पृथक् पदार्थ हैं।

वैतवाद में वस्तु का वस्तु के साथ भेद मायिक नहीं सत्य है।

भेद पारमार्थिक है। जातिगत अधिकारी मन्द, मध्यम और उत्तम तीन प्रकार के होते हैं। उत्तम गुणों से युक्त मनुष्य मन्द, क्षत्रि गन्धर्व मध्यम और देवता उत्तम अधिकारी हैं। अल्प मध्यम और उत्तम तीन गुण गत भेद भी हैं। अल्प पुरुष भावान् में शक्ति भाव रखता है। और अध्ययन शील होता है। मध्यम पुरुष शून्य गुण वाला होता है। विष्णु के फल में वाक्य से समस्त वस्तुओं की त्यागने वाला पुरुष उत्तम होता है। ऋतु शास्त्रानुसृत और दर्शनीय वस्तु होते के कारण वाच्य है। वाणी द्वारा उसे पूर्ण रूप से फल नहीं कर सकती।

क्रा निविशेष नहीं सविशेष तथा देश व काल द्वारा परिच्छिन्न नहीं है। अतीत और अनन्त होने के कारण उसके गुणों की गणना नहीं हो सकती अतिलिपि यह निर्गुण है।

जीव का प्रयोजन दुःख से निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति है। विष्णु, सेवा करने से वह प्रसन्न होते हैं जिससे मुक्ति मिलती है। भगवान के प्रति प्रेम को ही परम भक्ति कहते हैं। जीव को भगवान् के अनुग्रह से ज्ञान होता है जिससे जीव संसार से मुक्त हो जाता है और वह अपने स्वरूप में परमात्मा के लोक में पहुँचता है। मध्यम तथा अनुग्रह से जीव अन्य ऊर्ध्व लोको का सुख भोग करता है। भगवान् के अनुग्रह से ही जीव प्रभृति तथा अविद्या से मुक्त होता है। मध्वाचार्य के अनुसार मुक्त पुरुष वैकुण्ठ में जाकर नारायण की सेवा कर परमानन्द प्राप्त करता है। उन्होंने मुक्ति के चार भेद किये हैं :- कर्मज्ञाय, उत्क्रान्तिलय, अर्चिरादि मार्ग तथा भोग ।

**कर्मज्ञाय :-** प्रारब्ध कर्मज्ञाय नहीं होते उनका भोग करना पड़ता है परन्तु संचित पाप और पुरुष अपराध ज्ञान से दाय हो जाते हैं। कृष्ण नाड़ी जिस को सुषम्ना भी कहते हैं का अवलम्बन लेकर जीव प्रारब्ध कर्मों के दाय होने के बाद उत्क्रमण करता है।

**उत्क्रमणलय :-** सुषम्ना फट कर पार करने के बाद जीव को जीवत्व का बोध नहीं रहता तब विष्णु-रौज से जीव के हृदय का द्वार खुल जाता है जिसे कृतधार कहते हैं। भगवान् कृतधार से बाहर आकर जीव को ऊँचा ले जाते हैं। जीव के वैकुण्ठ लोक में पहुँचने पर भगवान् के सूर्य रूप का साक्षात्कार होता है जो कि उत्क्रमणलय की अवस्था कहलाती है।

**अर्चिरादि मार्ग :-** प्रारब्ध कर्म के दाय और अज्ञान नष्ट होने पर देहादि के प्रतीक का आश्रय लेकर ज्ञान लाभ होने से अन्त काल में भावत स्मृति



जागृत होती है। ये ज्ञानी सुशुम्ना की पार्श्ववर्ती नाड़ी से ऊर्ध्व गमन करते हैं। जिससे बर्चिरादि लोकों की प्राप्ति होती है। ये जीव वायुलोक फिर ब्रह्मलोक पहुँच कर ब्रह्मा के मीमावसान होने पर उनके ही साथ परम पद प्राप्त करते हैं।

**भोग :-** गुणीपासक जानियों के प्रारब्ध कर्मों के फल होने पर वे श्वेत द्वीप में पहुँचते हैं जहाँ उन्हें नारायण का दर्शन होता है जिनकी आज्ञा से पृथ्वी पर विचरण कर वे परमानन्द का भोग करते हैं।

द्वैतवाद में मुक्ति भोग के चार भेद माने हैं:-

१- सालोक्य

२- सामीप्य

३- सारूप्य

४- सामुज्य ।

सालोक्य में जीव भावान् के लोक में पहुँच क्छानुसृत भोग करता है। सामीप्य में जीव ईश्वर के समान गुण वीर रूप प्राप्त करता है परन्तु परमानन्द भोग में समर्थ नहीं होता। सामुज्य में जीव भावान् में प्रविष्ट होकर भावद् देह द्वारा ही भोग साधन करता है। देवगण ही सामुज्य मुक्ति प्राप्त करते हैं। प्रलय काल में लक्ष्मी की होकर सब भावद् देह में प्रविष्ट करते हैं। अन्य कालों में सालोक्य, सामीप्य वीर सारूप्य मुक्ति- अवस्थाओं में मुक्ति जीव भावान् की इच्छा से दिये हुए शरीरों में वीरों प्रकार से वानानन्द भोग करते हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय-

निम्बार्कचार्य ने द्वैतद्वैतवाद का प्रचार किया। कुछ व्यक्तियों

का कहना है कि मास्कराचार्य ही निम्बार्काचार्य हैं परन्तु गोपीनाथ कविराज ने इन दोनों वाचार्यों को पृथक् व्यक्ति माना है। उनके सम्प्रदाय को उनके सम्प्रदाय भी कहते हैं। रामानुज ने भक्ति को उपनिषदों से विहित उपासना की कौटि में रख उसके मौलिक रूप को बदल दिया परन्तु निम्बार्क ने भक्ति की मूल भावना को सुरक्षित रखा है। रामानुज नारायण लक्ष्मी, भू, और लीला तक सीमित है परन्तु निम्बार्क ने कृष्ण और सखियाँ से परितोषित सखा को ही प्रधानता दी। रामानुज का धर्म के प्रति विशेष वाग्वह है परन्तु निम्बार्क में धर्म और धर्म दोनों का समान महत्व है।

धर्म के निम्बार्क सम्प्रदाय में भिन्नाभिन्न, भेदाभेद आदि भी कहते हैं। धर्म के तीन भेद हैं :-

१- स्वाभाविक

२- औपाधिक

३- अचिन्त्य ।

स्वाभाविक निम्बार्काचार्य का है। औपाधिक महभास्कर । मास्कराचार्य । का है। अचिन्त्य भेदाभेद चैतन्य सम्प्रदाय के दार्शनिकों का है। चैतन्य रूप गौस्वामी, जीव गौस्वामी सभी ने दर्शन पर तो लिखा है परन्तु भेदाभेद का विशेष उल्लेख नहीं किया है। बल्कि विद्याभूषण ने अठारहवीं शताब्दी में स्वरचित श्री कृष्ण के गोविन्द भाष्य में अचिन्त्य विशेषण दिया

१- "उचरा" आह्न बंगाली सं० १३३२ - गोपीनाथ कविराज

२- But the great difference between the two teachers is that, while Ramanuja confines himself to Narayana and his consorts Laksmi, Bhu and Lila, Nimbarka gives almost an exclusive prominence to Krsna and his mistress, Radha, attended by thousands of her female companions."

3. Collected works of Sri R. G. Bhandarkar Vol. IV page. 93p. 93.

है। महामास्कर ने औपाधिक विशेषण दिया है। उससे प्रथम भेदाभेद का एक ही स्वाभाविक विशेषण था। उसका तात्पर्य यह है कि जीव ब्रह्म, प्रकृति इन तीनों में स्वभाव से ही भेद और अभेद है। यह मास्कर ने भेद उपाधि से माना है और अभेद स्वभाव से माना है। बल्देव विद्याभूषण ने इसकी अचिन्त्य बतलाया है। शंकराचार्य ने "वृक्षदारुण्यकोपनिषद्" में तथा ब्रह्मसूत्र में विस्तारपूर्वक भेदाभेद की समीक्षा की है। उनके पश्चात् महामास्कर ने शंकराचार्य की उस समीक्षा की ही विस्तृत बालीचना की है और इसकी औपाधिक भेदाभेद नाम दिया है। स्वरूप से भेद मानते हैं और पररूप से अभेद मानते हैं। उदाहरणार्थ जीव ज्ञान स्वरूप भी है, चैतन भी है, परमात्मा भी ज्ञान स्वरूप है और चैतन है, इससे तो अभेद होगया। जीव, अल्पज्ञ, अल्प राशि, अणु परिमाण और ईश्वराधीन है और परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और व्यापक है। अस्तित्व दोनों में भेदस्वाभाविक है। जल-तरंग, वृक्ष-शाखा, स्वर्ण-कुण्डल आदि में भेद भी है अभेद भी ।

निम्बार्क के मतानुसार चित्, अचित् और ईश्वर तीन चरम तत्त्व हैं जिन्हें भोक्ता, भोग्य और नियंता भी कहा गया है। जीव और जगत् की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वे ईश्वर के आश्रित हैं और इस प्रकार ईश्वर से अभिन्न हैं। आचार्य निम्बार्क के मतानुसार ब्रह्म, जीव और जड़ अर्थात् चैतन और अचैतन अत्यन्त पृथक् और अपृथक् हैं। ब्रह्म के परिणाम ही जीव और जगत् हैं। जीव और जगत् दोनों ही ब्रह्म से भिन्न और अभिन्न हैं। चित् अचित् भी ब्रह्म के उसी प्रकार वंश हैं जिस प्रकार वृक्षों के फल, पृथक् भाव में रहकर कार्य करने में असमर्थ और वृक्ष से अभिन्न हैं। जगत् भी ब्रह्म में ही स्थित है और ब्रह्म जगत् से अतीत भी स्थित है। चित् अचित् ब्रह्म के वंश हैं। जीव मुक्ति अवस्था में ब्रह्म से

भिन्न नहीं है। यद्यपि प्रत्येक मुक्त आत्मा वास्तव में भिन्न है तथापि परमात्मा से अविभक्त है। जीव ईश्वरात्मक तथा उससे अविभाज्य है। जिस प्रकार मकड़ी का तन्तु मकड़ी से पृथक् भी है और उसके भीतर भी उसी प्रकार जगत् ब्रह्म से अतीत भी है और ब्रह्म में भी स्थित है।<sup>1</sup>  
 "एक प्रकार विभाग-सहिष्णु-अविभाग ही जीव, जगत् तथा ब्रह्म का परस्पर सम्बन्ध है।"

दशश्लोकी में निम्नांकितार्थ १- उपास्य का स्वरूप २- उपासना का स्वरूप ३- कृपाफल ४- भक्ति रस तथा ५- फल प्राप्ति में विरोधी पांच फलार्थ ज्ञेय बताये हैं। उनके ब्रह्म, जीव जगत्, मोक्ष तथा मोक्ष साधन आदि सिद्धान्त इन्हीं विषयों में अन्तर्निहित हैं। सर

राधाकृष्णन लिखते हैं :- "So Nimbaraka concludes that both difference and non-difference are real. The soul and the world are different from Brahman, since they possess natures and attributes different from those of Brahman. They are not different, since they can not exist by themselves and depend absolutely on Brahman." 2.

निम्नादित्य दश श्लोकी के भाष्य में श्री हरिव्यास देव जी कहते हैं "वस्तुतः विज्ञान स्वरूप एक ही ब्रह्म सर्व जीव जगत् का निम्नता है। जीव और ब्रह्म में अन्त रहते हुए भी जीव का तथा ब्रह्म का विलक्षण व्यवहार है, जैसे अवतार और अवतारी, गुण और गुणी में अन्त है परन्तु दृष्टिमात्र से भेद ~~न~~ विलक्षण देता है, वस्तुतः भेद नहीं है।" ब्रह्म

१- गौडीय वैष्णव दर्शन "गौपीनाथ कविराज "उत्तरा" अष्टम काली संवत् १३३२

२- Indian Philosophy by S. Radhakrishnan Vol. II p. 753.

३- एतैव ब्रह्म विज्ञान रूपं वस्तुतः सर्वाकारम्। जीव ब्रह्मणीरूपेऽपि विलक्षणा व्यवहारोऽवतार-

रिणीरिव नित्यस्तेन न क्वापि वाक्यव्याकौपी भक्ति सिद्धिरिव। न च फलसंकीर्णं चट-

कपातयोगुणगुणिनीश्वर सत्यधर्मैः तदवर्तनात्।

निम्नादित्य दश श्लोकी "हरिव्यास देव" पृष्ठ २८

सर्वात्मा, सर्वाधिकार, व्यापक और स्वतन्त्र सत्ता है, विश्व ब्रह्मात्मक, ब्रह्मात्म्य, व्याप्य और ब्रह्म के आधीन है। निम्बाकचार्य ने "समस्त विश्व और ब्रह्म का नाम रूपादि से भेद और ब्रह्म के अतिरिक्त स्थिति प्रवृत्ति के अभाव से तथा ब्रह्म की अन्तरात्मा होने से अर्पण माना है। यही भेद और अर्पण का आश्रय ब्रह्म और ब्रह्म है। इसी इस सम्प्रदाय में ज्ञात और ब्रह्म की भिन्नाभिन्न भी कहते हैं।" द्वैताद्वैत सिद्धान्त की विवेचना करते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है, "ब्रह्मा से भिन्न होते हुए भी जीव उसमें अपना अस्तित्व ही देता है। फिर उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रह जाती। जीव को इस चम गित्त की साधना भक्ति से करनी चाहिये। कृष्ण के साथ राधा की महानता इस सम्प्रदाय की विशेषता है। राधा कृष्ण के साथ सब स्वर्गों से परे गौलीक में निवास करती है। कृष्ण-परब्रह्म हैं, उन्हीं से राधा और गौफिकाजी का आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार राधा और कृष्ण की उपासना ही प्रधान है। निम्बार्क स्मार्त नहीं हैं इसलिए वे राधा कृष्ण के अतिरिक्त किसी देवी देवता को नहीं मानते।" निम्बार्क के सिद्धान्त के सम्बन्ध में सूर भण्डारकर लिखते हैं :- "Nimbarka's Vedantic theory is monistic as well as pluralistic. The inanimate world, the individual soul and god are distinct from one another as well as identical. Identical they are in the sense that the first to have no independent existence, but are dependent on God for their existence and action. "3.

परमात्मा जनन्त, परस्पर विरुद्ध धर्माश्रय, सच्चिदानन्द स्वरूप सर्वनिवन्ता, सर्वव्यापक, जनन्त शक्तिमान, अविद्या से रहित होने से निर्गुण, सगुण वशीर

१- द्वैताद्वैत सिद्धान्त - पं० किशोरी दास पृ० १४

२- हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा पृ० २०६

3- Collected works of Sri R.G. Bhandarkar Vol. IV page 89.

बीर सशरीर है। ब्रह्म निर्विकार है। वह अविच्छृत और अविमक्त होते हुए भी नाना फार्मों के रूप में आनन्द का उपयोग कर सकता है। ब्रह्म ही सृष्टि का उपादान और निमित्त कारण है। विश्व उसके अनन्त व्यक्त रूपों का नाम है। नारायण सृष्टि के समस्त फार्मों में बाहर मोतर व्याप्त है। परब्रह्म, नारायण, भगवान्, कृष्ण, पुरुषोत्तम आदि परमात्मा के ही नाम हैं। ब्रह्म का सगुण भाव ही मुख्य है और वह ज्ञात से अज्ञात है। प्रत्ययवस्था में समस्त जगत उसमें लीन होने पर भी विकार उत्पन्न नहीं करता। वह निर्गुण होते हुए भी सृष्टि के कारण रूप में सगुण है। ब्रह्म अच्युत विभक्त से पूर्ण ज्ञात का उपादान और निमित्त कारण है। वह अनन्त शक्ति से पूर्ण है जिसमें ब्रह्म परात्मा शक्ति, जीवात्मा शक्ति तथा मायात्मा शक्ति रहती है<sup>१</sup>। वह ज्ञात के रूप में अपनी शक्ति को विदित करके परिणत करता है। परिणाम का स्वस्म ब्रह्म की शक्ति का विदीय ही है। द्वाैतवाद के अनुसार श्रीकृष्ण द्वाैणहीन, कल्याण गुण की राशि ब्रह्म समूह में अंगी, "पर" स्वं परब्रह्म<sup>२</sup> है। श्रीकृष्ण में द्वाैत नहीं क्योंकि उनकी शक्ति व्यक्त और अव्यक्त स्वं वंश और वंशी रूप में व्याप्त है<sup>३</sup>।

जीव जगत हैं विलक्षण होने के कारण उसमें द्वाैत भी है। कृष्ण ऐश्वर्य तथा माधुर्य के वात्रय हैं और उनकी शक्ति अचिन्त्य तथा अनन्त है। उनके ऐश्वर्य रूप की अधिष्ठात्री "रमा" "लक्ष्मी" या भू शक्ति है और प्रेम व माधुर्य रूप की अधिष्ठात्री गौपी और राधा हैं। वे कृपात्म्य, स्वतन्त्र सहायन, मुक्त, गम्य और योगी हैं। उनका

१- उत्थादि श्रुतिवर्णिताभिः परात्मा जीवात्मा मायात्माभिः शक्तिमिश्रं।

यः पूर्णस्तमित्यर्थः- निम्नादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव पृ० २०

२- स्वभावतोऽपास्त समस्तद्वाैणमशेष कल्याण गुणोकराश्चिन्म।

ब्रह्मार्पितं ब्रह्म परं वीर्यं व्याप्तं कृष्णं कल्लेक्षणं हरिम्।।

निम्नादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव श्लोक ४

३- सात्यव ज्ञानः कृष्णस्य शक्तिव्यक्तव्यवित्त्यामशित्वाशत्वव्यपदेशान्म तस्मिन्

क्षितगन्धोऽपि। अतः आव्यते "सोऽपि सन् बहुधा योऽवभाति।"

निम्नादित्य दशश्लोकी हरिव्यास देव पृ० २१

सच्चिदानन्दात्मक विग्रह है। ब्रह्म में नित्य स्थित हैं। ब्रह्म में वे विभु रूप हैं और  
कारावृत्ति में चतुर्भुज हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वेश्वर्य पूर्ण, सर्वकारणत्व, सर्वशक्तित्व, सौन्दर्य,  
मूर्धुल्ला, करुणा वादि गुणों के रत्नाकर तथा भक्तवत्सल हैं। यही ब्रह्मकृष्ण, जो अपनी  
श्रीम और माधुर्य की अष्टिानी शक्ति राधा तथा अन्य बाह्यादिनी गौपी-स्वस्म शक्तियों  
से परिपेक्षित रहते हैं, निम्नार्क सम्प्राप्त के उपाध्य देव हैं।" सर राधाकृष्णनन किरी  
है कि " According to him, the Sakti of Brahman is the material  
cause of the world, and the changes of Sakti do not touch the  
integrity of Brahman. What Ramanuja calls the body " of Brahman  
is the sakti of Nimbarks...Brahman isth...sakti...Nimbark both  
the efficient and the material cause of the world. The world is  
identical with Brahman and depends on him for its becoming and  
its power to act, and yet, in a sense it is distinct from Brahman."

जीव का जीव दशा में परमात्मा का पूर्ण वंश होते हुए भी  
उससे अलग सम्भव है। जीव अवस्था में है ब्रह्म के साथ भिन्न भी है और अभिन्न भी अवस्थिति  
इसे भेदाभिन्न या द्वैताद्वैत कहते हैं। जीव परमात्मा का शक्ति रूप में वंश है। ईश्वर की सम्पूर्ण

१- उपास्यस्य कृष्णस्वामिनो रूपं सच्चिदानन्दविग्रहं स्वमहिमं ध्यायामपु रशब्दितकृत्वा-  
दिनित्यपदस्थौ ब्रूवे शिष्यः गोप्तेष्टं दातव्या चतुर्भुवं च सार्वज्ञसार्वैश्वर्यसर्वकारणात्व-  
सर्वशक्तितत्त्वसाहाय्यमादर्शका रुणिक्त्वा दिगुणरत्नाकरं भक्तवत्सलमित्येतत्।

निम्बादित्यदशश्लोकी हरिव्यास पृ० ३८

२- कृष्णमानुजा विशिष्टं कृष्णस्य स्वस्य सदापात्रनीयं नितरां स्नान्तभावेन श्रवणदिमित्त-

कृत्तीयमित्यर्थः, ॥ निष्ठादित्य दशश्लोकी, हरिव्यासदेव। ४.३२

3- Journal of Philosophy - M. Rabinowitz, Vol. II page 754.

3- Indian Philosophy - S. Radhakrishnan Vol. II Page 754

4- अंशोर्ध्व शक्ति रूपो ग्राह्यः । 2-3-82 वेदान्त कोशकुम्भ

पदार्थ एक साथ देह सकने के कारण सर्वदृष्टा कहते हैं। सब पदार्थों में पृथक् पृथक् ईश्वर की संज्ञा जीव होती है। ब्रह्म की विच्छिन्नता का प्रत्यक्षीकरण ईश्वर और जीव के विभिन्न रूपों में होता है। ईश्वर पूर्ण ज्ञान स्वरूप होने के कारण किसी भी विषय का ज्ञान बिना इन्द्रियों के ही प्राप्त कर लेता है और उसके ज्ञान में पदार्थ सदा वर्तमान रहते हैं। जीव को सदाश होने के कारण एक पदार्थ के पश्चात् दूसरे पदार्थ का ज्ञान होता है। ब्रह्म वंशी और स है जीव वंश और वंश है। दोनों भिन्न भी हैं और अभिन्न भी। ईश्वर और जीव के चित्त अपरिवर्तनशील हैं किन्तु जीव अनन्त है। ईश्वर सार्वभौम है जीव अणु और पक्षी है। जीव अनुभव का विषय है क्योंकि समस्त पदार्थों में उसका निवास है। जीव में मुक्ति की अवस्था में भी कर्तृत्व की सत्ता रहती है। देहादि वस्तु पदार्थों से भिन्न जीवात्मा ज्ञान स्वरूप होने पर भी ज्ञाता और ज्ञान का वाक्य है। जीव भावान् का व्याप्य, उसके अधीन ज्ञादि माया और बन्धन व मोक्ष से युक्त है। जीवात्मा देहादि से विलक्षण है। ईश्वर प्रेरक और जीव प्रेर्यमान है। निम्नाकाचार्य ने जीव को दो प्रकार का बताया है :-

१- मुक्त जीव

२- बद्ध जीव

१- ज्ञानस्वरूपं च हरिषीर्न शरीर संयोगवियोगयोग्यम्।

अणुं हि जीवं प्रति देहभित्तिं, ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः ।

निम्नादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास श्लोक १

२- वेदान्त कोस्तुम- १-४- २१

३- सर्वेश्वरस्य हरेशो यतो हरिषीर्नमित्यर्थः ।

निम्नादित्य दशश्लोकी, हरिव्यासदेव पृ० ५

४- ज्ञादिनायापस्युक्तरूपं त्वेन विदुर्वै भावत्प्रसादात् ।

मुक्तं च भक्तं किल षड्भुक्तं प्रेम नाहुत्यमथापि बोध्यम् ।

निम्नादित्य दशश्लोकी, हरिव्यासदेव, श्लोक २



हरिव्यास देव ने अपनी भाष्य में मुक्त जीव भी दो प्रकार के बताये हैं :-

१- नित्यमुक्त

२- साधन मुक्त

एक प्रकार विद्वान्त मतानुसार जीव के तीन भेद हैं:-

१- बद्ध जीव

२- मुक्त जीव

३- नित्य मुक्त जीव

-----  
बद्ध जीव-

बन्धादि कर्मरूपिणी अवस्था से बद्ध जीव देव मनुष्यादि देह में तथा उससे सम्बन्धित वस्तु में आत्मा तथा आत्मीय वस्तु का जब अभिमान करता है, उसे बद्ध जीव कहते हैं। उनकी अवस्था में त्रास्तम्य है। सद्गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चली से भावान् की वहेतुक कृपा होती है। फिर संसारों के जलौनों से मुक्ति पाकर जीव मुक्त हो जाता है। बद्धावस्था में जीव अपनी और जगत की भ्रष्टस्वरूपता उपलब्धि न कर दृश्य जगत के साथ स्कात्मकता स्थापित करता है।

-----  
मुक्त जीव-

भावान् की इच्छा शक्ति ही मुक्त जीवों के देह का संस्थान करती है। जीवात्मा का विग्रह उसके समान ही नित्य है। जीव भावान् की कृपा से जब प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो उनके समीप आता है तो नित्य सिद्ध देह प्राप्त करता है। यह देह भावान्

की सेवा के योग्य एवं निर्विकार होती है। श्रीहरिव्यास देव जी ने मुक्ति दो प्रकार की बताई है- क्रम मुक्ति तथा सधामुक्ति। विधिवत् कर्म और निष्काम कर्म कर स्वर्ग के अनुभव से सत्य लोक में स्थित होने वाले जीव क्रम मुक्ति पाते हैं। जो जीव कृष्णादि भक्ति कर संसार बन्धन से मुक्त हो कृष्ण लोक में जाते हैं वे सधामुक्ति पाते हैं। भवान् के लोकादि प्राप्ति की मुक्ति भी परब्रह्म भवान् श्रीकृष्ण के दो स्वरूपों के अनुसार दो प्रकार की होती है- १- ऐश्वर्यानन्द प्रधान

## २- सेवानन्द प्रधान

सकाम भक्ति कर भवान् के लोक में ऐश्वर्यादि पाने वाले जीवों की मुक्ति को ऐश्वर्यानन्द प्रधान और निष्काम भाव से भवान् की सेवा तथा प्रेमकर उनके निकट सेवा के सेवानन्द की मुक्ति को सेवानन्द प्रधान कहते हैं। मुक्तावस्था में जीव अपने को और जगत् को ब्रह्म रूप में देख अभिन्नत्व का अनुभव करता है।

गुरुङ-सन्कादि नित्य-मुक्त जीव हैं। समाधिनिष्ठ योगी भी

इसी श्रेणी में जाते हैं परन्तु उनका अनुभव नित्यसिद्ध जीवों की भांति सदाकाशीन और स्वाभाविक नहीं होता। नित्य सिद्ध जीव जंगल उरग है झरना तदैव भगवत्-स्वरूप का अनुभव करते हैं। अकेल चेतना विहीन फलार्थ को कहते हैं। अचित् तत्त्व के तीन

भेद हैं।-प्रकृत

१- प्राकृत

२- अप्राकृत

३

३- काल

प्राकृत-

प्रकृति से उत्पन्न जगत् प्राकृत कहा जाता है। यह कारण रूप में

१- निम्नादित्य दशश्लोकी हरिव्यास देव पृ० १२

२- अप्राकृत प्राकृत रूपं च कालस्वरूपं तदचैतनं मतम् ।

मायाप्रधानादिष्वप्राज्यं मुक्तादिभिराश्च समऽपि तत्र ॥

निम्नादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव श्लोक ३

नित्य और कार्यरूप में अनित्य तीनों गुणों का आश्रयत्व है। तीनों प्रकार के अचित् की सजा भावान् के आश्रित है। "प्राकृत" का कार्य रूप महत् तत्त्व से लेकर ब्रह्माण्ड तक जात रूप है। प्रकृति परिणाम के विकारों की धारण करती है। प्रकृति जीव का बन्धन सत्त्व, रज, तम, गुणों से देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि रूप में परिणत होकर करती है।

#### अप्राकृत-

अप्राकृत तत्त्व विशुद्ध सत्त्व, उज्ज्वल, प्रकृति तथा काल से पृथक् तथा संकल्प मात्र से बनेक रूप लेने वाला है। अप्राकृत सत्त्व के दूसरे नाम नित्य विभूति, विष्णु पद, परम व्योम, परम पद तथा ब्रह्मलोक हैं। यह शुद्ध तत्त्व के बनेक रूप, नित्य तथा मुक्ता जीवों के भोग के उपकरण तथा उनके निवास स्थान के रूप में होते हैं। यह विकार के परिणाम से रहित है।

काल भूत, पवित्र तथा वर्तमान का हेतु नित्य तथा विभूतत्वं सर्वदा भावान् के अधीन और प्रकृत सम्पूर्ण फलार्थी का नियामक है।

निम्नार्क सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म के निम्नलिखित रूप हैं :-

- १- पर ब्रह्म :- यह परम ब्रह्म तत्त्व है। इसमें स्वगत सुधासिंधु में ही निमज्जित है और यह अवस्था सर्वदा निरपेक्ष है।
- २- अपर ब्रह्म :- सम्पूर्ण सृष्टि का भाव ब्रह्म को ईश्वरस्वरूप के साथ ब्रह्म दत्ता में रहता है। यह ईश्वर सर्वदृष्टा और सब शक्तियों के उद्भव हैं।
- ३- परब्रह्म :- अमल संसार को धारण करने वाला और व्यक्त रूपों का मूल प्रोक्त यह स्वरूप है जिसे हिरण्य गर्भ भी कहते हैं।

४- अपरूप :- इस जीव रूप में रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द की व्यक्तिगत अनुभूति होती है।

भावान् की कृपा से ही जीव को सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है। स्वरूप और ज्ञान में धर्म धर्मों भाव है। जीवात्मा धर्मों और ज्ञान धर्म हैं। वात्मा ज्ञान में धर्म धर्मों भाव है। जीवात्मा धर्मों और ज्ञान धर्म हैं। वात्मा ज्ञान के बिना भी स्वयं प्रकाश ज्योतिः स्वरूप है, धर्मभूत ज्ञान उसका साक्षुत व गुण है। जीवात्मा को घट पटादि बाह्य वस्तुओं की प्रकाश ज्ञान द्वारा होता है परन्तु अपने स्वरूप के प्रकाश के लिये ज्ञान की आवश्यकता नहीं। ज्ञान नित्य वस्तु है जिसमें सब वस्तु के साक्षात्कार करने की योग्यता है। ज्ञान, क्रिया और गुण का वाक्य और कबहु होने से द्रव्य भी है।

जीवों पर भाव अनुग्रह प्रपञ्च के द्वारा होता है जिससे प्रेम का आविर्भाव होता है और फिर भाव साक्षात्कार होता है। परब्रह्म की निरन्तर उपासना प्राणिमूर्तों को ज्ञानान्धकार से मुक्ति पाने के लिये करनी चाहिये। ब्रह्म ही सत्य है जो सब वात्माओं का मूल स्रोत है। कृष्ण की ही कंठना करनी चाहिये जिसकी कंठना ब्रह्म, शिव आदि भी करते हैं। निम्नांकितार्थ के अनुसार उपासना के द्वारा ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है, उसका विचार सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में ही किया जा सकता है। भक्तों की उपास्य का रूप, उपासक का रूप, कृपापात्र, भक्तिफल तथा फल प्राप्ति के विरोधी पापं फलार्थ जानने आवश्यक हैं। भावान् की कृपा से ही वैभवादि भाव उत्पन्न होते हैं और उसकी कृपा से ही प्रेम रूपा भक्ति मिलती है। उसकी प्राप्ति का भक्ति ही उच्च उपाय है,

१- नान्या गतिः कृष्णपराविन्दात्, संवृक्षे ब्रह्म शिवाविवन्दितात् ।

भक्तैर्गोपातुचिन्त्यविग्रहादवचिन्त्यक्षतीरविचिन्त्यसाध्यात् ।

निम्बादित्य वरशर्माजी, हरिब्यास देव, श्लोक ८

जी प्रकार की है :-

१- साधन रूपा

१

२- परात्मा ।

२३ भक्तान्-की-क

प्रेम की कृपा से ही उनकी शरण की प्राप्ति होती है। भक्तान् की कृपा से उनकी शरण में जाया हुआ <sup>भक्त</sup> भक्ति रस का वास्वादन करता है। नवधा भक्ति से भक्तान् के प्रति प्रेम होता है। निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रेम भक्ति पांच भावों से पूर्ण होता है- शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल। शान्तरस के उदाहरण भक्त वामदेवादि, दास्य के रक्तक, पद्म, उद्धवादि, सख्य के श्रीदामा, सुदामा, कुरुं जादि, वात्सल्य भाव के यशोदा तन्हादि तथा उज्ज्वल रस के भक्त गोपी और राधा हैं।

श्रीहरिव्यास देव जी के अनुसार और कोई उपास्य देव नहीं कृष्ण ही उपास्य हैं। कृष्ण जूह कवियों वाले और <sup>सर्व</sup> श्रेष्ठ हैं। सब दीनों से रहित

१- "कृपास्य दैन्यादियुधि प्रजायते, यथा भवेत् प्रेमविशलाब्धनागा ।

भक्तितर्ह्य नद्याधिकीर्महात्मनः सा चाचमा साधनरूपिका परा ॥"

निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव श्लोक ६

२- "कृपाफलं च तत्प्रपत्तिलामलनामिति तत् ।

निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव पृ० ३८

३- निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव पृ० ३८, ३९, नि० बा० प्र०

४- "तस्मात् कृष्ण स्वपरो देवस्तं व्याप्यं रसं भवेत् यदीदं सदिदि ।

निम्बादित्य दशश्लोकी हरिव्यास देव पृ० ३९

कल्याणकारी और सर्वगुण सम्पन्न हैं। भवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मादि से चिन्तनीय न होकर भक्तों के वश में होकर भक्तों की उच्छा से चिन्तन कौम्य सुचिन्त्य किञ्च धारण करते हैं। निम्नार्वाच्य ने कृष्ण के वामांग में विराजित, सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली और सहस्रों सत्तियों से सैकित श्रीराधा देवी की स्तुति की है। वे मुक्त उपासना के साथ भवान् की माधुर्य तथा प्रेम शक्ति-स्वरूपा राधा की उपासना पर विशेष बल देते हैं। राधा उनके अविन्न हैं। वे कृष्ण-अदृश्य सौंदर्य-सम्पन्न और हर्ष युक्त हैं। राधा कृष्ण की ह्लादिनी तथा प्राणीश्वरी हैं जिनकी शक्ति से गोपियों, महिषियां, लक्ष्मी तथा हजारों सत्तियां उत्पन्न होकर उनकी सेवा करती हैं। जो कर्म बन्धन से मुक्त हो नित्य मुक्त अवस्था में रहना चाहता है उसके लिए श्रीकृष्ण, श्रीराधिका सखि उपासनीय हैं।<sup>३</sup> जीव की राधा कृष्ण के चरणारविन्दों को छोड़कर अन्य कहीं भी गत नहीं है।

१- "वेदान्त कामधेनु" ८

२- कीं तु वामे कृष्णभानुलामुदा, विराजमानामनुत्स सौभाग्यम् ।

सखी सहस्रैः परिणैवितां सदा स्मरेम देवीं सकलैष्टकामदाम् ॥

निम्नादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ५

३- निम्नादित्य दशश्लोकी, हरिव्यासदेव, श्लोक ६

### चैतन्य-सम्प्रदाय

चैतन्य सम्प्रदाय का दूसरा नाम गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय है।

यह एक वृद्ध वैष्णव सम्प्रदाय है। महात्मा श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस सम्प्रदाय की स्थापना की।  
 उनका जन्म सन् १४८६ ई० में फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को बंगाल के नवदीप स्थान में हुआ। उनका जन्म का नाम "विश्वम्भर" पिता का नाम जगन्नाथ मित्र और माता का शशी देवी था। जगन्नाथ मित्र पहले पूर्वी बंगाल में सिलहट में रहते थे और बाद में नदियाँ चले गये। उनके विश्वम्भर और विश्वम्भर दो पुत्र थे। विश्वम्भर ही बाद में "वृष्ण चैतन्य" कहलाये। वे "गौरांग" और "गौरचन्द" के नाम से भी प्रसिद्ध हुए। "चैतन्यविजय और शैविज्य" में चैतन्य का जीवन वृत्त इस प्रकार दिया है :-

" १८ वर्ष की अवस्था में उन्होंने लक्ष्मी देवी से विवाह किया और वर्षों शिष्यों की धार्मिक शिक्षायें देते हुए गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ समय बाद उन्होंने पर्यटन किया और पूर्वी बंगाल के बहुत से स्थानों में घूमे। मांगना और खाना ही उनका व्यवसाय था और कहा जाता है कि उन्होंने पर्याप्त धन खर्च कर लिया। उनकी अनुपस्थिति में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया और घर लौटने पर उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। २३ वर्ष की अवस्था में वे पिंडदान के लिये गया गये और वहाँ से लौटने पर उन्होंने अपना कार्य प्रारंभ किया। उन्होंने ब्राह्मणों की शास्त्रीय पद्धति का खंडन कर हरि भक्ति और प्रेम का उपदेश दिया और उसके नाम का गान ही मोक्ष का साधन बताया। उन्होंने जाति क्रम का खण्डन कर-~~कर~~ प्रातृत्व के सिद्धान्त को भी फेंका। चैतन्य

१- कलचरल हैरिटेज बाफ इण्डिया सीरीज भाग २ पृ० १३१ राधा गोविन्दनाथ।

Chaitanya was born on the full moon day of Phalguna in the year 1407 of the Saka era, corresponding to 1485 A.D.

के जब हरि के गान और कीर्तन की समर्थ जोड़ना प्रारंभ कर दिया। ये पहले व्यक्तिगत रूप से श्रीवास नामक शिष्य के घर होती थी। उन भक्तों के कार्यों का बड़ा उपहास और अपमान विशेषतः काली के उपासक करते थे। धीरे धीरे उनके कीर्तन का प्रचार बढ़ता गया। सन् १५१० में चैतन्य सन्यासी हुए और 'केशव भास्ती' से दीक्षा ली। इसके उपरान्त पहले वह पुरी जन्माश्रम जी के पवित्र स्थान को गये। वहाँ से अपने नई भक्ति का उपदेश देते हुए वे ६ वर्ष तक देश में घूमे। एक बार वे बनावल भी गये जहाँ संकर के वेदान्त के आचार्य प्रकाशानन्द से छात्रार्थ किया। इस पर्यटन के बाद वे पुरी लौट आये जहाँ उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम १८ वर्ष व्यतीत किये और संवत् १५५५ अर्थात् सन् १५३३ ई० में उनकी मृत्यु हुई। चैतन्य के जीवन की घटनाओं का उत्तम 'चैतन्य चरितामृत' में मिलता है। गीता प्रेस गौस्तपुर से प्रकाशित प्रमुख ग्रन्थों द्वारा 'रचित चैतन्य चरितावली' पांच खण्ड में चैतन्य के जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

चैतन्य के नित्यानन्द और अक्षय आचार्य दो सत्कारी शिष्य वंगाल में वैष्णव-धर्म प्रचार के लिये निकले थे। वृन्दावन में भी उनके इस शिष्य धर्म-प्रचार करते थे। जिनमें श्री रूप गौस्वामी, श्री सनातन गौस्वामी और श्री जीव गौस्वामी मुख्य थे।

चैतन्य सम्प्रदाय का सम्प्रदाय से अत्यन्त निकट का संबंध रहता है और संभूतः यह उसी का परिवर्तित रूप है। चैतन्य सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण के युगल रूप का महत्त्व 'वल्लभाचार्य' के भक्ति मार्ग से अधिक है। भक्ति के विधि-विधान और बाह्य रूप पर वल्लभाचार्य ने विशेष बल दिया परन्तु चैतन्य का भाव पना प्रबल रहा। चैतन्य ने राधा को प्रभु स्थान दिया। अपने सम्प्रदाय में गान और नृत्य के साथ संगीतन



को भी इन्होंने स्थान दिया। जहाँ तक दर्शन का संबंध है मध्वाचार्य के मतवाद को महत्त्व दिया है, उनकी भक्ति का आधार अधिकतर भागवत पुराण है। चैतन्य सम्प्रदाय पर श्री मध्व का प्रभाव पड़ा है। श्री निम्बार्क की अचिन्त्य शक्ति के समान ही श्री चैतन्य की अचिन्त्य शक्ति है। श्री मध्व और गौड़ीय दोनों मतों के अनुसार कृष्ण सगुण और सविशेष है। चैतन्य मत में भी मध्व मत के अनुसार जीव बण्डू, सेवक है और भगवान् सेवा है। जीव की मुक्ति भगवान् के प्रसाद से ही होती है। मध्व और गौड़ीय दोनों मतों में जगत् सत्य और कृष्ण का परिणाम है। मध्व मत से जीव और कृष्ण चिर भिन्न हैं परन्तु गौड़ीय आचार्य जीव और कृष्ण को भिन्न और गुण और गुणी भाव से अभिन्न भी मानते हैं। समस्त जीव जगत् कृष्ण में लय होता है। उपासना और भक्ति में दोनों एक मत और साधन में पार्थक्य है। मध्व में केवल सेवक सेव्य भाव है। परन्तु चैतन्य में दास्य के अतिरिक्त ज्ञात, सत्य, वात्सल्य और मधुर भाव को भी स्थान है। डा० राधाकृष्णन लिखते हैं, :-

**"Trained in such an atmosphere, Chaitanya, the great Vaishnava teacher (Fifteenth century) was attracted by the account of Kṛṣṇa in the Vishnu Purāṇ, Hari Vamśa, the Bhagavata and the Brahma-Vaivarta Purāṇas and by his personality and character gave a new form to the Vaisnava faith."**

चैतन्य और उनके अनुयायी, राधा कृष्ण युगल रूप के चरणों के उपासक थे। चैतन्य ने "शिष्टाष्टक" में अपनी उपदेशों का सार दिया है, जिसका भाव इस प्रकार है, "मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी जीवन का अधिक समय भगवान् के सुमधुर नामों के कीर्तन में लावे जो अन्तःकरण की शुद्धि का सबसे ऊँचम और सुगम उपाय है। कीर्तन करते समय वह प्रेम में

ज्ञाना मग्न हो जाय कि उसके नेत्रों से जलधारा बहने लगे। उसकी वाणी गन्धर्व और शरीर पुनर्जित हो जाय। भावन्नाम का कीर्तन करने वाला अपने को तृण से भी तुच्छ समके। भावन्नाम के उच्चारण में वैश्वकाल का कोई बन्धन नहीं है। जहाँ जब चाहे, भावन्नाम का उच्चारण कर सकता है। भावान् ने अपनी सारी शक्ति और अपना सारा माधुर्य अपने नामों के अन्दर भर दिया। भावन्नाम का श्रद्धा के बिना उच्चारण करने से भी मनुष्य संसार के दुःखों से छूटकर भावान् के परम धाम का अधिकारी बन जाता है।<sup>१</sup>

राधा कृष्ण की कुल भक्ति, नाम और लीला कीर्तन का चैतन्य महाप्रभु के जीवन में ही प्रचार हो गया था। श्री चैतन्य महाप्रभु के बाद श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति शास्त्र एवं रस शास्त्र संबंधी जौक ग्रन्थ लिखी जिनमें तीन प्रमुख ग्रन्थ हैं :-

१- भक्ति रसामृत सिंधु

२- उज्ज्वल नीलमणि

३- लघु भागवतामृत ।

श्री रूप गोस्वामी के बड़े भाई श्री सनातन गोस्वामी जी ने दो प्रमुख ग्रन्थ लिखी:-

१- श्रीमद्भागवत दशम स्कंध की टीका तथा

२- बृहद् भागवतामृत ।

रूप गोस्वामी के भतीजे जीव गोस्वामी के "दशम भागवत की टीका", "षट् संदर्भ" तथा गोपाल चम्पू" ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। श्री गोपाल षट् गोस्वामी के शिष्य श्री श्रीनिवासाचार्य द्वारा चैतन्य-सम्प्रदायी ग्रन्थों का प्रचार सन् १६०० ई० के लगभग हुआ। "बलदेव विभा भूषण" ने पहले पहल ब्रज सूत्रों पर "गोविन्द भाष्य" १८ वीं शताब्दी ई० के प्रारंभ में लिखा ।

चैतन्य सम्प्रदाय अचिन्त्य भवान् वादी सम्प्रदाय कहलाता है।

है इसके अनुसार परमतत्त्व एक ही है जो सच्चिदानन्द स्वरूप अनन्त शक्ति है सम्पन्न तथा जनादि है और उपासना भेद है, जला जला प्रकार से अनुभूत होता है। परम तत्त्व की अनन्त शक्ति अचिन्त्य होने के कारण वह स्फुटत्व पृथक्त्व और अंशत्व धारण कर सकता है। अचिन्त्य शक्ति का वाक्य परब्रह्म ही परस्पर विरुद्ध शक्ति का वाक्य है। श्रीकृष्ण ही यह परमतत्त्व है। भवान् श्री कृष्ण की अनन्त शक्ति प्रकट होने पर उन्हें भवान् अनन्त शक्ति वप्रकट और उन्हीं में प्रकट होने पर ब्रह्म और कृष्ण शक्ति प्रकट और कृष्ण शक्ति वप्रकट होने पर उन्हें परमात्मा कहते हैं। भवान् का अर्थ है साक्षात्कार होता है, ब्रह्म विशुद्ध ज्ञान का विषय है। जिसमें सामुज्य-सुखिता लाभ की जाती है और परमात्मा योग का लक्ष्य है। " श्रीकृष्ण में अनन्त गुण हैं, वे अतल्य अप्राकृत गुणशाली और अपरिमित शक्ति से विशिष्ट हैं और पूर्णानन्द धन उनका विग्रह है। जो ब्रह्म निर्गुण निर्विशेष और अमूर्त कहा गया है वह सूर्य-तुल्य श्री कृष्ण के प्रकाश तुल्य है। "

सर मण्डार कर कृष्ण के संबंध में लिखते हैं " *Krsna is the highest God and is so beautiful that he excited love for himself even in the heart of the God of love and is enamoured of himself. His Parabrahmasakti ( power) pervades the universe and assumes a corporal form by his wonder creating power ( Maya Sakti ), though he is the soul of all. He possesses a self-multiplying power ( Vilasa Sakti ) which is so of two kinds. By one of these in sporting with the cowherdesses, he become as many Krsnas as were sufficient to give one to every two of of them ( Prabhavavilasa) by the other self-multiplying power ( Vaibhava Vilasa ) he assumes the forms of the four Vyuhas*

१- " तत्तत श्री भावत्येव स्वरूपं मूरि विधत्ते ।

उपासनानुसारेण भाति तन्तुपासकैः॥ तसु भागवतामृत पृ० १५६

२- तसु भागवतामृत, श्लोक ५० पृष्ठ १२४, १२५

३- तसु भागवतामृत श्लोक ६५, ६६ पृ० १६३, १६४

or forms of Vasudeva, Samkarsana, etc., Vasudeva representing intelligence, Samkarsana, consciousness, Pradyumna, the love, and Aniruddha, sportiveness," 1.

S. Radhakrishnan wrote as :- (संस्कृत भाषा में लिखा है) :-

" Krsna, when identified with the Supreme, has three chief powers, it, maya and jiva. By the first maintains his nature as intelligence and will, by the second the whole creation is produced and by the third the souls. The highest manifestation of the cit power of Krsna is the power of delight (bladin) Radha is the essence of this delight giving power. " 2.

पर ब्रह्म के तीन रूप माने हैं :-

- १- स्वयं रूप
- २- तदेकात्मरूप
- ३- जायेश रूप

---

१- Vaishnavism and Saivism and minor religions systems by Sir R.G. Bhandarkar Vol. IV page 120.

२- Indian philosophy by S. Radhakrishnan, page 752.

३- लघु भागवतामृत श्लोक ११ पृ० ६ वं० प्रस

परब्रह्म स्वयं रूप श्रीकृष्ण हैं जिसका रूप किसी की अपेक्षा करके प्रकट नहीं होता वे सर्व कारणों के कारण और स्वतःसिद्ध हैं। उनका स्वयं रूप भी तीन प्रकार का है। श्री कृष्ण का पहला दारिका रूप है जो पूर्ण है, दूसरा मधुरा रूप है जो पूर्णतर है और तीसरा वृन्दावन, व्रजलीला रूप है जो पूर्णतम है। परब्रह्म श्रीकृष्ण का तदैकात्म्यरूप विलास, तथा स्वांश रूप दो प्रकार से प्रकाशित होता है। लीला विशेष के लिये व्यक्त होने वाला विलास रूप है। भवान् का विलास रूप वैकुण्ठ वासी नारायण और नारायण का विलासरूप वासुदेव रूप है। जब भवान् अपने स्वयं रूप से थोड़ी सी शक्ति का प्रकाश करते हैं तो उनका वह शक्ति रूप वंश स्वांश होता है जिस प्रकार भवान् के मतस्यादि विन्न-भिन्न लीलावतार हैं। भवान् ज्ञान, शक्ति की कला के विभाग से महान् जीवों पर प्रकट होने पर बावेश रूप है जिस प्रकार नाद, शेष, सनकादि आदि ।

भवान् के तीन प्रकार के अवतार :-

१- पुरुषावतार

२- गुणावतार

३- लीलावतार

१। परब्रह्म श्री कृष्ण का आदि अवतार पुरुष है जो वासुदेव भी कहलाता है। वासुदेव माया-प्रकृति के अधिष्ठाता और वीक्षण कर्ता हैं। वासुदेव के तीन भेद हैं - पुरुष, संवर्ण पुरुष प्रबुध, पुरुष अनिरुद्ध। ब्रह्माण्ड के सब जाने पर समष्टि के वन्त्यामी रूप से प्रवेश करने वाला जीव तृतीय पुरुष प्रबुध कहलाता है। प्रत्येक देह के पृथक् पृथक् रूप से वन्त्यामी तृतीय पुरुष को अनिरुद्ध कहते हैं। नारायण के धाम वैकुण्ठ राज्य में ही वासुदेव, संवर्ण

प्रद्युम्न और अनिरुद्ध चतुर्व्यूह का स्थान है। तृतीय पुरुष है विश्व के पालन, सृष्टि तथा संहार के लिये तीन गुणावतार विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र उत्पन्न होते हैं जो प्रकृति के तीन गुण सत्, रज, तम के अधिष्ठाता और श्री कृष्ण के स्वांश हैं। मावान् के अवतार रूप अवतार सनकादि, नारद आदि और वाराह मत्स्य, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध, कालि आदि स्वांश रूप मावान् के तीलावतार हैं।

श्री बलदेव ने पांच सत्त्व माने हैं :-

- १- ईश्वर
- २- जीव
- ३- प्रकृति
- ४- काल और
- ५- कर्म

ब्रह्म जिज्ञासा का अधिकारी जीव, निष्काम कर्म में निर्लिप्त सत्प्रसंग की इच्छा रखने वाला ब्रह्मालु और राम-ब्रह्मादि से सम्पन्न होता है। शास्त्र वाचक और ईश्वर वाच्य है। अनन्त गुण शाली, अचिन्त्य- अनन्त शक्ति सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम ही विषय है। पुरुषोत्तम का साक्षात्कार कर दोषों का विनाश ही प्रयोजन है। ब्रह्म स्वतंत्र, मुक्तिदाता, सर्वज्ञ कर्ता, और विज्ञान स्वरूप है। ईश्वर पूर्ण चैतन्य, नित्य ज्ञानादि गुणों से युक्त और स्वरूप शक्तिमान है। वह प्रकृति आदि में प्रविष्ट हो, उसका नियन्त्रण कर, जगत की सृष्टि करता और जीव को मीन और मुक्ति देता है। ईश्वर एक और बहुभाव से अभिन्न है। वह व्यापक होने पर भी भक्ति ग्राह्य है। गुण और गुणी तथा देह और देही भाव से वह ज्ञानी की प्रतीति का विषय है और एक रस है। ब्रह्म निर्गुण, नित्य सुखद, ज्ञानैक्याम्य

वक्ता और अनंत सूत्र रूप है। उसकी शक्ति स्वाभाविक है। वह शक्ति संवित, सन्धिनी और ह्लादिनी रूपा है। वह और जीव दोनों ही नित्य ज्ञानादि गुणों से युक्त और वस्तु शब्द वाच्य है। ईश्वर विभु और जीव बणू है। भावान् भोक्ता और जीव भोग्य है।

सर भण्डारकार लिखते हैं " The supreme soul ( ( Parmatma ) is boundless and is full intelligence itself. The individual soul is an atom having intelligence. They are necessarily connected together and this connection can never be destroyed. Krishna is the support ( Asraya ) and Jiva rests on him (Asrita) the relation between the two is identify as well as difference.

Krona is the lord of the power of delusion or ignorance ( Maya ), and Jiva is the slave of it. When the later cuts off its shackles, he distinctly sees his own nature and his true relation to God. Krona is to be approached and attained by Bhakti alone. 1.

अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीकृष्ण की तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं। अन्तरंगा शक्ति उनकी स्वस्म शक्ति है, बहिरंगा शक्ति माया या जड़ शक्ति है और तटस्थ शक्ति जीव शक्ति है।

भावान् की अन्तरंगा स्वस्म शक्ति सत्, चित्, तथा आनन्द तीन रूप वाली है। ये तीनों स्वस्म-शक्तियाँ भावान् से प्रसूत होती हैं और इस प्रकार

विस्तृत होती हैं, जैसे सूर्य जोरू उसकी किरणों । ये भावान् के स्वरूप से बभिन्न हैं। भावान् की स्वरूप सत्-शक्ति को चैतन्य सम्प्रदाय में सन्धिनी शक्ति, स्वरूप चिद् शक्ति को "संविद शक्ति" और स्वरूप आनन्द शक्ति को "बाह्यादिनी शक्ति" भी कहते हैं। स्वरूप सत् शक्ति से भावान् स्वयं स्थित हैं और इसी से सबकी स्थिति करते हैं। स्वरूपचिद् शक्ति से भावान् स्वयं प्रकाशवान् हैं और सबको प्रकाशित करते हैं और स्वरूप आनन्द शक्ति से भावान् स्वयं आनन्द मग्न रहते हैं और अन्यत्र भी आनन्द वितरण करते हैं। ब्रह्म सम्प्रदाय की भांति जीव भावान् की चिद् शक्ति के अंश न रहे जाकर जीव की उत्पत्ति स्वरूप शक्ति से इतर भावान् की तटस्थ शक्ति से है। जीव भावान् की नित्य शक्ति से उत्पन्न होने के कारण नित्य और अणु है तथा भावान् के स्वरूप में लीन हो सकता है। जीव का संबंध अन्तरंगा तथा बहिरंगा दोनों शक्तियों के बीच की तटस्थ शक्ति से होने के कारण इसे तर्पण के समान कहा है। वह न माया रूप है और न भावस्वरूप वरन् माया शक्ति और स्वरूप शक्ति के बीच में होने के कारण कभी माया को छूता है और कभी भावान् के स्वरूप प्रकाश को छूता है। जीव आदि काल से माया के उन्मुख और स्वरूप शक्ति से विमुख ब्रह्मस्मि है ब्रह्मस्मि अनेक संसृति में भ्रमता है यदि वह स्वरूप शक्ति की ओर मुड़ करे तो वह बुद्ध से मुक्ति पाकर आनन्द का भागी हो जावे। माया और जीव का संबंध अनादि होती हुई भी सान्त है। जीव अणु चैतन्य और नित्य है, ईश्वर गुणी और देही है, जीव गुण और देह है। ईश्वर जीव, प्रकृति और काल नित्य हैं, परन्तु जीव, प्रकृति और काल ईश्वर के अधीन है।

भावान् की बहिरंगा माया से जड़ प्रकृति उत्पन्न हुई है जिसके

दो रूप हैं :- १- द्रव्य माया

२- गुण माया



द्रव्य माया जगत् का उत्पादन कारण और गुण माया जगत् का निमित्त कारण है। भावान् की स्वल्प शक्ति प्रकाश के समान और माया शक्ति <sup>दाया</sup> के समान है। सृष्टि की उत्पत्ति माया या प्रकृति के साथ वादि पुरुष के संसर्ग से होती है। इस जगत् का कर्ता निमित्त कारण और उत्पादन कारण है। इस अविचिन्त्य शक्ति से जगत् रूप में परिणत होता है। जगत् सत् होती हुई भी अनित्य है।

परब्रह्म श्रीकृष्ण पूर्ण रूप से तारिका धाम में पूर्ण तर रूप से मधुरा में तथा पूर्णतम रूप से गोकुल, गोलोक तथा वृन्दावन धाम में रहते हैं। भावान् श्रीकृष्ण का मधुरा तारिका में ऐश्वर्य रूप और गोलोक तथा वृन्दावन में मधुर रूप है। गोकुल में उनका सर्वाधिक माधुर्य रूप है। जिसकी विभूति गोलोक है।

सत् रूप और तमोगुण की साम्यावस्था ही प्रकृति है जो तमोमायादि शक्तियों से फुकारी जाती है। वह जगत् का उत्पादन ईश्वर के ईशान्य से उद्बुद्ध होकर करती है और ईश्वर की वाक्ता, नित्या और उसके वाधीन है। इस शक्तिमान है और उसकी शक्ति प्रकृति है।

काल नित्य और ईश्वर के अधीन है। वह भूत, भविष्य वर्तमान चिर, क्षिप्र वादि शक्तियों से फुकारा जाता है। वह अकृत परिवर्तित होने वाला है प्रलय और सृष्टि के निमित्त भूत जड़ द्रव्य विशेष को कालकाले है।

कर्म क्तादि और विनश्वर जड़ फलार्थ है जो कृष्ट वादि नामों से भूणित होता है। ईश्वर शक्तिमान् है और कर्म उसकी शक्ति है।

१- इति धामत्रये कृष्णो विहरत्येव सर्वदा ।

तन्मादि गोकुले तस्य माधुरी सर्वतोऽपि ॥ लघु भागवतामृत पृ० २४४

२- धामस्य त्रिविधं प्रोक्तं माधुरं शार्वती तथा । माधुर्यं त्रिधा प्राहुर्गोकुलपुरेण च ।

यत् गोलोक नाम स्यात्तच्च गोकुलं वैभवं ॥

लघु भागवतामृत पृ० २४६

बलैव के मतानुसार "तत्त्वमसि" वादि वाक्य जलंड अर्थ को बतलाने वाले नहीं हैं। तत्त्वमसि का अर्थ है उनके तुल्य हो- "तस्य त्वमसि"। जीव और ब्रह्म की अभिन्नता न सूचित होकर स्वयं भिन्नता ही सूचित होती है।

जीव ज्ञान के द्वारा जड़ माया से मुक्त होता है और ब्रह्म सायुज्य कैवल्य मुक्ति पाता है। वह स्वल्पानुभव से भावान की भक्ति द्वारा कैकुण्ठ और भावान के गौलीक धाम में जाता है। मुक्ति साध्य है जो भावान की कृपा से ही मिलती है। मुक्त पुरुष को भाव सांनिध्य प्राप्त होता है परन्तु मुक्तावस्था में जीव ब्रह्म से पृथक् रहता है। भावान की उपासना तथा तत्त्व ज्ञान के द्वारा भावतद्वाम की प्राप्ति होने वाले जीवों का पुनरागमन नहीं होता। मुक्त जीव को हरि अपने लोक से पतित नहीं करना चाहते और पुरुष भी भावान की नहीं छोड़ना चाहते हैं।

ज्ञान और वैराग्य सत्कारी साधन तथा भक्ति ही मुख्य साधन हैं भावान उपासना करने से प्रसन्न होकर मुक्ति देते हैं। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से ही भावत्प्राप्ति होती है। भक्ति ह्लादिनी शक्ति और संवित शक्ति की चार भूता होने के कारण आनन्ददायिनी और ज्ञान रूपिणी है। भक्ति मार्ग की तीन अवस्थायें हैं :-

१- साधन

२- भाव

३- प्रेम

भक्ति दो प्रकार की है :-

१- वैधी तथा

२- राधानुगा

वैधी भावान् का ऐश्वर्य और रागानुगा माधुर्य मार्ग है। वैधी भक्ति के अनुगामी जीव भावान् के मधुरा द्वारिकाधाम में प्रवेश पाते हैं और राग-भक्ति के अनुगामी जीव भावान् के मधुर रूप के पास गौलीक धाम में जाते हैं। भक्त जीव का स्थूल शरीर मृत्यु पर टूटता है फिर वह सूर्य मंडल में जाता है जहाँ उसका सूक्ष्म शरीर रह जाता है और विरजा नदी में निमग्न होने पर कारण शरीर टूटने के बाद वह दिव्य स्वस्म कारण कर वैकुण्ठ नगर में पहुँचता है जहाँ से भावान् उसे अपनी निज धाम में लेते हैं। भावान् श्रीकृष्ण की भावमयी गौलीक लीला वास्य, सत्य वात्सल्य तथा माधुर्य चार भावों से संबंध रखती है। इन्हीं भावों से वह सम्प्रदाय में प्रेम भक्ति होती है। इन भावों में माधुर्य भाव की ही सर्वोष्ठ माना है क्योंकि इसके अन्तर्गत अन्य प्रेम भाव भी आ जाते हैं। गौलीक धाम की लीला नित्य तथा अप्राकृत और वहाँ के गोप गोपी गौवत्स वादि भी अप्राकृत हैं। गोपियाँ प्रेम और वानन्द की शक्ति स्वस्था हैं और राधा महाभाव स्वस्था है। मधुर भाव की रति तीन प्रकार की होती है :-

१- साधारण रति

२- समंजसा रति

३- समर्था रति

साधारण रति का दृष्टान्त कुब्जा है जो वानन्द लाभ के लिये सेवा कर मधुरा धाम का रूप पाती है। समंजसा रति का दृष्टान्त रुक्मिणी, जामवन्ती वादि हैं जो कर्तव्य और धर्म समझ कर रति कर द्वारिका रूप पाती है। समर्था रति का दृष्टान्त वृजगीपी हैं जो शास्त्र मर्यादा का भी उत्खनन बिना संकोच के कर, भावान् के वानन्द के लिये सेवा कर महाभाव कृपा "राधा" भाव की प्राप्ति करती हैं।

कैतन्य सम्प्रदाय में प्रत्येक जाति के लोगों, यहां तक कि मुसलमानों की भी भक्ति का सम्मान अधिकार है। इस सम्प्रदाय में सत्कां, नाम तथा लीला कीर्तन, व्रज वृन्दावन वास कृष्ण मूर्ति की सेवा पूजा आदि भक्ति के साधनों पर बल दिया है।

-----०:-----

### हरिदासी सम्प्रदाय

वृष्टेश्वर कवियों के समकालीन भक्त और धर्म प्रचारक स्वामी हरिदास जी हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। यह सम्प्रदाय वेदान्त के किसी भाव तथा किसी दार्शनिक सिद्धान्त का प्रचारक न होकर भक्ति का एक साधन मार्ग है। हरिदास जी के समकालीन भक्त नामादास जी ने "भक्तमाल" में उनकी उपासना पद्धति और उनके सम्बन्ध में लिखा है :- "स्वामी हरिदास जी 'रसिक' नाम की शाय से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने बासधीर जी के नाम की प्रकाशित किया। बासधीर भ्रम-भक्ति का निष्क राधा कृष्ण युक्त-भूषा का था। ये कुंज बिहारी कृष्ण का नाम सदा जपा करते थे। राधा कृष्ण के आनन्द-विहार का अवलोकन सदा उत्ती-भाव से किया करते थे और उत्ती भाव से युक्त-कैलि के रस को छूटा करते थे। गान-विषा में ये गन्धर्व थे और अपनी गान से, सती की तरह सेवा करते हुए श्याम और श्यामा को तुष्ट किया करते थे। मकान का उत्तम मीन लाते थे और उसे चन्दर और मोरी की सिलाया करते थे। ये स्वने प्रसिद्ध और उच्च कोटि के महात्मा थे कि वरतों के लिये राजा लोग भी बासके द्वार पर लड़े रहते थे।"

१- बासधीर उद्योतकर, रसिक शाय हरिदास की ।

कुंज नाम की नेम जप्त नित कुंज बिहारी ।

अवलोकन रहे कैलि सती सुख की अधिकारी ।

गान कला गन्धर्व श्याम श्यामा की तीर्ण ।

उत्तम मीन लाय मोर मखट तिमि पीर्ण ।

नृपति द्वार लड़े रहें, वरत बासा बास की ।

बासधीर उद्योत कर, रसिक शाय हरिदास की ।

भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद मम कला पृ० ६०७

हरिदासी सम्प्रदाय सती सम्प्रदाय भी कहा जाता है। परन्तु लेखक को बताया कि सती भाव है न कि कोई सम्प्रदाय। हरिदास जी के सतीभाव से राधा कृष्ण की "कुंठ उपासना" का प्रचार करने के कारण ही इसकी सती सम्प्रदाय भी विद्वान् कहने लगे हैं। रि मण्डारकर ने अपनी "वैष्णविज्म एवम शैविज्म" ग्रन्थ में लिखा राधा विषयक उपासना और सती भाव के सम्बन्ध में लिखा है :-

"The worship of Radha, more prominently even than that of Kṛṣṇa, has given rise to a sect, the members of which assume the garb of women with all their ordinary manners and affect to be subject even to their monthly sickness. Their appearance and acts are so disgusting that they ~~are not~~ ~~do not~~ ~~show themselves~~ ~~very much in public~~, and their number is small. Their goal is the realisation of the position of female companions and attendants of Radha, and hence probably they assume the name of Sakhibhavas (literally, the condition of companions). They deserve notice here only to show that, when the female element is idolised and made the object of special worship, such disgusting corruptions must ensue. The worship of Durga in the form of Tripurasundari has led to the same result."

---

१- लेखक को पूछने पर बाबाय जी वल्लभ शरण जी बधिकारी जी जी के कुंठ वृन्दावन में बताया कि सती सम्प्रदाय नहीं है बल्कि सती भाव है।

2. Vaishnavism and Shavism, Sir Bhandarkar page 122-123.

रसिकदास जी ने सखी भाव के सम्बन्ध में लिखा है :-

\* उलटि ली मन स्याम सीं प्रिया भाव होइ जाइ ।  
सखी भाव तब जानिये पुरण भाव भिटि जाइ ।  
पुरुष भाव छूट नहीं मन में बसि रही जाइ ।  
सखी भाव तब जानिये निरविकार तन होइ ।  
पुरुष भाव धरि लाल में प्रिया भाव करि प्रिय ।  
तब पुण लाल विहार की जुल प्र धरि शिय ॥ \*\* १

श्री बाके बिहारी जी के गौस्वामी गण स्वामी हरिदास जी को विष्णुस्वामी सम्प्रदाय का कहते हैं और वही को उनका वंश मानकर उसी सम्प्रदाय के अनुवर्ती बताते हैं। स्वामी जी के विरक्त शिष्यनिम्नार्क सम्प्रदायानुयायी हैं और स्वामी जी को भी उसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत मानते हैं। साक्ष्यों के अवलोकन के उपरान्त यह जी ने लिखा है, " गौस्वामी लोगों के पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं कि स्वामी श्री हरिदास जी को उसके आधार पर विष्णुस्वामी सम्प्रदाय का कहा जा सके। " डा० विजयेंद्र स्नातक ने हरिदासी सम्प्रदाय को निम्नार्क सम्प्रदाय से पृथक् बतलाया है। वे लिखते हैं, " कहा जाता है कि इसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अनुसरण करके श्री स्वामी हरिदास जी ने अपना सम्प्रदाय चलाया। किन्तु इसी सम्प्रदाय की साधन-प्रवृत्ति में बड़ा मोल्लि भेद है। स्वामी हरिदास जी के अनुसार सखी भाव से उपासना करने का विधान है जो निम्नार्क सम्प्रदाय में गृहीत नहीं होता। इसी सम्प्रदाय के नाम सिद्धान्त का भी प्रत्यक्ष हम से कहीं मण्डल नहीं करता। स्वामी जी की परम्परा के शिष्य भावत रसिक

१- रसिकदास जी की कानी - सखी भाव की सूतावाणी पृ० २३६

श्री विश्वेश्वर शरण श्री बिहारी महाराज का बगीचा बुन्दावन के संग्रहालय की हस्तलिखित पोथी से उद्धृत ।

न 'नहि विशिष्टास्त हरि, नहि हरि स्थास्त, वयं नहीं मतवाद में ईश्वर उच्चा व त्त  
 जितकर अपनी मान्यता स्पष्ट कर दी है। टट्टी संस्थान। वृन्दावन। में उस सम्प्रदाय की  
 जो शिष्य परम्परा और साहित्य उपलब्ध होता है वह भी निम्बार्क सम्प्रदाय से सम्बद्ध  
 प्रतीत ~~है~~ नहीं होता। कुल सरकार की वाराणसी मानने पर भी सही रूप है उसकी  
 वाराणसी का विधान उस सम्प्रदाय में है जो निम्बार्क में नहीं है। <sup>१</sup> लेकिन सही सम्प्रदाय के  
 सम्बन्ध में बल्लव उपाध्याय लिखते हैं, " वृन्दावन का सही सम्प्रदाय निम्बार्क मत की ही  
 एक अवान्तर शाखा है। उस शाखा का उदय स्वामी हरिदास जी के नाम से ~~होता~~ है।  
 स्वामी जी प्रथमतः निम्बार्क मत के ही अनुयायी थे, परन्तु भावतुष्टाप्ति के लिए गोपी  
 भाव को एक मात्र उन्नत साधन मानकर उन्होंने एक स्वतन्त्र मत की प्रतिष्ठा की। उस  
 सम्प्रदाय को बड़े बड़े महात्माओं ने अपनी जन्म से तथा कृतियों से अलंकृत किया था तथा  
 ब्रज साहित्य का एक विशाल अंश हरिदासी वैष्णवों की भावुकता तथा भक्ति के विस्तार  
 का सुमेक फल है। <sup>२</sup> "

" हरिदासी सम्प्रदाय के " स्वतन्त्र सिद्धान्त हैं परन्तु वह  
 निम्बार्क सम्प्रदाय में ही समाविष्ट होता है। ब्रह्माचार्यों में से बड़े बाचार्य रसिक विहारी  
 मन्दिर के निर्माणकर्ता श्री रसिकदेव जी ने ई. सं० १७४१-१७५८) अपनी गुरु परम्परा में  
 लिखा है :-

" हंसीदान- व गुरुन्मत्वा नित्यीभुज विहारणी ।

सम्प्रदाय प्रतीधाम वच्चि गुरुपरम्पराम् ॥ "

१- राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य - डा० विजयिन्द्र स्नातक पृ० ५१

२- भागवत सम्प्रदाय बल्लव उपाध्याय पृ० ३५१



रसिक विहारी यही जमी तक निम्नार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत  
 चली जा रही है। काठियावाड़ में प्राणनाथ जी की एक प्रणामी सम्प्रदाय है। स्वामी  
 हरिदास जी के कृतापात्र ब्रह्मदास जी के शिष्य श्री वैश्वानन्द उस सम्प्रदाय के वादि  
 प्रवर्तक थे। स्वामी जी की उस शिष्य-सम्प्रदाय का निम्नार्कमतान्तर्गत होने का उल्लेख  
 है। उसी सम्प्रदाय के "मतमाला भेद" ग्रन्थ में लिखा है :-

" एक समय भूरी घण्टी, हरिदास जीकूं तन ।  
 परम्परा निजर्वी की, कही गुरु मांदि खन ॥  
 कही तदा हरिदास ने है बनादि र वर्ण ।  
 सनकादिक शिष्य विष्णू विधि लखी भाव वरिष्म ॥  
 श्री निरन्तर वेद मुनि पुरातन पाय ।  
 कृपा साध्य यह वर्ण है लखी न किनहू जाय ॥  
 शिव ईश्वर हरिहर विधि तन्त्र संज्ञिता पांदि ।  
 गुप्त फल कहे वसी वाचाख पावत ताहि ॥  
 द्वारा श्री हरिदास की निम्नानन्द । निम्नार्की मत मांदि ।  
 स्वामास्याम उपासना फाटी कहू न पाहि ॥ " १

श्री पीताम्बर देव जी की वाचार्थ परम्परा की एक सं० १८२५  
 की प्रतिलिपि में लिखा है :-

" सौमत् श्रीनिम्नारक गहरी, श्रीनिवास ने सौं लखी ।  
 वाचाख हरिदास फलस, बीठल विपुल विहारिन्दास ॥ " २

१- मतमाला भेद २२ प्रकरण १५-१६ चौपाय्यां

२- श्री पीताम्बर देव कृत वाचार्थ परम्परा - टट्टी संस्थान वृन्दावन

भावत रसिक जी के निम्न दोहों के वाचार्थ पर हरिदासी  
सम्प्रदाय की निम्नार्क सम्प्रदाय से भिन्न बताया गया है :-

“ वाचाए ललित ली, रसिक हमारी हाथ ।  
नित्य किसीर उपासना, कुल मन्त्र की जाप ॥  
नाहीं ललित हरि, नहीं विशिष्टाक्ष ।  
नै नहीं मतवाप में, ईश्वर इच्छा लै ॥ ”

यहाँ ललिताली से तात्पर्य स्वामी हरिदास जी से है। हरिदास  
जी की ललिताली का अवतार सभी मानते हैं। निम्नार्क सम्प्रदाय में भी यही मान्यता  
है। अतः “ वाचाए ललित ली ” का अर्थ यही होगा कि “ हरिदासी मत ” या उनके  
परम्परानुवर्ती महानुभावों के वाचार्थ श्री ललिताली स्वामी हरिदास जी हैं। दूसरे दोहे  
में बताया गया है कि भावान् स्वयं किसी मतवाप में नहीं नै कह “ इच्छा लै ” बताया  
गया है। भावत रसिक की निम्नलिखित पंक्तियों में निम्नार्क सम्प्रदाय का ललित सिद्धान्त  
लक्षित होता है :-

“ हाटकमय हरिहम पाण्डे जनी मना ”

विहारिन केव के निम्नलिखित कद में ललित का सिद्धान्त बताया जाता है :-

“ प्रभु नू लीं तेरा नू भरा ।

राजी सख कहा कर काजी लोग नकी बहुतेरा ।

लीं नू लू लीक नई गुन दीत न किछु केरा ।

जल तल लीं सहज समानम निर्मल सॉफ सवेरा ॥

कीई स्वामी कीई साहिब सेवक कीई चाकर कीई बैरा ॥

“ बिना भक्ति स्वरु न सेवा जात भक्त कुनिरा ॥  
 तन मन <sup>प्रान</sup> प्रान सौं बनमोण जन न फिर मन मेरा ।  
 श्री विहारीदास <sup>हरिदास</sup> नाम निजु श्री निविरा मोरा ॥

स्वामी जी जीव की कृपाकेतु भावान् के ऊपर संपूर्ण स्म है निर्भर रहने में ही मानते हैं। उनके अनुसार बिना भावत्कृपा के जीव के लिए कुछ भी करता संभव नहीं है।

“ ज्योंही ज्योंही तुम राखत हो ,  
 त्योंही त्योंही रहिये हैं ही हरि ।  
 जीर कवरले पाखरी,  
 सुता कहीं कौन के भंड भरि ॥  
 जसपि हौं बपनी भायी कियो चारही,  
 कैरे करि सकीं सो तुम राखी फरि ।  
 कहि हरिदास भिरा के जनावर लीं,  
 तरफ-राह रह्यो उड़िने को फितीउ करि ॥ ” १

हरिदास जी में भावान् तथा स्वामिनी जी के प्रति पूर्ण भक्त रूप से समर्पण का भाव है :-

“ काहु की कस नाहिं तुम्हारी कृपा तैं, समहीय विहारी विहारिनि ।  
 जीर मिथ्या प्रपंच काहे लीं भाणिये सो ली है चारनि ।  
 जाहि तुम सौं हित जाहि तुम हित करी, सब सुख-भारनि ।

श्री "हरिदास" के स्वामी श्यामा कुल-विहारी, प्राननि के बाधारनि ॥ " १

हरिदासी सम्प्रदाय वास्तव में दार्शनिक गूढ़ता से दूर है और इसमें स्वीपाचना की प्रधानता दी गई है। निम्नार्क सम्प्रदाय दार्शनिक कौटि का है परन्तु हरिदासी सम्प्रदाय सा-भक्ति सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय में दर्शन की प्रधानता नहीं है बल्कि हार्दिक पक्ष की स्वी की प्रधानता है। इसमें प्रिया के समस्त लीला विलास प्रियतम के हेतु और प्रियतम के प्रिया के हेतु हैं। प्रिया प्रियतम एक प्राण दो देह हैं जिनमें उनके वानन्द भोग सत्वियों की प्रसन्नता के हेतु हैं। श्री लाड़िली लाल के सुत में सत्वियों की प्रसन्नता है। इस प्रकार सभी लिये उनमें किसी का सुत नहीं है। लाड़िली लाल का प्रेम अज्ञात प्रेम है जो काम से कहीं दूर है। श्री कृष्ण काम के वेश में नहीं हैं। इस श्यामा-श्याम के प्रेम में एक रसता और नित्य नवीनता है। प्रियतम जब जब प्रिया का मुख देखते हैं तब तब ही वह नया सा लगता है। प्रिया प्रियतम निरन्तर वपात्क दुर्गा से एक दूसरे की इस माधुरी का भोग करते हैं। वंचल पट की और में ही लाड़िली जी के नेत्र होने से लाल उसी ही विरह सम्पत्ति है। दोनों के स्नानार में भी एक दूसरे का स्वरूप न दीप्त पाने का वियोग भय है। इसमें स्थूल प्रेम और स्थूल विरह की कल्पना <sup>नहीं</sup> हो सकती। दोनों प्रिया प्रियतम से "मिलेई रक्त मानों कबहुं मिले ना ।" राधा कृष्ण का यह प्रेम और नित्य विहार अक्षुण्ण सृजना के कारण उनके लिये दुर्लभ है।

कृष्णप्रियों का प्रेम सर्वापरि है परन्तु यह श्यामाश्याम का निकृष्ट विहार उनको भी दुर्लभ है। सत्तितादि सत्वियों की ही वहां तक पहुँच है क्योंकि वे नित्य निकृष्ट की विर सत्त्वरी हैं और उन्हें अपनी सुत की चाह नहीं है। जना सुत

१- काशी नागरी प्रचारिणी में सुरक्षित लखी सम्प्रदाय के भक्त कवियों की वाणियों का संग्रह संख्या ३७५। २६६ पद संख्या।

२- उनके मत में सुत नहीं, विषय देह विहृत बन पांसी ॥ स्वामी विहारिण देव जी  
३- जब जब वेणी तेरी मुख तब तब नयी नयी लागत ॥ श्री कैलास ।

ताड़ित्वात् की अभिलाषा की पूर्ति ही है। उनका नित्य विचार, सीला विहार ही  
 उनका बाहार है। स्वामी जी के उपासना पद्धति, सिद्धान्तों के संक्षिप्त ज्ञान स्वामी  
 विहारित देव हैं जिन्हें हरिदासी उपासना सूत्रों का भाष्यकार कहा जा सकता है। उन्होंने  
 अपनी वाणी में स्वामी जी की उपासना पद्धति की अन्य महानुभावों से भिन्नता बता  
 उसके इस सिद्धान्तों का विवेक किया है। उन्होंने लिखा है :-

“ ह्वे विहारी सर्वसुखार ।

श्री स्वामी हरिदास उद्दरे रहित वनन्यनि की वाधार ।

नित्य प्राट गावत नहिं पावत सब मुक्ति तत्त्व विचार ।

इहि निज नाम धाम वृन्दावन, निरत नित्य विहार ॥

काम कैति रस और न परत, प्रेम समुद्र अपार ।

नित नव जीवन और किछोर किछोरी कराठ सिंगार ।

मत्त मुदित सहचरी सैवत नित क्लासति बाजार ।

जानत सब जात ज्यों बुझती हुत न भे भूमभण्डार ।

जाम कस पूर प्रभु के सब वास पास परिवार ।

कसकता सब अवतारनि की अवतारी भरतार ॥

त्रिकृष्ण चरित त्रिधा त्रिभुवन बहुमक्ति भे विस्तार ।

जहां बुरस तहां तंहि बस सुख सबनि उदार ॥

गायाबात गोप गोपी जन न्यारी कृष्ण व्यवहार ।

सर्वत दुखिदुखी दुखी ज्यों सुख हीत सुखार ॥

जो चाहि चित दे निज महतनि के कां लो अनुसार ॥

श्री विहारीदास ने यह मत गावत तिनकी वास पार ॥ ”

उपरोक्त कथन स्पष्ट है कि स्वामी हरिदास जी के निकुंज विहारी विहारिणी कृष्ण के साथ वृष्ण से भिन्न है। उसी सिद्धान्त के अन्य उपासक महानुभाव कृष्णविहारी तथा निकुंज विहारी में विशेष अन्तर न मान साथ साथ ही की "तू वृष्णभान गोप की बेटा" कहकर सम्बोधित करते और "वृष्णभानु" नन्दिनी ज्योति कहकर उसकी वन्दना करते हैं। स्वामी जी के "श्यामा कुंज विहारी कृष्ण के" नहीं हैं। उन निकुंज विहारी के ये कृष्ण विहारी "अकला अवतार" हैं। वे स्वप्न में भी नित्य विहार की बाँड़ निकुंज से ही बाहर नहीं जाते। स्वामी जी का कहना है कि हमारे ये कुंज विहारी "कृष्ण जावरी" नहीं हैं। स्वयं केश कला अवतारी श्रीकृष्ण की भी नित्य विहार दुर्लभ है। विहारिणी जी का नित्य वृन्दावन क्लृप्त और बलात्कृत है। विहारी विहारिणी जी का नित्य विहार निरन्तर चलता रहता है और उनके भित्त के श्यामल गौर कों का विभाग कोई नहीं कर सकता। श्री ललिताकृतार हरिदास जी श्यामाश्याम के लक्ष नित्य विहार की अनन्य सहचरी हैं। स्वामी हरिदास जी लक्ष निकुंज रस के उदात्त हैं। उनकी प्राप्ति उनकी कृपा बिना अशम्भ है। श्री निकुंज विहारी का प्रेम उनकी कृपा से ही प्राप्त होता है। श्री कुंज विहारी का यह प्रेम मार्ग विधि निषेध पंजार से दूर, वाचार विचार रहित और कौमल भाव युक्त है।

१- "नव नव लाल ललाय लालिली, नहीं नहीं यह कृष्ण जावरी ।।" स्वामी जी

२- "क्यों पार्वे रस रीति प्रीतिविन दुस्तम निजु कृष्ण जावन ।।

या रस की ललाय ललाय ललिलीपति नाराज ।। "

३- "नील बहल हवि पीत में कौन करि ली कों विभाग ।।" स्वामी विहारिण देव जी

४- "कुंजी नित्यविहार की श्री हरिदासी साथ ।

कैवल साधक सिद्ध सब जांचत नाचत माध ।। "

स्वामी विहारिण देव

प्रोफेसर विल्सन ने<sup>१</sup> 'सेन वान दि रिलीज बाफु' की

'खिन्नु' भाग १ में एक हरिदास की कैनन्य महाप्रभु का शिष्य कहा है परन्तु हरिदासी सम्प्रदाय के लोग न तो कैनन्य महाप्रभु को श्री हरिदास जी का गुरु और न अपने सम्प्रदाय से सम्बन्धित गुरु ही मानते हैं। स्वल्पे विल्सन के ये हरिदास स्वामी हरिदास से भिन्न कोई व्यक्ति होंगे। विष्णु की १६ वीं शताब्दी में सत्वरक्षिरण हरिदासी सम्प्रदाय के परम भक्त हुए हैं जिन्होंने 'तक्ति प्रकाश' और 'सत्सम्पन्नावलि' दो ग्रन्थों पदों के अतिरिक्त लिखे हैं। उन्होंने 'तक्ति प्रकाश' में 'हरिदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्त, स्वामी हरिदास जी का चरित्र और उस सम्प्रदाय की गुरु परम्परा दी है। उन्होंने श्री वासुधर जी तथा उनके शिष्य स्वामी हरिदास जी से आरम्भ कर गुरु परम्परा को श्री तक्ति किशोरी जी तक दिया है। उस प्रकरण का नाम 'गुरु प्रणालिका' है। उसके अनुसार उस सम्प्रदाय के प्रथम गुरु अलीगढ़ निवासी हुए। उनके बाद अलीगढ़ के निकट स्थित हरिदास पुर के हैं निवासी स्वामी हरिदास जी ने उस भक्ति पद्धति को एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय का रूप दिया। उसके बाद स्वामी हरिदास जी के मामा श्री विद्वत्स विपुल देव जी सम्भवतः पहले कैनन्य सम्प्रदायी थे उस गद्दी पर जाये। उनके बाद मथुरा निवासी विहासिदास, सरसदेव जी, नरहरि देव जी, वृन्दावन के रसिक देव जी तथा तक्ति किशोरी जी ये पांच गुरु हुए। उस सम्प्रदाय का स्वामी हरिदास जी के समय का ही बना हुआ मिहारी जी का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। वृन्दावन में आज भी टट्टी संस्थान में उस सम्प्रदाय की गद्दी वर्तमान है। जेक ने उस टट्टी संस्थान को स्वयं देखा है। जहाँ नाच की टट्टी लगी हुई हैं। उस सम्प्रदाय के अनुयायी विरक्त और शरीर में धूल लाये रहते हैं। स्वामी विश्वेश्वररक्षण जी, श्री मिहारी महाराज का क्रीचा वृन्दावन के पास उस सम्प्रदाय के स्वामियों द्वारा रक्ति ग्रन्थों की जीक हस्तलिखित प्रतियाँ हैं।

### राधावल्लभ-सम्प्रदाय

अष्टहाप कवियों के समय में ही कुल उपासना का राधावल्लभ सम्प्रदाय भी प्रचलित था। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी-हित हरिवंश सहारनपुर जिले के वैष्णव गांव के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे और राधावल्लभ की पूजा विधि बताने के पूर्व उनका नाम 'हरिवंश' था, 'हित' उनका उपनाम था। वैष्णव और वृन्दावन दोनों में ही उनके वंश रहते थे। जब ये वृन्दावन जा रहे थे एक ब्राह्मण ने एक राधावल्लभ जी की मूर्ति और दो कन्याओं दी। उस मूर्ति की वृन्दावन में स्थापना कर उन्होंने एक मन्दिर बनवाया। उन्हीं वर्षों आराध्य देव राधावल्लभ की मूर्ति और पूजा ये वृन्दावन लेकर करने लगे। संवत् १८२१ विक्रमी में मन्दिर के प्रभु पट्ट महीत्स के कुछ समय उपरान्त उन्होंने अपनी मूर्ति मूर्ति का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। ये गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी विरक्त थे रहते थे। वे संस्कृत के पंडित थे और ब्रजभाषा में मधुर रचना करने के कारण श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार कहे जाते थे। अष्टहाप के कवि चतुर्मुख दास ने उनकी प्रशंसा में 'हितजी की मूर्ति' और वृन्दावनदास ने उनकी स्तुति और वन्दना में, हितजी की सख्त नामावली लिखी थी।

श्री हित हरिवंश जी के समकालीन भक्त नामादास ने उनके चिह्नों और कृष्णोपासना विधि पर प्रकाश डालते हुए उनके सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक लिखा था -

श्री राधा भग्य प्रदान हुई बति सुदृढ़ उपासी ।

हुं कैलि वम्पति तहां की करत खवासी ॥

संशु महाप्रसाद प्रसिद्धता के अधिकारी ।

१- फंड से ज्ञानवे सुहायी, जातिक सुदि तैरत सुत हायी ।

पट्ट महीत्स तादिन किया, याचक गुनिक महुक दियी ॥



विधि निजीय नहिं दास जन्य उत्कृष्ट कृतकारी ।

श्री व्यास सुवन पय कुतरी सीईं भो पहिचानि है ।

श्री हरिवंश गुसाईं भजन की रीति कृत कौक जानि है।

नाभादास जी ने यहाँ पर बताया है कि हरिवंश गौसाईं की राधावल्लभीय भक्त पद्धति को समझना बड़ा दुर्लभ है। जो उनके शिष्य होकर मार्ग के अनुगामी हो जाते वे ही उसे पहचान सकते हैं। विधि निषिद्ध का ध्यान न रखकर, राधाकृष्ण वन्द्यता की शृंगारिक केलि में ज्ञानन्द लेता और अपनी मानसिक वृत्ति को लौकिक वासनाओं से समझना बड़ा कठिन है। जिन लोगों की मनोवृत्ति लौकिक रति वासना में इतनी लिप्त हो गई है कि उसमें वास्तव ज्ञान भाव नहीं समाते वे ही लौकिक वासनाओं को अपनी कृत्यों में देखने के स्थान पर कृष्ण और राधा की शृंगार सीलाओं में देख सकते हैं। इस वन्द्यास से धीरे धीरे वासनाएं वृत्त होकर "परमानन्द" प्राप्त होता है। हित हरिवंश के यहाँ राधा कृष्ण केलि की त्वनसी वषा परिचया करने का ही वादेश था। उन्होंने अपनी सम्प्राप्य में वृष्णिज मानसिक वृत्तियों के परिष्कार का ही योग बताया है जो वन्द्यास वषा वैराग्य से ही संभव है। प्रभादास जी ने इस भक्ति-पद्धति को इस प्रकार स्पष्ट किया है :-

श्री हित प्र की रति कौक लाबनि में सक जानि ।

राधा ही प्रधान माने पाई कृष्ण आश्रय ।

निष्ठ विष्ट भाव, होत न सुभाव स्त्री ।

उनहीं की कृपा दृष्टि नेहु क्योईं पाल्ये ।

विधि और निजीय ह्वे डारै प्रान प्यारे हिये ।

त्रिनि निज वास निरदिन करै गाल्ये ।

मुण्ड बलि स रक्षि विचित्र बीके ।

जानत प्रसिद्ध कहा कहि के सुनाये ॥ १

इस सम्प्रदाय के अनुयायी भक्तों ने वियोग-भावना को न अपना कर केवल प्रेम शृंगार की संयोग लीलाओं को ही अपनाया है। इस सम्प्रदाय में राधा कृष्ण की सुन लीला के मन के आनन्द को "परम-रस" माधुरी भाव कहा है और कृष्ण की अपना राधा की भक्ति को विशेष महत्व दिया है। राधा तथा कृष्ण का मिलन नित्य वृन्दावन में सम्पन्न होने वाली नित्य लीला है कहा वियोग के पर रत्न को भी जगह नहीं। हरिवंशी सम्प्रदाय वस्तुतः रस सम्प्रदाय है। इसमें प्रेम मूर्ति श्री राधा तथा लाल जी के नित्य मिलन के आसर पर साफ़ तन्मय भाव से उनकी सुचारु सेवा में लग रहता है।

डा० विजयेन्द्र सातक ने अपनी ग्रन्थ "राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य" में यह सिद्ध किया है कि यह सम्प्रदाय अपनी साक्षात् पद्धति, विचार भावना, सेवा-भूजा आदि में किसी अन्य सम्प्रदाय का अनुगत नहीं है। श्रीस्वामी हित हरिवंश ने विभिन्न सम्प्रदायों की पद्धतियों का मनन कर अपनी स्वतन्त्र प्रणाली से इस सम्प्रदाय की स्थापना की। विधि निर्णय के बाह्याचार को एक दम मिथ्यादम्बर और उपेक्षाणीय बतलाया। उन्होंने अपनी बाणी से माधुर्य भाव की प्रेम लदाणा भक्ति का जाँझा स्वल्प प्रकट किया। श्री हित हरिवंश ने प्रेम सिद्धान्त की स्थापना में लौकिक वैदिक मर्यादा का वाक्य नहीं किया। उनमें नैतर्गिक रूप से प्रभावित होने वाले प्रेम को लोक या शास्त्र की सीमायें न बाँध सकीं। "

१- भक्तमाल, भक्ति सुधा स्वाद तिलक, रूप कला पृ० ६०५

२- राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य- डा० विजयेन्द्र सातक पृ० ५३

३- प्रीति न काहू की कानि विचारै । मारु अपनाए विधक्ति मन को अनुसरत निवारै ॥

ज्यों सरिता सावन जल उमगत समुद्र सिधु सिधारै ।

ज्यों नावहि मन दिव्य कुलनि प्रकट पारधो मारै ।

हित हरिवंश हिला सारंग ज्यों सतम शरीरहि जारै ॥

नाटक निपुन नवल मोहन किनु कौन अपनायो हारै ॥

हित चौरासी, पद सं० ४२

राधावल्लभ सम्प्रदाय का मूलधार 'राधा प्रेम' है। उसके भीतर ही साधक का साधन और साध्य निहित रहता है। वास्तविक कलें पर यह राधा प्रेम ही रह कहताता है जिसे जल्ल युक्त स्वल्प समझा जाता है। नित्य भाव से विद्यमान यह प्रेम ही प्रिया प्रियतम में रह रूप होकर प्रस्तुत होता है। अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य, माहात्म्य आदि जिन विभिन्न रूपों की वर्णना उपासना है उसे राधावल्लभ सम्प्रदाय में कोई स्थान नहीं मिला है। इस सम्प्रदाय में स्वीपासना का विधान है जिसमें माधुर्य पक्ष की स्वीकृति है। यह सम्प्रदाय रुढ़ित विधि निर्णयों को ग्रहण न करके भी विरुद्ध वैष्णव भावना का पौषक है। स्वयं राधा कृष्ण प्रेम की निष्काम प्रेम की संज्ञा दी गई है। इस सम्प्रदाय में राधा की वाराधना के बिना कृष्ण की वाराधना का निर्णय है। स्वयं राधा के बिना कृष्ण की ~~नमस्नन-न-निर्जन~~ कल्पना भी नहीं है :-

\* राधा दास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्द सांशया  
सो यं पूर्णसुधारुचः परित्यज्य रागां गिना कपताति ।  
किं श्याम रति प्रवाह लहरी बीजं न ये तां निद-  
स्ते प्रीत्यापि महामृताम्बुभिर्ही विन्दुं परं प्राप्नुयुः ॥ \* १

“ जो लोग राधा के चरणों का सेवन होकर गोविन्द के लीं लाभ की चेष्टा करते हैं वे मानो पूर्णमा तिथि के बिना ही पूर्ण सुधाकर का परित्यज प्राप्त करता चाहते हैं। वे ज्ञा यह नहीं जानते कि श्याम सुन्दर के रति प्रवाह की लहरियों का बीज यही श्री राधा है। आश्चर्य है कि ऐसा न जानते हैं ही वे कृत का महान् सुख पाकर भी उसमें से केवल एक बूंद मात्र ही ग्रहण कर पाते हैं।

श्री हित हरिवंश जी ने राधा की परकीया भाव से पृथक् रखा। उनके मत

में राधा स्वयं सर्वत्र अधिष्ठातृ देवी है। उनकी सैत स्वकीया परकीया के रूप न होकर स्वतन्त्र रूप में है। बलदेव उपाध्याय लिखते हैं : " यह 'प्रेम विरह' ही राधावल्लभीय पद्धति का सार है। मिलने में भी विरह वैसी उत्कण्ठा स्वका प्रयत्न प्राण है। कुल किशोर श्री राधा बल्लभ ताल के नित्य मिलन में वियोग की कल्पना तक नहीं है। परन्तु उस मिलन में प्रेम की क्षीणता नहीं, प्रत्युत प्रतिक्षण नूतनता का स्वाद है, चाह तथा कष्टहीन है। प्रेमात्म का अवसत पान करने पर भी क्षुब्धिरूपी महान्-विरह की छाया पदा पनी रहती है, स्वीकृत होता है - " मिलेहि रहत मानो कहुं मिले ना "

इस प्रकार स्वकीया परकीया, विरह मिलन स्व स्व-पर-प्रेम रहित नित्य विहार रस ही श्री हित महाप्रभु का उष्ट तत्व है। "

राधावल्लभ सम्प्रदाय में लौकिक रूप में राधा स्वकीया होने पर भी राधा कृष्ण के नित्य विहार स्थिति में स्वकीया परकीया भाव निर्विशेष मानी है। डा० स्वामी प्रसाद त्रि वेदी ने इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध में लिखा है, " यह किंदरी और ली स्वरूप ही इस सम्प्रदाय का अपना निज और नित्य रूप है परकीया गौपी रूप नहीं जिसका कि श्रीकृष्ण है स्वतंत्र कान्त संबंध रहता है और श्री राधा जी है सपत्नी भाव, निमागम है जांचर सच्चिदानंदधन किहू श्री राधा कृष्ण नित्य किशोर युक्त रूप है श्री वृन्दावन में ली प्रेम झीझा किया करते हैं जो स्वकीया और परकीया भाव है वसंप्रज्ञात है और क्या सत्य स्वेच्छा है ये कुल क्रीन्द नन्दन और श्री कृष्णभानु नंदिनी नाम है ज्ञ में प्रकट होकर अपनी रस रहस्य लीला है निज रसिक जाँ की वानन्द स्थापित किया करते हैं। " २

राधा बल्लभीय सम्प्रदाय में राधा ही उष्ट स्व उपास्य है। इस सम्प्रदाय में नित्य विहार में ली भाव से जास्था की जाती है। इस सम्प्रदाय में राधा ही एक

१- भागवत सम्प्रदाय - बलदेव उपाध्याय पृ० ४४०

२- हिन्दी साहित्य- डा० स्वामी प्रसाद त्रि वेदी पृ० १६८

हैं। राधा ही इष्टदेवी, वाराध्यादेवी या उपास्य हैं। कृष्ण राधा के अनुगमन से राधा के कृपा वटाचा से सभी की सफलता मोरख करते हैं। भक्त के लिये राधा ही पूज्य है। कृष्ण भी राधा की उपासना करते हैं। भक्त के लिये राधा ही पूज्य है। कृष्ण भी राधा की उपासना करते हैं। यदि दोनों में साम्यत्व सम्बन्ध माने तो कृष्ण वाञ्छानुवर्ती पति हैं जो प्रतिक्षण राधा की ओर देखते रहते हैं। नित्य विहार के कारण दोनों का वियोग तो संभव ही नहीं। मान वादि कारणों से दृष्टिगोचर होने वाला दार्शनिक अन्तर भावी भिन्न में प्राकृत्य उत्पन्न करने की सहैतुक प्रक्रिया है। माधव भी राधा के बिना कुछ नहीं है। कृष्ण राधा के फारविन्दों में फड़े हुये उन्हें प्राप्त करने में लीन रहते हैं। कृष्ण राधा की स्वयं अनुभव विनय करते हैं। इस सम्प्रदाय के इष्ट देव श्री कृष्ण नहीं है वरन् राधिका के अनुगमन के कारण उपास्य है तथा राधिका ही इष्टदेवी हैं। मावान् कृष्ण उनके वाञ्छानुवर्ती हैं।

#### सत्त्वरी का स्वल्प-

इस सम्प्रदाय में श्री जी का विग्रह राधावल्लभ नाम से व्यवहृत होता है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में सत्त्वरी या सती शब्द जीव के निज रूप की पारमार्थिक स्थिति का नाम है। शरीर धारण करके प्रत्येक जीव सभी की सांसारिक प्राप्ति के रूप में मानता है। परन्तु वास्तव में वह सत्त्वरी ही है। इस लोक में जीव रूप में सभी को मान लीक रहने पर वह भ्रम में मटकता है परन्तु श्री राधा की कृपा होने पर लौकिक सुख-दुख की अनुभूति से ऊपर उठ सत्त्वरी रूप को प्राप्त हो नित्य विहार के दर्शन से उपलब्ध होने वाले आनन्द को प्राप्त करता है। प्राणी को निज रूप की प्रतीति या बोध होने पर सत्त्वरी या सती की संज्ञा दी जाती है। सत्त्वरी ही पुरुष रूप जिसे भक्त से विनिर्दिष्ट है। राधा वल्लभ

की भाँति सहचरी भी पास वष्यक्त, काँचर अनिवर्णीय है। स्त्री के स्वरूप का वर्णन राधा मुधा निधि में इस प्रकार बताया है :-

‘ राधा कैलि कलापु चापिणि कदा वृन्दावने पावने ।

वत्स्यामि स्फुट मुञ्जतादभुत सैप्रोक्तमाकृतिः ।

तैमोस्य निरुलं स्व कलम् नैत्रादि विण्डस्थिता,

तादृक्कृत्वाचित दिव्य कोमल वक्षुः स्वीयं ज्मात्वापये ॥ ” ३

‘ राधा कैलि कलापु की बाधी ’ उज्ज्वल कम्बुत रस पूर्ण वृन्दाविपि में वास करने की कामना करने वाली, नैत्रपिण्डों में स्थित तैमोस्य निरुल की भावना करने वाली, उस भावना के क्लृप्त उष्मांगी वयु की कामना करने वाली ही सहचरी है, सखियों का राधेश्वरी राधा की रास में प्रवृत्त करने में बड़ा हाथ है। सखियों की वाक्छात्रु का फता उनकी लाल की श्रीकृष्ण की राधा के पास से बानी वाली युक्तियों से चलता है। ये स्त्री विभिन्न शोटियों में परिणित नहीं होतीं। इन सखियों का नित्य विहार में उपास्य तत्त्व सीता दर्शन मात्र है।

राधा वत्सल सम्प्रदाय में कृष्ण :-

राधावत्सल- सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण की उपपत्ति के रूप में नहीं स्वीकार किया। श्रीकृष्ण के परिवेश और परिकर स्व और पर के भेद से रक्षित हैं। वे सदा स्व रह ही नित्य विहार सीता में मग्न रहते हैं। श्रीकृष्ण के वतिरिक्त न कोई प्रेम का रहस्य जानता है न प्रेम करने का योग्य अधिकारी है। श्रीकृष्ण ही प्रेम सर्वस्व तथा प्रेम करने के उचित अधिकारी हैं। राधा मुधा निधि में श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है :

‘ यद्वृन्दावनमात्र गाँचरमहो यन्ननुदीकं शिरा-

भ्यारोहं कामते न यच्छिव झुकादीनां तु यद् वाक्यम् ।

यत्प्रेमायुक्ताधुरी रसमयं यन्नित्यं कैशोरकं

तद्रूपं परिपश्यन्मैव नयनं जीतायमानं मम ॥ १

वर्थात् जो केवल वृन्दावन में ही दृष्टिगोचर होता है, अन्यत्र नहीं जिसका वर्णन करने में श्रुति शिराभाग उपनिषद् भी समर्थ नहीं जो शिव, ब्रह्म आदि के ज्ञान में भी नहीं आता जो प्रेमायुक्त माधुरी से परिपूर्ण और नित्य किशोर है, उस वृष्ण के रूप की देखने के लिए धीरे धीरे चल ही रहे हैं।

श्रीकृष्ण की नित्य विहारी राधावल्लभ रूप में ग्रहण किया जाता है। राधावल्लभ साम्प्रदायिक नाम है। राधा के वल्लभ प्रिय कृष्ण से संबंध मिलता है कि वे कृष्ण राधा की स्वयं वाराधना करते वाले हैं। जहाँ तक दार्शनिक दृष्टिकोण का सम्बन्ध है उस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण की महत्ता नहीं दी गयी। राधावल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण राधा के कृपा कटाक्ष की वाकांक्षा रखते हुये नित्य विहार में लीन रहते हैं। श्रीकृष्ण उपास्यत्व होते हुये भी राधा के लुब्धगी हैं। इसमें राधा का प्रधान स्थान है। राधावल्लभ रूप में कृष्ण का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है।

#### राधावल्लभ सम्प्रदाय में वृन्दावन-

राधावल्लभ सम्प्रदाय का वृन्दावन कल्पना द्वारा चित्रित सूक्ष्म वृन्दावन न होकर भौतिक वृन्दावन है। वह झुंझ का, गुल्मी से वेष्टित होकर भी राधा कृष्ण की रास स्थली और नित्य विहार का आधार है। वह प्राकृतिक होती हुए भी राधा कृष्ण के नित्य संगीत के कारण नित्य और शाश्वत है। वृन्दावन राधा कैलि कलावी का वाज्जी, फ्रंट उज्ज्वल एवं परिपूर्ण तथा परम पावन है। श्री शक्ति हरिश्चंद्र ने वृन्दावन में वास करने

क री की बलिष्ठाणा ज्ञ प्रकार प्रकट की है :-

\* राधा कैलि कलायु जातिणि कदा वृन्दावनी पावनी ।

वत्स्यामि स्फुटमुक्तायुत री प्रेम्णवावृत्तिः ॥ \* ९

जब वृन्दावन में राधा कृष्ण अपना नित्य विहार करते हैं। <sup>वृन्दावन</sup> राधा माधव की झीड़ा स्फुरण करने के कारण राधा माधव भी स्वतन्त्र <sup>स्वतन्त्र</sup> वहीन हैं। यह वृन्दावन स्वतन्त्र है।

\* नित्य विहार\* सम्पन्न होने के लिए राधावल्लभ सम्प्रदाय में चार नित्य तत्त्वों की स्वीकार किया गया है। इन चारों का समेत रूप ही नित्य विहार कहलाता है। ये चार तत्त्व, नित्य किशोरी राधा, नित्य किशोर कृष्ण, नित्य किशोरी सहचरी गौर नित्य धाम वृन्दावन हैं। श्री शिखरिचं नदी के अनुसार\* नित्य विहार\* की दृष्टि के लिए स्वकीया और परकीया तथा मिलन और विरह आदि भाव अपूर्ण हैं। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में निकुंज लीला की रस के नाम से अभ्यस्त किया गया है। उस सम्प्रदाय का अंतिम प्रतिपादक कह निकुंज रख ही है। वही आत्मा और ध्यान का अंतिम प्रतिपादक है।

### राधावल्लभ सम्प्रदाय में रास लीला-

श्रव के भक्ति सम्प्रदायों में यह प्रचलित है कि श्रव के गोपीों की अपना स्वल्प साक्षात्कार क राने के लिए उस रास की रत्ना की। भावत स्वल्प दर्शन की विभिन्न दशाएँ हैं। पाँचवी दशा तक साधक अपनी वह बुधि भूल जाता है। उसे छठी भावना रास की प्राप्ति होती है। रास फलाभ्यायी की गोपियाँ सर्व त्याग पूर्ण श्रीकृष्ण में रस हुए की वसति के स्वकीया हैं। श्री शिखरिचं ने राधा के दुखन और कृष्ण की दुख



कनाया है इसलिए उनके रास में भी स्वीकृति का भाव है। राधावल्लभीय रास में जीवों की कल्याण भावना है। श्रीकृष्ण राधिका की प्रसन्न करने के हेतु सदा प्रयत्नशील रहते हैं। राधा की प्रसन्न होना ही उनका ध्येय है। रासलीला की भावना ही फार्म नहीं है बल्कि भौतिक रूप में अनुकरण भी करना चाहिए अनुकरण से राधा के प्रति कृष्णानुराग का स्वरूप सांसारिक जीवों को प्रष्ट हो जाता है। हित हरिवंश ने कृष्ण की ही रासस्थिति कहा है तथा कृष्णलीला की पराकाष्ठा ही रास लीला में है। जर्म दार्शनिक गूडला नहीं है बल्कि प्रेम की लिम्ब धूमि पर राधाकृष्ण के नित्य विहार की स्थापना है। प्रीति भक्तान अनुकरणात्मक लीला में प्रेम रस का वास्वादन कर तुल्य हो सकते हैं। इस लीला का अनुकरण विधेय है।

#### गद्दी सेवा-

वृन्दावन में श्री राधावल्लभ जी के मन्दिर में केवल वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण का ही विग्रह है। इस सम्प्रदाय की उष्टाराध्याराधा की कोई मूर्ति स्थापित नहीं है। श्रीकृष्ण के वाम पाग में एक गद्दी है जिस के ऊपर स्वर्ण फल पर 'श्री राधा' नाम अंकित है। इस गद्दी की ही राधा का फल स्वर्ग प्राप्त होने के कारण इसे 'गद्दी सेवा' कहते हैं।

#### नाम सेवा-

राधा के अमूर्त रूप की सेवा का 'नाम-सेवा' दूसरा रूप है। कृता, काष्ठ वत्सा पाषाण पर 'श्री राधा' नाम लिखकर उसे रास मंडल वादि पवित्र स्थलों पर

स्थापित कर देते हैं और उसकी सेवा परिचर्या मन्दिर में स्थित श्री राधावल्लभ के किश के समान ही श्रद्धा भक्ति से होती है। यात्रा आदि के समय ब्रह्म वाग्य से लिया जाता है।

#### समाज-

राधावल्लभ सम्प्रदाय में समाज का प्रधान गायक मुखिया कहा जाता है। शेष समाजी प्रधान गायक का अनुमन करते हैं। प्रिया प्रियतम वंतरा में जी लीला करते हैं तथा सखियाँ उस समय जिस भाव का फगान करती हैं समाज बहिरा में उसी भाव के फगान करता है। इन फाँ के संग्रह को "वर्णात्सव" कहते हैं। सम्प्रदाय के विभिन्न अवसरों पर वीक प्रकार की राग रागनियाँ गाई जाती हैं। नित्य विहार की लीला के फ में वर्णित वैष्णभूषा के अनुसार ही श्री जी का शृंगार किया जाता है।

#### वष्टयाम सेवा-

मांता दो घड़ी रात रहे और दो घड़ी चढ़ने तक मांता समय है।

शृंगार- दो घड़ी दिन चढ़ने से बारह <sup>घड़ी</sup> ~~घड़ी~~ तक है।

राजभोग- बारह घड़ी दिन चढ़ने पर राजभोग और छः घड़ी पीछे तक है।

उत्थापन- छः घड़ी पीछे से लेकर सन्ध्या तक है।

सन्ध्या- छः घड़ी रात्रि तक सन्ध्या है।

शयन- सन्ध्या के समय दो दो घड़ी का शयन समय है।

झंझा- बाठ घड़ी रात्रि के पीछे बीस घड़ी का सैन्या समय है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में नैमित्तिक उत्सवों की परंपरा है। बाबकल बाचार्य कुत के गौस्वामियों के जन्मोत्सव भी इनमें सम्मिलित कर लिए हैं।

### तिलक वीर कंठी-

इस सम्प्रदाय में तिलक भाल से नासिका के ऊर्ध्व भाग अर्थात् त्रिकुटी तक रहता है। भाल से दो सीधी फतली स्त्रायें जिहास अर्थात् विशुद्ध कफ तक जाती हैं और बीच में काली चिन्दी रहती है। इस विद्वान् रौली के तिलक को सबसे अधिक सामान्य मानते हैं। साम्प्रदायिक दीक्षा लें पर कंठी धारण की जाती है जिसमें तिलकी के दल के मनकों की दो लड़े होती हैं।

श्री हितहरिश्चं, श्री दामोदरदास शैवक जी श्री हरिराम व्यास, श्री चतुर्भुजास, श्री ध्रुवदास, श्री नैही नागरीदास, श्री कल्याण फुजारी, श्री जनन्य बली श्री रसिकदास, श्री वृन्दावनदास बाबा जी आदि राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रसूत मन्त्रि एवं कवि हुए हैं।

### वल्गु सन्प्रदाय में राधा का स्वल्प

#### श्रुदांत-

श्रुदांत विद्वान्त के अनुसार पुरुषोत्तम में अंत शक्तियों की निरन्तर स्थिति रहती है। वे समस्त शक्तियाँ पुरुषोत्तम के सदा अधीन होती हैं। पुरुषोत्तम के भाव रूप लीला करने पर उनकी शक्तियाँ की भी बहिःस्थिति होती है। वे विविध रूप, गुण और नामों से उनके विलास करती हैं और जन्म लिया, पुष्टि गिरा तथा कांत्या मुख्य हैं। वे ही श्री स्वामिनी, चन्द्रावली, राधा और कृष्णा आदि आधिदैविक रूप और नाम धारण कर नित्य स्थिति करती हैं। इन दास्य शक्तियों में से पुनः अन्त भाव प्रकट होते हैं जो अंतर्गत सत्त्वरी रूप में उनके साथ रहते हैं।

वल्गुमाचार्य जी ने विशुद्ध प्रेम की शुद्ध पुष्टि कहा है। गौपियाँ विशुद्ध प्रेम की उदाहरण हैं। उनके प्रेमात्मक साधनों की ही पुष्टि भक्ति के मुख्य साधन माना है। वे देवाधि विषयक रति-प्रेम की भाव करती हैं। वाचार्य जी जी के अनुसार स्व भाव की सिद्ध करने का साधन उसकी भावना सत्त्वह क्रियात्मक चिन्तन है। वाचार्य

१- पुष्ट्या विमित्राः सर्वज्ञाः क्लारेण क्रियास्ता।

मयादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाति दुर्लभाः ॥ पुष्टि प्रसाह मयादि ।

२- गौपियाः प्रोक्ता गुह्यः साधनं कृत ।

३- रतिदेवाविषया भाव इत्यभिधीयते ।

४- भावी भावनया सिद्धः साधन नान्यदिप्यते ॥ सत्यात निर्णय

जी ने श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए गोपी वर्गों की प्रेम भावना सेवा का उल्लेख किया है। गोपियों के विभक्त के-कर्म करते हुए उन्होंने प्रेमात्मक भक्ति वाचन रूप भावनाओं का एक प्रकार उल्लेख किया है-

“ गोपांगनां तु पुष्टिः। गोपीणु मयादा। कृपांगनां तु प्रसाहः।

गोपांगनास्तु मुक्त मुक्ताः मुक्तं <sup>मुरख मुक्ता</sup> यामिस्तः किंवा नाशात्ती लीकनेदमयुक्ता यामिस्ता मुक्ता  
हुते मायापत्यैभ्य गेहाधिपतिव्ययपुः पत्यादिक सक्त मयादायां मुक्ता यामिस्ता स्वामि  
यस्मान्नि कृत्योन्नतं श्री पुरुषोत्तममेव मन्ति। तस्मात्तासां पुष्टित्वम्।

वय गोपीनां कृष्णमारिणां गोपीजनवत्सलभक्तैतरे भवनं वात्सल्य

किंवा कृपांगनां पि कात्यायनी भक्तं कृतम्। वात्सल्य तासां मयादा भक्तिः।

तथा कृपांगनानां वात्सल्यमिनेन संग्रहः। तासाम् ईश्वरी पुत्र भावी  
वर्ती। तस्मात्तासां प्रसाहत्वम्। इति त्रिविधा गोप्यः।

वभिप्राय यह है कि कृष्ण में तीन प्रकार की गोपियां हैं पहली

“ गोपांगनां ” दूसरी “ गोपी ” अर्थात् “ कुमारिणारं ” तीसरी “ कृपांगनारं ” गोपांगनारं  
लोक वेद मय से युक्त हो, उस वर्गों की त्याग रह प्रेम से केवल पुरुषोत्तम का ही “ वात्सल्य ”  
भक्त करने के कारण “ पुष्टि पुष्टि ” रूप हैं। ऐसी भक्त में परस्त्रीय भावना वाले उत्कृष्ट  
प्रेम व्यक्त की स्थिति रहती है। गोपी अर्थात् कुमारिणार्य कात्यायनी कृत जादि है  
पुरुषोत्तम की परीक्षा भक्त करने के कारण पुष्टि मयादा रूप हैं। ऐसी भक्त में वात्सल्य  
ज्ञान ज्ञानपूर्ण सुदृढ़, स्नेह स्वीय स्त्री भावना वाली वाचक की स्थिति रहती है।  
“ कृपांगनार्य ” पुरुषोत्तम का लीकत्व वात्सल्य से भक्त करने के कारण “ पुष्टि प्रसाह ”  
रूप हैं। ऐसी भक्त में केवल वात्सल्य भावना की स्थिति रहती है। आचार्य जी के अनुसार

तीनों भावनायें पुष्टि भक्ति का मुख्य साधन हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय में वात्सल्य भक्ति ही ग्राह्य न होकर सत्य, कान्त, स्वकीय और परकीय तथा कृप भाव की भक्ति भी ग्राह्य है। श्रीवल्लभाचार्य ने मधुराष्टक, 'पखिटाष्टक' और सुनोधिनी में जो माधुर्य भक्ति का प्रचार कहाया है उसी उस बात की पुष्टि होती है कि पुष्टि भक्ति में वात्सल्य और परकीय कान्ता-भाव की तीनों भावनाओं का मन ग्राह्य है। उन्होंने 'पखिटाष्टक' ग्रन्थ में लिखा है :-

‘कलितोद्भूतायास्तटमनुवर्त्ती पशुर्मां ।

रहस्यकां दृष्ट्वा नव सुभावजाय सुलाम् ॥

बुद्ध नीची ग्रंथि श्लक्ष्मति मृगाक्ष्मा दृक्कारं ।

रति प्राप्नुयावी भवतु कृतं श्रीपखिटे ॥

इसमें वल्लभाचार्य जी ने बताया की है कि श्रीराधा के साथ रहस्य सीखा करने वाली पशु में उनकी सत्त रति प्राप्नुयैती थी।

पुष्टिमार्ग के अनुसार शक्ति शक्तियान् के कथन ही मानी नहीं है। श्री राधा और श्रीकृष्ण पुष्टि मार्ग के अनुसार बहिन और सख ही सम हैं। कृष्ण और गोपियों भी बहिन हैं। राधा भावान् की वाञ्छादिनी शक्ति और गोपियों भावान् की वानन्द रुचिणी शक्तियाँ हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में गोपिकायें स्वात्मकता सिद्ध करने वाली शक्तियाँ का प्रतीक और राधा स्वात्मकता सिद्धि की प्रतीक मानी है।

पुष्टि मार्गीय हिन्दी के वैष्णव कवियों ने मुख्यतः भागवत का ही अनुसरण किया। भागवत का वाक्य लो के कारण सीला वैचित्र्य बहुत कम है यहाँ तक कि जोड़ स्थानों पर भागवत की भाषा का ही रूपान्तर मिलता है। हिन्दी के अन्य

कवियों में भी सूर का अनुकरण मिलता है।

सुबोधिनी में बाबाजी जी ने माधुर्य भक्ति का स्वल्प ज्ञान कराते हुये रतिशास्त्र सम्बन्धी उल्लेख किये हैं। इससे पता चलता है कि बल्लभाचार्य जी ने माधुर्य-भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया। यद्यपि उन्होंने अपनी कविता में गौपात कृष्ण की उपासना को ग्रहण किया था और श्रीकृष्ण के बालरूप पर जोर दिया था। कृष्ण पुष्टि भक्ति को हम यदि रूप के रूप में ग्रहण करें तो कृष्ण पल्लव हैं। राधा उन्हीं की शक्ति या प्रकृति हैं। गौपिया जीवात्मा हैं। मुक्ती योगमाया है या भवान् की "पुष्टि" है जो भवान् की जागृक बना संसार है नास्तु बुद्धा कृष्ण की और है नास्ती है। रास जीवात्मा का परमात्मा के साथ जानन्दमय लय होना है। श्री राधिका माधुर्य भक्ति की मुख्य पात्र हैं जिन्हें बल्लभ सम्प्रदाय में स्वीकारा माना है। पुष्टि सम्प्रदाय में परकीय भाव की पात्र बुद्धिरूपा गौपांगना श्रीचन्द्रावली हैं। शान्ता भक्ति का आधार कुमारिकारं और गौपांगनाजी की कृत्या परन्तु बाद में इसकी प्रधान पात्र राधा मानी।

बाबाजी जी ने अपनी दृष्टदेव के स्वल्प का वर्णन करते हुये अपनी मधुराष्टक में अपनी दृष्ट को "मधुराधिपति" कहकर उनके समस्त काम देष्टा जादि की भी मधुर बताया है:-

“अथ माधुरं कनं मधुरं नमं मधुरं दृष्टिंमधुरम् ।

दृष्टम् मधुरम् गमनं मधुरम् मधुराधिपतिरसितं मधुरम् ।

१- जन विपरीत स उच्यते, कं विंशती वा तिर्यग्गताः । १०-२१-७

जन सर्वं स सुखेन वा ज्ञाताः । १०-२१-१२

कौ मयादा भी सप्तोक्तम् । तदुक्तं शास्त्राणां विनयस्तावत् ।

यावन्मन्द स्तानराः । रतिके प्रपूजिते नैव शास्त्रं न च कम् ॥ १०-२२-३६

श्री बल्लभाचार्य भक्ति मार्गीय संन्यास का पर्यवसान रास तीला में ही मानने के कारण पुष्टि-पुष्टि स्वल्प श्रुतिस्मृति गौपांगनाओं को बल्लभाचार्य कहते हैं। "गायत्री भाष्य" में उन्होंने लिखा है :-

"भक्ति मार्गीय संन्यास्तु साक्षात् पुष्टि पुष्टि श्रुतिस्मृतिरागं रास मंडल मंडलानाम्। स्वयमेवोक्तं संतुष्ट्य सर्व विषयास्तक्यादमृतं प्राप्ता इत्यादि केषां-  
ध्याय तः प्रतिभासता।"

श्रुतिस्मृति सम्प्रदाय में साकार भुभाव वंश और पराशक्ति रूप स्त्री वंश मिलकर ही परब्रह्म कहे गये हैं। राधा परब्रह्म की वात्म शक्ति और उससे सर्वदा बहिष्कृत हैं। इसी कारण से पुष्टिमार्ग के परमाराध्यदेव श्रीनाथ जी के साथ स्वामिनी का स्वल्प भिन्न रूप से नहीं रखा गया है।

श्री बल्लभाचार्य ने अपनी कर्मसाधना में गौपाङ्कृष्ण की उपासना को ग्रहण किया। श्रीकृष्ण के बालरूप की प्रसूता देने के कारण उनके विवेक में राधा के बारे में कोई उत्तेज नहीं मिलता। बल्लभाचार्य के पुत्र विद्वत्साय ने "स्वामिन्वाष्टक" और "स्वामिनी स्तोत्र" में राधा सम्बन्धी स्तोत्र लिखे राधावाद को अपने कर्म में ग्रहण किया या नहीं यह निश्चय पूर्वक न कह कर उस बात के निश्चय पर अवश्य पहुँचते हैं कि राधावाद का प्रवृत्त उन्होंने के समय में हुआ। बल्लभाचार्य के स्वयं बालकृष्ण की उपासना का प्रचार करने के कारण अष्टशाय के साहित्य में वात्सल्य रूप की समृद्धि मिलती है। अष्टशाय के कवियों के सम्बन्ध में शशिभूषणदास का कहना है कि "उन्होंने भी अपने को गोपी भाव से माणितकर 'अस्तीक्रीम' कृष्ण के विरह से व्याकुल और उनसे मिलने की वाकांक्षा कर फटते हैं। उनके साथ ही हम देखते हैं कि



गौड़ीय वैष्णव कवियों की तरह उन्होंने भी कुंज लीला का जयान करके उस अप्राकृत वृन्दावन में दूर से सखी या दूधरे परिकरों की भांति नित्य कुंज लीला का वास्वावन करने की चेष्टा की है।

बल्लभाचार्य जी ने त्रिविध नामावली में राधा-सखरी का उल्लेख किया है। कृष्णावतार के रास के समय ली राधा में श्री की मुख्य "रास" शक्ति। लक्ष्मी। के प्रीति होने पर भवान् श्रीकृष्ण ने उसने विशेष रूप से स्मरण किया था। इस बात का फल सुनीधिनी तथा "पुरुषोत्तम सङ्ग्रह" से चलता है। उन कथों से प्रतीत होता है कि बल्लभाचार्य ने भी माधुर्य भक्ति और राधा शब्द का प्रयोग किया। परन्तु उन सम्न्ध में डा० दीनदयाल जी गुप्त का कल्ला है कि "।" इस प्रकार हम देखते हैं कि मधुर भाव की भक्ति का समावेश लेक के विचार से आचार्य जी ने भागवत के ततिरिक्त चैतन्य महाप्रभु से भी लिया। हाँ, राधा की उपासना का समावेश उस सम्प्रदाय में हुआ, क्योंकि हम देखते हैं कि श्री विट्ठल नाथ जी ने राधा की स्तुति स्तुति में "स्वामिन्नाष्टक" तथा "स्वामिनी स्तोत्र" दो ग्रन्थ लिखे हैं और श्री बल्लभाचार्य के किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार राधा का वर्णन नहीं है। उन्होंने जोक स्थलों पर अपनी ग्रन्थों में गोपी भाव से मधुर भक्ति का उपदेश अवश्य दिया है। लखे ज्ञात होता है कि सब भावों से कृष्ण की उपासना का समावेश तो उन्होंने अपनी सम्प्रदाय में स्वीकृत कर लिया था, परन्तु राधा की कथा कुंज रूप की उपासना का समावेश गौस्वामी विट्ठलनाथ जी ने ही किया। "।" शशिभूषणदास गुप्त राधावाद का प्रचलन विट्ठलनाथ के समय में मान उस पर चैतन्य और वृन्दावन के गौस्वामियों के प्रभाव होने की संभावना मानते हैं,

१- राधा का रूप विकास - शशिभूषणदास गुप्त पृ० २८७

२- राधा सखराय नमः

३- सुनीधिनी - १०।२०। १७

४- वष्टदाप और बल्लभ सम्प्रदाय- दीन दयाल गुप्त पृ० ५२७- ५२८

“ विद्वत् नाथ ने कितनी विशिष्ट भक्ति-सिद्धान्त को स्वीकार कर राधावाद का जमीन धर्म में ग्रहण किया था कि नहीं उसमें सन्देह है, पर उन्हीं के समय में पुष्टि मार्ग में राधावाद का प्रवर्तन हुआ था उसमें सन्देह नहीं। बल्लभ सम्प्रदाय के मत में तथा साहित्य में राधा वाद के प्रवर्तन के अन्दर चैतन्य और उनके भक्त वृन्दावन के गोस्वामियों का प्रभाव होने की सम्भावना है। ” राम कुमार वर्मा बल्लभाचार्य की राधा की उपासना पर विष्णु स्वामी का प्रभाव मानते हैं, “ विष्णु स्वामी और निम्बार्क सम्प्रदाय के बाद चैतन्य और बल्लभ सम्प्रदायों में भी राधा की विशिष्ट स्थान मिला। विष्णु स्वामी से प्रभावित होकर बल्लभाचार्य ने राधा की उपासना की। ”

बल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने कान्ता प्रेम के फलों की अधिकतर रचना राधा की लेकर नहीं बल्कि गोपियों का लेकर की है। जोक स्थलों पर राधा प्रान गोपी के रूप में आई है। कान्ता-वैष्णव काल में जोक स्थानों पर राधा के परिमंडल से वृन्दावन की गोपियों ठक सी गई हैं वहाँ राधिका का काया ब्यूह रूप ही बष्ट बहियाँ हैं और राधा का प्रहार ही सीतल सल्ल गोपिकायें हैं। परन्तु बल्लभ सम्प्रदाय में वात्सल्य रूप और गोपियों को प्रसन्नता दी गई है तथा कृष्ण के बाल लीला सम्बन्धी फलों की अधिक रचना हुई है। बल्लभ मार्गीय हिन्दी साहित्य के कवियों में राधा की सर्वत्र स्वीकार्य रूप मिला है। बष्ट हाप के बाँठों कवियों ने ही प्रेम्हा रूप से राधा कृष्ण की प्रेम लीला का वाक्य लेकर काव्य रचना की। अन्य सम्प्रदायों में राधा की मान्यता वृष्ण से अधिक है। परन्तु उसमें वैपत्ति समान है। सूर के सामने बल्लभ सम्प्रदाय में राधा कृष्ण की मधु-रोपासना विकसित हो गई थी। सूर के काव्य में राधा कृष्ण के प्रेम का विशद चित्रण

१- राधा का प्रेम विकास - शशिभूषणदास गुप्त पृ० २८४-२८५

२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- रामकुमार वर्मा पृ० ५००

है जसलिय बल्लभ सम्प्रदाय में स्तर कृष्ण भक्त-सम्प्रदायों में मान्य हो सका।

बल्लभ सम्प्रदाय में स्वयं भावान् कृष्ण वंशी है। गौपियों में स्वामिनी तथा प्रसूत होने पर भी राधा कृष्ण का वंश है। राधा कृष्ण की वंशस्वरूपा शक्ति तथा उनके वभिन्न है। कृष्ण की परमात्मा और गौपी राधा की वात्मा माना है। राधा की स्वात्मक सिद्धि <sup>ची</sup> प्रतीक माना है। डा० दीनदयालु गुप्त बल्लभ सम्प्रदाय में गौपी के स्वल्प के सम्बन्ध में लिखते हैं, "नित्य गौलीक में होने वाले स्वल्प कृष्ण के रास की गौफिराएं भावान् की वानन्द प्रसारिणी सामर्थ्यशक्ति हैं। राधा भावान् के वानन्द की पूर्ण सिद्ध-शक्ति है। एक से लोक भावान् की उच्छा शक्ति द्वारा लोक बदल कर हम से सत् हम जात और कित् हम जीव, देवता वादि की उत्पत्ति हुई और स्वयं वानन्दस्वल्प पूर्ण पुरुषोत्तम हम से गोप गौपी वादि गौलीक की वानन्दस्वल्प शक्तियों की उत्पत्ति हुई। कृष्ण वंशी हैं और गौफिराएं उनका धर्म हैं। दोनों वभिन्न हैं सिद्ध शक्ति राधा और कृष्ण का सम्बन्ध चन्द्र और चांदनी का है। भावान् की स्व-शक्तियों के बीच की स्व की सिद्ध शक्ति राधा स्वामिनी रूपा है। भावान् स्व शक्तियों के बीच पूर्ण स्व शक्ति-स्वरूपा राधा के वंश में रहती है।"

सूरदास ने वाभ्यात्मिक हम से भी राधा का वर्णन किया है और राधा की प्रकृति और कृष्ण की ~~मुक्त~~ पुरुष मान कर वंद की स्थापना की है। राधा का जात उत्पादि का शक्ति के नाम से भी वर्णन है। वष्टहाप के कवियों<sup>१</sup> ने राधा के स्वकीया हम का ही ग्रहण नहीं किया एक स्थान पर तो सूर ने राधा का कृष्ण के साथ स्पष्ट विवाह वर्णन भी किया है।

१- वष्टहाप और बल्लभ सम्प्रदाय- डा० दीन दयालु गुप्त पृष्ठ ५०५, ५०६

२- सूर सागर - दशम स्कंध न० प्र० सभा पद सं० १६८८ पृ० ८४२

३- सूर सागर दशम स्कन्ध पद संख्या १६८६ पृ० ६२६

### निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा का स्वल्प

निम्बार्क ने उत्तरी भारत में राधा-कृष्ण भक्ति का शास्त्रीय ढंग से प्रतिपादन किया। उन्होंने भावान् श्रीकृष्ण की ही परम मानाजीर कृष्ण के भाष्य "वेदान्त - पारिजात-सौरभ" में परम श्रीकृष्ण की विविध शक्तियों के विषय में लिखा है। निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण भावान् को "स्वापति", "श्रीपति", "स्वामानस हंस" आदि रूपों से विशेषित किया है। श्रीकृष्ण ही परमेश्वर के रूप हैं और उनकी वन्दना कृता, शिव आदि समस्त देवता करते हैं। उनकी शक्तियाँ अविनीय हैं जिनके बल पर वे भक्तों का बोध दूर कर देते हैं। कृष्ण परम उपास्य देवता है :-

नान्या गतिः कृष्णफारविन्दात्

संशुक्ल कृष्णादि-वन्दितात् ।

मनोच्छयीपाप-मुचिन्त्य-विग्रहा

वचिन्त्यशक्तैरविचिन्त्यवात्सयात् ॥ १ ॥

भक्ति से कृष्ण की प्राप्ति होती है। वह भक्ति शान्त, वात्स्य, सत्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल पांच भावों से पूर्ण है। गोपी तथा राधा उज्ज्वल रूप के भक्त हैं। इस सम्प्रदाय में वल्लभ तथा कान्त सम्प्रदाय के अनुसार उज्ज्वल वस्त्रा मधुर भाव की उत्कृष्टता दी नहीं है। वक्षिणात्स्य क्रावण होते हुये भी वृन्दावन में रहने के कारण कृष्ण शक्ति के रूप में लक्ष्मी, श्री, नीला आदि के स्थान पर गोप्तिनी राधा की ही प्रधानता देते थे।

परमतत्त्व भावान् श्रीकृष्ण आदि से चिन्तनीय न होने पर भी मन्त्रों के वश ही उन्हीं की कृपा से चिन्तन योग्य सुचिन्त्य विग्रहधारण करते हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ राधा की भी वभिन्न भाव से उपास्य के रूप में स्वीकृत किया गया और कुल रूप की उपासना की गयी। परन्तु कुल उपासना के साथ भावान् की माधुर्य तथा प्रेम शक्तिरूपा राधा की उपासना पर अधिक जोर दिया गया। राधा की कृष्ण की मूल प्रकृति तथा बाह्यदिनी शक्ति कहा गया है जिसके स्वरूप का विवेचन इस सम्प्रदाय के शास्त्रीय ग्रन्थों में विशेष रूप से किया गया है। निम्बार्कचार्य ने राधा की "कुलम सीमा" माना है अर्थात् उनका स्वरूप कृष्ण के कुलम ही है। जिस प्रकार कृष्ण सर्वेश्वर हैं उसी प्रकार राधिका भी सर्वेश्वरी हैं। राधा कृष्ण के साथ हैं और उनका सम्बन्ध अपृथक् है। निम्बार्क ने प्रेम प्रकाशिनी राधा की श्रीकृष्ण की वामांग विहारिणी बताया है। उन्होंने "दशस्तोत्री" के पाँचवीं श्लोक में लिखा है :-

\* को तु वामे वृणभानुना मुदा विराज्जानामनुस्मसीकाम् ।

सखीसतल्लैः परितिवितां सदा स्मरन् देवीं सकलैष्ट कामवाम् ॥

अर्थात् वृणभानु नन्दिनी। राधिका । देवी को स्मरण करता हूँ जो कुलम सीमा के रूप में । कृष्ण के। बायें कां में जानन्द से विराज रही हैं, जो हजार सखियों के द्वारा सदा परितिविता होती हैं और जो सारी मनःकामनाएं पूरी करती हैं। "

संपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली श्रीकृष्ण के वामांग

विराजित तथा सहस्रों चक्षियों से शक्ति उन श्री राधादेवी की स्तुति कृष्ण के साथ करने से प्राप्त होता है कि श्री निम्बार्काचार्य ने कुंत उपासना के साथ भावान् की माधुर्य तथा प्रेम शक्ति रूपा राधा की उपासना पर विशेष बल दिया क्योंकि वे राधा ही सकल कामनाओं की पूर्ण करने वाली हैं। पुरुषोत्तमाचार्य ने "दशस्तोत्री" के "वेदान्तारत्नमंजूषा" नामक भाष्य में वृषभानुज्ञेता राधिका के "कुंलम सीमा", देवी "सकलेश्वर कामदा" वादि विशेषणों की श्रुति पुराणादि का उल्लेख करते व्याख्या की है। जिस प्रकार पंचरात्र या पुराणादि में विष्णु की "अनपायिनी" शक्ति का वर्णन है उसी प्रकार यहां वृषभानु नन्दिनी हैं। राधा-कृष्ण की कुंत मूर्ति जिस हजारों चक्षियों के द्वारा परिलेखित होती है वे परिचारिका चक्षियां मन्त्र स्थानीय हैं। वे मन्त्र-गण इस कुंत की "सकलेश्वर काम" की मूर्ति के लिये सदा सेवा करते हैं। गोपी वीर राधा उज्ज्वल रस के मन्त्र हैं। राधिका श्रीकृष्ण से अभिन्न वीर उनके ही समान सौन्दर्य सम्पन्न एवं हर्ष से सुशील हैं। एक ही रस के सागर के दो किण्व के समान वे सौन्दर्य में भिन्न नहीं हैं। राधा कृष्ण की प्राणीश्वरी हैं। डा० राधाकृष्णानन् निम्बार्क सम्प्रदाय के सम्बन्ध में लिखते हैं, "

*In Nimbarka Kṛṣṇa and Rādhā take the place of Narayana and his consort. Bhakti is not meditation ( Upasana ) but love and devotion. " 1.*

निम्बार्काचार्य ने राधाकृष्ण के बारे में "प्रातःस्मरणस्तोत्र" में लिखा है वीर कृष्णाष्टक तथा राधाष्टक की भी उन्होंने रचना की। उनकी कृष्ण

सम्बन्धी उपासना का स्वल्प रूप प्रकार है :-

“स्वाकती पास्त समस्त दीनयशेन कल्याण गुणी करास्मि ।

अहंगिनं क्रु परं वीर्यं ध्यायेन कृष्णं कृतंदाणं हस्मि ॥”

उनका कहना है कि जो कर्मन्धन से छूटकर नित्य मुक्त

व्यवस्था में रहना चाहता है उसे गंगा-प्रवाहवत् निरन्तर श्रीकृष्ण के सक्ति राधिका की उपासना करनी चाहिये।<sup>१</sup> कृष्ण शिवादि से वन्धित श्री राधाकृष्ण के चरणारविन्दों को छोड़कर अन्य कहीं गति नहीं है।<sup>२</sup>

एक सम्प्रदाय में राधा की एक विशिष्ट स्थान दिया गया है।

श्री सर्वेश्वर जीर राधा हैं के सम्बन्ध में लिखा है”<sup>३</sup> श्री वृन्दावन धाम में सच्चिदानन्द, सक्ति कृष्णेश्वर, अव्यय पुरुष वचिन्तेश्वर परमाधार वामाधिपति सुकम कला क्रु के श्री कृष्ण श्री सर्वेश्वर अपनी वात्स्यादिनी शक्ति श्री राधिका जी के संग वदनिश सुशील हैं। यही श्री राधा वन्ताभुता है, स्वयं श्रीकृष्ण उनकी वाराधना करते हैं, एवम् यै राधा कहलाती हैं। इन श्री राधिका जी के शरीर से ही गोपिया श्रीकृष्ण की महिषिया सखी जी वादि उत्पन्न हुए हैं। ये श्रीराधा जीर श्रीकृष्ण एक सागर एक ही शरीर से छोड़ा के लिये दो हो गये हैं। ये श्रीराधिका जी श्रीकृष्ण की संपूर्ण सनातनी विद्या जीर प्राणों की वधिष्ठानी देवी हैं। दिव्य विन्ध्य श्री नित्य वृन्दावनधाम में एन्ही अपनी वात्स्यादिनी शक्ति श्री राधिका जी के संग श्रीकृष्ण के वदनिश विहार का नाम नित्य विहार एक है।”

१- दशश्लोकी ६

२- दशश्लोकी ८

३- श्री महावाणी प्रकाशक ज्ञानारी विहारिणरण पृ० १८

### कैतन्य सम्प्रदाय में राधा का स्वल्प

कैतन्य सम्प्रदाय में राधा शब्द की अपनी अलग विशेषता है।

कैतन्य सम्प्रदाय में राधा श्रीकृष्ण की वभिन्न रूप स्वल्प कहा गया है :-

“ राधा कृष्ण छै उता एक स्वल्प ।

लीला रूप वास्वादि धीरु दुहु ल्प ॥ ” १

राधा का प्रेम “साध्य-शिरोमणि” कहा गया है परन्तु इसका पाना जीव के लिये कठिन है। राधा का यह प्रेम किसी साधन का फल न होकर “सर्व साध्य शिरोमणि” है। यह नित्य लीला है। गौड़ीय वैष्णव भक्त कवियों ने सही भाव से ही इस नित्य लीला का वास्वादन किया है :-

“ सतीर स्वभाव रूप कल्प कल्प ।

कृष्ण सह निज लीलाय नाह सतीर मन ।

कृष्ण सह राधिकार नै लीला कराय ।

निज केलि छै ताहै कौटि कुं पाय ॥ ” २

कैतन्य महाप्रभु में राधा भाव की भक्ति करने की मिलती है उन्होंने स्वयं राधा- भाव से भक्ति की थी। उनका हृदय अपनी प्रियतम कृष्ण से मिलन के लिये बाधुर रहता था। श्रीकृष्ण प्रेम लीला के विषय स्वल्प हैं और श्री राधिका वाध्य-स्वल्पा हैं। इस विषयात्मक के अवलम्बन से गौलीक-वृन्दावन में होने वाली नित्य लीला में होने-कलने राधा के परिमल में ही सखिया बाधुर ही दिखाई देती हैं।

१- कैतन्य चरितामृत १।४।५

२- कैतन्य चरितामृत २।५।१६७-६८



वैतन्य सम्प्रदाय में परकीया भाव की प्रमानता है। सन् १७३१ ई० में श्री राधा मोहन ठाकुर की एक फन लिखा गया जो विश्वभास्ती द्वारा प्रकाशित "विठ्ठलजी समाज कि" द्वारा माया में प्रकाशित हुआ है इसी संज्ञात के परकीया भाव और कृष्ण मंडल के स्वकीया भाव पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है।

### श्रीकृष्ण की मुख्य तीन शक्तियाँ -

भगवान् वचिन्त्याकार कान्त शक्तियों से युक्त हैं। श्रीकृष्ण की उनमें से तीन शक्तियाँ प्रधान हैं :-

१- विच्छक्ति

२- जीव शक्ति

३- माया शक्ति

जिनकी कान्तरंगा तटस्था और बहिरंगा भी कहते हैं। वैतन्य चरितानुगत में बताया है :-

कृष्णोर कान्त शक्ति ताते तिन प्रधान ।

विच्छक्ति, माया शक्ति, जीव शक्ति नाम ।

कान्तरंगा, बहिरंगा तटस्था कहि जाँरे ।

कान्तरंगा स्वल्प शक्ति समार उपरि । " १

श्रीकृष्ण की स्वल्प है। उनकी कित् स्वल्प विच्छक्ति सदा श्रीकृष्ण स्वल्प में ही कही होने के कारण स्वल्प शक्ति भी कही जाती है। जीव शक्ति के पहारे तीला है पुरुषात्म श्रीकृष्ण कान्तरंग सीला करते हैं इसलिये यह कान्तरंगा भी कहलाती है। श्रीकृष्ण की जीव शक्ति के कान्त जीव कंस हैं। जीव शक्ति कान्तरंगा विच्छक्ति और बहिरंगा माया शक्ति



इसके कारण भावान् स्वयं ज्ञानन्द का अनुभव करते हैं तथा दूसरों को ज्ञानन्द प्रदान करते हैं।

मणि कण्ठों में वैदूर्य मणि का दृष्टान्त उस सम्बन्ध में दिया जाता है। जिस प्रकार एक ही वैदूर्य मणि नील पीत वादि त्रिविध रूप धारण करती है उसी प्रकार त्रिविध रूपों में विभक्त होकर स्कामराशक्ति तीन रूपों में धारण करती है।

### श्री राधा का स्वल्प-

ह्लादिनी का सार है श्री । श्री क्रमः क्रीडा शीत शीत स्नेह, मान, प्रणय, राग, कुराग भाव तथा महाभाव नाम को प्राप्त होता है। महाभाव मोदन और मादन भी है श्री प्रकार का है। महाभाव की चरकम अर्ध अवस्था का नाम है - 'मादनाल्य महाभाव'। अर्थात् श्री का परम सार मादनाल्य महाभाव है। उस मादनाल्य महाभाव की साक्षात् मूर्ति श्री राधा की है अर्थात् श्री राधा की मादनाल्य महाभाव की मूर्ति विग्रह है। यह मादन महाभाव एक मात्र श्री राधा में ही अभिव्यक्त है यहां तक

१- ह्लादात्मापि यथा ह्लादते ह्लादयति च सा ह्लादिनीशक्तिः ।

तत्तत् प्राधान्येन स्फूर्तिः तद्वत्पुनः स्वस्या वैदूर्यवत्प्रतीयते। नृसिद्धान्तरत्न पृ०४० चरस्वती पृ०

२- कृष्ण के बाह्यादि तात्तै नाम ह्लादिनी। ऐह शक्ति द्वारे सुख वास्वादि वापती। सीरीज-२०१०

सुख रूप कृष्ण को सुख वास्वादिना। मन्त्र गणी सुख दितै ह्लादिनी कास।

ह्लादिनी सार वह सार श्री नाम। ज्ञानन्द चिन्मय सः श्रीर वात्मान ।

श्रीर परम सार महाभाव जाती। ऐह महाभाव रूप राधा ठहरानी।

महाभाव चिन्तामणि राधा स्वल्पा। तत्तितादि सहीतार काय ब्रूह रूप ।

अर्थात् श्रीकृष्ण को ज्ञानन्द देने से ही उस शक्ति का नाम ह्लादिनी शक्ति है। उसी शक्ति के द्वार पर श्रीकृष्ण सुख का अनुभव करते हैं। यही शक्ति भक्तों को सुख देने में समर्थ है। ह्लादिनी शक्ति के भी सार तत्त्व का नाम श्री है, जो कि ज्ञानन्द चिन्मय सः युक्त है, श्री के भी परम सार को महाभाव कहते हैं, यही महाभाव श्री श्री सः ही राधा ठहरानी है। महाभाव चिन्तामणि रूपी, राधा का स्वल्प है, सः तत्तितादि नित्य सखियां उनकी काय ब्रूह रूप है।

कि स्वयं भवान् कृष्ण में भी उसका प्रकाश नहीं है। उस महाभाव के सम्बन्ध में सर  
 भण्डारकर लिखते हैं, " "Krisna has three powers : the internal which  
 is intelligence, the external which generates appearances and  
 the differentiated which forms the Jiva, or individual soul.  
 His chief power is that which creates dilatation of the heart,  
 or joy. This appears to be the power of love, when this love  
 becomes settled in the heart of the devotee, it constitutes  
 Mahabhava, or the best feeling. When love attains to the  
 highest pitch, it constitutes itself into Radha, who is the  
 most loveable of all and full of all qualities. She was the  
 object of the highest love of Krsna, and being idealised as  
 love, some of the agreeable feelings of the heart are considered  
 her ornaments." १

श्री राधा ही प्रेम की बहिष्ठात्री देवी नित्य नव किशोरी  
 हैं। वे श्री कृष्ण की प्रेम सेवा में रत रहती हैं। श्री कृष्ण के मन में जो ऐसी भावना रहती  
 है तब ही राधा उसकी पूर्ण करती हैं। श्री राधा गोविन्द के सर्वविध आनन्द की सम्पा-  
 दित करती हैं। श्री राधा बसो इस गुण से, सौन्दर्य मार्दुर्य से तथा विलास वैभवादि से  
 श्री गोविन्द को जो प्रकार मोहित करती हैं। श्री राधा गोविन्द की सर्वस्व हैं। वे श्रीकृष्ण

१- Collected works of Sir R.G. Bhandarkar Vol.IV p.120.

२- कृष्ण के कराय स्वाम रत भवमान ।

निरन्तर पूर्ण की कृष्णोर सर्वकाम ॥

चैतन्य चरितामृत २-५-१४१

की कान्ताओं में सर्वश्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण की वांछाओं की पूर्ण करना ही उनकी वाराधना है। कतख पुराणों में उनका नाम "राधिका" कहा गया है :-

" कृष्णवांछाः पूर्तिकरे वाराधने ।

कतख राधिका नाम पुराणे व्याख्यान ॥ " २

वानन्दधन श्रीकृष्ण की भांति ही राधिका महाभावधनस्वरूपा है। उनकी वैशम्पैय्यादि सब कुछ कनीभूत महाभाव द्वारा वदित है।

श्री राधा जी सर्वशक्ति गरीबों की एवं पूर्ण शक्ति हैं :-

श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं और श्रीराधा पूर्णशक्ति हैं। शक्ति एवं शक्तिमान में भेद भी है और वीर भी। श्री राधा जी और श्रीकृष्ण जैसे रूप से दोनों एक ही स्वरूप हैं। सीखा स्वात्पादन के लिये वे केवल दो स्वरूपों में बनादि जाते हैं विराजमान हैं। श्री राधा जी हलादिनी के मूर्ति विग्रह रूप से पूजा स्वरूप में सीखा स्वात्पादन कराती हैं।

कृष्ण राधा के वस्तुतः :-

श्री राधिका जी मैं जगदीश्वर कृष्ण की मोह स्त्रा है। कल्पित वे सर्वेश्वरी हैं। यह प्रेम सांगी नहीं है। राधा प्रेम के वश मैं होकर समस्त शक्ति ऐश्वर्य माधुर्य के आधार पूर्णतम तत्त्व श्रीकृष्ण नाच रही हैं :-

१- गोविन्दानन्दिनी राधा गोविन्दमोहिनी । गोविन्द सर्वस्व सर्वकान्ता-शिरोमणि॥

कैतन्य चरितामृत १-४-७९

२- कैतन्य चरितामृत १-४-७९

३- जगदीश्वर कृष्ण तांदार मोहिनी । कतख स्मृति परा ठाकुराणी ॥

कैतन्य चरितामृत १-४-८२

" पूर्णानन्दमय वामि, चिन्मय पूर्णं तत्त्व ।  
 राधिकार प्रेम वामाय कराय उन्मय ॥  
 ना जानि राधार प्रेम जाहि कत मत ।  
 वे वेत वामारे करे सव्वेदा विस्तृत ।  
 राधिकार प्रेम-मूरु, वामि शिष्य-नट ।  
 सदा वामा नाना सत्ये, नाचाय उद्वह ॥ १९

श्री राधा कृष्ण गत जीवना है :-

भावतु प्रेक्षणी गुण का कभी भावान् से व्यवधान नहीं होता क्योंकि वे महाशक्ति रूपा हैं और वे भावद्वाम में अवस्थान करती हैं। भावान् जब किसी चीज़ा करते हैं वेही ही चीज़ा का विस्तार अपनी स्वामी की अनुभूति हीकर करती हैं। वे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी का अनुसन्धान नहीं करतीं। उनके मूल में श्रीकृष्ण कथा, कौनों में श्रीकृष्ण हवि, नासिका में श्रीकृष्णार्ण, कुन्ध तथा अवर्णों में श्रीकृष्ण की मधुर वंशी ध्वनि ही सर्वदा स्फुरित होती है।

१- कैतन्य चरितामृत १-४-१०६-१०८

२- कृष्ण नाम गुण यश अवतंस काने । कृष्ण नाम गुण यश प्रवाह वकी ॥ २-८-१४०

कृष्ण के कराय स्थान स मधुपान । निरन्तर पूर्ण करे कृष्णोर सर्वकाम ॥

कृष्णोर विशुद्ध प्रेम रत्नोर बाकर । अनुपम गुण गुण पूर्ण कतिवर ॥

कृष्ण मयी कृष्ण वार भीतर बाहिर । याता यातां नैव फे तांता कृष्ण स्फुरे ॥

कैतन्य चरितामृत १-४-१०३

श्री राधा मूल कान्ता शक्ति है :-

श्री राधिका और कृष्ण स्वल्पाः एक हैं परन्तु जोरारस  
मुष्टि के लिए श्री राधा में प्रेम का सर्वातिशायी विकास है। श्रीकृष्ण की कण्ठ रस  
स्वल्प है श्री राधा की ही कण्ठ रस वस्तुता है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण स्वयं भावान् हैं  
उसी प्रकार श्री राधा स्वयंशक्ति स्वल्पा हैं स्वं मूल कान्ता शक्ति हैं। कण्ठ की लम्पी-  
गण, हाँका की महिणीगण और भावत् स्वल्पा की कान्तागण श्री राधा जी की  
रस स्वल्पा हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण की कान्त रस वैचित्री स्वं कान्त भाव वैचित्री के  
कान्त भावत् स्वल्प मूर्तस्व हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण की कान्ता स्वल्प श्री राधा जी की  
कान्ता रस वैचित्री स्वं भाव वैचित्री की कान्त भावत् स्वल्पा की कान्तरं मूर्तस्वा हैं।  
श्री राधा जी मूलकान्ता शक्ति हैं स्वं सर्वशक्तियों की अधिष्ठात्री हैं। वे समस्त सौन्दर्य  
माधुर्य कान्ति की मूल आधार हैं। श्री राधा की जीव गौत्वामी ने श्री श्रीकृष्ण की  
स्वल्प शक्ति की मूर्तिकारिणी और समस्त गुणों तथा सम्पदाओं की अधिष्ठात्री माना है।

१- कृष्ण और चतुर्विध ऐश्वर्य ।

तार अधिष्ठात्री शक्ति सर्वशक्तित्वपूर्ण ।

सर्व सौन्दर्य कान्ति वैष्णवे जाहाते । सर्व लम्पी गुणों शोभा सब जाँस हैते ॥

कैतन्य चरितामृत १-४-७८-७९

२- परमानन्द रूप तस्मिन् गुणादिवम्पत्तज्ञानान्त -

शक्ति वृत्तिका स्वल्प शक्तिः तिथा विराजते तदन्तरि नभिव्यक्त निजमूर्तित्वेन

तद्वहिरभाभिव्यक्त लक्ष्मणात्ममूर्तित्वेन। ज्यं च मूर्तिमती सती सर्वगुण सम्पदधिष्ठात्री

भवति। प्रीति सन्दर्भ १२० ।

दूसरी कान्ताओं का विस्तार स्त्री कृष्ण कान्ता शिरोमणि राधिका से हुआ है।

कृष्ण कान्ताएं तीन प्रकार की हैं - लक्ष्मीगण, महिष्मिगण तथा ललितादि कृष्णान्ता-  
गण। उनके स्वस्व का विवरण इस प्रकार है :-

“ लक्ष्मीगण तार वैभववितासांशस्व ।

महिष्मिगण वैभव प्रकाश स्वस्व ॥

वाकार स्वभाव भै कृष्ण देवीगण ।

काय व्यूह स्व तारं स्तर कारण ॥ ” १

इस का उल्लास बहुकान्ता में होता है जलधि राधिका  
कृष्ण की कान्ता विभिन्न लीला वास्वादन तीन प्रकार के बहुकान्ता के रूप में कराती  
है।

श्री राधा कृष्ण से लभिन् हैं :-

श्री राधा कृष्ण कौन रूप है एक ही स्वस्व एक ही वात्मा  
हैं केवल लीला इस वास्वादन के लिए वे भिन्न स्वस्व में विराजित हैं।

“ राधा पूर्णशक्ति कृष्ण पूर्ण शक्तिमान् ।

दुःखस्तु भै नाहि शास्त्र परमाण् ॥

प्राप्त, तार गन्ध भै विविध ।

वग्नि-ज्वालाते भै नाहि कसु भै ॥

राधा कृष्ण है तदा एक स्वस्व ।

लीला इस वास्वादिती परे हुए रूप ॥ ” २

१- कैतन्य चरितामृत ।

२- कैतन्य चरितामृत १-४-२३-२५



श्री राधा में नरम प्रेम की बहिष्कृति भी होता उस की पुष्टि के लिए ही है। कृष्ण मयी राधा में वात्सल्य की इच्छा नहीं, प्राण प्रेम श्री कृष्ण को सुखी करने के लिए ही वे प्रेम झीड़ा में विभोर हैं।

### प्रेम का स्वस्म-

राम रामानन्द ने महाप्रभु की एक पद सुनाया था उसी राधा कृष्ण के यथार्थ प्रेम के स्वस्म का वाचास मिलता है। वह पद इस प्रकार है :-

“पहितहि राग नयन मां पैल ।  
 कुदिन नाठत नहि कधि ना पैल ।  
 ना ली रमण ना हाय रमणी ।  
 दुहुं मन मनीषन फैल जानि ।  
 र वसि है सब प्रेम काफिली ।  
 कानुठाये कहयि विहोरु जानि ॥  
 ना लोचन दुती ना लोचन जान ।  
 दुहुं कैरि मिली मध्यत पांच बाण ।  
 जब सैर विराग दुहुं पैल दुती ।  
 सु-मुरुण प्रेम सैर सीति ॥

दोनों के शरीर और वात्मा की जब बहिष्कृति का ज्ञान उदय होता है तभी प्रकृत प्रेम उत्पन्न होता है और ऐसी दशा महाभाव में ही हो सकती है। श्री राधा स्वयं महाभाव स्वस्मा हैं, इसलिए उनके और श्रीकृष्ण के विलास में पुरुष

स्त्री भक्त का ज्ञान ही नहीं रहता। दोनों एक रूप ही जाते हैं।

### राधा कृष्ण की युक्त उपासना-

श्रीकृष्ण परम-स्वतन्त्र पुरुष हैं परन्तु वे प्रेम के बशीभूत हैं। जिस फल में प्रेम का जितना विकास होता है श्रीकृष्ण उनके हृदय ही वश में होते हैं। श्री राधा में प्रेम का सर्वाधिक विकास होने के कारण श्रीकृष्ण उनके सर्वाधिक वश्य हैं। राधाकायि गोपियां-जाति-कुल-शील-मान-स्वजन-परित्यज सकल तिलांजलि दे श्रीकृष्ण सेवा में रत रहती हैं। ऐसी निष्काम प्रेम का प्रतिदान श्रीकृष्ण भी नहीं दे सकते स्वस्ति व उनके चिरकृपा हैं श्री राधा स्वीकृती प्रेम्णा हैं और उनका प्रेम भी सर्वाधिक है। राधा के प्रेम से श्रीकृष्ण के माधुर्य का विकास होने के कारण महामाव स्वरूपा श्रीराधा जब उनके साथ रहती हैं तब श्रीकृष्ण में माधुर्य का हतना अधिक प्रकाश होता है कि मदन तक मोहित हो जाता है। वैष्णव वाचार्थी ने स्वस्ति राधा कृष्ण की युक्त उपासना की ही परम साध्यवस्तु और श्री राधा कृष्ण तत्त्व की ही समस्त तत्त्वों का सार माना है।

मादनास्य महाभाव स्वरूपा श्रीकृष्ण कान्ता शिरोमणि श्री कृष्णभानु नन्दिनी राधा कृष्णशक्ति स्वं कृष्णमूल कान्ता शक्ति हैं। वे सर्वशक्ति गरीयसी हैं। उनका श्रीकृष्ण प्रेम सर्वातिशायी होने के कारण मावान् श्रीकृष्ण भी उनके परमाधीन हैं।

१- एक प्रेम कूल्य ना पारै भक्ति ।

कतख कणी हय कौ भागवती ॥

वैतन्य चरितामृत २-८-७०-७१

### हरिदासी सम्प्रदाय में राधा का स्वल्प

स्वामी हरिदास जी ने राधा कृष्ण की युगल उपासना का सही भाव से प्रचार किया। स्वामी हरिदास जी ने निकुंज विहारी विहरिणी की ही कृपा बाराध्य माना है। उनकी "कैलि मात" क्रीड़ा की माता है। हरिदास जी के स्वामी श्री वृन्दावन नव निकुंज मंदिर में निरन्तर नित्य विहार करने वाली श्री श्यामा वीर उनके प्राण जीवनधार श्री श्याम हैं। इसे प्रतीतशीता है कि बाफली कैलिमात की लीलायें कृष्ण की लीलाओं से भिन्न सभी निकुंज लीलायें हैं। प्रेम में यहाँ सखियाँ का प्रेम युगल सरकार के प्रेम से भी ऊँचा है। उनकी राधिका वीर कृष्ण कृष्ण विहारी नहीं निकुंज विहारी हैं। उनका प्रेम विशुद्ध वीर उज्ज्वल है जिसमें न काम है, न मल है न मैथुन है :-

“ नित्य देह विदरत बन माहीं ।

जके मन मैथुन कुछ नाहीं ॥ ”

कोटि कोटि मन्मथ जिनके स्वरूप को देखकर मूर्च्छित हो जाते हैं वे श्रीकृष्ण काम के वश नहीं बलित उज्ज्वल प्रेम के वशीभूत हैं। रसिकों का जीवन युगल किशोर की लीला ही है।

स्वामी हरिदास जी रसिक शिरोमणि कहे जाते हैं। स्वामीजी के इस सिद्धान्त कृपा स्वीकार के भाष्यकार श्री स्वामी विहरिन देव जी हुए जी कि स्वामी विद्वत् विपुल देव जी के शिष्य थे। उन्होंने सखियों में सिखाया है कि श्री राधा जी का न तो जन्म होता है वीर न वृत्तध्यान ही :-

“ जामें मरे न वीहरे रुठे नहिं कहें पाव ।

विहारीदास भग्नो लाडिली ता लाडिलीहि लडाव ॥ ”

१- इस रसिक को इस पान है इसहि मौज मौज ॥

श्री ललिता किशोरी देव जी

वर्थात् जिस देश में न स्वामिनी जी का प्राकट्य होता है,  
न वन्दार्थित होती है, न रुना ड, न वृन्दावन निकुंज लीलाओं के वतिरिक्त अन्य  
लीलाओं में जिनका गमन है ऐसी हमारी स्वामिनी हैं। उनके लाल लड़ाकू के में भी लाड़ला  
ही रहा हूँ।

स्वामी विहारिन देव जी ने श्री स्वामिनी जी के स्वरूप  
के सम्बन्ध में लिखा है :-

“ कौज साधारण कौज व्यभिचारी ।

कौज जन्य धरे कृत मारी ॥”

वर्थात् प्रथम साधारण स्वकीया है द्वितीय व्यभिचारी  
परकीया है तौर तृतीय वे हैं जिनका जन्य कृत है जो स्वकीया परकीया दोनों से भिन्न  
निकुंज विहारिणी हैं। विहारिन देव जी उनकी ही कृपा उपास्य वाराज्य मानते हैं।

उन्होंने अपने उपास्य की वीर से स्पष्ट रूप से निर्देश करते  
हुए लिखा है :-

“ कैस दारु ड्रव करिबारी ।

सण्ड सण्ड पासण्ड विहारी ॥

राजैस रस राज समारी ।

सुण वरणत श्री हरिदास दुलारी ॥

वृन्दावन रस सिन्धु वपारी ।

सक्त धामधामी कतारी ॥

विपुल विनोदनि पर बलिहारी ।

श्री ल्हारी ल्हारिदास तुम्हारी ॥” १

१- श्री विशेश्वर शरण श्री विहारी जी का कीचा वृन्दावन के संग्रहालय की सं० १८१८  
की प्रति से उद्धृत। चै. १४.१५

हरिदासी सम्प्रदाय में श्रीराधा जी को स्वकीया और परकीया से रहित श्री वृन्दावन नित्य निकुंजेश्वरी श्रीराधा को आराध्य माना है। वे नित्य निकुंज में सतत विराज रही हैं। भावत रसिक जी ने इस भावना का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है :-

\* कौड स्वकीया कौड परकीया, कल्प कियो मतवादि ।

जीरी भाक्त रसिक की, नित्य जन्त ज्वादि ॥

नित्य जन्त ज्वादि लोक से रीति विलक्षण ।

श्रुति स्मृति विलाय केतु अनुभव के सन्नाय ।

सख प्रेम माधुर्य रसत कुरागे दीक ।

सखिता सखी प्रयास बिना तहां जात न दीक ॥ ।

वे इतनी सुकुमार हैं कि उनके लिए कौला भी भार स्वल्प हैं :-

\* दीक गीवरयाफी दीक धीवे पाय ।

दीक सुहागित लाड़िली कौला हू जत्ताय ॥ \*\*

वे नित्य विहारिणी हैं। श्री वृन्दावन में वे सदा विहार करती हैं। वे जन्म नहीं लेती। हरिदासी सम्प्रदाय में श्री राधा और श्रीकृष्ण जी को समान ही बताया है। दोनों ही एक प्रेम के दो स्वल्प हैं :-

\* श्री नित्य विहार कन्थां ।

विहारा एक प्रान तित्थां ॥

हूय कुटी श्रीकृत णिन णिन मां ।

संतत वास कस्त वन वन मां ॥ \*\*\* १

१- श्री विशेश्वर शरण श्री विहारी जी का लीला वृन्दावन के संग्रहालय की सं० १८१८ की प्रति से उद्धृत पृ० ३३ चीमिला ४४

हरिदासी सम्प्रदाय की राधा की कोई बराबरी नहीं कर  
सकता। विशालम्ब की लिखित है :-

\* की सरि कर हमारी राधा ।

अपि नाम महात्म सैवत वीर कस ना रस में पाधा ॥ \*\* १

श्री स्वामी हरिदास जी की इष्टदेवी श्री राधा न स्वीया  
हैं न परीया बलि दोनों एक ही तत्व हैं। भिन्नत्व होते हुए भी दोनों में समत्व है।  
एक होते हुए भी दोनों युग्म हैं वीर युग्म होते हुए भी दोनों एक हैं। दोनों में समान  
सौन्दर्य, समान वात्सल्य, समान गुण गरिमा, समान ऐश्वर्य, समान वस्त तथा समान ही  
झिजा कलाप हैं। वह अनन्य स्यात्मक प्रेमाभक्ति के वाक्य स्यामा स्याम की निरुल्लेखीड़ा  
सर्वदा से चली बाई है वीर चली रहती। वे दोनों स्वयं सत्त्व रूप हैं। श्री राधावीर  
दृष्टि की जोड़ी पहल भी थी वह भी ऐश्वर्य है वीर भविष्य में भी रहती। दोनों की  
किशोर वस्त है। दोनों की सौन्दर्यता धन-दामिनी के समान है। स्वामी हरिदास जी  
कैलियास में लिखित है :-

\* माई री सल्ल जीरी प्राट भई रंग की गौर स्याम धन दामिनी सै।

प्रम हूँ छूती कस बागेहूँ रहिई सैं। न चरिहैं सैं।

कां कां की ऊरीर सुयराई कुराई सुन्दरता सैं ।

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, कुंविहारी सम कस सै ॥ \*\* २

श्री राधा वीर दृष्टि का नित्य समान स्वरूप है। जहाँ भिन्नता  
होते हुए भी सत्ता है वीर सत्ता होते हुए भी समानता है। किशोर किशोरी का प्रेम

१- श्री विशेश्वर शरण जी श्री विशारी जी का कबीरा मृन्दावन के संज्ञालय की सं० १८१८

की प्रति से उद्धृत । पृ० १२३ पं ३८

२- कैलियास - स्वामी हरिदास १

नित्य एक एक और सख है। प्रिया के समस्त लीला विद्यास प्रियतम के हेतु हैं प्रियतम भी वही करता है किमें प्रिया को सुख प्राप्त हो।

श्री राधा का परमोज्ज्वल स्वरूप है। उनमें असीम गुणों की सीमा है। उनकी सभी विलक्षणता सुलक्षणता है। श्री राधा जी के स्वरूप को देखकर देवांगनारं तक मोहित हो जाती हैं। श्री राधा का ऐश्वर्य महान् है। उनका सौंदर्य महान् है। श्री राधा की शोभा आश्चर्य है। करोड़ों ब्रह्माण्ड भी राधिका की यश श्री से परिपूर्ण हैं। स्वामी हरिदास जी की राधा उपासना सम्प्रदाय वाद से परे की वस्तु है। हरिदास जी ने राधा की उपासना को अतीविक्रता से भी उठाकर जाम्य गति तक पहुँचा दिया है। यहाँ पर पूर्ण तन्मयता, एक स्वल्मता और समानता है स्वर्णिम उस तत्त्व की समझना कठिन है। श्री स्वामी जी की परमोज्ज्वल भावना, लोक परलोक की गति और कमीय कामना यह है कि "वह अखिल ब्रह्माण्ड में न किसी वस्तु को देखें न वस्तु को जानें, न किसी को स्नेह करें। उनका बस प्यारे की भावना श्रीराधा और भावती के प्यारे श्रीकृष्ण

१- भूतीं सन देखि देखि ।

बच्छ किन्नर नाग लीक,

देव सिद्ध रहीं भुवि देखि देखि ।

कल्ल परस्पर नारि नारि सी,

यां सौंदर्यता करेसि देखि ।

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, कैसहुं चितवै ये परेसि परेसि ॥

२- भूतीं सन देखि देखि, बच्छ किन्नर नाग लीक ।

देव सिद्ध रहीं भुवि देखि देखि । कल्ल परस्परनारि नारि सी॥

यह सौंदर्यता करेसि देखि । श्री हरिदास के स्वामी स्यामा॥

कैसहुं चितवै ये परेसि परेसि ॥ "कल्लिगत"

विहारी है ही अनिष्ट सम्भव है। वे ज्ञान भर को भी स्वर उधर न होंगे उनके नेत्र  
निश्चायकर सर्वदा श्री कुल इति धर ली रहे। उनका मन एक एक होकर श्री श्यामा  
श्री विहारी की नित्य निकल केति कीड़ा में ला रहे।”

१- ऐसे ही देखा रहीं जन्म सुख करि मानी ।

प्यार की भावती के प्यार,

कुल किशोरि जानी ।

जिन न टरों पल हीं न ला उत ।

रहों एक ही तानी ।

श्री हरिदास के स्वामी श्यामा,

श्री कुल विहारी मन रानी ॥

कैलास



### राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा का स्वल्प

हित हरिवंश जी ने अपनी ग्रन्थों में जी राधा के स्वल्प का निर्धारण किया है उसे "एक रूप" कहा है। जिस दिव्य वस्तु को "नैति नैति" कहा जाता है और अनिवर्त्तनीय स्थिर किया गया है उसे ही हरिवंश जी ने "राधा" तत्त्व कहा है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में युक्त उपासना का महत्त्व है। इसमें कृष्ण की अपेक्षा राधा की भक्ति को विशेष महत्त्व देते हुए राधा कृष्ण प्रेम के संयोग पद को ही लिया है। कृष्ण की अपेक्षा की राधा रानी की पूजा तथा भक्ति को उन्होंने अधिक महत्त्वशालिनी तथा शीघ्र फलदायिनी बताया है। इस मार्ग में कृष्ण की अपेक्षा राधा का ही गौरव, सम्मान तथा भक्त अधिक है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हरिवंश जी नित्य विचारिणी श्री राधा को ही अपना उष्ट मानते हैं। उनका कथन है :-

“प्रेम्याः सन्धुरोज्ज्वलस्यहृदय शृंगार तीला कला ।

वैकिरी परमावधिर्मवतः पुन्यैव कापीरला ।

लेशानी च श्वी महाशुत तनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा

श्री वृन्दावन नाथ पट्टमहिणी राधैव देव्या मम ॥ ”

अर्थात् जी मधुर और उज्ज्वल प्रेम की प्राण स्वल्पा, शृंगार तीला की विभिन्न कलाओं की परम अवधि, भवान् श्रीकृष्ण की वाराधनीया कोई अनिवर्त्तनीया शासन करी है। जी ईश्वर रूप श्री कृष्ण की श्वी हैं तथा परम सुखमय वसु धारिणी परा और स्वतन्त्रा शक्ति हैं। वे वृन्दावन नाथ श्री लाल जी की पट्टरानी श्री राधा ही मेरी देव्या वाराधनीया हैं।

राधा सम्बन्धी यह मान्यता राधावल्लभ सम्प्रदाय की अपनी है। राधा के इस स्वल्प की उपासना को 'सौपासना' शब्द से व्यवहृत किया गया है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में वात्सल्य श्री कृष्ण न होकर श्री राधा है। राधा की उपासना करने वाला ही सच्चा रसिक है। यह रसिक समाज स्वमुख से सर्वथा रहित होता है। रसिकता जिस भाव का चिन्तन अभी मन में करता है वही उपास्य तत्त्व कहा जाता है। प्रिया प्रियतम की रति क्रीड़ा को सम्पन्न कराने में योग देना, निजुल रत्नों में से वही कहे वृत्त होना और उसके निरन्तर चिन्तन करना ही उपास्य भाव है जो हस्वरी को ही सुलभ होता है। राधा की समस्त वैष्टार्थ माधव को रिक्ताने और प्रसन्न करने में हैं तथा माधव व राधा के प्रसन्न और आनन्द की वैष्टा करते हैं। इस मत का प्रेम सम्बन्धी सिद्धान्त है कि वात्स्य विषय के बाद ही दूसरे की दृष्टि संभव है। श्री हित हरिवंश जी ने 'हित चौरासी' के प्रथम पद में इस सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए बताया है कि राधा कृष्ण एक ही प्रेम तत्त्व के दो किन्नर हैं। क्रीड़ा या विलास के लिये दो रूप धारण कर लेते हैं। यथार्थ में राधा कृष्ण एक ही तत्त्व के दो दृश्यमान रूप हैं तो एक दूसरे के प्रसन्न प्रमुदित करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

जो उही क्षुदिन राधा का नाम का उच्चारण करती है उसके चरणों में कोटि कोटि सिद्धियाँ लौटती रहती हैं :-

\* क्षुत्स्थानन्तानपि क्षमराधान्धुपति-

महाप्रेमाविष्टस्तव परमैव विमृशति ।

तवैकं श्री राधे गृणत त्व नामामृत रसं

महिम्नः कः सीमां स्पृशति तव वास्यैकमनाम् ॥ \* १

राधा नाम का संकीर्तन परा विद्या की कीटि में परिष्णिता किया जाता है। काशिन्दी तट के निभृत निरुं मन्दिर में विराजमान होकर भावान् कृष्ण स्वयं योनीन्दी के समान राधा की वर्ण ज्योति के ध्यान में लीन हो राधा नाम का जप करते हैं। भक्त देवता और साधक राधा नाम के जप से सब प्रकार के बंधनों से छूटकर मुक्ति सुख प्राप्त करते हैं। राधा का नाम कीटि कीटि मौजा सुखों से बढ़कर वानन्द सुख की वर्णा करते जाता है। श्री हरिवंश जी ने राधा स्मरण के बारे में श्रुति कहा की भी बन्द करने का वादेश दिया है। उन्हें केवल से भी भ्रम प्रतीत होता है। परम पुरुष भावान् के भक्त में उन्मत्त यदि कोई शुक बादि हैं तो रहने दो, हमें उनसे क्या प्रयोजन ! हमारा <sup>मन</sup> तो केवल श्री राधा के फल रूप में ही हुआ रहे यह ही वमिताणा है। श्री हितहरिवंश जी नित्य विचार में लीन श्री राधा का वर्णन करते हुये कहते हैं :-

‘ प्रमानन्द रसक वारिधि महा कस्तूरी माला कुला ।

व्यालीतारुण लीलाचंचल समत्कारेण संचिन्वती ।

किंचित् कैलिकला महोत्सव महोवृन्दाटवी मन्दिर

नन्दत्सुमुत काम वैष्णवी राधा जान्मोहिनी ॥

वृन्दाण्य निरुं सीमनि नव प्रेमानुभाव भ्रम-

वृष्णी तज मोहित भ्रम मणिर्मन्तेक चिन्तामणिः ।

सान्द्रानन्द रसामृत स्वमणिः प्रीदाम विधुल्लता

कीटि ज्योतिरुदेति कापि रमणी ब्रह्ममणि मोहिनी ॥ २

पुराणादि ग्रन्थों तथा अन्य साम्प्रदायिक वाणियों में राधा की कृष्ण की

बाराधिका बताया गया है। राधा का वैसा महत्त्व, स्वल्प, स्थान, पर राधावल्लभ सम्प्रदाय में स्थापित किया गया है वैसा अन्यत्र और कहीं नहीं हुआ। यहाँ राधा कृष्ण-राज्या है। श्री राधा श्याम सुन्दर के रति प्रवाह की छहरियों की बीज है। उस सम्प्रदाय में राधा रानी ही महाशक्ति और स्वामिनी है। भगवान् कृष्ण उनके बाजानुवर्ती हैं। श्री हित हरिश्चंद्र जी ने राधा की ही प्रधान मानने और कृष्ण का ध्यान उनके बाद में करने की बात कही है :-

श्री हित ब्रू की रति कौज साधनि में रू जानै ।

राधहि प्रधान माने पावै कृष्ण ध्याये ॥

श्री राधिका जी ही वृन्दावन के अनन्त प्रेम की विचित्र तीजा प्रवेश करने का एक मात्र उपाय हैं। उनकी कृपा के बिना सारा प्रेम रहस्य व्यर्थ है। राधा वल्लभ गण के लिये श्री राधा ही प्राकृत धाम होकर वरुण वप्राकृत धाम में प्रवेश करने के लिये तरंगी के समान है। उस मत में राधा का प्राधान्य रूप लिया है। उस सम्प्रदाय में राधिका की वानन्द का सिन्धु बताया गया है :-

हित समुद्र हरिश्चंद्र ब्रू हित समुद्र धनश्याम ।

वानन्द सिन्धु श्री राधिका धाम सु वैक नाम ॥ १

डा० जिनयन्त्र साहू ने राधा के सम्बन्ध में लिखा है :- "वास्तविक वर्तों में जिस प्रकार भगवान् की सच्चिदानन्द स्वल्प मानकर उसकी शक्ति का वर्णन किया जाता है और कतिपय वैष्णव सम्प्रदायों में उसी सच्चिदानन्द को ही "छादिनी शक्ति" का राधा नाम से व्यवहार किया जाता है, वैसा "शक्ति" और शक्तिमान का भेद उस

सम्प्रदाय में नहीं है। यहाँ तो राधा स्वयं वानन्द स्वल्प है। निरतिशय वानन्द का नाम ही राधा है। राधा नित्य भाव है। उनका विहार भी नित्य है, रास भी नित्य है। यह भाव किसी माध्य लौकिक कर्म, ज्ञानादि से जगत नहीं होता, ज्ञाः जी ज्ञान कर्मादि संस्पर्श हृत्प कर्तते हैं। केवल प्रेम भाव, स्थित भाव ही राधा के स्वल्प ज्ञान का मार्ग है वह स्वयं राधा भाव का ही नाम है। वह श्रीकृष्ण की उपासिका, वाराधिका नहीं वरन् श्रीकृष्ण की उपास्या, वाराध्या है। वैसे दोनों कीड़ा के लिये प्रिया = प्रियतम रूप हैं, श्रीकृष्ण की एक राधा है और राधा के एक कृष्ण। यहाँ न कोई साधक है न कोई साधना और न कोई साध्य है। दोनों ही " श्री तत्त्व " के रूप हैं। दोनों एक ही। और एक हीकर ही दो बने हुए हैं। परस्पर तात्पुष्टि भाव से स्वास्वादन के लिए नित्य प्रेम सीला करते हैं विहार करते हैं और उसी में लीन हैं। उनका साम्राज्य ही विश्व है। कामना वासना-विहीन नित्य विहार में लीन रहने वाली राधा इस सम्प्रदाय में सर्वांगपरि विराजमान है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण भी दिव्य किशोरी राधा के चरणों में विलीन होकर कृतकृत्य मानते हैं, अतः अनिर्वचनीय इष्ट या साध्य तत्त्व की स्थिति श्रीकृष्ण में न होकर राधा में है। श्री हितहरिवंश जी ने लिखा है, " जिनका रुचिर मयूर पिच्छ श्री राधा चरणों में यत्र तत्र विलीन होता रहता है तथा जो विश्व के लिये महोत्सव है उत्सहित हैं में उन सब धन मोहन मूर्ति श्री हरि श्रीकृष्ण की वन्दना करती हूँ "।

राधावल्लभ सम्प्रदाय की इष्ट वाराध्या हरि वाराधनीया राधा ही है। सत्त्वरी रूप जीवात्मा की प्रबल कामना उसी के रूप दर्शन की कामना है। इस सम्प्रदाय में कृष्ण को " परतत्त्व " न मानकर राधा को परतत्त्व रूप में माना गया है क्योंकि राधा की हुता में कृष्ण का स्थान कम महत्व पूर्ण है। श्रीकृष्ण राधा की चादुकारी और स्तुति करते हैं।

इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को परात्त्व न मानकर राधा को ही परात्त्व तत्व माना है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में लौकिक दृष्टि से राधा स्वीया है परन्तु राधा कृष्ण के नित्य विहार स्थिति में स्वीया परकीया भाव निर्विशेष है। परकीया भाव तो कहाँ एक पक्ष भी नहीं उठता। स्वीया भाव के सम्बन्ध में भी उनकी मान्यता विज्ञात है। राधा सर्वत्र स्वतंत्र अधिष्ठातृ देवी है। उनकी सेवा स्वीया परकीया से परे स्वतन्त्र रूप में है। डा० विजयेन्द्र स्नातक राधा के सम्बन्ध में लिखते हैं, " संक्षेप में चित्तरिक्ता जी की बाराध्या इष्टदेवी राधा परात्पर तत्व श्रीकृष्ण की भी बाराध्या है तथा अन्य वाचार्थों द्वारा वर्णित राधा से भिन्न स्व स्वतंत्र है। वह एक साधारण गौमी नहीं बल्कि स्व की अधिष्ठात्री स्व प्रेम मूर्ति है। वह कृष्णभानु के घर में कृपा परवश प्रकट होती है किन्तु उनकी चरण रज श्रौश्वरादि दुर्लभ तथा स्वार्थी सार सिद्धिदात्री है। उनके लाल लाल से उज्ज्वल प्रेम रसका तथा तावज्य कृपापूर्ण वात्सल्य सार का बन्धुधि प्रवाहित होता रहता है। ये बन्धु माधुर्य साम्राज्य की एक मात्र धूमि और स्व की एक मात्र सीमा है। ये राधा केवल से भी परम गुप्त अनुपम निधि हैं। उनके फनल की लटा की एक किरण से घनीभूत प्रेमाभूत सुन्द की कण्ठ द्वारा प्रवाहित होती रहती है। उनकी चरण कृपा से मुक्ति तुल्य हो जाती है और अस्त विस्त प्राकृत से हो जाती है और समस्त विस्त प्राकृत से हो जाती है।"

श्री हित हरिवंश जी ने " हित चौरासी " में राधा का वर्णन विभिन्न स्थितियों के आधार पर किया है। " हित चौरासी " और स्फुट वाणी के भी अधिकांश पद राधा वर्णन से सम्बन्ध रखते हैं जिनको डा० विजयेन्द्र स्नातक ने तीन भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग में वे पद बताते हैं जिनका सम्बन्ध राधा के नेत्र वदन, कपोल, वदस्थि,

१- राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० २१६ डा० विजयेन्द्र स्नातक

२-

"

"

२११

"

कवर, नाभि, चरण आदि विभिन्न भागों की रूप रूपायि है। दूसरे भाग में वे फल बताते हैं जिनमें राधा की मनःस्थिति का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक शैली से वर्णन हुआ है, तीसरे भाग में वे फल बताते हैं जिनका सम्बन्ध वित्तिय विहार और रास लीला से है। छित चौरासी के राधा की रूप रूपायि का चित्रण के आश्रय से स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रवृत्त करने वाले रूप का आभास दिया है। राधा की सौंदर्य की सीमा बताया है और उसके रूप की समता देव लीला, भूलीक और रसातल में भी नहीं पाई है। माध्य प्रसाधन स्वर्णौष्ठ शृंगार से युक्त राधिका की मदन की भी कभी मुहुटि विलास से जीती वाली बताया है। राधा के नेत्रों की ज्योति और सौंदर्य सामान्य न होकर असाधारण तैव दीप्ति और कानित से पूर्ण है। छित चौरासी में राधा की मनःस्थिति का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक वर्णन करने वाले फल भी मिलते हैं। लौकिक शैली से राधा की मनःस्थिति का वर्णन करके प्रियतम के प्रति कृत रस की वर्णन करने वाले भाव प्रकट किये हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार श्यामा और श्याम दोनों एक प्राण दो हैं हैं जिनमें एक प्राण का भी अन्तर नहीं है। श्री श्याम सुन्दर वाराधक और श्री राधा रानी वाराधक हैं। श्री छिन्न चैक जी ने बताया है कि कृष्ण और राधिका दो देवता हैं। श्याम बिना राधिका के नहीं हैं और बिना श्याम के नाम के राधा नाम भी नहीं है :-

“ श्री हरिश्चंद्र पुरीति गुताजं ।

श्यामा श्याम एक तं गार्जं ॥

दिन एक कहुं न अन्तर होई ।

१- छित चौरासी फल संख्या ५२

२- “ “ ६०

३- “ “ ७०

४- श्री हितामृत सिन्धु पृ० ७ वाराकादास जी

प्राण तु रु देह च दीर्घ ॥

राधा सं किना नहिं श्याम ।

श्याम किना नहिं राधा नाम ॥

दिन दिन प्रति वाराहत रखी ।

राधा नाम श्याम तब कही ।

लज्जितादि कनि सं खु पावे ।

श्री हरिवंश सुख रति नावे ॥ \* ९

जब सम्प्रदाय के अनुसार राधा की वक्तव्या से ही कृष्ण की कृपा मिली के कारण राधा की भक्ति का उच्चतम विधान है। कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के लिये राधिका जी का अनुग्रह अनिवार्य है। राधिका जी सम्पूर्ण तत्वों की सार हैं। कृष्ण ने ही राधा नाम की भक्ति का पार पाने के लिये लोक लीलार्थ की। गौड़ीय सम्प्रदाय में राधा का परकीया रूप है कुमोदन हुआ है परन्तु राधावल्लभीसम्प्रदाय में राधा का स्वकीया रूप है कुमोदन हुआ है। राधा वृन्दावन की रानी और कृष्ण उनके वाञ्छानुवर्ती पति हैं। उनका कभी वियोग नहीं होता। राधिका का स्वकीया रूप देखि ये :-

\* राधिका मोहन की धारी ।

नत शिखर रूप कुप गुन घीमा नागरी श्री वृणधान हुलारी ॥

वृन्दाविभि निरुल भक्त, लज्ज कोटि चन्द उजियारी ।

नव नव प्रीति प्रीति रीति सख किये कुन मिहारी ॥

सुभा सुभा प्रेम सं राधी, कां कां श्याम लिलारी ॥



‘व्यास’ स्वामिनी के फल नश पर, नलि नलि जात रहि नर नारी ॥ १

परन्तु हरिवंश महाप्रभु का कहना है कि परकीया तथा स्वकीया दोनों भाष वपूर्ण हैं। स्वकीया में मिलन है पर विरह नहीं। स्वकीय स्वकीया परकीया की भावना केवल एक देशीय तथा स्त्री की है। वह प्रेम की पूर्णता कहाँ मानती है जहाँ स्वकीया तथा परकीया दोनों का बोध न होकर नित्य मिलन में भी विरह का कुछ नित्य स्थित रहता है। उनकी सम्पत्ति में जिस प्रकार जल से तरंग का बुझकरण वर्तमान है उसी प्रकार राधा से वृष्ण का, चांदरे से गौर के पुष्प करना एक वन वर्तमान है।

वाराणसी के क्षेत्र में ‘राधा वृष्ण’ का संयुक्त स्वरूप बहुत फलित है प्रकृति या परन्तु हितहरिवंश ने राधा की दृष्टिदेवी, वाराणसी देवी तथा उपास्य बना दिया। इस सम्प्रदाय में राधा ही उपास्य है। वृष्ण राधा के वृष्ण से राधा के वृष्ण वृष्ण से वृष्ण की वृष्ण नारी बनती है। वृष्ण भी राधा की पूजा करते हैं। भक्त की भावना में राधा ही पूज्य रहती है। जी राधावल्लभ सम्प्रदाय की वृष्ण देव है।

-----:0:-----

१- भट्ट कवि व्यास जी पृ० ३७१ प्रभु दयालु मीतल

### वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में राधा का स्वल्प

राधा की जादवीं शताब्दी में <sup>५५</sup>बौद्ध का जन्म ही रहा था। बौद्ध विहार राजनीति के कटाई का गये थे तथा भिक्षु और भिक्षुणियों में व्यवहार फैल गया था। तान्त्रिक लोग शक्ति की अपना दृष्ट मान शक्ति धर्म का प्रचार कर रहे थे, उसी समय सिद्धाचार्य तुल्लास ने सहजिया सम्प्रदाय की नींव डाली। पाकेश के समय में बौद्धों के नष्ट होने के उपरान्त "सर्वेश" में वैष्णव सहजिया मत प्रकट हुआ। सिद्धि मुन्दवास ने इसकी नव रसिक धर्म माना है। चंडीवास, विद्यापति और रामानंद उनके पूजाचार्य कहलाये। विल्लमाल, जयदेव, चंडीवास, विद्यापति और कविराज शैल पांच रसिकों में गिने जाते हैं। सहजिया बौद्धों ने वासना और प्रेम की भावद्वय चरणारविन्दों में वार्फित कर दिया। सत्त्वज्ञान गुरु द्वारा प्राप्त होता है। उनके अनुसार शक्तियों का निरोध करना व्यर्थ, कठोर व्रत धारण करना आवश्यक तथा पाप परिहार की चेष्टा व्यर्थ है। गुरु द्वारा दीक्षित होने पर वह पांच काम का प्रयोग कर सकता है। शरीर के सुख से मूर्छित होने पर, शक्तियों के शान्त होने पर, मन के भीतर प्रवेश करके और शरीर की सम्पूर्ण चेष्टायें निष्काम होने पर वस्तुत्वा सिद्धि प्राप्त सहजिया कहता है। उनके अनुसार काम, प्रीति मत्त और तीम भावान् के चरणों में लाता देने से लज्जा फैल देने जाती हो जाती है। मनुष्य ज्ञान हृदय की स्त्री की चाह और वासना की रोकने में कामधर्म होने पर भी उसका अनुपयोग कर सकता है। सिद्धावस्था प्राप्त करने के हेतु सहजिया की चार महीना स्त्री के चरणों में फड़े रह उसका स्पर्श न करना चाहिये। काम वासना की मत्त में न रह चार महीने उसके विस्तार पर सोना चाहिये जिससे उसके हृदय में रसि, प्रेम,

लौह, प्रणय, रान, क्रुराग तथा महाभाव उत्पन्न होता है।

वैष्णव उरजिया सम्प्रदाय का वाधार नौद सख्यान की मौनिक प्रियायें थीं जो नौद महायान के सिद्धान्तों तथा हिन्दुओं के दर्शन पर अवलम्बित थीं।

नर नारी के परस्पर मिलित भाव की एक धर्म साधना मास्तवर्ण में बहुत पल्ले है ही प्रवृत्ति थी जिससे प्रभावित होकर ही वाभाचारी तांत्रिक साधना, नौद तांत्रिक साधना तथा नौद उरजिया साधना आदि का उत्पन्न हुआ। विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों से निर्मित इन सम्प्रदायों में बड़ा स्वयं है। इन सिद्धान्तों के मूल में वरम सत्य एक वाक्य परमानन्द स्वल्प वानन्द तत्व की प्राप्ति होती है। यह वाक्य तत्व ही मिश्र तत्व 'मामल तत्व या युगल तत्व है जिसमें दोनों धारारें मिली हुई हैं। स्त्री की नौदों में युगलतत्व और तांत्रिकों में कैवलानन्दतत्व कहा है। इस वाक्य तत्व की शिव और शक्ति की धारारें हैं। तांत्रिक इस शिव शक्ति के मिलित वनित कैवलानन्द की ही परम साध्य मानते हैं। साधक शिव शक्ति के तत्व की अपनी वंद के वन्दर ही जाग्रत कर सामरस्य सुख या कैवलानन्द का अनुभव करता है। इस शिव शक्ति के तत्वों में एक नर नारी की मिलित साधना भी है जिसके अनुसार शिव शक्ति के नित्यत्व ने स्थूल रूप से नर-नारियों का रूप पाया है और पुरुष शिवतत्व तथा नारी शक्ति तत्व है। पुरुष के प्रतितात्व में शिव का और नारी के प्रतितात्व में शक्ति का सूक्ष्म रूप से ही नहीं स्थूल रूप से ही विराट होता है। पुरुष जब अपनी वन्दर के शिवतत्व की जाग्रत कर अपनी को शिव के रूप में उपलब्ध कर नारी की शक्ति के तत्व के रूप में अनुभव करता है और जब नारी अपनी वन्दर के शक्ति तत्व की विकसित कर अपनी को शक्ति

रूप में और पुरुष की शिव के रूप में अनुभव करती है तो दोनों की स्मृत देह के प्रति तत्त्व में शिव शक्ति के जागरण से जो मिलन होता है वह साधक साधिका को पूर्ण सामरस्य में पहुँचा देता है। इसी पूर्ण सामरस्य जनित असीम आनन्दानुभूति को तांत्रिक सामरस्य से, नौद का महासुख और वैष्णव महाभाव स्वल्प कहते हैं। नौद तांत्रिक और सहजिया साधना में शिव शक्ति के स्थान पर शुन्यता - करुणा तत्त्व की मूर्ति भावती भावान् या कृतिश्वरी कृतिश्वर या 'प्रज्ञा' और उपाय को फैलती हैं। उनका चरम लक्ष्य महासुख रूप प्रज्ञा या सहजानन्द की प्राप्ति है।

नौद सहजिया सम्प्रदाय की श्री लक्ष्मी योग साधना ने वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय के अन्दर प्रेम-साधना को रूप धारण किया। राधा कृष्ण का अवलम्बन करने वाला वैष्णव धर्म वास्तव में प्रेम धर्म है। शक्ति शिव तथा प्रज्ञा-उपाय के स्थान पर वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में राधाकृष्ण को स्थान मिला। नौदों के जिस शिव शक्ति मिलन जनित सामरस्य आनन्दस्वरूप को महासुख स्वल्प कहा गया है वैष्णव सहजिया लोग उसे ही राधा कृष्ण का प्रेम कहते हैं जिसकी चरमावस्था आनन्द में है और यह चरमावस्था प्राप्त करने का मार्ग प्रेम मार्ग है।

सहजिया मत में सुख तत्त्व ही परम तत्त्व है। जिसमें महाभाव रूप सख की स्थिति है जो प्रेम की पराकाष्ठा अवस्था है। सख सख से कात् प्रेम उत्पन्न होता है, सख कुछ कम होता है और सख कुछ स्थित होता है। यही सख 'नित्य देश की वस्तु' और विश्व ब्रह्मण्ड का चरम सत्य है। यह 'वृन्दावन' और मनीवृन्दावन को पार कर 'नित्य वृन्दावन' की वस्तु है जो कि सहजिया लोगों का 'गुप्त चन्द्रपुर' है। सख गुप्त चन्द्रपुर में राधा कृष्ण का नित्य विहार चलता है जिसके अन्दर है सख-रस

की नित्य धारा प्रवाहित होती है और संसार के नर नारियों में प्रवाहित होकर  
 प्रेम एवं धारा के अन्दर उसी की अभिव्यक्ति है। जीव नर नारी के सांसारिक प्रेम तथा  
 स्नेह वैदिक संयोग के अन्दर भी सत्य एवं की धारा का उद्घाटन करते हैं। मनुष्य अन्तर्मुख  
 में होने वाली राधा कृष्ण की नित्य सत्य सीला ही स्वल्प सीला है और सी पुष्प  
 के रूप में होने वाली जीव की सीला ही "नी रूप सीला" है। प्राकृत ज्ञात की नी रूप  
 सीला अप्राकृत वृन्दावन की स्वल्प सीला का ही परिणत परिणति रूप है। राधाकृष्ण  
 परम तत्त्व का वात्स्यायन वृन्दावन के गोपी गोप के रूप में ही नहीं करते बल्कि मनुष्य  
 के अन्दर नर-नारी के रूप में ही कौतुक विहार करते हैं। जिस प्रकार सत्य-तत्त्व में प्रत्येक  
 पुरुष शिव किशोर और स्त्री प्रत्येक नारी शक्ति किशोर है उसी प्रकार सहजिया मत में  
 प्रत्येक पुरुष कृष्ण किशोर और प्रत्येक नारी राधा किशोर है। जिस प्रकार तन्त्र मतवादीयों  
 के अनुसार प्रत्येक जीव के अन्दर कर्तारेश्वर तत्त्व है और देह का दक्षिण भाग शिव या  
 ईश्वर तथा वाम भाग नारी या शक्ति है उसी प्रकार सहजिया लोग दाहिने नेत्र में  
 कृष्ण का निवास मानते हैं जो साधक का स्याम कुण्ड है और बायें नेत्र में राधा का  
 निवास मानते हैं जो साधक का राधा कुण्ड है।

इस प्राकृत ज्ञात में प्रत्येक <sup>पुरुष</sup> का बाहरी रूप है और उस के अन्दर  
 रूप का वाक्य करके "कृष्ण स्वल्प" अवस्थान कर रहा है। और उसी प्रकार प्रत्येक नारी

१- मनुष्य स्वल्प को कौतुक विहार ।

चम्पक कलिका, कौटिल्य साहित्य परिषद्, पत्रिका १३०७ एवं प्रथम संख्या

२- बायें राधा दाहिने कृष्ण देते रक्ति जा ।

राधाकुण्ड स्याम कुण्ड दाहिने नेत्र उद्य ।

सकल नयन नारे बायें प्रेम वात्स्यायन ॥

राधावल्लभ दाहिने कृष्ण तत्त्व का साहित्य परिषद् द्वितीय सङ्क

का बाहरी रूप नारी रूप है और उसके अन्दर उसका "राधा स्वल्प" अवस्थान कर रहा है। नर नारी का स्वल्प में स्थिति प्राप्त करने के लिये मिलन ही प्रेम बोला कहलाती है जिसके अन्दर से ही सत्य रूप का वास्वादन होता है। साधक के लिये "श्रीरूप" केवल अवतम्बन मात्र है परन्तु उसकी वास्तविक स्थिति स्वल्प में है।

सहजिया लोगों की पहली साधना की विशुद्ध साधना कहते हैं। स्वर्ण की गला गला कर निर्मल करने की भांति ही मर्त्य के प्राकृत देह मन की गला कर छुड़ किया जाता है। विशुद्ध स्वर्ण की भांति ही देह मन का प्रेम ही वात्ता है जो समस्त और ब्रह्म का महाभाव स्वल्प होता है। सहजिया मत में मर्त्य और वृन्दावन तथा प्राकृत और अप्राकृत के अन्तर की साधना द्वारा दूर करके प्राकृत की अप्राकृत में स्थानान्तरित कर दिया जाता है तथा रूप के अन्दर ही स्वल्प की प्रतिष्ठा हो जाती है। उस देह और उस देश का सत्य मिलन होजाता है।

महाभाव स्वल्प "सत्य" की दो धाराओं में से एक धारा में वास्वाय तत्व और दूसरी धाराओं में वास्वादक तत्व है। नित्य वृन्दावन में राधा और कृष्ण ही दोनों तत्वों की मूर्ति है। सहजिया लोगों ने इन तत्वों की पुरुष प्रकृति तत्व कहा है। रत्नगार में लिखा है :-

परमात्मा दुह नाम धी दुह रूप ।

एक मति एक दृष्टा धरये स्वल्प ॥

ताहे दुह भिन्न एक पुरुष प्रकृति ।

सकलै भूत हय तेह रूप मूर्ति ॥

००

००

००

परमात्मा पुरुष प्रकृति दुह रूप।

सहज-र-वले कर रसर स्वल्प ॥ १ ॥

रस से दो और दो से रस होकर वृन्दावन में स्वल्प सीता नित्य विराजमान है। जिसकी कोई पारावार नहीं है और जो गंगा की धारा की भांति निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। मनुष्य के सामने अप्राप्त प्रेम रस सत्य वस्तु मनुष्यी स्वरूप में राधा कृष्ण के गोप गोपी के स्वरूप में वृन्दावन प्रकट की जाती है। नित्य सीता तत्त्व की रस अभिव्यंजना मूर्त्य वृन्दावन में मिलती है। जब नर नारी के प्रेम के प्राकृत गुण की साधना के द्वारा दूर कर दिया जाता है तो वह कृष्ण की वस्तु ही जाता है। मर्त्य के नर नारी के वन्दन राधा कृष्ण के वन्दन से प्राप्त हुई परम "रस" की दो धारार्थ चल रही हैं। यदि उन दोनों प्रेम की धाराओं को निर्मलतम करके रस कर दिया जावे तो युगल प्रेम का वास्वावन कर सकते हैं।

पुरुष प्रकृति या कृष्ण राधा उन दोनों धाराओं के प्रतीक हैं जिसकी सहजिया मत में "रस" और "रति" कहा जाता है। "रस" शब्द से वास्वावन

१- रस सागर, कलकत्ता विश्वविद्यालय की हस्तलिखित पोथी ।

२- राधा कृष्ण रस प्रेम स्तुति से हय ।

नित्य नित्य अंश नार नित्य विराजय ॥

सत्य उपासना तत्त्व तरुणी स्मरण कृत, वंशीय साहित्य परिषद् पत्रिका, ४ सं० १ सं० १

३- नित्य सीता कृष्ण नारिक पारावार ।

अविनाश वह सीता के गंगाधर ॥

सत्य उपासना तत्त्व मुकुन्ददास प्रणीत । मणी-प्रह्लाद नन्दी प्रकाशित। पृ० ५५ पृ० ५८-६४ देखिये ।

रूप रस स्वरूप का तात्पर्य है और रति है रस के विषय है तात्पर्य है। कृष्ण और राधा की पारिभाषिक रूप है सहजिया लोग "काम" और "मदन" भी कहते हैं। प्रेम के वास्त्व की अपनी और बाकषित करने वाला काम शब्द का बर्ण प्रेम स्वरूप है और "मदन" प्रीति-प्रेम का कारण स्वरूप है। "रस" या "काम" की ही साधना के क्षेत्र में नायक माना गया है और "रति" को नायिका माना गया है। यही "रस रति" ब्रह्मा काम-मदन वसित नायिका नायक का रूप धर कर नित्य काल विलास कर रहे हैं।

सहजिया मत में "नायिका-मदन" की बात कही गई है जिसका अभिप्राय "राधा-मदन" है। यदि नायक नायिका को सायक बनना चाहते हैं तो उन्हें अपनी प्राकृत रूप के अन्दर कृष्ण राधा के स्वरूप की उपलब्धि करनी चाहिये। उस उपलब्धि के लिये "बारीप" साधना करनी चाहिये जिसका अर्थ है रूप के अन्दर स्वरूप की उपलब्धि तक स्वरूप की रूप के अन्दर "बारीप" करना। नायक नायिका को एक दूसरे के अन्दर कृष्ण राधा का बारीप कर तब तक साधना करनी चाहिये जब तक कि वे अपनी को संपूर्ण रूप से कृष्ण राधा उपलब्धि न कर लें। बारीप साधना का उद्देश्य इस प्रकार है :-

“स्त्री स्वरूपे दृष्ट स्तु करि ।

मिश्रात करिया धुँ ।

सहै रति स्नान्तकरि ।

तबै श्रीमती पावि ॥

बन्हीदास ने स्वकिनी रानी में राधिका का बारीप कर साधना करना प्रारम्भ किया परन्तु जब सिद्धि लाभ होगई तो स्वकिनी राभी पूर्णराधिका

१- परस्पर नायक नायिका बना रति । स्वतः सिद्धावि ह्य प्रणै वसति ॥

रति विलास पदति, हस्तलिखित पोथी कृतवा विस्वविमल

२- जब जब तबोदि वस्तु रस राज काम-----विलासत बहुल्य धरि दुर् कामा ॥

सत्य-उपासना-सत्त्व, तरुणीराजा कृत काव्य साहित्य परिषद् पत्रिका १३३५, ४४०



का किह कन गरी उन्हीने खिता है :-

\* स्वल्पे वारोप तार रक्षि नागर तार ।

प्राप्ति ही मदन मोहन ।

०                      ४                      ०

सै वेशर खलिनी हय रतिर बधिकारी ।

राक्षि स्वल्प तार प्राण ।

तुमि ती समीर गुरु देह रतिर कल्परु ।

तार सै दास बभ्रमान ॥

रूप में स्वल्प का वारोप करके रूप स्वल्प को कभी भिन्न नहीं मानना चाहिये :-

वारोपिता रूप वक्ष्या स्वल्प ।

क्युं ना वासिनी भिन्न ॥

सच्ची राधा की प्राप्ति भिन्न जीव के भिन्न जाने पर वारोप

के बन्दर से स्वल्प का फल कर पाने पर होती है। यह रूप के बन्दर से स्वल्प की वक्ष्या नायिका के बन्दर से राधा की उपलब्धि सरल नहीं है। जिस प्रकार कमल के प्रत्येक वण् पद्माणू में सुगन्धि का समावेश बभ्रिन् भाव से रहता है उसी प्रकार नायिका के प्रत्येक वण् पद्माणू के बन्दर उसका स्वल्प मिला रहता है। रूप के बन्दर स्वल्प की उपलब्धि युक्ति है और स्वल्प को छोड़कर केवल स्माश्रय होना ही वक्ष्या है :-

\* स्वल्प स्वल्प वीकै कम ।

जीव लोक क्युं स्वल्प नम ॥

०                      ०                      ०

फकाय हय बाहार गति ।

बाहारे चिन्ति कार शक्ति ॥

स्वल्प बुझिसे मानुष पावे ।

बारोप हाडिसे नरक जावे ॥

सहजिया मत में जहां तक कि सख्य साधन का सम्बन्ध है मनुष्य की सर्वोष्ठ स्थान दिया है। शशिभूषण दास के शब्दों में मनुष्य की होड़कर कोई भी कृतत्व नहीं है- सौंदर्य, माधुर्य की प्रतिमा -मूर्तिमती प्रेरणायिनी नारी के अन्दर है ही राधा तत्व का वास्वादन करने के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है।<sup>१</sup>

चंडीदास ने हम वीर उस से परिपूर्ण प्रेम की मूर्ति स्वकिनी रानी से कहा था :-

“ एक निवेदन करि पुनः पुनः

हुत स्वकिनी रानी ।

युगत चरण शीतल देखिया

शरण कलाम बाधि ॥

स्वकिनी-हम किशोरी स्वल्प

काम गंध नहि ताप ॥

ना देखिते मन करे उजाटन ।

देखिते परान जुड़ाय ॥

तुम स्वकिनी बाभार रमणी

तुमि हवी मातृप्ति ॥

त्रिसन्ध्या-याजन तौमारि मजन

तुमि वेदपाता गायत्री ॥

तुमि वाग्ज्ञापिनी हरि र धरणी ।

तुमि वै गलार शारा ॥

तुमि स्वर्ग मर्त्य पाताल परित

तुम वै न्यानीर तारा ॥

सब स्त्रिकी रानी के बन्दर से ही राधा तत्व वास्वाय होता है और यही राधातत्व ही मूर्त प्रतीक है। जिस प्रकार पुराण-युग में शिव शक्ति पुरुष प्रकृति, विष्णु तम भी मिलकर एक ही गये उसी प्रकार सहजिया लीनों में राधा कृष्ण, शक्ति-शिव प्रकृति पुरुष एक ही गये। सहजिया मत में परकीया नायिका ही इस साधना के लिए सब उपयुक्त नायिका है।

शशिभूषणदास सब सम्बन्ध में लिखते हैं, "सब साधना में गृहीत नायिका राधिका स्वल्पा है, और वह स्वभावतः परकीया है, यही मतवाद परवर्ती काल में लाता है राधिका को परकीया के रूप में मणवूती से प्रतिष्ठित करने में सहायक हुआ। यह बात जरूर है कि पूर्ववर्ती बीस परवर्ती साहित्य में राधिका सदा परकीया नायिका के रूप में वर्णित हुई हैं, इस बात को हम पहले कह जायें हैं। हमारा विश्वास है कि साहित्य की यह धारा और सहजिया साधना का प्रभाव इन दोनों के मिलकर परकीयावाद की शक्तिशाली बना दिया था।"

सहजिया सम्प्रदाय के कृष्ण तत्व एवं राधा तत्व सांख्य दर्शन<sup>के पुरुष</sup> प्रकृति जगत् वाधुनिक विज्ञान के भौतिक तत्व एवं शक्ति का ही प्रतिनिधित्व करते हैं और जिस सृष्टि क्रम के सौन्दर्य का हम नित्य अनुभव करते

हैं वह उनकी नित्य लीला का अवलम्ब स्फुरण है। सहजिया लीलों के अनुसार चरित्र चागर शायी दिख्णू तक इन साधारण मानकों से बढ़कर नहीं जी निरन्तर जन्म लेते और मरते रहते हैं। उनकी दृष्टि में देवी की भी विश्व के व्याप्त नियम के कारण ऐसी ही गति होती है।

चंडीदास ने लिखा है :-

“संस्कार देह क्रांति सेह, सामान्य साधार नाम ।

मरण जीवने कर गतागति, चरीरोष साथरे धाम ॥” १

परशुराम कुर्वेदी ने वैष्णव सहजिया लीलों के सम्बन्ध में लिखा

है :- “वैष्णव सहजिया लीलों के सिद्धान्तानुसार श्रीकृष्ण परम तत्त्व रूप हैं तथा राधा उनके नैसर्गिक प्रेम की अमित शक्ति स्वस्तीपिणी हैं। वे भावान् श्रीकृष्ण के उस विशिष्ट गुण का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसे “छायादिनी” शक्ति की भी संज्ञा दी जाती है और इस प्रकार राधा के उनमें स्वभावतः निहित रहने के कारण, दोनों में किसी अन्तर का होना असंभव समझा जा सकता है। राधा स्व कृष्ण के बीच जी वियोग की कल्पना की जाती है वह केवल इसीलिए कि भावान् अपनी लीला के लिये ऐसी अवस्था स्वयं किया करते हैं। वे स्वयं एक और उपमायुक्त वस्तु बनते हैं और दूसरी ओर उसके उपमायुक्ता के रूप में भी प्रस्तुत रहा करते हैं।”

शास्त्रों द्वारा मर्यादित स्वकीया प्रेम है सहजिया सम्प्रदाय में परकीया प्रेम की उत्पत्ति माना है। ऊपर उपर उठने का स्थान न होने के कारण स्वकीया प्रेम में शिथिलता आ जाती है और परकीया प्रेम में नित्य नया उत्साह और बहुरंगी वानन्द

१- चंडीदास पदावली पृ० २४८

२- मध्वालीन मतस्य धर्मसाधना = परशुराम कुर्वेदी पृ० २८, २९

गना रहता है। मधुर, दास्य, सत्य और वात्सल्य भाव का अनुभव स्वकीया और परकीया दोनों में होने पर भी स्वकीया की अपेक्षा परकीया में विवाह का दुःख अधिक होता है। परकीया प्रेम में शास्त्रों की आज्ञा, लोक, परस्त्रीक समस्त त्याग अपने प्रेमी से प्रेम किया जाता है।

सहजिया मत के अनुसार रति तीन प्रकार की होती है :-

१- सामर्थ्य

२- सामंजस

३- साधारणी ।

सामंजस और साधारण रति तुच्छ है जो पति-पत्नी में उत्पन्न होती है परन्तु सामर्थ्य रति उच्चकोटि की है। इसका अनुभव गौणियों ने कृष्ण द्वारा किया।

स्वकीया स्त्रियां फल, यश और संसार के भय से ही सतीत्व पर स्थिर रहती हैं, मर्यादा के उत्कर्ष करने की उन्में शक्ति ही नहीं होती। परन्तु परकीया अपने प्रेमी के प्रेम में संसार को भूल अपने सगे सम्बन्धी और प्रत्येक वस्तु को भी त्याग देती हैं। वह लोगों की दूरदर्श से नहीं उल्टी, संसार की यातनाओं से विनम्र नहीं होती। स्वकीया की अपेक्षा प्रेम परकीया में अधिक होता है। राधा ने इसी परकीया प्रेम का अनुसरण किया। परकीया प्रेम करने वाली गौणियों में राधा का प्रेम सर्वोच्च है। उनका प्रेम लौकिक न होकर वाध्यात्मिक है। वे गौलीक निवासी हैं। सुख अनुभव हेतु विमर्ग होकर ही कृष्ण ने राधाकृष्ण का रूप धारण किया है।

### जयदेव की राधा

जयदेव का जीवन-चक्र अधिकतर नाभादास के 'मक्तमाल' <sup>१</sup> वीर प्रियादास की टीका से ज्ञात होता है। प्रियादास की टीका में जयदेव के जीवन पर कुछ अधिक प्रकाश मिलता है। <sup>२</sup> उनके जीवा सम्बन्धी अधिकांश घटनाएं काल्पनिक वीर अनु-  
भूति भर आधारित हैं। उन्होंने राजा लक्ष्मण सेन के दरबार में बड़ी प्रसिद्धि पायी। राजा <sup>३</sup> लक्ष्मणसेन सेन का समय सन् ११७०-११८७ है। इसी जयदेव का समय भी <sup>४</sup> यही माना जा सकता है। 'श्री मक्त माल सटीक' के वार्तिक प्रकाशकार श्री सीताराम <sup>५</sup> शरण भावान प्रसाद ने जयदेव का समय सन् १०२५ से १२५० ई० अर्थात् संवत् १०८२ से <sup>६</sup> ११०७ के मध्य माना है। मानियर विलियम्स ने जयदेव का समय ईसा की बारहवीं शताब्दी <sup>७</sup> माना है। लक्ष्मण सेन के राज्यारोहण का समय सन् १११६ दिया गया है। सन् ११७०

- १- जयदेव कविव नृप चक्रवर्ति सण्ड महेश्वर वान कवि।  
प्रभुर मयी तिहुलोक गतिगोविन्द उजागर ।  
कक काव्य नवरत्न सरस झार को-सागर ॥  
वष्ट फी ब्रह्मास करे तिहि बुद्धि बढ़ावे । <sup>गणपतराज उन्नमने तहें निरखै आवै ।</sup>  
हुम सत सरोरुह सण्ड को फलमावति सुख जक रवि ।  
जयदेव कविव नृप चक्रवर्ति सण्ड महेश्वर वान कवि॥ 'मक्तमाल सटीक' पृ० ३२७
- २- प्रियादास के २० कवित १४४ से १६३ कवित । 'मक्तमाल सटीक' पृ० ३२८-३४६
- ३- सित रितीजन, भाग ६, सम० २० मैत्रातिका १६, ६
- ४- इनका जन्म सन् १०२५ ई० से १०५० ईस्वी तक निर्णय किया गया है अर्थात् विक्रमी <sup>५</sup> संवत् १०८२ तथा ११०७ के मध्य । 'मक्त माल सटीक' पृ० ३४७
- ५- ब्रह्मनिष्प सण्ड हिन्दूज्य, पृष्ठ १४६ मानियर विलियम्स
- ६- मेडीवल इंडिया, पृ० २६ डा० ईश्वरी प्रसाद

संवत् १२२७ में जयदेव का जन्मजयदेव के संरक्षण में रहना संभव है। इसलिए हमें जयदेव का समय विष्णु की तैलुकीं शताब्दी का प्रारम्भ मानना चाहिये। प्रियादास ने जयदेव के वैराग्य, फलदायिनी से विवाह, गृहत्याग, 'गीत गोविन्द' की रचना आदि, फलदायिनी की मृत्यु और पुनर्जन्म आदि प्रसंगों पर विस्तार से लिखा है। जयदेव ने गीत गोविन्द की रचना की और उसे प्रान्थ काव्य के रूप में रचाया। गीत गोविन्द के गान गीति काव्यात्मक हैं और वह वास्तविक प्रान्थ काव्य न होकर वस्तुतः गीति-काव्य संग्रह ही है।

जब हम इस अध्याय में जयदेव, जण्डीदास और विद्यापति की राधा का विवेक करेंगे। इन तीनों ने ही राधा कृष्ण के प्रेम संबंधी काव्य की रचना की और मधुर रूप दिया। इन तीनों ने ही परकीया भाव से राधा का वर्णन किया है और उनकी राधा में काव्य प्रेम होने के कारण लोक-साज का कोई स्थान नहीं है।

जयदेव ने गीत गोविन्द की रचना कर साहित्य में सर्व प्रथम राधा का मधुर और प्रेम पूर्ण रूप प्रस्तुत किया। उनकी मधुर फलदायिनी में जयदेव के वाणों की मधुर पीड़ा है। गीत गोविन्द को हम पूर्ण रूप से भागवत परंपरा का ग्रंथ नहीं कह सकते क्योंकि भागवत में राधा अपरिचित पत्नी ही है परन्तु जयदेव राधा को प्रसन्न गीपी है। गीत गोविन्द में श्रीकृष्ण और राधा के प्रेम का कोमल और विलासमय वर्णन किया गया है।

जयदेव का स्थितिकाल १२ वीं शताब्दी का अन्त है यद्यपि तैलुकीं शताब्दी का प्रारम्भ है इसलिए हम कह सकते हैं कि तैलुकीं शताब्दी के प्रारम्भ तक में वैष्णव धर्म में राधा की भावना का विकास हो चुका था। गीतगोविन्द केवल एक गीति काव्य ही नहीं है बल्कि वैष्णव धर्म ग्रन्थ भी है। इसलिए जयदेव ने राधा और कृष्ण

के प्रेम की मानवीय स्तर पर प्रकट किया है। राधा का परकीया नायिका के रूप में चित्रण जयदेव से पहले केय फलों में अन्य किसी ने नहीं किया था। राधाकृष्ण के स्वल्प के उपासक होने के कारण उन्होंने युगल चरित्रा की साहित्य में प्रवाहित किया है। राधिका के जिस प्रेम का वर्णन गीतगोविन्द में हुआ है उसमें लोक लोक वीर वर्णन कानि की कोई स्थान नहीं है। इस काव्य में बारह सर्ग हैं वीर यह कई स्थानों पर कृष्णवर्तपुराण से मिलता है जैसे दशकतार वर्णन। परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि जयदेव ने इन स्थलों की रचना कृष्णवर्त के आधार पर की है क्योंकि कृष्णवर्त की रचना जयदेव के पश्चात् हुई है। गीत गोविन्द का प्रथम श्लोक कृष्णवर्त-पुराण के कृष्ण जन्म सण्ड के १५ वें अध्याय की उस कथा से मिलता है जब नन्द कृष्ण जन्म सण्ड के १५ वें अध्याय की उस कथा से मिलता है जब कृष्ण की राधा के सुपुर्न करते हैं। इसका प्रारम्भ इस प्रकार से हुआ है :- एक समय राधिका श्रीकृष्ण वीर नन्द किसी जन में उपस्थित थे जब सन्ध्या होगई तब नन्द राधिका से बोले कि हे राधे यह वाकाल मेघों से वाच्छादित होगया है वीर जन की भूमि भी श्याम तमाल वृक्षों से श्याम वर्ण हो गई है इसलिये कृष्ण को तुम घर पहुँचावो। इस प्रकार नन्द जी की आज्ञा पाकर कृष्ण वीर राधा चले वीर उन्होंने मार्ग में स्नान्त क्रीड़ाएँ कीं। फिर जाने राधा कृष्ण के विरह वीर मिलन के लोके कि कवि ने उपस्थित किये हैं जिनका विशद विवेक जाने किया गया है।

गीत गोविन्द में राधिका भी कृष्ण के मुक्त का चुम्बन करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं, " रास क्रीड़ा के वानन्द से विभ्रमयुक्त गोपियों के सम्मुख में ही प्रेम विह्वला राधा ने" वापका पुनर मूले कृतमय है। " करते हुए



गीत प्रस्ता के हल से श्रीकृष्ण के मुक्त की दृढ़ता के साथ जुन लिया। तृतीय सर्ग में राधा के क्षिप जाने का वर्णन है और राधा की कृष्ण से मिलने की लात्ता के चित्र उपस्थित किये गये। जब श्रीकृष्ण सभी गोपिकाओं के साथ स्वरा भ्रम करते हुए वृन्दावन में रास-लीला करते थे उस समय राधा, ईर्ष्या के कारण एक लता कुंज में जा छिपीं, वहां पर वृक्षा की शाखाओं पर तथा लतावल्लीयों पर मधुपावली गुंजायमान हो रही थी, करुणाई चित्र से स्वान्त में अपनी भ्रम करती से वे रुदने लगीं।

“ संचलवत्सधुरभ्यनिमुखस्तिमीहनवशम् ।  
चक्षितं दृगंचल मीलित्पौलविलोत्सवतम् ॥  
रास हरिमिह विक्षितविलासम्  
स्मरति मनो मम कृतपरिहासम् ॥ ” २

वर्थात् है प्रिये! मधुरभ्यनि से परिपूरित तथा क्वरामृत से भी बढ़कर ललित एवं सर्व लोक की मीलने वाली वंशी के वाधक, कटाफा करने वाले, वंशी बजाते समय चंचल मुकुट किराट को धारण करने वाले, विलासी, तथा मेरे साथ साथ परिहास करने वाले श्रीकृष्ण को मेरा हृदय चाहता है॥

१- रासोत्सासमरेण विभ्रममृतामाभीरवाम भुवा-

मन्वर्णं परिरम्य निर्मलपूरः प्रान्ध्या राधया ॥ "गीत गोविन्द प्रथम सर्ग पृ० १२

२- विहरति वने राधा साधारण्यये शरी,

विक्षितानिजीत्कषादीभ्यविश्ल गतान्यतः ।

क्वचिदपि लताकुले गुंजन्मधुव्रतमराडली ।

मुखरक्षितेरे लोना दीनाप्युवाच सहः स्तुतिम् ॥ "गीत गोविन्द" तृतीय सर्ग पृ० १२

३- गीत गोविन्द २-१

द्वितीय सर्ग में राधिका कृष्ण के साथ संयोग की घटनाओं का स्मरण करती है। उसमें राधिका के काम-केंद्रित, रति का नग्न शृंगारिक वर्णन कवि ने किया है। राधिका कृष्ण का ध्यान करती है और मिलने के लिये वह इच्छुक है और कृष्ण की उसका मन चाहता है। कृष्ण समागम की लालता के कारण उसमें एक कातरता है और प्रेम की आनन्दता के कारण उसमें एक दुर्बलता है। राधिका निश्चल कला गृह में बाकर बार बार स्पर्श देखती है। और खी है कृष्ण के मिलाने के लिये कहती है :-

\* प्रथम समागम लज्जितया मधुरादुःखैरनुकूलम् ।

मृदु मधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतवदनानुकूलम् ॥ \* २

अर्थात् है प्रिये। प्रथम समागम की तरह लज्जा के वशीभूत होने वाली मन्द तथा मधुर भाषिणी, जो मैं हूँ मुझ से बढ़ी मृदुता के साथ वीरों प्रसन्न-नीय वाक्यों को बोलने वाली, मेरी जांच पर की साड़ी छटाने वाली, कृष्ण की मुझ से मिलावी ॥

वह रति जनित आनन्द से उत्पन्न आलस्य से बातों की मोचने वाली, रति के परिक्रम से निकले हुये फसने से भीगी देखाती, रति के समय कौशल की वाणी के समान शब्द करने वाली, रति परिक्रम से ढीली ढाली, फूलों से गूँधी हुई झल्लावती वाली, रति के समय पैरों में पड़े बाधुषणों में जड़े धुंवरुजों को फंकारने वाली करघनी के धुंवरु जादि की बजाने वाली, रति के समय आलसिन, अश्रुताड, तथा मुधायी हुई देह स्पी कलावाली है। उनके हृदय की दुर्बलता और कातरता के कारण ही उनका प्रेम केवान् ही गया है। गोपिकाओं से कटाका किये गये और परिवेष्टित होती

१- गीत गोविन्द द्वितीय सर्ग पृ० १५ कैदारनाथ झा जीसम्भा संस्कृत पुस्तकालय बनारस

२- गीत गोविन्द द्वितीय सर्ग पृ० १५

पर भी नीले गीले गाल वाले लम्बायुक्त हँसी हँसने वाले श्रीकृष्ण को देखकर राधिका वानन्दित होती है :-

हस्तप्रस्तविलासवत्तनूषु भ्रूवस्त्रिभङ्गस्तनी ।

वृन्दोत्सास्त्रिगन्तवीणातमतिस्नेहाङ्गी<sup>२</sup> हृत्स्थम् ।

मामुहीक्ष्म विलाज्जितस्मितसुधी मुग्धाननं कानने ।

गोविन्दं कृत्स्नुरीणणवृत्तं पश्यामि हृष्यामि च ॥ १ ॥

ममका<sup>१</sup> की राधिका को न पाकर प्रेम बाहुल्य से उद्विग्न हो कर यमुनातट की केतकता कुल में उदास बैठे हुए माधव से राधिका, सही कहती है :-  
 'हैं माधव । कामदेव के बाणों के भय से कह राधा, मानिये, जाम में तीन हो गई हैं तथा विरहव्यथा से वतिज्जीण हो गई हैं। वह चन्दन की निन्दित करती है, चन्द्रकिरण को ज्वीर होकर कष्टकारिणी समझती है, वह मलय समीर को पूर्व गृह से जाने के कारण विष्णु के समान मानती है। वह राधा लातार लाने वाले काम बाणों के भय से अपनी हृदय में बसने वाले बापकी रक्षा के लिए अपनी हृदय के मर्मस्थल पर जल से भिगीये कमल पत्र के वर्म । नस्तरा को चारण करती है। वह राधा विविध भाँति की विलास कला से परिपूर्ण कामदेव के तीसरे तीसरे बाणों की शैला पर खींची है तथा

१- गीत गोविन्द तृतीय सर्ग पृ० १६

२- गीत गोविन्द चतुर्थ सर्ग पृ० २१

३- निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति सैवमधीरम् ।  
 व्यालनिलममिलेन गरलमिव क्लमति मलयसमीरम् । सा विरहं तनू दीना ।  
 माधव मनसि विस्मयमादिव भावनाया त्वयि लीना ॥ गीतगोविन्द च० सर्ग पृ० २१

४- अविरलनिपतितमदनशरादिव मदननाय विशासम् ।

स्वहृदयमर्मणि काँ करीति सजल नलिनवत्पात्तम् ॥ गीतगोविन्द चतुर्थ सर्ग पृ० २२

कभी पुष्प श्या पर भी सीती है। जाफ़ी जातिन सुख के निधि वह व्रत कर रही है।  
 वह राधा मयंक राहु के दांतों से दक्षि चन्द्र से कहती हुई सुधाधारा के समान निरन्तर  
 कहते हुए अनुजल से पूर्ण नेत्रवाले मुखारविन्द की धारण करती है। वह राधा कामैव  
 की वाकृति के समान जाफ़ी वाकृति स्कान्त में कस्तूरी से तिलिती है तथा वाकृति के ब  
 नीचे स्क मार की वाकृति रक्ती है स्व जाफ़ी वाकृति के छाथ में वाम का बाया तिलिती  
 है, फिर उस वाकृति की प्रणाम करती।। कभी ऊपर उधर भ्रमण करती हुई वह राधा  
 बार बार कहती है, है माधव । मैं जाफ़ी पैरो फड़ती हूँ , जाफ़ी जाफ़ी वियोग से  
 वृत्तनिधि चन्द्र भी मुझे दाह देता है।

उस सर्ग चतुर्थ के काले गान से राधिका का विरहीन्भाव  
 स्पष्टतर हो उठा है। राधा सती जाने कहती है वह कृशरीधारणी राधा, जाफ़ी  
 वियोग से अपनी उरीजों पर पहिरे हुए चार की भी बल्यन्त मारस्वल्प मानती है।

१- कुसुमविशिष्टशतत्यमनत्यविलासकलाकमनीयम् ।

व्रतमिव त्वपरिरम्भ सुखाय करोति कुसुमशयीयम् ॥ "गीतगोविन्द" सर्ग ४ पृ० २२

२- वहति च चक्षि पितोक्त जल्यमानन कमल मुदाहम् ।

विधुमिव विवटविधुत्तुदन्तदलगतित्तमिवधाहम् ॥ "गीतगोविन्द" सर्ग ४ पृ० २२

३- पित्तति रहसि सुरंगमदेन भवन्तममममममम् ।

प्रणमति मकरमयी विनिधाम करे च शरं नवकृतम् ॥ "गीतगोविन्द" सर्ग ५ पृ० २२

४- प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव । तव चरणौ पतिताहम् ।

त्वयि विमुक्तं मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुति तनु दाहम् ॥ पृ० २२ गीत गोविन्द

५- स्तनविनिहितमपि हासमुदाहम् । सा मनुते वृक्षानुरतिभाहम् ॥

राधिकाविरहे तव ॥ केवल माधव वामन विष्णो ॥ गीतगोविन्द पृ० २३ चतुर्थ सर्ग

[illegible]

विहविहित मरणैव निकामम् ॥ ७॥ गीतगोविन्द पृ० २४

बाप वज्र से भी अधिक कठोर है। है स्पर्श के वैयतुल्य, कृष्ण। वह राधा रोमांचित होती है, शी, शी करती है, विलसती है, कांपती है गिरती है, ध्यान करती है, मुर्च्छित होती है, लड़ी होती है :-

‘सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्यमुत्कम्पिताम्यति ।

आयत्युद्गमतिप्रमीलतिपतुत्यवाति मुर्च्छत्यपि ॥’ १

भावान्- की दशा भी कैसी ही थी। कृष्ण विरह वेदना से क्लान्त हो उठे, परन्तु राधिका में इतनी शक्ति नहीं थी कि वे प्रिय की प्रसन्न करने के लिये जा सकतीं। विरह के कारण राधिका इतनी बलवत् हो गई थी कि उनका प्रिय के पास जाना भी असंभव था। ठूठे सर्ग में सती गौविन्द से राधिका की विरह दशा का वर्णन इस प्रकार करती हैं :-

‘है नाथ । बापके जवर-रुमी मधुर मधु को पीती हुई क्लान्त में बैठी हुई राधा प्रतिविशाजों को देख रही है। है नाथ, हरै । है नाथ, हरै । बापकी जय हो, राधावास गृह में म्लान हो रही है। राधा ज्योंहि वेग से बापके समीप जाने लाती है त्यों ही दो चार कदम चलकर गिर पड़ती है। कमल नाल तथा नवीन पल्लव के

१- गीत गौविन्द - जयदेव चतुर्थ सर्ग पृ० २५

२- पश्यतिविशि दिशि रहसि भवन्तम् । त्वदधस्मधुस्मधुनि प्लवन्तम् ॥

नाथ हरै जय नाथ हरै सीदति राधा वास गृहे ॥ गीत गौविन्द षष्ठ सर्ग पृ० ३२

३- त्वदभिरणारुहिन वलन्ती ।

पतति पदानि क्लिपन्ति चलन्ती ॥ गीत गौविन्द पृ० ३३

कई पहिरे वाली वह राधा बापकी रति के लाज से जीवित है। स्कान्त में वह राधा पुनः पुनः अपने बाभूजनों की शोभा निहारती है तथा " में ही वृष्णा हूँ। उस प्रकार की भावना करती है। वह राधा अपनी स्त्री से बार बार कहती है " हरि वभिसार संकेत स्थान में जल्दी से क्यों नहीं जाये। वह राधा मेष के समान फ्राद वन्धकार को देखकर बाप ही जाये हुए समझ कर वाहिन तथा चुम्बन करती है। बापके विलम्ब करने से वासक सज्जा की भांति निर्लज्ज होकर रौंती तथा विलसती है। फ्रां तक की बड़ बड़ाहट हुनकर वे राधा अपने बां में बाभूजनों को पहनने लाती है। ऐसा समझ कर कि बाप जा रहे हैं, वे शैला को सजाने लाती हैं एवं ध्यानमग्न होकर जीक विचारों को करने लाती हैं, परन्तु बिना बापके उसकी रात नहीं कटती।

१- विस्तिमिश्रविस्तिमिश्रलया ।

जीवति परमिह त्व रतिकलया ॥ गीत गीविन्द पृ० ३३

२- मुहुखलोक्तिमण्डन लीला ।

मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥ गीत गीविन्द पृ० ३३

३- त्वरितमुपति न कथं भित्तिरम् ।

हरिरिति वदति <sup>सती मनुष्याम्</sup> ~~मुहुखलोक्तिमण्डनलया~~ ॥ गीतगीविन्द पृ० ३३

४- क्षित्यति बुम्भति जलवरकल्पर ।

हरिस्मात् एति तिभिरमनल्पर ॥ गीतगीविन्द पृ० ३३

५- मवति विलम्बिनि विगलितलम्बा । विलसति रौपति वासकसज्जा ॥ गी० गी० पृ० ३३

६- लोष्वाभणं करोति बहुशः सपि सज्जारिणि प्राप्तां त्वं परिरंती वितनुते शैलाभिरभ्या

पत्याकल्पविकल्पलम्पारनाचकल्पतात्परतव्यासक्तापि बिना त्वया वस्तुनैवा निशानेभ्यति

गीतगीविन्द पृ० ३४

सप्तम सर्ग में चन्द्रमण्डल के फैली पर श्रीकृष्ण के जाने में  
 देर देर के कारण वह विरहिणी राधा जीकों भाँति है ज़ोर ज़ोर से विलाप कर कहने  
 लगी, " कथित समय पर भी श्रीकृष्ण कन में नहीं जाये यह रमण योग्य मेरा जीवन  
 भी वृथा है, जब सखियों से ही मैं ठगी गयी तो कन में फिस्की शरण में रहूँ। "

जिन श्रीकृष्ण के लिए मैं न रात्रि में गहन कन में वास किया  
 उन्हीं कृष्ण ने मेरे हृदय में कामदेव के अस्थायी भाणों को वैध किया। उस वर्षय में कन में  
 विरह की भाग कैसी सह सकती हूँ, तथा यह ज्ञान हून्य शरीर भी वृथा है, लखे मृत्यु कहीं  
 बज्जी है। अत्यन्त शैव है कि वसन्त की ये मनीहर रात्रियाँ मुझे अस्थित कर रही हैं  
 तथा ये ही रात्रियाँ अन्य गौपांगना को मुण्यात्मा हैं तथा श्रीकृष्ण के साथ हैं, उन्हें  
 वानन्दित कर रही हैं। श्रीकृष्ण के बिना रत्न जड़े कलंग जादि वृक्षा तुल्य है। काम-  
 देव के भाणों को तीला है फूलों के सदृश मृदु गात्रवाली मुझे, स्वभाव से ही मृदु यह

१- कथितसमयेऽपि हरिरह न गयीं कनम् ।

मम विफलैतदनुत्पमपि यौवनम् ॥

यामि है कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता ॥ गीत गौविन्द सप्तम सर्ग पृ० ३६

२- यदनुगमनाय निशि गहन मपि शीक्तिम् ।

तेन मम हृदयमिदमसमशरीरकीर्तिम् ॥ गीत गौविन्द सर्ग २ पृ० ३६

३- मम मरणैव वरमिति वितर्कैतना ।

किमित विषहामि विरहानलकैतना ॥ सप्तम सर्ग गीत गौविन्द पृ० ३६

४- मामह विधुरमति मधुरमधुषामिनी ।

कापि हरिमुपमति कृत सुकृतकामिनी ॥ सप्तम सर्ग गीत गौविन्द पृ० ३६

५- जह्म कलयामि वल्गादिमणिभूषणम् ।

हरिविरहजनवल्गेनवह्नुषणम् ॥ सप्तम सर्ग गीत गौविन्द पृ० ३६



पुष्पमाला वत्यन्त कण्टकाकीर्ण<sup>१</sup> लाती है। मैं तो प्यारे कृष्ण के लिए उस वरण्य में<sup>२</sup>  
 गैलों की कुंजों में रहती हूँ, किन्तु मधुसूदन तो मुझ हृदय से भी नहीं स्मरण करते।  
 सुन्दर वेतसक्ता के कुंज में सकेत स्थान में कृष्ण के न जाने पर राधा सीनी लीं क्या  
 क्या प्रियतम अन्य कामिनी के पास चले गये। क्या मित्रों के हास-परिहास में फँस गये।  
 वधवा उस वरण्य में अन्यैरे के कारण ततस्ततः भ्रूत्कर घूम रहे हैं। वा मेरी भाँति कियोगी  
 हाँकर चलने में असमर्थ हो गये। जयदेव ने विरहिणी राधिका का चित्र हमारे सम्मुख  
 उपस्थित किया है। एक सती कहती है, "हैं सखि। यदि वे निर्दय, ठग कृष्ण नहीं वाये  
 तो तू क्यों दुःखी हो रही है, क्योंकि वे तो जीर्ण महिलाओं के साथ स्वेच्छा से रमण  
 करते हैं, स्वयं तेरा क्या दोष। देख, आज कृष्ण के वशीकृत होकर यह चित्र उत्कंठा से ६  
 पिय के समीप मिली जायगा।"<sup>३</sup>

१- कुसुमसुकुमास्तनुमतनुशस्तीत्मा ।

अपि इति हन्ति मामपि विषमशीत्मा ॥ सप्तम सर्ग गीत गीविन्द पृ० ३७

२- वहमिह निवसामि नगणितवनवैतली ।

स्मरति मधुसूदनोमामपि न चेतसा ॥ सप्तम सर्ग पृ० ३७ गीत गीविन्द

३- तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकैलिभिः ।

वद्धा बन्धुमिरन्धकारिणि वनोपान्ते किमुप्राप्यति ।

कान्तः क्लान्तपत्न्या मृगपि पथि प्रस्थातुमेवायमः ।

सकेतीदृशमनुवज्जुलत्ताकुलेपि यन्मागतः ॥ सप्तम सर्ग पृ० ३७ गीत गीविन्द

४- नायातःसखि निदयी यदि शठस्त्वं दत्ति किं त्यसे

स्वच्छन्दं बहुवस्तुनः स स्मति किं तत्र ते दूषणम् ॥

पश्चाप प्रियसंगमाय दम्पितस्याकृष्णमाणं गुणै-

रुत्कण्ठातिमिरादिव स्फुटदिव वेतः स्वयं यास्यति ॥ सप्तम सर्ग पृ० ४१ गीत गीविन्द

गीत गोविन्द के बाठवें सर्ग में काम बाणों से पीड़ित होने पर भी राधिका कृष्ण से कहती है कि आप उसी नायिका के पास जाइये जो आपके कष्टों को दूर करती है। आपका शरीर काले रंग का है, वैसा ही वन्तःकरण भी है। कामपीड़ता मुझे क्यों होती है। आप वही जाइये। नवम सर्ग में काम पीड़िता, रतिरुद्धा, रक्षिता, वत्सन्त दुःखिता, चरित्ररिक्ता स्मरणा क्वी, क्लेशान्तरिक्षिता राधा से स्वान्त में एक झुकी कहती है, " हे प्रिय । अब आप क्यों पश्चात्ताप करती हैं। क्यों रोती तथा व्याकुल होती हैं। यह देखिये आप पर युवतियां वसती हैं। " हे राधे । आप प्रेम करने वाले श्रीकृष्ण से तीक्ष्ण वार्ता करती हैं, नम्रता से विनय करने वाले कृष्ण से स्तब्धता करती है, अनुरागी कृष्ण से विराग करती है, अभिमुखी कृष्ण से विमुखी होती है उसी का क्षुपरिणाम है कि आपको श्रीसण्ड की चर्चा विषयवत्, " चन्द्र सूर्यवत्, क्षिप्त अग्निवत् तथा क्रीड़ा का सुखवेदना समान, विपरीत का रहा है। " दसवें सर्ग में उसी समय सायंकाल में, वत्सन्त रोष करने वाली, अधिक श्वाशों के झोंढ़ने से म्यान मुल वाली, लज्बापूर्णा सती के मुख को देखने वाली सुमुखी राधा के समीप जाकर कृष्ण ने वानन्द से कहा कि मेरे ऊपर कृपा दुरक मान का परित्याग कीजिये। हे चण्ड।

१- अष्टम सर्ग १ पृ० ४४

२- अष्टम सर्ग ६ पृ० ४६

३- नवम सर्ग पृ० ४७

४- किमिति विषीदसि रोविणि विक्ला। विरसति युवतिरुमा तव सक्ता ॥

नवम सर्ग पृ० ४८

५- क्षिण्वे यत्सरुणासि यत्प्रणामति स्तब्धासि यद्वागिणि ।

क्षिण्वे यत्सुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये।

तनुन्त विपरीतकारिणि तव श्रीसण्डचर्चाविण ।

शीताशुस्तफा क्षिण्वे यत्सुखे यत्प्रणामति स्तब्धासि यद्वागिणि । नवम सर्ग पृ० ४९

६- दशम सर्ग १ पृ० ५०

दुपहरिया के फूल के सदृश यह बाफला खर, महुर के फूल की प्रभा के समान ये बाफले  
 चिकने गाल, नील कमलों की कान्ति की चुराने वाली ये बाफले नेत्र तिलके पुष्प के सदृश  
 बाफली यह नायिका लीला दे रही है। हे कुन्दवन्ती । कामदेव बाफली मुख की रीना से ही  
 विश्व विजय करता है। हे मुग्धे। बाफली नयनमय से भरे हुए हैं, बाफला मुख चन्द्र के समान  
 है, बाफला गमन मनोरम है, बाफली जाये जेले के लम्बों को जीतने वाली हैं, बाफली रति  
 कैलि कलापूर्ण है, बाफली माँहें सुन्दर चित्र स्थापित हैं, हे तन्त्रि। वास्तव्य है कि पृथ्वी  
 पर रहने पर भी बाप में सुरांगनाओं के गुण विद्यमान हैं। स्कान्दशर्मा में एक स्त्री कठोर  
 बांधों तथा उन्नत उरोजों वाली रायिका से धीरे धीरे धरों की पृथ्वी पर धर कर  
 यणियाँ जड़े नूपुर बादि पर के बाधुजणों के जाते हुए रस की चाल से श्रीकृष्ण के समीप  
 चलने के लिये कहा।

१- बन्धूक पुतिमान्धवी, यमधरः स्निग्धो मधुकन्धवि-

गण्डश्चण्डि। कलास्ति नील नलिनी मीमांसनं लोचनम् ।

नासान्धीति तिलप्रभुनमनी कुन्दाभङ्गिनि प्रिये ।

प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥ दत्त शर्मा पृ० ५४

२- वृष्टीं तव मालती वदनमिन्दुमलान्वितं ।

गतिर्जन मनोरमा विदुतरन्मूरुहम् ।

रतिस्तव कलावती रुचिरकिरीटौ भूता-

वती विदुषीकनं वदसि तन्त्रि। पृथ्वीगता ॥ दत्त शर्मा पृ० ५४

३- फल ज्वन स्तनभारभर वरमन्धस्वरणाविशालम् ।

मुद्रास्तिमणि जङ्गीर मुपहि विधेहि मराल विकारम् ॥ स्कान्दशर्मा पृ० ५५

वह सम्भोग की क्रीड़ा की उमा से उत्कण्ठित राधिका से रम्यतर कृतात्मन के क्रीड़ागृह में जा माधव के साथ रमण करने के लिये कहती है। वन्त में जयदेव ने राधा तथा कृष्ण की रति क्रीड़ा का वर्णन करते हुये लिखा है, " जब राधा तथा कृष्ण की परम प्यारी रति क्रीड़ा शुरू हुई, उस समय प्रगाढ़ वात्सल्य करते हुये रोमांच बुरे जाते थे। क्रीड़ा के अभिप्राय से क्वलीकन (पलक गिरना) भी विप्लव जाता था, कलि-कथा भी लहर पान करते हुए कष्ट पायिका प्रतीत हुई, कई प्रकार की कलि कला पूर्ण क्रीड़ा से उत्पन्न आनन्द उस समय सुरतरुणी स्मर में बुरा जाता था। रतिक्रीड़ा के उपरान्त जयदेव ने राधिका का मग्न शृंगारिक वर्णन उस प्रकार किया है :-

" व्यालीलः केशपाशस्तरक्तिमलकः स्वेदलीलीकपीली ।

स्पष्टा-वष्टाधर श्री कृक्कलशरुचा शारिता हास्यष्टिः ।

कांचीकांचिदुताशा स्तनजनपदं पाणिनाच्छाद्यः ।

पश्यन्ती चात्मरूपं तदपि विलुक्तिं ग्रन्थैयं धुनोति ॥ " १

वर्थात् जिनका बूझा बिखर गया है, लटे चंचल हाँग हैं पसीने की बूबों से गीले भीगे हुए हैं, चुम्बित बोंठ की कान्ति स्पष्ट विदित हो रही है, बड़े के समान स्तनों की लीला से मुग्धावली तिरस्कृत हो रही है, करवनी छिपुड़ी हुई एक बीर पड़ी है। प्रातः खी वशा पर राधा ने अपने च हाथों से कुर्ची तथा जवन को ठपकर अपने

१- द्वादश सर्ग पृ० ३८

२- प्रत्युद्यः पुत्ताकुरेण निविडाशेन निर्माणेन च ।

क्रीडाकृतविलोकिताः प्रसूयापाने कथाकलिभिः ।

आनन्दाधिमेन मन्यकलायुद्धेऽपि यस्मिन्ममू ।

दुष्कृतः स तयोर्विभूव सुरतारम्भः श्रिमं मावुकः ॥ द्वादश सर्ग पृ० ६५

३- द्वादश सर्ग पृ० ६७

रूप की देखती हुईं झूठे हुए फूलों की माला को धारण करती हुईं भी श्रीकृष्ण की वानन्दकारिणी मान्य पड़ी।

वन्त में स्वाधीन मूर्तिका राधा मैथुन के परिणम से परिणान्त कान्त से अपना शृंगार कराने के लिये कहती है और पीताम्बरधारी कृष्ण उषान्वित होकर वैसा ही करते हैं।

जयदेव की राधा प्रारम्भ में कृष्ण से प्रीति है और उन्हें वन्धकार में डोढ़ने जाती है। जयदेव ने गीत गोविन्द में राधा के संयोग और वियोग अवस्था की चरम सीमा के दर्शन कराये हैं। प्रारम्भ में राधा कृष्ण के प्रेम के लिये व्याकुल है फिर साध रमण करती है। सति से कृष्ण को वन्ध के साथ ब्रीड़ा करता हुआ सुन पश्चात्ताप और कृष्ण से मान करती है। जब कृष्ण मना कर शम्भूद में चले जाते हैं तब सति द्वारा प्रेरणा पाकर कृष्ण के पास जा काम कैलि में पूर्ण रत हो रति सुख प्राप्त करती है और कृष्ण द्वारा ही वस्त्रों एवं वास्तुषण्यों को धारण करती है। इस प्रकार राधा में कामज्वर से उत्पन्न चिन्ता है, कृष्ण के साथ वानन्द लूटने वाली गौपिका के प्रति ईर्ष्या है, कृष्ण से मिलने की चाह है, कृष्ण के वियोग में अतीव वेदना है, वन्धकार के कारण लज्जाशुक्त मय है। रति के लासल से जीने की चाह है, अभिस्वार के लिये शीघ्रता है, कृष्ण बिना शृंगार के लिये उषिता भाव है, कृष्ण के प्रतिमान है, कृष्ण के मनाये जाने पर रति कैलि वानन्द और कृष्ण द्वारा शृंगार धारण कराये जाने पर गर्व है। गीत गोविन्द में राधा के संयोग और वियोगावस्था के विभिन्न रूप हमें देखने को मिलते हैं। वह संयोगिनी, विरहिणी, मानिनी, परकीया वादि सभी रूपों में हमारे सम्मुख जाती हैं। कहीं वह वासक सज्जा की भाँति निर्लज्ज होकर रोती और मिलती हैं, कहीं बिना कृष्ण स्वकीया की

भांति शृंगार वृथा समझती है। कहीं शृंगार वंशित लण्डिता नायिका की भांति विलाप करती है और कहीं क्लेशान्तरिता की भांति कृष्ण का वपमान और पश्चात्ताप करती है। कवि ने संयोग और वियोग दोनों रूपों का निर्लेख और नग्न चित्रण किया है जिसमें भक्ति भावना का आरोपण नहीं विलासिता के दर्शन और साधारण नायिकत्व का चित्रण है। हम किसी सीमा तक कह सकते हैं कि "वाशा, निराशा, उत्कण्ठा, प्रणय जन्म हँसी, कोप, मानाफसोदन और मिलन-प्रेम की विविध दशाओं का राधा और कृष्ण का प्रणय में दृश्यग्राही चित्रण हुआ है।"

हम ऊपर देव जाते हैं कि राधारानी के अनुत्थीय प्रेमय दृश्य का चित्रण गीत गोविन्द में किया गया है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने राधिका के प्रेम के सम्बन्ध में लिखा है, "राधिका के पूर्व राग और मान के समय जो प्रेम विस्तार देता है वह कहीं बाधा नहीं मान सकता। शुरु में ही देवते हैं, वसन्त में वासन्ती सुसुप्तों के समान सुसुप्त अवस्था से उपलब्धिता राधा गहन वन में बारम्बार श्रीकृष्ण का वन्दन करके थक सी गई है, फिर भी विराम नहीं लेती जारी है। कन्दर्प ज्वर उत्कट प्रेम पीड़ा की चिन्ता से वे अत्यधिक कातर हो उठी है।"

एक अन्य स्थल पर उन्होंने लिखा है, "वसन्त काल में वासन्ती सुसुप्त सम सुसुप्त अवस्था से सुसज्जिता होकर प्रेम विह्वला राधिका कृष्ण की पागल की भांति सौजती झिझकी है। सक्षियों से कृष्ण के मिला देने का अवरोध करते समय वे एक बार कह बहर जाती हैं कि "मुझे उस कृष्ण से मिला दो जो प्रथम समागम से सज्जिता मुझको स्त-स्त चादुवाक्यों से प्रसन्न करेंगे-" प्रथम समागम सज्जितया महु चादुस्त-स्तुक्तु"।

पर जब प्रथम समागम की लज्जा में नवीढ़ा की लज्जा नहीं है। जयदेव की राधा गुरु में ही प्रालम्बा सी जान पड़ती है। वह जानती है कि श्रीकृष्ण बहुवत्सल है, स्वच्छन्द भाव से वन्यान्त्य व्रज सुन्दरियों के साथ रमण कर रहे हैं, तथापि उन्हें कृष्ण बाहिर ही, बिना कृष्ण के जीना असंभव है। उस "प्रचुर पुरन्दर धनुरजित मैदुर-नविर सुवैश्वर्य" के बिना विश्वकृपाण्ड फीका है, मरी ही वह रुठ जाँ, मरी ही वह "गोप कदम्बनितम्बवती मुख चुम्बनतम्बित लोभ" जाँ पर वह मिला जरूर है।<sup>१</sup>

गीत गोविन्द की व्याख्या करते हुए स्व गोस्वामी ने बतलाया है कि कृष्ण जीव है और राधा जात्मतत्त्व है। गोपियों को झोड़कर कृष्ण का राधा में बाकृष्ट हो जाना जीव का पंख इन्द्रिय के क्षेत्र से ऊपर उठ जाना है और वह तब परमात्मा में स्थिति<sup>२</sup> हो जाता है।

जयदेव के गीत गोविन्द की राधा को हम विलासिनी, प्रेम-विह्वल और यौवन प्राप्त कह सकते हैं। वह जानती है कि "कृष्ण बहुवत्सल है। कृष्ण के सौन्दर्य के कारण वह उन पर मुग्ध है। कृष्ण को प्राप्त करने की कामना रखने के लालच कारण उसमें उदाम वेग पाया जाता है। राधा प्रालम्बा है परन्तु प्रेमाधिक होने के कारण उसकी लज्जा और संकोच का बन्धन टूट जाता है। वह कृष्ण की सोंप में चमक और श्वर श्वर दौड़ लाती है। जयदेव की राधा उपासना की देवी न होकर पृथ्वी की रानी है। स्वर्णिम उसके मानसिक पक्ष की व्यपत्ता शारीरिक पक्ष प्रकट है।

डा० इरविंश लाल शर्मा जयदेव के गीत गोविन्द की राधिका का विवेचन करते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :-

१- गूर साहित्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ६३

२- देखिये मैथिल कोफिल विद्यापति अनुप्रवाद गुरुना पृ० २०

१- राधा कृष्ण के प्रेम में पागल और विह्वल है और यह यह जानते हुए भी कि कृष्ण बहुनायक हैं वह उनसे मिलना चाहती है।

२- जयदेव के राधिका के प्रेम में लोक लाज का कोई स्थान नहीं है और वह प्रारम्भ से ही प्रालम्ब विलीन<sup>१</sup> गई है।

३- कृष्ण और राधा का वर्णन बड़ा शृंगारिक है जिसमें नायक और नायिकाओं की सभी वैष्टाओं का वर्णन है जिसमें मान तथा अनुनय विनय भी सम्मिलित हैं।

४- राधा का कोई क्रमिक वर्णन गीत गोविन्द में नहीं है केवल राधा कृष्ण विहार के संयोग वियोग चित्र मिलती है।

परन्तु कुछ ऐतक जयदेव के गीत गोविन्द में के कृष्ण और राधा की शृंगार के वास्तविक नायक और नायिका न मान उनपर भक्ति का आरोप करते हैं, " कुछ वात्सीयों की धारणा है कि जो राधा और कृष्ण हमारी भक्ति के वास्तविक थे, वे जयदेव के गीत गोविन्द के प्रभाव से शृंगार के वास्तविक नायक और नायिका के फायदे-मात्र बन गये। किन्तु माधुर्य रस के भक्त कवि जयदेव पर यह तार्जन<sup>२</sup> व्यर्थ होगा। दाम्पत्य प्रणय में तन्मयता या तल्लीनता का जो चरम उत्कर्ष है, वह है "मेघ में लीन" की कल्पना का जो चूडान्त निदर्शन पाया जाता है, उसी की अभिव्यक्ति भक्ति के क्षेत्र में माधुर्य भाव की सृष्टि करती है। "

जयदेव के गीतगोविन्द में राधा का जो कैलि-विलासमय चित्र उपस्थित होता है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में राधा की प्रतिष्ठा परम

१- देखिये - श्रीमद्भागवत और ब्रह्मसंहिता - डा० बख्श जाल खान पृ० ११५, ११६

२- संस्कृत साहित्य की रूप रेखा - चन्द्रशेखर पाण्डेय



शक्ति के रूप में ही चुकी थी। और राधा का कृष्ण की बात लीला के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया था। जयदेव ने राधा को परकीया रूप में अपनाया और उनके अनुयायियों में भी यही परम्परा चली रही। राधा और कृष्ण के रूप में देश के युवक और युवतियों के प्रेम मय जीवन की एक मूर्त उनके काव्य में विद्यमान थी।

-----:o:-----

## विद्यापति की राधा

विद्यापति कंगाली कवि नहीं थे, वे मिथिला के निवासी थे और मिथिली में उन्होंने अपनी कविता लिखी। वह दरभंगा जिले के किसी गांव के रहने वाले थे। नाभादास ने अपनी भक्तमाल में विद्यापति का निर्देश मात्र किया है। रामवृद्धा बैनीपुरी के अनुसार इनका जन्म २४९ लमणावद में या संवत् १५०७ विक्रमीय सं० १३५० ई० में होना सम्भव है। विद्यापति के आविर्भाव के सम्बन्ध में डा० उमेश चन्द्र मिश्र ने लिखा है, " उनके पिता गणपति ठाकुर महाराज गणेश्वरसिंह के राज सभासद थे और महासभा में अपने पुत्र विद्यापति को ले जाया करते थे। महाराज गणेश्वरसिंह की मृत्यु २५२ ल० सं० में हुई थी। तब विद्यापति उस समय अंततः १० या ११ की अवस्था के अवस्थ रहें होंगे जिसमें उनका राजदरबार में जाना जाना ही सकता था। दूसरी बात यह है कि विद्यापति के प्रधान वाक्यदाता शिवसिंह का जन्म २४३ ल० सं० में हुआ और ५० वर्ष की अवस्था में राजादी पर बैठे यह माना जाता है। यह भी लोगों की धारणा है कि कवि विद्यापति उनसे दो वर्ष मात्र बड़े थे। तीसरी बात यह है कि विद्यापति ने " कीर्ति-स्तोता " में अपने को सैलन कवि कहा है, इसलिये वह अवश्य कीर्तिसिंह या वीरसिंह की हस्तिसुस्त्र में दृष्टि में बल्लभयस के साथ सैलन के लायक रहे होंगे। इन सभी बातों से अनुमान

१- विद्यापति कलदास बहोरन कतुर बिहारी ।

गोविन्द गंगा रामलाल बरसानिया मंगलकारी ॥

प्रिय दयाल परसराम भक्तभाँ याटी को । नन्द सुवन की काम कविच कैसी की नीकी।

बास करन पुरन नृपति भीष्म जन दयाल गुननखिन पार ।

हरि सुख प्रचुर कर जात में ये कविजन ततिसय उदार ॥ भक्तमाल नाभादास

२- विद्यापति की फावली - रामवृद्धा बैनीपुरी पृ० ६

होता है कि विद्यापति २५२ ल० सं० में लगभग १० या ११ वर्ष के थे।<sup>१</sup> "विद्यापति की मृत्यु के सम्बन्ध में डा० मिश्र का कथन है, "वाचस्पति मिश्र भैरवचन्द्रसिंह के सभासद, विद्वान् और विद्यापति के समकालीन थे। वाचस्पति मिश्र का समय १४७५ ई० फ्रिंज बावू वैद्य सरस्वती भवन स्टडीज् ग्रन्थ ३ पृ० १५२ तक होना माना जाता है। अतएव विद्यापति को भी वही समय तक या उसके लगभग रहना ही पड़ा। इन सब बातों को विचार कर यह कहा जा सकता है कि विद्यापति लगभग ३५६ ल० सं० अर्थात् १४७५ ई० में अवश्य जीवित रहे होंगे।"<sup>२</sup>

श्रीविमान निहारी मजुमदार विद्यापति की भूमिका में विद्यापति के काल और जीवनी के सम्बन्ध में नाना रूप विचार विमर्श के फलस्वरूप अथ सिद्धान्त और सार निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि १३८० ई० के आस पास विद्यापति का जन्म हुआ था।

भाषा की दृष्टि से विद्यापति के ग्रन्थ तीन भागों में विभाजित किए जा सकते हैं :-

संस्कृत :- १- शैव <sup>सर्वस्वसार</sup> २- शैव सर्वस्वसार प्रमाण - इत - पुराण संग्रह, ३- भूपरिज्ञा ४- पुरुष परीक्षा ५- छिन्नावली ६- गंगा वाक्यावली ७- दान वाक्यावली ८- विभाग सार ९- गया पत्रक १०- वर्णकृत्य ११- दुर्गा भक्ति तरंगिणी ।

जवरहु - १- कीर्ति लता २- कीर्तिफलाका ।

मैथिली - फावली ।

१- विद्यापति ठाकुर डा० उमेश मिश्र पृ० ३६ हिन्दुस्तानी स्कैडेमी ब्लाकानाद पृ० ३६

२- वही पृ० ३७

फदावती विद्यापति का कोई स्वतन्त्र ग्रंथ न होकर बाल्या-  
वस्था से वृद्धावस्था तक के भिन्न<sup>भिन्न</sup> अवसरों पर लिखे गए पदों का संग्रह है। इन पदों के तीन  
वर्ग किए जा सकते हैं :-

१- शृंगार सम्बन्धी - इस वर्ग में राधा कृष्ण के मिलन के  
प्रेम पूर्ण पद हैं।

२- भक्ति सम्बन्धी - इस वर्ग में शिक प्रायता आदि हैं।

३- काल सम्बन्धी - इस वर्ग में तत्कालीन परिस्थितियों  
के चित्र हैं।

विद्यापति पर वैष्णव धर्म का प्रभाव दिखाई नहीं देता वे  
स्मार्तशास्त्र थे इसलिए उन्होंने राधा के उस रूप को लिया जिसका उल्लेख गाथासप्तशती  
वचना अन्य शृंगारिक गीतों में मिलता था। उनकी राधा शाक्तों की उस शृंगार भावना  
का प्रतिफल है जो कि वाम मार्ग और कौल धर्म में होती हुई आई थी। उन्होंने राधा का  
रूप निम्बार्क और विष्णुस्वामी के आधार पर चित्रित नहीं किया है। उन्होंने अपनी  
राधा का चित्रण जन परम्परा में प्रचलित कथाओं और गीतों के आधार पर ही किया  
है। उनकी राधा लोक रूपा है। उनकी फदावती में गाथा सप्तशती, अमरक शतक, शृंगार  
शतक और शृंगार तिलक के बहुत से चित्र मिलते हैं। उनकी फदावती की रचना संस्कृत और  
प्राकृत की शृंगारिक रचनाओं के आधार पर हुई है और उसमें उन्होंने शृंगारकी अविरल  
धारा बहाई है। उन्होंने संगीत और क्रीडा की सभी परिस्थितियों और उन परिस्थि-  
तियों में प्रेम विभोर युवक युवतियों के सभी भावों का संक्षिप्त वर्णन किया है। विद्या-  
पति ने राधिका को परकीया माना है और राधा कृष्ण के साधारण नायक नायिका

के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने नायिका के आन्तरिक भावों के साथ बाह्य चरित्रों का भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया है और अन्तर्गत के सौन्दर्य की व्यपत्ता बाह्य सौन्दर्य का ही विशेष वर्णन किया है। उन्होंने विशेषकर परंपराओं का ही आश्रय लिया है और वियोग की व्यपत्ता संयोग में ही उनकी वृत्ति अधिक रही है। उनकी राधा में हाव तथा अनुभावों की प्रधानता है कम सन्धि, अभिचार और सवस्नाता के सजीव चित्र हैं तथा अभिचारिका के मार्ग में कठिनाइयों के अत्यन्त मयंक रूप हैं।

शक्ति के उद्घेष्ण में उन्होंने शिव की स्तुति की भांति ही शक्ति शक्ति और विष्णु के अवतार राधा तथा उनके प्रियतम कृष्ण की भी स्तुति की है। राधा की बन्दना करते हुए उन्होंने लिखा है कि राधा के रूप की देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण ने पृथ्वी तल पर अपूर्व लावण्य का सार ही ला मिलाया है। करोड़ों कामदेवों को मग्न करने वाले श्रीकृष्ण भी उसे देखकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, :-

“ देख देख राधा रूप अपार ।

अपुरुष के बिहि बानि मिला बोल

सिति तल लावनि सार ॥ २॥

काहि कां कनं मुखायत

हरैर फड़ैर बधीर ॥ ३ ॥

मनमथ कोटि-मथन करु वै जग

वै हरि मधि मधि गीर ॥ ४॥

कत कत ललिमी चरन तल न बीछै

रंगिजन हरि निमोरि ॥ ५ ॥

करु बभिलास मनहि फफंज

जलानिसि कीर कोरि ॥ ६॥ \*\* १

विद्यापति अपनी राधा की क्यसन्धि की अवस्था में उपस्थित करते हैं। क्यः सन्धि में राधा भीली फिसारी है। उनकी राधा की वह अवस्था है जब शैल उसकी झोड़ यौवन जल्लित्ता करना प्रारम्भ कर रहा है। वह जलात यौवना है। उसके दोनों नेत्र अवर्णां तक फैली ली हैं और चरणों की चंचलता नेत्रों में छितार देने लगी है। ऐसा प्रतीत होता है मानों कामदेव के तीव्र त्यागने पर भी नेत्र बन्द हैं :-

\*\* चंचल चरण, चित्त चंचल मान ।

जागल मनसि मुदित नयान ॥ \*\*

विद्यापति ने माधव की राधों की क्यः सन्धि का परिचय उस प्रकार दिया है :-

‘ सुन जत रस-कथा धामय चीत ।

जैत हरिणी सुनार संगीत ।

सख यौवन उपजल वाद ।

क्यों न मानए जय कथाव ॥ \*\*

वर्णित है दृष्ट्या। राधा की क्यःसन्धि की अवस्था है, यौवन उसके शरीर में जलात प्रवेश करना चाहता है किन्तु शैल भी अभीष्टता बाधित उसके शरीर पर जमाये हुये है। कामदेव के जागमन के चित्त राधा के शरीर में दृष्टिगोचर हो रहे हैं जसलिये उसे कल झीड़ा की बातों में वानन्द वाने लगता है। वह रस कथाओं की स्थिर मन से उस प्रकार सुनती है जिस प्रकार हरिणी संगीत की लहरी पर विमोह हो जाती है।

माधव के प्रथम दर्शन में ही राधा चित्त होकर मुक्त नीचा कर

लैती है। माधव अनुनय विनय करते हैं। नवीन रमणी रस नहीं जानती। नागर चरि  
को पुक्त होता है, शरीर कांफी लाता है, पसीना छूटने लाता है। माधव राधा का  
हाथ फाड़ें लैती हैं। राधा हाथ में हाथ लेकर सिर पर रख शपथ दिलाती है वीर  
बोड़ने की कहती है :-

महितहि राधा माधव भेट ।  
चक्षितहि चाहि वयन करु छेट ॥  
अनुनय कोहु करतहि कान्ह ।  
नवीन रमनि धनि रस नहि जान ॥  
हरि हरि नागर पुक्त गेल ।  
कांफि उहु तनु, सैद वहि गेल ।  
वधिर माधव घरु राखि हाथ ।  
कर कर बरिष घर धनि माथ ॥  
मन विषापति नहि मन खान ।  
राजा शिवधिष ललिमा रसान ॥ १

पथ में जाते हुये राधा कृष्ण दोनों के मन मिल जाते हैं  
वीर एक दूसरे को देखकर उनके मन में कामदेव का संचालन हो जाता है। दोनों राधा  
पथ पर उलके हुये चले हैं :-

पथ गति नयन मिलत राधा कान ॥  
हुहु मन मनसिज प्रसन्न संधान ॥ २ ॥  
हुहु मुख बिरसत हुहु गेल मोर ॥

दुहु मुल हैरस्त दुहु मेल मोर ।

समय न बूझय कचुर चोर ॥ ४॥

विदगंधि संगिनी सब रस जान ।

हुटिल नयन कस्तखिल समधान ॥ ५॥

चंचल राज-पय दुहु उरफाई ।

कह कवि छैर दुहु चतुराई ॥ ६ ॥ \*\* १

रास्ते में जाती हुई राधा की सैत वृष्ण के प्राणों की  
बाधा पहुँचाती है और सुखद्वार की साथ रह जाती है। वह किस प्रकार वह दृष्टि से  
देखती है और किस प्रकार की उसके बाँधों की दशा है :-

पय गति देखनु मो राधा ।

तबनुक भाव परान परिपीड़लि

रहत कुमुदनिधि साधा ॥

बनुवा नयन ललित बनुबनुम बंक निहारइ मोरा ।

जनि सुखस में लगपर बाँधल दीठि नुकासल मोरा ॥

बाध-बदन-ससि किहसि देखावौलि बाध पीड़लि निम्र बाहु ।

किहु एक भाग बलाहक कोपल किहुक गरासल राहु ॥

कर जुा पिहित फगोथर-बंवल चंचल दैति फित मैला ।

हैम-कमल जनि बहनिन चंचल मिहिरतर निन्द मैला ॥

मनः विधापति सुनः मधुरपति यह रस के घर बाधा ।

हास दस रस सबहु बुझासल नाल कमल दुह बाधा ॥ \*\* २

१- विधापति की फावली - रामकृष्ण वैनीपुरी २७ पृ० ४१

२- विधापति संगेन्द्र नाथ मिश्र ६२७ पृ० ४१५



प्रथम परस्पर संदर्शन वृत्तियों की योजना से सम्भव होता है।

राधा और कृष्ण के पूर्ण राग में विद्यापति ने द्रुती द्वारा उभय पक्ष के सौंदर्य का कथन कराया है। राधा और कृष्ण के लोक उष्माओं और उत्प्रेक्षाओं के भीतर सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। जयदेव में उसके दर्शन नहीं होते। विद्यापति ने राधाकृष्ण के लोक संगीत वियोग के चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित किये हैं। कृष्ण के मिलन और विरह दोनों समय द्रुतियों ने बड़ा कार्य किया है।

राधा की कयः सन्धि का वर्णन करते हुये कवि ने बताया है कि शैल और यौवन दोनों मिल गये हैं। उसका नक्षत्र वर्णन करते हुये लिखते हैं कि :-

“पीन फौधर खरि गता ।

मेरु उपलब्ध कनक लता ॥” १

वह राधा के पूर्ण विकसित यौवन को देखकर विचलित हो व्यथित भाव से कहते हैं :-

“कि वारे। नव यौवन बभिरामा ।

कत देखत तत कहिय न पारिख ।

हवीं कुपम सक ठामा ॥” २

राधा कभी तीव्र गति से चलती है तो कभी यौवन के भार को वहन करती हुई मंदगति से चलती है। कभी अपने अक्षुब्ध कुर्वा को देखने लाती और कभी लज्जा से उन्हें ढक लेती है :-

“चडकि चेत सने सन चहु मंद ।

१- सैखन जीवन दुहु मिलि गेल । ४ रामकृष्ण कैनीपुरी पृ० ६ परावली

२- राम कृष्ण कैनीपुरी १० पृ० १७

३- रामकृष्ण कैनीपुरी पृ० १८

मनमथ पाठ पक्षि अनुबन्ध ॥

हिरण्य मुकुट हरि हरि धीर ।

तने बाँधर दर तने होत मोर ॥

राधा के ज्यों के रूप में कवि की हरिण, चन्द्रमा, कमल, हस्तिनी, सुवर्ण और कौयल सब एक ही स्थान पर दिखाई दे रहे हैं। उसके खरों की लालिमा के समान विन्नाफल की लालिमा फीकी है, उसकी भीड़ प्रेम के समान है, नासिका सुर की भी लज्जित करती है। विद्यापति ने ज्यों हृदय गत भावों की मंकी राधिका के नग्न शरीर के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत की है :-

बाबु मकु सुम दिन मेला ।

कामिनी फल सनानक मेला ॥

चिहुर गरर जलधारा ।

मेह गरिष जनु मोतिय दारा ॥

बदन पीछल परधूर ।

माजि बल्ल जनि कनक-मुधूर ॥

तैर उदसल कुल जीरा ।

फलटि बैसाजील कनक-बटौरा ॥

निनिबंध करल उदस ।

विद्यापति कह मनोरथ सैस ॥ " ९

विद्यापति ने प्रेम प्रसंग में राधा और माधव की समदृष्टि से लिखा है। दोनों में दोनों के प्रति मेल और स्वभाव भाव दिखाया है राधा की रूप बटा

का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है :-

‘माधव की कदन सुन्दरि स्म ।  
 कौक जल निधि बानि समारख ॥  
 देखत नयन सरस ।  
 पक्ष्म-राज बरन जु सौमित ।  
 गति गजराज क माने ।  
 कनक कपलि पर सिंह समारख ॥  
 तापर मेरु समाने ॥  
 मेरु ऊपर दुष्कमल फुलायल ।  
 नाल बिना सचि पार्थ ।  
 मनिमयहार धार बहु सरसरि ।  
 सबी नहि कमल सुखार्थ ॥

श्रीमद् के प्रत्येक दोष में इसी प्रकार की दोषों की स्थिति  
 मिलती है। भगवान् श्रीकृष्ण जैसे श्रीमद् स्वयम् हैं श्रीमती राधिका वैसी ही श्रीमद् प्रतिमा  
 वे कमनीय, संसार दुष्ट के सर्वस्व और माधुर्यमय विभूति के मूल हैं। उन्हीं की सद्गुण  
 प्रभिका श्रीमती राधिका हैं। वे भी उन्हीं के समान लोकोत्तर सुन्दरी हैं। उनका संयोग  
 मय जीवन बड़ा ही भावमय, उदात्त और सहृदय-हृदय संबंध है। विधापति ने श्रीमद् राधा  
 का प्रियतम कृष्ण के साथ लोक स्थलों पर बड़ा ही सात्विक और संपूर्ण सम्मिलित प्रदर्शित  
 किया है। उन्होंने राधा और कृष्ण के संयोग स्मारक का ही विशेष वर्णन किया है  
 जिसमें कहीं कहीं ब्रह्मसत्त्व भी आगया है। उनकी राधा स्त्री होने के कारण कृष्ण की

व्यक्ति प्रेम करती है कि वृष्णा सुन्दर है और सुन्दरता से प्रेम होना स्वाभाविक है। वह सदाचार जानती ही नहीं। विद्यापति के राधावृष्णा के किम्वदन्तों का रस बहुत प्रसार हो गया है।

राधिका बड़ी दुस्त है उसने एक कटाफ से ही वृष्णा की तरफ़ लौटा है :-

\* कह कोसति तुम राधे ।

किन्तु कन्हाई सोचत जायौ १

दूती के मुख से श्रीराधा का नवीन प्रेम वृष्णा सुन उत्सहित होने लगी है। वह सोचती है कि न जाने कितने जन्मों के पुण्य फल से वह गुण मयिक राधिका मिलेगी :-

\* राध को नविन प्रेम सुनि दुति मुखे

मन उत्सित कान ॥

मनोरथ कतहि दृढय परिपूरत

जानन्दे हरत गैवान ॥

सकन बिहि कि पुराख साधा ।

कत कत जनमक पुन फल मिलत

सै सैन गुणवती राधा ॥ \* २

राधा की लपटा कोई भी नागरी रूप, यौवन और कला के नैपुण्य में श्रेष्ठतर नहीं है ।\*

१- विद्यापति फावली १०४ पृ० १४२ रामकृष्ण मैत्रीपुरी

२- विद्यापति लगेन्द्रनाथ मित्र ७०६ पृ० ४६२

जित मन्दिर में राधा थीं उसका कपाट माधव खोली है।  
राधा बालस्थ फ्राट करके कौप से हँसकर उनकी खीर देखती हैं मानीं बाधा चन्द्रमा  
उदित हुवा ही। वह कहती हैं कि हम यौवन खीर कला नैपुण्य में कोई नागरी उनकी  
वपेक्षा श्रेष्ठतर नहीं है।

‘माधवे वास स्वात् उदितसि  
जाहि मन्दिर इति राधा ।  
बालस कौपे वतिरसि हैरतन्वि  
चान्द उगत जानि बाधा ॥  
माधव विलसि वचन बोल राधा ही  
जौवन हम कलागुन बागरि  
के नागरि हम जाहि ॥’ १

कृष्ण से राधिका के न बोलने पर कृष्ण कारण पूछते  
समय उनकी गुणवती बताते हैं :-

‘सुन सुन गुनवति राधे ।  
परिक्व परिवर की अपराधे ॥’ २

मदन से व्याकुल राधा का भी चित्र विद्यापति ने उपस्थित किया  
है। वही मूल से राधा खीर कृष्ण दोनों को भिन्न २ समय का निर्देश कर देती है।  
वसन्ति मनोरथ में बाधा होती है और साध पूरी नहीं होती। वभितार के सफल न  
होने के कारण राधा के मन बाधल की भांति बरसने लगे हैं मदन से पराजित ही

१- नेपाल पौधी का पाठ ४७७ पृ० ३२५ विद्यापति सौन्दर्याध मित्र

२- “ “ ६५२ पृ० ४२० “ “

राधा बल्यन्त व्याकुल होती है।

दुहुक बभित्त स्न मितो दूती के वपराये ।  
 जान जान धने सैत मुलास्त दुहुक मनोरथ बाधे ।  
 तरुनी कल्वी कला सकल मेने बभित्तार ।  
 राधा नयन बरह जवी भरिसर कहारै रणत न जाइ ।  
 दूती अपन कुरफ्त बास्त चारिम कहति न जाइ ।  
 दुखवी परम नैवाकुल मानल जत राधा तनु कान्ह ।  
 एक मनोभव परिभव दाता दुजहु समहि समधान ।  
 मनह विजापति खु रस जानए रायनि मह समन्ता ।  
 सिवसिंह राजा रूप नरास ललिमा देवी कन्ता ॥ १

राधा की मायव के साथ प्रथम मिला क्रीड़ा में काम की  
 आकांक्षा पूरी नहीं होती। कवि का विश्वास है कि दिन दिन व्यतीत होने पर वह  
 प्रीति को समझाने लगेगी :-

“ वामा नयन वह नीर ।  
 कौम कुरगिनि केसरि कोर ॥  
 रूके गह तिलुह दोसर गह गीम ।  
 तैसर चिहुक च उठे कुव-सीम ॥  
 निविवन्ध फोरक नहि ककस ।  
 पानि फमके बाढ़ति जास ।  
 राधा मायव प्रथमक मैति ।

न पुरल काम मनोरथ केति ।

यनह विधापति प्रकाश रीति ।

दिने दिने वात्सा मुक्ति पिरिति ॥ ९

विवाहपति ने सुरभिपूर्ण निवृत्ति में राधा के विवाह की कल्पना की। विवाह की विविध वस्तुओं का रूप उसके शरीर के अंगों ने ही धारण कर रखा है। राधा का प्रेम स्वयं रीति को लिख चुके हैं:-

\* सुरम निरुजं वैदि मलि मैलि ।

जनम गंठि दुहु मानस मैलि ।

कामदेव कह कर आदान ।

विधि मधुपरक कथर मधुपान ।

भल भल राधे भल विरवाह

पानि गहन विधि वीथ विज्ञाह ।

उपर स्पष्ट मुद्रा हार ।

नयने निवेदल वन्दने वार ।

पीन पञ्चधर पुररुह भेल ।

करस काफस नव पस्तन दैल ।

मनः विधापति स्वयं रीति ।

राधा माधव उक्ति पिरिति ॥ २

विद्यापति ने राधा के कृष्ण के साथ परस्पर प्रीड़ा के भी

किन् उपरिष्ठत स्थित हैं। वह कपट कौप भी कर सकती है और उसे गुप्त न रख हरि की चुम्बन भी दे सकती है। कृष्ण राधा का ज्वर मधु पान ही नहीं करते राधा के मस्तक से बालिन के कारण पुष्प भी फड़की जाती हैं। उस प्रकार की शृंगारिक राधा का किन् देखिय :-

हरिहरि हार कौंकि पर सखरा राधा ।

बाध माधव कर गिम रह जाधा ॥

कपट कौप धनि विठि धरु फेरी ।

हरि हंसि रखल वदन विधु हैरी ॥

मधुरिम दास गुप्त नहिं भेला ।

तत्तने समुत्ति मुख चुम्बन देला ।

कर धरु कुल, जाकुल भेति नारी ।

निरति ज्वर मधु फिर मुरारी ॥

विचुक् कमर फरु कुमुक धारा ।

पिबिकहु तम जनि कम नव तारा ॥

विषापति कवि कह सुन्दरि बानी ।

हरि हंसि मिलति राधिका रानी ॥ १

राधिका के कृष्ण के साथ वन विहार के भी वर्णन विषापति ने किये हैं। कृष्ण उसे गाढ़ बालिन में ही नहीं दवाते उसी सारी रात के स्थित चाहते हैं और उसका ज्वर पान भी करते हैं। कवि मधुसूदन और राधा के वन विहार का प्रस्ताव करता है।

१- नेपाल पोथी का पाठ पद १ पृष्ठ ५५० विषापति श्रीन्द्रनाथ मिश्र

२- मनः सख कवि कृष्ण हार । मधुसूदन राधा वन विहार ।

४७८ पृष्ठ ३२६ विषापति श्रीन्द्रनाथ मिश्र



"तरु" वर पति घर डारे जाति ।  
 सखि गाठ बाझिन तेहि भाति ॥  
 मने नीन्दे निन्दारुधि करजो काइ ।  
 सगरि स्तनि कान्हु कैति चाह ॥  
 मातति रस विषय भार जान ।  
 तेहि भाति कर खर पान ॥  
 कानन फुति गेल हुन्द फुल ।  
 मातति मधु मशुकर पर भूल ॥ परित्वर सरस कवि कम्ठहार ।  
 मज्जुदन राधा वन विहार ॥ " १

कुरागिनी राधा के सम्मुख किसी बाधा का ती प्रश्न ही नहीं उठता। वह पथ विपथ न मान बौली ही प्रस्थान कर जाती है। वार भी उसके ऊँचे कुनो को भार स्वल्प प्रतीत होता है स्वल्पि उत त्याग देती है। और बन्धकार मंथी रजनी में कामदेव की प्रभा से हृदय प्रभावान्वित है :-

"नव कुरागिनि राधा । किहु नहि मानर बाधा ॥  
 स्मृति करात म्यान । पथ विपथ नहि मान ॥  
 तेजल मनमय वार । उच कुल मानर भार ॥  
 कर सखे कल मुदरि । पथहि तेजल सगरि ॥  
 मनि मय मंजरि पाय । दूरहि तेषि चलि भाय ॥  
 जामिनी वन बंधियार । मनमथ हिय उखियार ॥  
 विधनि विधारित बाट । येमक बायुये छाट ॥

विषापति मति जान । खै ना हेरिये जान ॥ १

विषापति की राधा एक काम कसि रता नायिका के रूप में ही है। पूर्ण युक्ती होने पर वह कृष्ण ब्रथा नायक से मार्ग में चली कटाका करती है। यौवन की दीप्ति उसके का प्रत्यंग में झलक रही है :-

“सखन परस खसु बखरि ॥

अँख देखत धनि देख ।

नव जल घर तर संचर ॥

जनु निबुरी रह ॥

वायु के रूपों से उस नायिका का वस्त्र छट गया। उसके कानि वस्त्रों से उसके शरीर की कमनीयता उस प्रकार झलक रही है जिस प्रकार नव मेघों में विद्युत की छटा दिखाने देती है।

वह राधा को यह भी बता देती है कि नायक से मिलने पर किस प्रकार के हाव भाव प्रकट करने चाहिये और कौसी मुद्रायें दिखानी चाहिये :-

“प्रथमहि सुन्दरि सुटित कटास ।

जिव जोसि नागर दे वस लास ॥

कटाका के पश्चात् करनेवाली क्रिया को भी कवि राधा को बता देता है :-

“फलतहि बैठिय सहनस सीम ।

हेरस्त पिया नुन मोड़नि गीम ॥

वर्थात् तुम श्या के किनारे पर ही पहले बैठना और जब प्रियतम तुम्हारे मुँह की देखने की चेष्टा करे तो अपनी गर्दन दूसरी ओर मोड़ देना।”

दूतियों के राधा की अभिचार के लिये तैयार करने बाधि और कृष्ण की प्रलोभन के उपरान्त राधा कृष्ण का वासना और दैहिक सखा की छात्रा से युक्त मिल जाता है जिसके अनुसार राधा सखियों को सुनाती है। इसके उपरान्त कृष्ण के शरीर पर अन्य-युवती-प्राण केचिह्न देखकर राधा मान करती है। यह सखिजा का मान है। विधापति में छोटे और बड़े दोनों प्रकार के मानों का वर्णन काव्य में स्थान दिया है। मान प्राण में दूतियाँ चातुरी दिखलाती हैं। राधिका कृष्ण के हृदय का कलह होने पर, पंच सर वंश उन्हें पंखोदर के दर्शन करा उनके मन की चंचल बनाने में ही निपुण नहीं हैं बल्कि उनमें कौतुक बड़ा सुयोग जानकर मान भी करती है :-

राधा माधव रत्नहि मन्दिर निवसक सयनक सुख ।

रखे रखे दारुन दन्द उफ्फायल, कान्त चलत तहि रोख ।

नागर वंचल करे चरि नागरि हसि मिलती करु बाधा ।

नागर हृदय पांच-सर हानल, उरज दरसि मन बाधा ॥

देख सखि भुटक मान ।

कारन कहिजो बुझै नाहि पारिय, तब कहि रोखल कान ।

रोख समापि पुन रहसि फहारल, तहि मधय पंचवान ।

कवसर जानि मानवति राधा कवि विधापति मान ॥” १

मान प्रसंग में कृतियाँ चावुरी मिलताती हैं। जैसे बाद  
फिर राधाकृष्ण का मिलन होता है। कृष्ण राधा से अनुनय विनय करते हैं।  
वमिशार चलाता है। राधा और कृष्ण कुंजी में मिलते हैं परन्तु राधा की पुख्तों और  
परिजनों की रू-का डर है। एक दिन कृष्ण राधा से कहते हैं कि वह मधुरा जा रहे  
हैं। राधा शोक में चुप रहती है। कृष्ण के चले जाने पर राधा विरहिणी हो जाती  
है। सखियाँ नाना प्रकार से समझाती और उसका सन्देश कृष्ण के पास मधुरा से जाती हैं  
हैं। वह भी कहते हैं कि राधा का मिलना तो मुक्त मूल नहीं पाता।

प्रासक्ता राधा कृष्ण विरह में निश्वसित हो पड़ती  
है और रातदिन जागकर कृष्ण का नाम जपती है :-

‘सुन मन मोहन कि कह्यो तौय ।

सुखनि स्मृति तुल जागि राय ॥३॥

निश्वसित जागि जप्य तुल नाम ।

थर थर लोमि पड़ै लोच छाग ॥ ४॥

जागिनि जाय बधिक जल होई ।

विश्रित लोच उठै तब रोइ ॥५॥

सखिन जत परलोच्य जाय ॥६॥

तापिनि जाय ततहि तत जाय ॥७॥

कह सविस्तर ताक उपाय ।

सुखत ततहि स्मृति बहि जाय ॥८॥” ९

उस राधा को किस प्रकार सम्भाला जाय। वह बार  
बार हा हरि, हा हरि कर रही है और बड़ी जीवन की समाप्त करना चाहती  
है :-

\* माधव फल परलोधव राधा ।

हा हरि हा हरि कहतहि बैरि बैरि

जब जिउ करन समाधा ॥२॥

धरनी धरिया धनि जतनहि बैठत

फुलहि उठत ताहि पारा ।

सहजहि विरहिणि जा माहा तापिनि

बैरि मदन बर धारा ॥

वरुन नयन लीरे सीतल कल्लर

विभुक्ति दीधल कैला ।

मन्दिर बाहिर करुणै संसय

सहचरि गनतहि कैला ॥

लानि नल्लि कैली धनिक सुताबीधि

कैली देख मुख पर नीरे ।

नितकव बैरि कोरु शास नैलास्त

कैल देख मन्द समीरे ॥

कि कहन लैव भै जनु वन्तार ।

धन धन उत्तम स्वाच

मनः विधापति सौह क्लावति

जिवन-वन्धन बाध पाश ॥ १ ॥

राधा जतनी प्रेम परायण है कि प्रियतम का दायित्व वियोग भी उन्हें सह्य नहीं है। परन्तु वह जतनी आत्मावलीखिनी है कि वियोग-वस्था में वे विश्वमान में अपनी बाराब्ब देव की विभूतियों का ज्वलोकन करती हैं। उसकी वियोग केनारों पत्थर को भी डवीभूत करने वाली है। प्रेम की पराकाष्ठा में राधा विरहवश, प्रेम में तल्लीन हो, अपने ही को वृष्ण समझ लेती है और राधा राधा चिल्लाने लगती है। पुनः जब होश में जाती है, तब वृष्ण के स्त्रिय व्याकुल हो उठती हैं। देखिये वह किस प्रकार दोनों अवस्थाओं में मर्म व्यथा सहती हैं :-

\* कुलन माधव माधव सौहसि ।

सुन्दरि भेलि मन्त-मधार् ॥

वो किस भाव सभावहि पितरल

बाफ गुन कुधार् ॥

माधव अपरम सौहारि सिनेह ।

अपने पिरह अपन तनु जर जर

जिवरौ भेल सन्देह ॥

भीरहि सखरी कातर दिठि हेरि

हल हल लीकन पानि ॥

कुलन राधा राधा स्टल ।

बाध बाधा कहु जानि ।

राधा सँ जू पुनतहि माधव  
 माधव सँ जू राधा ।  
 दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत  
 बाढ़त विरह बाधा ॥  
 दुहु विश दारुदहने जैत दगधर  
 बाहुत कीट परान ।  
 रैन बल्लभ हैरि सुवामुति  
 कवि विद्यापति मान ॥ १ ॥

राधा ही नहीं कृष्ण भी दुखी हैं। दोनों के शरीर भिन्न  
 जो ठहर। उनकी राधा के बिना सब बाधा लाती है और नेत्रों से अनु प्रवाहित होती  
 है। इतिया कृष्ण के विरह की चर्चा राधा से करती है :-

'तिल स्क सयन जीत जिह न सह  
 न रहइ दुहु तनु भीन ।  
 माफे पुलक गिरि कंठ मानिए  
 कसन रहु निशि दीन ॥२॥  
 सजनी कान परि जीवर कान ।  
 राहि रहत दुखम मधुरापुर  
 स्तहु सहइ परान ॥४॥  
 कसन नगर कसन नव नागरि  
 कसन सम्पद मोर ।

राधा जिनु सख बाधा मानिए

नयन तेजिए नीर ॥६॥

सौं जनुना जल सौं रसनीन

सुनस्त कमलित चीत ॥

सह कबिखर जनुमवि जनतौ

बहुत बहुरं पिरित ॥७॥ \*\* १

विद्यापति ने विरह वर्णन में वियोग की भांति उभय फलों का ध्यान रखा है जिस प्रकार राधिका कृष्ण के वियोग में विह्वल होती हैं उसी प्रकार कृष्ण भी राधिका के वियोग में विह्वल हो जाते हैं। इसके अनन्तर राधा कृष्ण का मिलन होता है जिसे कवि ने कहीं वैदिक और कहीं स्वप्नमात्र दितलाया है। सखियों के सम्राट् के मिलन झुल की बात पूछने पर वह मुहुरा जाती हैं उन्हें कन न लाज है न मान।

विद्यापति के राधा कृष्ण सम्बन्धी फलों में भक्ति न होकर वाचना है। परन्तु कुमारस्वामी ने विद्यापति के ऐसे फलों को लेकर यह सिद्ध करना चाहा है कि विद्यापति की कविता ईश्वरोन्मुख है और उसमें रहस्यवाद की अनुपम कृता है। फदावली में मधुर भक्ति ध्वनित की जा सकती है और राधा कृष्ण की भावना की जीवात्मा परमात्मा का रूप बनाया जा सकता है। डा० जी० ए० गियर्सन लिखते हैं, " मैथिली भाषा में कृत्य फदावली रचना के लिये ही उनका श्रेष्ठ गौरव है वही समस्त फलों में उन्होंने शीघ्र राधिका का प्रेम भावान् कृष्णचन्द्र के प्रति वर्णन किया है। इस रूप के द्वारा उन्होंने विज्ञापित किया है कि किस प्रकार वात्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम सम्बन्ध है। "

१- नेपाली भाषा का पाठ २१६ पृ० २२५ विद्यापति की फदावली रामकृष्ण बैनीपुरी

२- "But his chief glory consists in his matchless sonnets (Pad) in the Maithili dialect dealing allegorically with the relations of the soul to God under the form of love which Radha bore to Krishna."

Modern Vernacular Literature of Hindustan by Dr. Grierson.



सुझा का नै लिता है :- "It is not a fact that Radha and Krishna of Vidya Pati were nothing but imaginary heroine and hero adopted by the poet for the purpose of composing the erotic songs, devoid of any devotional sentiment. We have clear indications available in the poems of this poet that Krishna and Radha were a god and a goddess." 1

हिन्दी विद्वानों की बालीचना करते हुये जाने गिरिसेन

नै लिता है :- "Contrary to the view summarized above the scholars like Grierson, Nagendra Nath Gupta and Janardan Misra think that Radha and ~~Krishna~~ Krsna are symbolic personalities. Radha symbolized the individual soul, Jivatma, and Krsna, the Supreme Being, paramatma. The individual soul is extremely eager to face the Supreme Being. The former has its glance and mind perpetually directed towards the latter. It continues to remain in this condition till it attains what it desires - is united with the Supreme Being. But the search for the Supreme Being is not undertaken by the individual soul on its own initiative. It is prompted to do so by the teacher who is symbolized as duti, the female messenger whose business is to help a girl in finding her lover and vice versa. He in constant contact with the individuals that are guided by her at every step till her efforts come to a successful end. The love affairs

---

१- The songs of Vidya Pati by Subhadra Jha - P.72.

described in these songs thus symbolize the cravings of the individual soul." 1

कुछ लेखकों ने विद्यापति के राधाकृष्ण सम्बन्धी पदों में भक्तिमयी भावना का समन्वय बताते हुये उसके पुष्टि के कारण भी उपस्थित किये हैं।<sup>१</sup> उनका कहना है कि राधा और कृष्ण असाधारण स्त्री पुरुष हैं। दोनों का व्यक्तित्व अलौकिक है। दोनों भावान् हैं। यही कारण है कि उनके प्रेम संभाषण में भी अलौकिक भावनाओं का उन्मेष है। राधा कृष्ण की अतिभावना और हिन्दू हृदय की देवी भावना के कारण जिसमें सदियों से राधाकृष्ण के लिए जादर का स्थान रहा है विद्यापति की शृंगार भावना कुछ असाधारण है क्योंकि उसमें कैलि जादि का वर्णन किया है, पर उसमें कुछ विशेषता है। हमारे हृदय की कुत्सित पुणित भावनाओं से उसका संबंध नहीं। विद्यापति का शृंगार बाध्यात्मिकता की पुणित अन्तर्धारा से अभिव्यक्त है। डा० श्रीन्द्र ब्रजचारी के शब्दों में हम कृष्ण के रक्षक और राधा के यौवन का विषम व्याधात्मक समन्वय पाते हैं,<sup>२</sup> जो सामान्य शृंगारिक भावना में संभव नहीं है। परकीया राधा के सम्बन्ध में भी सुमद्रा का न लिखा है,<sup>३</sup>

"Radha was also Parkiya. But she did not fall in love with anybody whosoever she saw. On the other hand the Parikiya of Vidya Pati is found beseeching even a passerby to stay with her. This is an aspect which can not fit in the Radha Krishna legends. It is why we are of the opinion that on one hand our poet thought of Radha and Krishna as divine beings on the other hand did not correct to

1- Grierson Maithili Chestomathy P.36 and 38.

Gupta lectures delivered in the Patna University in 1935 on Vidya Pati.

say that when ever he wrote an erotic poem the idea of Radha-Krishna was always before his mind". 1

वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति ने राधा कृष्ण के लौकिक प्रेम का ही चित्रण किया है। कृष्ण राधा के 'फहु' प्रभु हैं। पति हैं। कृष्ण नागर हैं राधा नागरी हैं। एक और नवयुवक चंचल नायक है और दूसरी और यौवन और सौन्दर्य की सम्पत्ति लिये राधा नायिका। डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं, " विद्यापति ने राधाकृष्ण का जो चित्र खींचा है, उसमें वासना का रंग बहुत ही प्रबल है। बाराध्य देव के प्रति भक्त का जो पवित्र विचार होना चाहिए, वह उसमें छेदमात्र भी नहीं है। सत्य भाव से जो उपासना की गई है, उसमें कृष्ण तो यौवन में उन्मत्त नायक की भांति हैं और राधा यौवन की मदिरा में मत्तवाली एक मुग्धा नायिका की भांति। राधा का प्रेम भौतिक और वासनामय प्रेम है। बानन्द ही उसका उद्देश्य है और सौंदर्य ही उसका कार्यक्षेत्र। यौवन ही से जीवन का विकास है। " वह आगे लिखते हैं :- " राधा का शनः शनः विकास, उसकी व्यक्तित्व, दूती की शिक्षा, कृष्ण से मिलन, मान-विरह जादि उसी प्रकार लिखे गए हैं, जिस प्रकार किसी साधारण स्त्री का भौतिक प्रेम विवरण। कृष्ण भी एक का भी नायक की भांति हमारे सामने आते हैं। कवि के इस वर्णन में हमें जरा भी ध्यान नहीं जाता कि यही राधा कृष्ण हमारे बाराध्य हैं। उनके प्रति भक्ति भाव की जरा भी झुंझ नहीं है। ..... कृष्ण और राधा साधारण पुरुष स्त्री हैं। राधा तो उस सरित के समान है जिसमें भावनायें तरंगों का रूप लेकर

1- The songs of Vidya Pati - Subhadra Jha P. 187.

2- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा० रामकुमार वर्मा पृ० ५०८

उठा करती हैं। राधा स्त्री है, केवल स्त्री है, और उसका अस्तित्व मौक्तिक संसार में है। उसका वाङ्मय हम जितना आकर्षक है उतना आंतरिक नहीं।”

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति की राधिका मन्तों को विभीर नहीं करती। वह विज्ञासी और शृंगारप्रिय लोगों को आनन्दित करती है और प्रेम विखुला सामान्य नायिका है। उसके जीवन हम की हटा देखकर सहस्रों मनुष्यों के हृदय वश में हो जाते हैं। उसके रूप में भक्ति, उपासना, आराधना और धार्मिकता नहीं आसक्ति और वासना है। मित्त, खती सम्भाषण, कोतुक, अभिसार, इत्ता, मान, विदग्ध-विलास, विरह भावोल्लास आदि के प्रसंग में जो राधा का रूप चित्रित किया है वह ऐतिहासिक कवियों की शृंगारिक्ता और बरलीलता को भी पीछे छोड़ देता है। कवि उसकी वयःसन्धि की अवस्था और अंग प्रश्रय की शोभा को देखकर विभीर हो जाता है और उसके नग्न रूप को देखने का इच्छुक है। जब एक दिन मनीकामना पूर्ण हो जाती है तो वह जीवन को सार्थक समझता है। काम कला के चित्तों को और तरीके हैं उन सभी का चित्रण राधा में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अपने आश्रय दाताओं के सुखित विचारों को संतुष्ट करने के लिए ही राधा के इस शृंगारिक रूप का चित्रण किया है।

विद्यापति की राधिका के रूप पर कृष्ण मुग्ध हैं और वह नवीन प्रमोल्लास से विखुल है। विद्यापति के राधा कृष्ण के संयोग चित्र तो सुन्दर चित्रित किये ही हैं परन्तु विरह के चित्र भी हृदय स्पर्शी और अपूर्व बन पड़े हैं। वह बारम्ह में किशोरी, बीच में मुग्ध स्व विलास प्रिय और वन्त में कृष्णमय हो गई है। वास्तव में वह प्रेम के प्रतीक के रूप में वंशित की गई है। उनकी राधा एक अपूर्व सृष्टि है।

चण्डीदास ने राधा कृष्ण विषयक फावली की रचना की। उनके निवास स्थान और जीवन के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। "कंगमाणा" के दूसरे वैष्णव काव्य "श्रीकृष्ण कीर्तन" के रचयिता भी चण्डीदास बताये जाते हैं। परन्तु श्रीकृष्ण कीर्तन की प्राचीनता और प्रामाणिकता में विद्वानों की सन्देह है। "श्रीकृष्ण-कीर्तन" और फावली में भाव तथा भाषागत पार्थक्य होने के कारण दोनों के रचयिताओं के एक होने में भी सन्देह है। सभी पुष्ट प्रमाणों के अभाव के कारण इस सन्देह की निवृत्ति नहीं हो सकी है। परन्तु चण्डीदास का "श्रीकृष्ण कीर्तन" और चण्डीदास फावली दोनों ही की विद्वानों ने प्राक् चैतन्य कालीन वैष्णव साहित्य के अन्तर्गत माना है। इन दोनों के रचयिता एक ही चण्डीदास हैं इसमें सन्देह होने के कारण यहाँ पर हम केवल फावली का ही विवेचन करेंगे।

जयदेव और विद्यापति की राधा से चण्डीदास की राधा बिल्कुल भिन्न है। उनके फाँ में राधिका के अत्यन्त कोमल और सुसुमार हृदय का परिचय मिलता है। उसका अपना निजी अस्तित्व है। उनकी राधिका परकीर्ण नायिका है जिसका मिलन साणिक और उत्कंठा पूर्ण होता है।

चण्डीदास ने राधा कृष्ण के पूर्व राग का वर्णन किया है। उसे अपने शरीर की सुधि नहीं श्याम का ही ध्यान है। उनकी राधा "श्याम नाम" श्रवण से ही पागल हो जाती है :-

\* सर कैना सुनाइलु श्याम नाम ।

कामेर भितर दिक्का, मरमे पशिल गो,

बाकुल करिल मौर प्राण ।

ना जानि कौक मधु श्याम नामे बाहे गो,

वदन हाकिने नाहि पारे ।

जप्ति जप्ति नाम अवश करिल गो,

कैने पाव्य छह तारे ॥

नाम परतापे जार खेन करिल गो,

धीर परेश किन्ना हय ।

जैलाने बसति तार नयने देखिया गो ।

जुवती घरम कैहै रय ।

पासरिते करि मन पासरन न जाखी,

कि करिब कि छै उपाय ।

कहै छिज चण्डीबास कुलवती कुल नाश,

बाप नार जीवन जांचाय ॥ १ ॥

सति कितने 'श्याम' नाम सुनाया ! कानों में से होकर

वह मर्म में प्रवेश कर गया और प्राणों को बाकुल कर दिया। नहीं जानती कि 'श्याम' नाम में कितना मधु है, जिसे मुख छोड़ नहीं पाता। नाम जप्ति जप्ति (उसने काँ को) परवश कर दिया, उसे कैसे पाया जाए ! जिसके नाम के प्रताप ने ऐसा किया, उसके काँ के स्पर्श से मालूम नहीं क्या होगा। जहाँ उसका वास है उसे नयनों से देखकर जुवती घरमें कैहै रह सकता है। (उसे) भूलने का सोचती हूँ, भूला नहीं जाता, क्या करूँ, क्या उपाय

है। जिस चण्डीदास कहते हैं कुलसती (स्त्री) कुल नष्ट करके अपनी यौवन को जांचती है।

चण्डीदास की राधा के प्रेम में हृदय पटा प्रधान है। उनकी राधा अत्यधिक गंभीर, तन्मय और मर्मस्पर्शिणी है। राधा जिस ओर दृष्टि डालती है प्रेमाधिक के कारण सब कुछ श्याम मय ही दिखाने देता है। वह अपनी मर्मव्यथा को बड़े सुन्दर ढंग से इस प्रकार व्यक्त करती है :-

काहारे कहिन मौर मरम केना जाने परतीत ।

दियार माझारे मरम वेदना सदाई चमके चीत ॥

गुरुजन बागे दाढ़ाछे नारि सदा बल्लल बासि ।

पुलक बाहुल दिक् नैहारिते सब श्याम मय देखि ।

सखीर सखिते जलैर जाळते से कथा कहिनार नय ।

यमुनार जल करे फल्लल ताहि कि पराण रय ।

कुलैर धर्म राखिते नारिनु कहिलाय सवार बागे ।

कही चण्डीदास श्याम सुनागर सदाई दियाय जागे ॥ १ ॥

वर्थात् मन के मर्म को किसी कहे, कौन विश्वास करेगा। (मौर)

हृदय में मर्मवेदना है जिससे चित सदा ही चौंका रहता है। गुरुजनों के बागे सड़ी नहीं हो पाती क्योंकि बासों सर्वदा बल्ललायी रहती हैं। पुलक से बाहुल जिधर देखती हूँ सब श्याम मय ही दिखता है। सखी के साथ जल मरने को जाते हुए की बात कबने की नहीं यमुना, का जल फल्ललाता है उससे क्या प्राण स्थिर रह सकते हैं। मैं कुल धर्म न रख सकी, इससे तुम्हारे सामने सदा। चण्डीदास कहते हैं कि श्याम सुनागर सदा ही हृदय

में विराजित है।

कृष्ण ध्यान स्ता राधिका की भावमग्न दशा का तत्पूर्व

चित्रण देखिये :-

राधार कि हली अन्तर व्यथा ।  
 बसिया बिरले पाक्ये स्तले,  
 नाशुन काहार कथा ।  
 सदाई ध्यान चाहै मेष पाने,  
 ना चले नयनर तारा ।  
 विरति बाहार रागा बास परे,  
 वे मन जोगिनी पारा ॥  
 स्ताख्या वेणी फुलर नाथनि,  
 देखये हसाये चुलि ।  
 हसित कथाने चाहै मेष पाने ।  
 कि कहै दुहात चुलि ॥  
 स्त दिठि करि मयूर मयूरी,  
 कण्ठ करे निरीजाणी ।  
 चण्डीदास क्य नव परिचय ।  
 काखिया बंधुर सने ॥ १ ॥

राधा के अन्तर में कौन सी व्यथा हुई। वह स्कान्त में  
 बकली बैठी रहती है, किसी की बात नहीं सुनती । सदा ध्यान मान रहती है, मेषों

१- चण्डीदास की फावली - नायिका का पूर्व राग ६



की बीर देखती रहती है, नयनों के तारे नहीं चली फुलसी स्थिर रहती है बाजार में विरक्ति है, लाल गेरुजा वस्त्र पहनती है, योगिनी के जैसी बनी हुई है। बेगनी को शिक्षित कर फूलों की गांधर्वि(ग्रन्थि)को तोड़कर केशों को देखती है। स्थित मुक्त से भय की बीर ताकती है बीर दोनों हाथों को ऊपर उठाकर न जाने क्या कहती है। एक टक मोर मोरनी के कण्ठ नीले रंग का निरीक्षण करती रहती है। चण्डीदास कहते हैं कि काले तन्धु प्रियतम कृष्ण के साथ नया परिचय हुआ है।

राधा का मन ही नहीं समस्त इन्द्रियाँ कृष्णमय हो गई हैं। वह लाल प्रयत्न करने पर भी इन्द्रियों को कृष्ण विमुक्त करने में असमर्थ है :-

“ जत निवारिये ताय निवार ना जायरे ।

जान पय जाह से कानु पय घाय रे ॥

र हार रसना मोर इल्ल कि वाम रे ।

जार नाम नहि तह त्र तार नाम रे ॥

र हार नासिका मुह कत करु बन्ध ।

तनुत वारुण नासा पाय तार गन्ध ॥

से ना क्या ना शुनिव करि अनुमान ।

परखी शुनिते वापनि जाय काण ॥

धिक रहै र हार इन्द्रिय मोर सव ।

सदा से काखिया कानु हय अनुभव ॥ ” १

जितना भी उसे रोक्ती हूँ वह रोका नहीं जाता। दूसरे मार्ग पर चली हुर ये चरण कानु पय पर ही दौड़ पड़ते हैं। मेरी यह बजागी जीम मेरे

लिये केशी विपरीत हो गई, जिसका नाम मैं नहीं लेती यह जीम उसी का नाम लेती है। इस बगानी नाक को मैं कितना ही बन्द करती हूँ फिर भी यह नाक श्याम की तीव्र गन्ध पासी ही है। जिस बात को न सुनने का निश्चय किया है, उसका प्रसंग सुनने पर कान अपने आप उधर चले जाते हैं। इन्हें धिक्कार है, मेरी सभी कल्पित बगानी है, इन्हें सदा काले कानु का ही अनुभव होता रहता है।

प्रेम का मृदुल रूप बन्धन देने को नहीं मिलता। राधा कृष्ण की कत सांगिनी होने की बाकांशा रखते हुए भी विलास की सहचरी नहीं होना चाहती। वह कृष्ण को जाने का संकेत करती है। कृष्ण ऐसे समय में भी संकेत स्थल पर मिलने जाती है जब भूसाधार दृष्टि हो रही है और चारों ओर घोर बन्धनकार छा रहा है। परन्तु राधा स्वाधीन नहीं है। बागन में सदैव कृष्ण भोग रहे हैं। घर में रहने वाले गुरुजन, सास और ननद राधा और कृष्ण के मिलन में बाधक हैं। कतः राधा किस प्रकार निकले। एक ओर वह अपनी विवशता और दूसरी ओर वह प्रीति को देखती है। दोनों को देख कर उसके मन में एक कंकटावात उठ रहा है कि वह कलक की टोंकरी अपने घिर पर रखकर घर में बाग लावे। उसका प्रेमी अपने दुःख को सुख समझ रहा है केवल उसके दुःख से दुखी है :-

सच कि बार बलि तौर ।

कीक पुन्य फल, से ऐन बंधुया, बासिया मिलत मोर ।

र घोर खनी, मेघ घटा बंधु केन बाजल बाटे,

बागिनार माफे, बंधुया तितिल देखिया परान बाटे ।

घर गुरुजन नदी बारन, विलम्ब बाहिर होनु ।

बाधा मरि, मरि, सैत करि, कतना यातना दिनु ।

बधुर पिरीति बारति देखिया मोर मन हन करे ।

कलैर डाति माथाय करिया, जानल भेजाई धरे ।

बाभार दुल दुल कसिाने बाभार दुले ते दुली

बण्डीदास कहै कानुर पिरीति हुनिया जात सुखी ।”

एक प्रकार से कानुर-पिरीति वह गुरुजन बाधा, कलै मय, मिलत मय, स्वभाव जन्म बाधा-ताबी' स्व भावी मिलत से प्रकृत वानन्द का वाक्य ग्रहण करती है। राधा के लिये :-

“श्याम सुन्दर शरन बाभार श्याम श्याम सदा सार ।

श्याम से जीवन श्याम प्रान मन श्याम से गलार हार ॥

श्याम धन बल श्याम जाति दुल, श्याम से सुौर निधि ।

श्याम सैत धन जमूल्य रत्न, भाग्ये मिलान्त विधि ॥

राधा का प्राण कृष्ण के प्राण में वन्तनिर्हित हैं :-

“तुम मोर पति तुम मोर कति मन नहिं जान मय ।

कल की बलिया डाके सब लोके तरासे नादिक दुःख ।

नौ मोर लागिया कलैर हार, गलाय परिते सुख ॥”

राधा ही नहीं कृष्ण भी प्रेम की मूर्ति हैं। उस प्रेम मयी के सामने मयानक काल रात्रि वीर निविड़ मेघ वर्जण तो कुछ हैं ही नहीं बल्कि उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने जन्म का सजाना स्फुरित करके चन्द्रमुखी राधा का निर्माण किया है। उसकी मधुर वाणी सुनते ही वह शिथिल हो जाते वीर मुर्झित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं :-

“ मरि कौन विधि, जानि सुधानिधि  
 धुँसै राधिका नामे ।  
 सुनिते सै वाणी अवशि तलनि  
 मुराँधि पड़ित हामे । ”

यह स्थिर बिजली के समान गौर वर्ण वाली राधिका  
 को फाँट पर देखते हैं जिसकी वेणी कनक चित्रों की वेणी के समान गुथी हुई  
 है और जिसके बूँदों में नव मल्लिका का सुन्दर फूल सुशोभित है :-

“ थिर बिजुरी वदन छिरि०० गौरि ।  
 फल्लूँ घाटेर कले ।  
 कानड़ छोपे फरारि बाधे  
 नर मल्लिकार फूलै । ”

शृष्ण के लिये जंगल राधा मय है। घर में, वन में, जंगल में  
 मौज में जहाँ देखी तहाँ राधा ही राधा है :-

“ गृह माके राधा, कानने सै राधा सकल राधा रै देखि ।  
 शयने मौजने गमने राधिका, राधिका सदाच भति ॥

चण्डीदास ने सर्वोच्च स्तर के अन्तर्गत राधा के मान का  
 भी वर्णन किया है। वास्तव में अपूर्व तन्मयता होने के कारण उनकी राधा में मान  
 करने की क्षमता ही नहीं है। उसकी दलों बन्धियाँ तो मुग्ध हैं उसका मन मान कर  
 किस प्रकार। अन्यत्र विहार करके जाने पर श्रीशृष्ण की भेंट राधा से ही जाती है।  
 राधा उनकी उनीची स्व वल्लार्थ हुई बाँधे तथा शरीर पर रति के विविध चिह्नों

---

से जान लेती है कि प्रियतम किसी अन्य स्त्री से प्रेम करने ली है। इसलिए वह मान कर उल्लास देती है :-

“हूँबीना हूँबीना मैंने खाने थाकी।  
मुँकेर लय्या चाँद मुखखानि देली।  
नयनेर काजल क्याने लीके।  
कालर उपर काल।  
प्रभात उठिया जी मुख देखिआम।  
दिन जाय बाज भात।  
बधरेर ताम्बूल क्याने लीके।  
धुन हूँ नासि-+ हूँ नासि।  
हुँदित नकी फरिह, सुन्दरी।  
बधिर करिया तोड़ा।  
कहै चण्डीदास बाफन स्वभाव।  
हासित न पारे चौरा ॥”

प्रियतम मुँके मत हूँबी दूर ही रही। जरा दर्पण लेकर अपना चन्द्रमुख तो देखी। नेत्रों में लाने का काला काजल तुम्हारे काले मुख पर कैसी सुन्दर फलक पिला रहा है। रात को न सोने के कारण बाहें जलता हूँ स्व' उनीची हैं हैं। प्रातःकाल सबसे पहले यही मुख देखा, बाज दिन अच्छा बीतेगा। बधर को रंगने वाला ताम्बूल मुख पर लात हुआ है। मान के कारण बाहें तर्रार कर सुन्दरी राधा झीव प्रकट दो शब्द कृप्या से कह रही है। चण्डीदास कहते हैं कि मला "चौर" कही अपना स्वभाव

होड़ सकता है।

स्वजन परिजन, जड़ोसी फड़ोसी राधा के पर पुरुष के प्रति प्रेमासक्ति के कारण उसकी घोर निन्दा कर रहे हैं। पर कृष्ण प्रेम दीवानी राधा को अपवाद के लिये खेमात्र भी गलतनि बध्ना नहीं क्योंकि :-

‘तौमारु गरुं गरुनिनी हाम, रूपसी तौमारु रूप ।

तुम्हारे गर्व से ही मैं जीविता, तुम्हारे रूप से ही रूप सी हूँ।

राधा के भाग्य से ही कृष्ण मिले हैं। मान करने के उपरान्त कृष्ण के नते जाने पर वह उस प्रकार पश्चात्ताप भी करती है :-

‘बापन शिर कम बापन होत, काटिनु कारि करिनु हैन मान ।

स्याम चुनागर नटवर शेर काड़ा सहि करल फमान ।

तय बरत कत करि दिन याभिनी जो कानूकी नहीं पाय ।

हैन अमृत्य धन मरु फैं गड़ायल जोय मुजि छेतिनि पाय ।

मैं ने अपना शिर कभी हाथों काट दिया। हाय, हाय !

मैं ने मान क्यों किया था। हे सहि ! भला वह निराश नटवर नागर विधर चला जाता। जिस कान्ह के लिये तब और व्रत करती रहती हूँ, वही मेरा अमृत्य धन मेरे पैरों पर लौट रहा था, पर हाय, मैं ने पैरों से छेत् दिया।

राधा की ‘पिरीति’ का न आदि है और न अन्त वह अपरिमेय है :-

‘एत पिरीत कु देखि नाह शुनि ।

पराण पराण बाधा बापनि बापनि ॥

"हुहु कौर हुहु काँट विच्छेद भाविया।  
 बाघ तिलना देखित जाय ये मरिया ॥  
 जल बिनु मीन जनु कन्हू ना बीये ।  
 मानुषे एक प्रेम कोया ना बुनिये ॥  
 मानु कमल बलि, तेह तेन नहि ।  
 द्वि कमल परे, मानु फुल रहे ॥  
 चातक जल कछि तेनहि तुलना ॥  
 सम्य नहिसे तेना देय सक कणा ॥  
 कुसुमे मधुप कछि, तेह नहि तुल ।  
 ना बाणसे प्रेमर बापनि ना जाय फुल ॥  
 बिहार कौर चाँद, कुसुमे एक नहि ।  
 त्रिमुने तेन नाहि चण्डीदास कहै ॥ "

ऐसी पीड़ित न कभी ऐसी न सुनी। प्राणों से प्राण बर्फी  
 बाप ही कबे दुर ही। दोनों परस्पर की गोंद में रखकर भी विमुक्त हैं, ऐसा सोचकर रोते  
 हैं। तिल । जल । मर के लिये न देखने पर मर जाते हैं। जल के बिना मछली जैसे कभी भी  
 नहीं जीती है। मनुष्य ने ऐसी प्रेम के विषयक में कही नहीं सुना होगा मानु कमल कहें, तो  
 वह भी ऐसी नहीं। पाते से कमल मरता है पर मानु फुल है रहता है। चातक बावल कहे तो  
 उसकी तुलना भी ठीक नहीं। सम्य न होने पर वह जलका एक कण भी नहीं देता। कुसुम  
 मधुप कहे तो उसकी भी तुलना ठीक नहीं। प्रेम के न जाने पर फूल स्वयं उसके पास नहीं  
 जाता। कमाने कौर चाँद ये दोनों उसके समान नहीं। चण्डीदास कहते हैं त्रिमुन में ऐसा

कहीं भी नहीं।

श्रीकृष्ण के मथुरा जाने का समाचार ललित कहीं जाकर राधा की सुनाती है। परन्तु राधा की विश्वास ही नहीं होता कि उसका प्रेम पाश तोड़ कर कृष्ण कहीं अन्य भी जा सकते हैं।

“ललितार क्या सुनि हांसि हांसि विनीविनी ।

कस्ति लागिल घनी राह ।

वामार हाड़िया श्याम मधुर जाशैन ।

स्वप्ना तो कतु सुनि मार ।।

तौमरा जैल श्याम मधुर जाह धन

कीन पथ बंधु पलाखे

स्वर्ग चिरिजी के बाहिर करिया दिव

तने तो श्याम मधुर जावे ।”

ललित की बात सुनकर इस कर घनी राधिका ने कहा, मुझे होकर श्याम मधुरी जाये, मैं ने तो नहीं सुना। तुम लोग तो कहती हो कि कृष्ण कि कृष्ण मथुरा जायें लेकिन प्रियतम मागने लै। वे तो मेरे हृदय में बन्द हैं। यदि मैं अपना हृदय चीर कर उन्हें बाहर निकाल दूँ तभी तो कृष्ण मथुरा जा सकेंगे।

हुत जोर श्रम से सन्तप्त राधा वमिशाय देती है :- “फिरने इस प्रवण्ड यातना की बग्गि में मुँह तिल तिल कर जलाया है, भावान् उसे भी नहीं गति दे ।

वामार पराण कैसि करिहैं से मति चक्रे से ।



मेरे प्राणों को उधने जैसा किया है, जैसा भी वह भी हो ।

उस अक्षय पीड़ा से मुक्ति पाने के लिये राधा कामना करती

है :-

विधि यदि भुनित मरण हस्त मुक्ति सकत दुःख ।

विधि यदि भुनता वीर मरण होता तो सब दुःखों से पीड़ा छूटता ।

सब अपार दुःख से भर कर मुक्ति तो अवश्य मिल जावेगी परन्तु

प्रिय को भी तो सब कारण सब दुःख की अनुभूति होनी चाहिये जिससे वह समझ सके कि

राधा ने किस प्रकार अक्षय वेदना के कारण प्राण त्यागे :-

‘बहु कि वार नलिन तीरे ।

बाफा साध्या विरीति कल्लि

रक्ति नासि धरे ॥

कामना करिया सागर मरिख

साधिन मीर साधा ।

मरिया हल्ल नीनन्दैर नन्दन,

तोमारै करिख साधा ॥

पीरित करिया हाड़िया जाल्ल,

रहिख कदम्ब तले ।

विभां हल्ल्या मुरली पूरिख

कल्लन जाल्ले जले ॥

मुरली बुनिया मुरखा हल्ले

उदने कुँवर बाता ।

चण्डीदास की तब से जानिने

पीरित कैल ज्वाला ॥ १ ॥

बहु प्रियतम तुम्हें और क्या कहूँ। वही तो साकर (नष्ट करके)

में ने प्रीत की, घर में न रह सकी कामना बाग़ में मरुंगी और मन की बाध पूरी करुंगी। मरकर श्री नन्दनन्दन होऊँगी और तुम्हें राधा बनाऊँगी। पहले पीरित करके फिर छोड़ जाऊँगी। कल्प के नीचे रखूँगी, बिना होकर नाचूरी बनाऊँगी। जल तुम पानी भरने जाओगे तुम सख्त कुल बाता मुरली सुनकर मुन्धित हो जाओगे, चण्डीदास कहते हैं तब जानोगे पीरित कैली जल है। चण्डीदास की दृष्टि में राधा की यह करुण स्थिति सच्चे प्रेम की परीक्षा और पक्ष की कर्माँटी होने के कारण बान्धव्य है।

कृष्ण मधुरा चले गये हैं और वहाँ से पुनः लौटकर नहीं जाते परन्तु राधा एक जाण के लिये भी उन्हें मूल नहीं पाती। वह ध्यान में खूनी बहस तन्मय हो जाती है कि कल्पना में ही प्रेम की प्रत्यक्षा या कुल प्राप्ति से उसका मन उल्लास से नाच उठता है :-

बहुदिन परे बहुधा स्ने ।

देखा ना हस्त पराण गेल ।

स्नेह सखित कल्ला बस ।

बाटिया जास्त पापाण हल ।

दुसिरीर दिन दुलैत गेल ।

१- चण्डीदास फावली काव्य साहित्य परिषद् से प्रकाशित २७

इस फावली संग्रहों में जानदास की शाय से मिलता है।

मधुरा नारि हिते त मात ।  
 र सव दुख विह्व ना गणि ।  
 तीमार कुसल कुशल मानि ॥  
 सव दुख बाजि गेल है दूर ।  
 हारान रतन पाखन कोरे ॥  
 (खान) कौकिल बाजिया कलक गान ।  
 भ्रमरा बसक ताहार तान ॥  
 मलय पवन बहुक मन्द ।  
 गगने उदय इलक चन्द ।  
 बाशुली-बादेश कहै चण्डीदास ।  
 दुख दूर गेल दुख-विलास ॥ १

बहुत दिनों के बाद बंधुवा (प्रियतमा तुम) बास। प्राण बल जाने पर मुलाकात न होती।  
 बनला थी, <sup>इतना</sup> सहा पाबाण होने पर कबका विदीर्ण हो चुका होता। दुखिनी के  
 दिन दुख में बीते, मधुरा नार में तुम तो बच्चे थे न एन सव दुखों की कुछ भी नहीं गिनती  
 तुम्हारे कुशल में कुशल मानती हूँ। बास सव दुःख दूर हुआ सोया रतन कोढ़ में मिला।  
 भले ही जब कौकिल बाकर गान करे, मीरा बपता तान बलाये मलय पवन मन्द रहे, बाकाश  
 में चन्दा उदित हो। बाशुली (चण्डीदास की उपास्या) के बादेश से चण्डीदास कहते हैं, दुख  
 विलास में दुख दूर होगया।

राधा कीमल हृदया होने के कारण ही इतना सह पा रही  
 है यदि उसका हृदय पाबाणवत् होता तो कबका विदीर्ण होगया होता।

राधिका वृष्ण विरह के कारण योगिनी हो जाती है।

व्यथा के कारण स्वान्त में बैठी किसी की बात नहीं सुनती। खाना पीना छोड़ भेषों की और टकटकी लगाए रखती है। उसकी अपूर्व तन्मयता देखिये :-

“ बाली राधार कि हली अन्तर व्यथा ।

बसिया विरह पाकड़ सति ना हूँ काहारी क्या।

उदाच हयाने चारे मम पाने ना बले नयनेर तारा ।

विरति बाहारे रागावास परे मन योगिनीर पारा ॥

राधिका की एक ही कामना और साथ है कि जन्म हो या मरण उसके बन्धु ही जन्म जन्म में उसके प्राणनाथ हों क्योंकि उनके चरणों में राधिका के प्राणों में प्रेम की फाँस बांध दी है। वह सब समर्पण कर एक चिह्न ही वृष्ण की दासी हो गई है :-

“ बंधु कि वार बलिब बाधि ।

मरने जीवने, जन्मे, जन्मे प्राणनाथ हल्लौ तुमि ।

तोमार चरने बाधार पराने बांधित प्रेम फाँसि ।

सब समर्पिया एक मन हय्या निश्चय हल्लाभ दासी । ”

वह कहती है :-

“ बंधु तुमि से बाधार प्रान ।

देह मन बाधि, तोहारी संप्रति, कुल शील जाति मान ।

बलितेर नाथ तुमि है कालिया, जोगीर बाराध्य धन ।

गोप गोपालिनी डाय मति हीना, ना जानि मल फूल ।

=====

पिरीति रस है, ढाति तनु मन, दियाहि लोमार पाय ।  
 तुमि मोर पति, तुमि मोर गति, मन नाहि जान भाय ।  
 कलकी बलिमा ढाके सब लोक साशति नाहिक दुख ।  
 लोमार लागिया, कलकी चार, गलाय परिते सुख ।  
 सती वा असती, लोमाते विदित, भाली मन्द नाहि जानि ।  
 कहे चण्डीदास पाप पुण्य सम, लोहारि चरण जानि ॥ १

बहु प्रियतम/तुम्हीं मेरे प्राण हो। देह मन कुल शील जाति  
 मान जाति सभी तुम्हें सोँपा है। है काल ! तुम बलित के नाथ, बागी के बाराध्य धन  
 हो। हम गौप गौपालिनी अत्यन्त दीन हैं, मज्ज-फूल नहीं जानते। पीरित। प्रीति। रस  
 में तन मन ढाकर तुम्हारे पैरों में सोँपा है। तुम मेरे पति, तुम मेरे गति हो, मन को  
 बीर बूझरा नहीं भाता। सब लोग कलकी कहते हैं मुझे बसका दुःख नहीं। तुम्हारे लिए  
 गते में कलक का चार पहनने में भी सुख है। मैं सती हूँ बसता जसती यह तुम जानते हो,  
 बज्जा बुरा नहीं जानती। चण्डीदास कहते हैं, तुम्हारे चरणों में पाप-पुण्य सभी बराबर  
 माना है।

चण्डीदास हैं प्रीति के दो पदा हैं स्मृत और सुभा।

स्मृत या समाजिक पदा में राधा कीक बाधा, विरोधों और तिरस्कारों को सज्ज कर  
 वात्म समर्पण कर देती है। राधा और कृष्ण दोनों में समान ज्वाला होती हुई भी राधा  
 में करुणा अधिक है। चण्डीदास की राधा श्याम के भ्रम को पीतल और श्याम को विष  
 सुभ्रम कहती है। वह हृदय से कोमल और मायुक्त है। उसका परकीया नायिका होने के

१- चण्डीदास फावली - भाव सम्मिलन १५५

२- सोनार गगरी जेन विष भरि, सुधैत परिया मुख ॥

कारण शक्ति होना अनिवार्य है। वह चण्डीवास के काव्य में वृष्णा की उपासिका के रूप में भी आई है :-

\* गोप गोपाल की दाय दिनाना जानि भजन पूजन ।

पीरिति रखति डाति तनुन दिपहि तौमार पास ॥

वह विद्वता स्व प्रीतियोगिनी है। अपने प्रिय की प्राप्ति करने के लिये वह प्रीति का ही एक संसार बना लेती है। वह पागलिली योगिनी बनकर बन्धु के लिये बन बन में घुसती और प्रीति का ही मन्त्र जपती है। चाहे तीन उस पर हँसे, चाहे जाति कुल चला जाय परन्तु उसे बन्धु मिल जाय। उसकी पाकर समाज में प्रतिष्ठा हो जायेगी, पराये भी अपने हो जायेंगे। राधा यह सोचकर कि वह अन्तस्ताप से क्या तक जल्ती रहे समाज के ठेकेदारों से कहती है कि उसके कर्तव्य की चर्चा बाज से दूर न करे, वह यमुना के किनारे बाग में जल मरेगी। परन्तु तत्काल ही सोचती है कि वह प्रीति का साधन शरीर छोड़ने के उपरान्त सम्भव नहीं है। वह सामान्य नारी है बहुत उच्च है और

१- पीरिति नारे वसति कति, पिरिति बाधिन घर ।

पीरिति देखियो फड़सि कैसि, ता बिनु सकति घर ॥

२- लोक हसिहउ, जाय जाति जाउ, तनुना हाडिया दिव ।

तुकि गैत यदि, स्तु गुपनिधि, बार कोथा तुमा पाव ॥

३- तौमरा भलिया जाउ अप्पार घर ।

भलि कले नामि यमुनार तीर ।

४- चण्डीवास बत केन कह ऐन कदा ।

शरीर हाडिहै प्रीति रहिकै कौदा ।

वपौ बन्धु से वपौ कुवनों के लिये दाया भी मांग लेती है। उसकी प्रीति का संयोग<sup>१</sup> पता पता संतोषप्रद और वियोग पता शान्तप्रद है। उसे बन्धु बड़े पुण्य फलों से मिला है। वह अपना सर्वस्व वपौ अन्तःकरण के देवता के चरणों में अर्पित कर देती है। और वपौ बाप की प्रीति की ज्वाला में गलाती रहती है। श्रीमन्महादेवी राधा नाना विधुत बाधाओं में कमल उठती है। वह विलास की प्रतिमा न होकर भक्ति की मूर्ति है। वह न जयदेव की राधा की भाँति प्रात्मा और विलासवती है, न विद्यापति की राधा की भाँति रूप मधुर विश्वीरी है वरन् विष्णु भ्रम की मूर्ति है। उसका भ्रम अनुपम और स्वीय है।

१- जलता जलर दोष ना करे तिले क्त हुये दीका ।

तुमि दया करि कृपा ना हाड़िद, मोरे का करिद रोय ।

२- सः कि बार बलि तारे ।

जोक पुण्य फले से हैन बहुधा बाधिया मिलत मोरे ॥

## चण्डीदास और विद्यापति की राधा

### तुलनात्मक

विद्यापति और चण्डीदास दोनों ही में श्याम की वैपत्ता राधा की भावनाओं का अधिक विधान है। विद्यापति की राधा में कहण्या कम और सुन अधिक है, कियोग कम और विलास अधिक है। चण्डीदास में स्वाधीनिकता, गंभीर बनाने वाली वेदना समाज की मर्यादा को तोड़ने वाला प्रेम है। विद्यापति की राधा मुग्धा नायिका है वह श्याम के रूप से आकृष्ट है। स्त्री की बातों में वा श्याम से गुस्सा प्रेम करती है। परन्तु नायक पिछुन होने के कारण उस स्नेह का निवाह नहीं कर सकता उस हेतु राधा को अपनी भूल पर जीवन भर फताना पड़ता है। चण्डीदास की राधा किसी के द्वारा लिया हुआ श्याम का नाम सुन सीकती है जिसके नाम में जتنا नधु ही उसका रूप कितना आकर्षक होगा। उस प्रकार उसका आकर्षित होना पूर्व संस्कारों के द्वारा ही प्रतीत होता है। उसे स्था भी आभास होता है कि उस सामान्य घटना का परिपाक दाहक ही सकता है। विद्यापति की राधा का प्रेम श्याम के नाम को सुनकर प्रारम्भ नहीं होता बल्कि रूप दर्शन से प्रारम्भ होता है। विद्यापति की राधा भावी कर्तव्य की कल्पना नहीं करती और यह सीकती है कि ज्ञान भर की परवशता दोनों को स्थायी स्नेह मूल में बाध देगी। विद्यापति की राधा कति कलाकती तथा विलास विदग्धा है वह लोक प्रकार से नायक से मिलती है, नायक भी सैत स्थल पर पहुँकता है। मन की वास्तव्य रात रात भर विलास मग्न रहने पर भी तृप्ति नहीं होती। बहिष्कृत०



पश्चिमुख परिवय प्रेमक संकय, खनी बाध समाये ।

सकलि कला एव संभरि न भेल, बैरनि भेलि भीर लागे । ”

विलास के जितने सुन्दर चित्र विद्यापति में मिलती हैं उनके श्लाश भी चण्डीदास में नहीं। श्रीसुशीलकुमार चक्रवर्ती के शब्दों में “विद्यापति राधा विलासकला मयी ईश्वरभक्तियोगना रूप लावण्यकली किशोरी ह्यु वामादिनेर निकट उपस्थित” श्री दिनेशचन्द्र नाथ के शब्दों में “एव राधा जयदेवर राधार न्याय शीरीरेर भाग बाधिक हृदयर भाग बल्ले” और कविर रवीन्द्रनाथ के शब्दों में “विद्या पतिरा राधिकार प्रे वेदना अपेक्षा विलासवेशी, उहाते गंभीरतार कटलक्ष्मी नाह, केवल नवानुरागेर उदभ्रान्त तीलाजी चांचल्य । हृदयेर नवीन वाचना सकल पास्रा भेलिया उड़िते चाय, किन्तु खनी मथ जाने नाह। ”

विद्यापति की राधा भीली भाली सरला है। चण्डीदास की राधा संसार की देखकर जानती है कि प्रीति में कितनी बाधा हो सकती है। उसका निर्वाह कितना कठिन और बन्त कितना करुण होता है। बान्धविक प्रेरणा के कारण जब कुछ फैलते हुये भी राधा अपना जीवन करुण बलि वेदी के अर्पण कर देती है।

वह कितना के साथ करुणा सागर में हल हल कर गीता लाती है :-

“सह फेवति पीरिति भाल ।

हासिते हासिते, पीरिति करिया, कांसिते जग गेल ।

चण्डीदास की राधा का प्रिय अपने दुख की तो खुल मानता है और राधा के दुख से दुखी है, ऐसी प्रीति सम्मुख बड़े सीमाव्य का फल है :-



क- जाभार पराण, जैवति करिहै, समति हक से ।

ख- कामना करिया सागर माखि साधिव मौर साधा ।

मारिया हज्व वीनन्दर नन्दन तौमोर कलि राखा ।

पीरिति करिया, हाँडिया जाव रहिव कदम तले ।

चण्डीदास कय तखनि जानिव पीरिति कैमन ज्वाला ॥

विद्यापति ने संगीत के बड़े ही सुन्दर चित्र खींचे हैं। उन्होंने

रूप तथा जीवन के विकास की साक्षात् को जानने वाले चित्र भी खींचे हैं।

क- चाँद बार लर मुख घटना करु लीचन चकित कौर ।

बभिय घाय बाँवर धनि पौहति, दस विधि भेल ऊँजौर ।

ख- बाध पदन ससि मिहसि देखाबोसि बाध पीहति निव बाहु ।

किहु एक भाग बहालु भाँपल किहुक गसल राहु ॥

ग- कबरो भय जामरि गिरिकंदर मुखमय चाँद बकासे ।

इसि कयन मय सर भय कोकित गतिमय नय नन बासे ।

सुन्दरि क किह मोहि समासि न जासि ।

तुव उर लस सक दुरहि पलायल, तुहु पुन कहि डरासि ॥ "

इस पात्र में चण्डीदास की विद्यापति से कोई तुलना नहीं।

खीन्द के शब्दों में विद्यापति सुतर कवि, चण्डीदास दुःतर कवि। "

" विद्यापति विरहे कातर इह्या१ पहेन, चण्डीदासेर मिलैत कुत नाह ।

विद्यापति भोग करिखार कवि, चण्डीदास सहय करिखार कवि । "

चण्डीदास में मिलत है परन्तु संगीत नहीं संगीत नहीं । "

चण्डीदास के प्रेम में सामाजिक नियमों का निवारण है। चण्डीदास

के कुतुहार जल के स्पर्श के बिना ही स्पर्श करने वाला व्यक्ति प्रेम पात्र के सदा निवृत्त रह

कर भी उसके शरीर को हाथ तक न लगाने वाला प्रीति ही प्रेम की दिव्यता का अनुभव करता है :-

क- सिनान करिवि नीस्ता हुवि, भाविनी भाविर देश ॥

ख- स्तन पाविम, नाहिं परस्ति भाविनी भाविर देश ॥

जो राधा स्वाम दाग भर ची कियोग नहीं सह सके वे मिलने पर एक दूसरे से छिटके नहीं वरन् एक दूसरे के सामने एक दूसरे से कुछ दूर पर बैठ जाते हैं और नेत्रों से कशु कहाने लगते हैं। चण्डीदास का प्रेम अपूर्ण और अस्थायी है। इस प्रेम में दो प्राणों का बहुत बन्धन है। यहाँ भावी विच्छेद की आशंका के ही कारण उपलब्ध संग का उपसंग वर्जित है :-

स्तन पीरित कसु नाहि देखि हुनि ।

परागो पराया बाधा अप्ना बापनि ।

हुहु कोहूँ कोहूँ विच्छेद भाविना ।

बाध तिल ना देखिते जाय से परिवा ।

बल बिनु मीन जेस कन्हूँ न जीये ।

मानुषे स्तन प्रेम कोपाना हुनिवा ।

मानुकमल बलि सैही हैन मय ।

छिये कमल मरे, मानु सुखे रम ।

चातक जलज कहि-से-नेह तुलना ।

समय नखिले से नाय देय एक कणा ।

हुहुमे मधुम कहि - सखि नहि तुल ।

ना बाह्ये भ्रमर जायनि ना जाय फूल ।

कि झार चकोर चाँद-झुँ समे नई ।

त्रिभुवन है नाहि चण्डीदास को ॥

विद्यापति की राधा नवीना है, नवकुटा है। उसमें कुछ व्याकुलता भी है, वाशा निराशा का बान्धव भी है। चण्डीदास की राधा में कुछ तरल भाव है विद्यापति की राधा में कुछ उत्तापता पन। जिस प्रकार नवीना के नये प्रेम में विचित्र कौतुक और कौतूहल भरा होता है वैसे विद्यापति की राधा में है। चण्डीदास गर्वीर और व्याकुल हैं विद्यापति नवीन और मधुर हैं।

-----:०:-----